ISSN: 2249-2577

वर्ष 10 अंक 2
जुलाई-दिसंबर, 2018

विशेषांक :
पर्यावरण विकास तथा
नियामकीय संस्थाओं की भूमिका

लोक प्रशासन

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक
प्रो. एस. एन. मिश्र

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

अध्यक्ष

निदेशक, आई. आई. पी. ए.,
नई दिल्ली

सम्पादक

प्रो. एस. एन. मिश्र
नोएडा

सम्पादक मंडल

प्रो. के. के. पाण्डेय
आई. आई. पी. ए., नई दिल्ली

प्रो. अमिता सिंह
जे.एन.यू., नई दिल्ली

प्रो. श्रीप्रकाश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. प्रवीण कुमार
प्राचार्य, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली

डा. अशोक कुमार पाण्डेय
भूतपूर्व आई.ए.एस., नई दिल्ली

पाठ-संशोधक

स्नेहलता

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–110002

Ykkd i’kkl u

vuØef.kdk

	i"B
lEikndh;	v
Yk[k	
भारत में पर्यावरण विकास एवं स्वतंत्र नियामक आयोग सुधांशु त्रिपाठी	1
राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की नियामकीय भूमिका राजेंद्र कुमार पांडेय	11
पर्यावरण एवं हमारा दायित्व श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी	24
भारतीय संस्कृति में पर्यावरण–मीमांसा कौशल किशोर मिश्र	36
पर्यावरण संरक्षण की वैश्विक जिम्मेवारी और भारत गाँधीजी राय	45
पर्यावरण संरक्षणः विकास एवं प्रदूषण के बीच संघर्ष शशि भूषण कुमार एवं श्वेताम्बु गौतम	71
पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिकाः एक अध्ययन उमेश कुमार	90
पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियाँ सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी	103
भारत में पर्यावरणीय न्यायशास्त्र एवं आमजन (क्या स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरण अनिवार्य है?) रवीन्द्र कुमार वर्मा	109
ठोस कचरा प्रबंधन एवं पर्यावरण संरक्षण : पटना के संदर्भ में सुरेन्द्र कुमार	120

गाँधी चिंतन में सतत् विकास एवं पर्यावरण
ममता मणि त्रिपाठी 130

पर्यावरण विकास और नियामकीय संस्थाओं की भूमिका : भारतीय परिपेक्ष्य
राजबीर सिंह दलाल एवं सरबन कुमार 139

पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिका
नूर फातिमा अंसारी 157

भारत में विकास तथा पर्यावरण संरक्षण (पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की भूमिका)
हरीश दत्त 169

पर्यावरणीय समस्यायें एवं समाधान
सच्चिदानन्द मिश्र 186

पर्यावरण-संरक्षण
मदन गोपाल सिन्हा 195

पर्यावरण संरक्षण नियामक संस्था : राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण एक विश्लेषण
रश्मि चौहान 210

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय नियामकों की भूमिका : एक अध्ययन
कमलेश नारायण मिश्र एवं सुधीर कुमार शुक्ल 219

भारत में पर्यावरण संरक्षण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका
शीला कुमारी 226

मनुष्य-प्रकृति संबंध : भारतीय वन कानूनों के नजरिए से
विश्व दीपक त्रिपाठी 245

पर्यावरण और विकास
महेश कुमार सिंह 255

स्वच्छ गंगा अभियान और राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण : दशा व दिशा
ऋतेश भारद्वाज 264

पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं उपाय
अम्बुजेश कुमार मिश्र 274

भारत में पर्यावरण – संरक्षण एवं नियामक संकायों की भूमिका
मीना मिश्रा 283

पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिका : ग्रन्थ सूची
मीना मिश्रा 290

y[kd

प्रो. सुधांशु त्रिपाठी – आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी – आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. कौशल किशोर मिश्र – आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

प्रो. गाँधीजी राय – सेवा निवृत्त, आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. शशि भूषण कुमार – सह-आचार्य, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र विभाग, आर. एन. महाविद्यालय, हाजीपुर, बिहार।

श्री श्वेताम्बु गौतम – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, जे. पी. विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

डॉ. उमेश कुमार – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. सत्यप्रकाश त्रिपाठी – अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा – सह-आचार्य, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र विभाग, आर. एन. कॉलेज, हाजीपुर (वैशाली), बिहार।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार – अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, बी. एस. कॉलेज, दानापुर, पटना, बिहार।

डॉ. ममता मणि त्रिपाठी – सह-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, श्री भगवान महावीर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फाज़िल नगर, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश।

प्रो. राजबीर सिंह दलाल – आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

श्री सरबन कुमार – शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

श्रीमति नूर फातिमा अंसारी – शोध छात्रा, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश।

श्री हरीश दत्त – शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. सच्चिदानंद मिश्र – से०नि०, प्राचार्य, एस.डी.पी.जी. कॉलेज, मठ-लार, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मदन गोपाल सिन्हा – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हिन्दू पी. जी. कॉलेज, जमानियां, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रश्मि चौहान – पूर्व स्कालर, लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

डॉ. कमलेश नारायण मिश्र – सहायक-आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, मदन मोहन मालवीय पी.जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

श्री सुधीर कुमार शुक्ल – शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, मदन मोहन मालवीय पी.जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

शीला कुमारी – शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. विश्व दीपक त्रिपाठी – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

श्री महेश कुमार सिंह – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. ऋतेश भारद्वाज – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, श्यामलाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

श्री अम्बुजेश कुमार मिश्रा – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

श्रीमति मीना मिश्रा – सहायक-पुस्तकालयाध्यक्ष, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, आई. पी. एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली।

lEikndh;

आज व्यापक स्तर पर यंत्रीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण वातावरण इतना विषाक्त हो गया है कि न हम शुद्ध हवा में सांस ले सकते हैं, न स्वच्छ जल पी सकते हैं और न ही पौष्टिक पदार्थ खा सकते हैं इसीलिए हम तरह-तरह की शारीरिक व मानसिक व्याधियों के शिकार हो रहे हैं। जहरीली गैसों के रिसाव से लाखों मनुष्यों की मृत्यु हो रही है इसमें तनिक भी संदेह नहीं यदि यह क्रम बना रहा तो विकास प्रक्रिया में मानव स्वयं ही लुप्त हो जायेगा और विकास तथा विनाश एक दूसरे के पर्याय हो जायेंगे।

इन समस्याओं का हमारे दूरदर्शी संविधान निर्माताओं ने पहले ही अनुमान लगा लिया था अतः इसलिए संविधान के नीति निर्देशक तत्व की धारा 48 (A) में पर्यावरण की रक्षा हेतु विस्तृत प्रावधान किया, जिसके अंतर्गत नियामकीय संस्थाओं के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है।

जब हम नियामकीय संस्थाओं की बात करते हैं तो पहला प्रश्न हमारे सामने यह आता है कि नियामकीय संस्थाएं क्या हैं? यह सरकारी संरचना द्वारा निर्मित व्यवस्थाएं हैं जिन्हें विधायन, क्रियान्वयन से संबंधित न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। यदि हम कोई व्यवसाय भी शुरू करते हैं तो सबसे पहले उसका खाका तैयार करते हैं उससे संबंधित नियम बनाते हैं तथा उसे लागू करते हैं ठीक उसी तरह पर्यावरण सम्बन्धी कानून समाज की स्वास्थ्य सुरक्षा आदि सम्बन्धी नियम बनाते हैं और उसे लागू करते हैं नियामकीय संस्थाएं मुख्य रूप से दो प्राथमिक कार्य करती हैं वह है (क) नियम बनाना और (ख) उस नियम को प्रभावी ढंग से लागू करना। ये संस्थाएं मूल रूप से संज्ञातय व्यवसाय के अंतर्गत आती हैं और पर्यावरण की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य की रक्षा करने में अहम भूमिका निभाती हैं।

जैसा की संवैधानिक व्यवस्था है उसी सन्दर्भ में 1974 में संविधान के 42वें संशोधन के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई कि राज्य सरकार पर्यावरण का संरक्षण, सुरक्षा, जंगलों, तथा जंगली जानवरों की रक्षा करेगी। बाद में इन्हें मौलिक कर्तव्यों के अंतर्गत भी समाहित किया गया। अतः यह महसूस किया गया कि देश में नियामकीय संस्थाओं का गठन किया जाए ताकि पर्यावरण की रक्षा हो सके। ये संस्थान दोहन, प्राकृतिक स्रोतों का गलत उपयोग तथा हाशियाई समुदायों की रक्षा करें।

साथ ही यह परियोजना पर दृष्टि रखेगी इन पर लगातार निगाह रखेगी, आदि। इस सन्दर्भ में 31 मार्च 2014 को उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों द्वारा केंद्र सरकार को यह निर्देश दिया गया कि पर्यावरण मंत्रालय, वन मंत्रालय जलवायु क्षेत्र

में निगाह रखे। 1986 अधिनियम के अनुसार नियामकीय संस्थाओं को निम्नलिखित निर्देश दिए गए:

(क) नियामकीय आयोग को अधिकार होगा कि वह औद्योगिक परियोजना की अनुमति दे।

(ख) उनका पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है? इसका मूल्यांकन करें।

(ग) यह सुनिश्चित करे की राज्य सरकार पर्यावरण सम्बन्धी अनुमति दे इत्यादि।

साथ ही केंद्रीय सरकार ने एक अंतर मंत्रालय संस्था 2014 में बनाई है जो उसकी गुणवत्ता पर विचार करे।

जैसा की पहले कहा जा चुका है नियामकीय संस्थाएं राज्य और केंद्र सरकार दोनों ही निर्मित कर सकती हैं। जिसके लिए समय-समय पर कानून बनाये गए हैं। हमारे यहां पर्यावरण सम्बन्धी नियामकीय संस्थाओं की लम्बी सूची है।

विगत् वर्षों में पर्यावरणीय जागरूकता के साथ-साथ परम्परागत अवधारणा में परिवर्तन हुआ है। जिसके चलते पर्यावरण की गुणवत्ता एवं आर्थिक विकास में संघर्ष देखने को मिलता है। फिर भी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। पर्यावरणीय जागरूकता पर विशेष ध्यान देना कोई नई बात नही हैं बल्कि यह भारतीय संस्कृति का अंग रहा है। पर्यावरण का सरंक्षण एवं टिकाऊ विकास भारतीय धार्मिक ग्रथों में भी उल्लेखित हैं। इस संदर्भ में आज पर्यावरण विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

पयार्वरण प्रदूषण की समस्या आज संपूर्ण विश्व में एक विकराल संकट का रूप धारण कर चुकी है जिससे भारत जैसे विकासशील तथा तृतीय विश्व के लगभग सभी देश गंभीर रूप से प्रभावित और त्रस्त हैं। यद्यपि पर्यावरण क्षरण पर नियंत्रण लगाने के लिए सरकार द्वारा गठित विभिन्न नियामक संस्थाएँ अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहीं हैं। इनको अधिक शक्ति संपन्न बनाने के अलावा उनके उत्तरदायित्व को भी तय करना होगा जिससे वे अमूल्य प्राकृतिक संपदाओं के सदुपयोग को सुनिश्चित करने के साथ-ही-साथ उनके संरक्षण एवं सवंर्धन हेतु कारखानों द्वारा आधुनिक तकनीकों का भी उपयोग तथा पर्यावरण रक्षा संबंधी निर्धारित मानकों का पालन करें। इसका उत्तम विश्लेषण *सुधांशु त्रिपाठी* ने प्रथम लेख में किया है।

भारत में आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में शीर्ष नियामकीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन 2005 में किया गया था। इस प्राधिकरण द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न नियामकीय पहलों को व्यावहारिक धरातल पर कितना उतारा गया और इसी मुद्दे पर प्राधिकरण की कार्यक्षमता और नियामकीय पौरूष पर प्रश्नचिन्ह लगता नज़र आता है। *राजेंद्र कुमार पाण्डेय* के आलेख में एक नियामकीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी ने ''पर्यावरण एंव हमारा दायित्व'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार पर्यावरण के प्रति हमारा उत्तरदायित्व है क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड में मात्र पृथ्वी ही अकेला ग्रह है, जिस पर जैवमण्डल की सम्भावना विद्यमान है। लेकिन हमारे पर्यावरण अर्थात् जल, जंगल, जमीन व हवा आदि प्रकृति के उपादान भयावह रूप से क्षरित व प्रदूषित होते जा रहे हैं। व्यवहारतः उन दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पा रहे हैं, जिन्हें वास्तव में करना चाहिए। मसलन–जीवन शैली में बदलाव, विकास की अवधारणा में बदलाव, उपभोक्तावाद से परहेज, यंत्रों व तकनीकों का सीमित उपयोग अपनी लिप्सा पर पूर्ण नियंत्रण आदि नहीं कर पा रहे हैं, जो पर्यावरण की संजीवनी हेतु यथेष्ठ उपाय है। वर्तमान वैश्विक परिवेश में पर्यावरण और उसके प्रति हमारा दायित्व गहन चिंतन का विषय है।

प्रकृति के घटक तत्व ही पर्यावरण का निर्माण करते हैं। प्रकृति के घटक तत्व हैं– पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि। यही पाँचों तत्व प्रकृति का निर्माण करते हैं। इनमें से एक का भी रूप बिगड़ जाये तो प्रकृति का रूप बिगड़ जाता है। ब्रह्माण्ड बिगड़ेगा तो शरीर बिगड़ेगा। प्राणी मात्र का अस्तित्व व उसका विकास सबकुछ उसके पर्यावरण पर ही निर्भर करता है, इन्हीं पंच तत्वों से प्राणी मात्र का निर्माण होता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति ने मानव सहित सभी प्राणियों के शरीर के साथ प्रकृति को जोड़ने की बात की है। लगातार यह प्रार्थना की है कि उसका संरक्षण और संवर्धन हो। इसका विवेचन *कौशल किशोर मिश्र* ने अपने लेख में श्लोकों और उनके भावार्थ के माध्यम से किया है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत में भिन्न-भिन्न अधिनियम बने हैं। इन अधिनियमों का सख्ती से अनुपालन करना हमारी नैतिक जिम्मेवारी है। हजारों वर्षों से जो धरती हम सबका संरक्षण और पोषण करती रही है, आज हम उसके स्वास्थ्य की चिंता करें, क्योंकि हमारा भविष्य भी धरती के भविष्य से जुड़ा है। देशांतर्गत दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण तथा कम होते जल देश के लिए एक बड़ी चुनौती हैं। अतः जल संचयन के लिए आज हमारी सामूहिक प्रतिबद्धता आवश्यक है। इसके साथ ही, प्लास्टिक के विरूद्ध राष्ट्रव्यापी अभियान चलाकर बड़े पैमाने पर पर्यावरण को सुरक्षित बनाया जा सकता है। इसका विस्तृत विश्लेषण *गांधीजी राय* ने अपने लेख में बखूबी किया है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज न केवल अखिल भारतीय स्तर पर देखी जा रही है बल्कि समूचा विश्व इससे आक्रांत है। तीव्र आर्थिक विकास ने पर्यावरण, अधिसंरचना (infrastructure) एवं प्राकृतिक संपदा पर अत्यधिक दबाव बना डाला है। प्रस्तुत लेख में *शशि भूषण कुमार एवं श्वेताम्बु गौतम* ने पर्यावरण संकट के विभिन्न आयामों एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में किए गए प्रयासों का

सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार विकास एवं प्रदूषण के बीच एक लम्बा संघर्ष चल रहा है।

पर्यावरण संकट एवं प्रदूषण एक विश्वस्तरीय भयंकर समस्या बन गयी है। इन पर्यावरणीय समस्याओं ने वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों एवं शिक्षाविदों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और यह महसूस किया कि पर्यावरण विकास को सामान्य विकास का अंग बनाया जाये तथा नियामकीय संस्थायें इस दिशा में सकारात्मक पहल करें। यह सस्थायें पर्यावरण के विकास में अपनी भूमिका किस प्रकार निभा रहीं हैं। इस का अध्ययन *उमेश कुमार* ने अपने लेख में किया हैं।

वर्तमान समय में हमारे समक्ष पर्यावरण भयंकर चुनौती के रूप में परिलक्षित हो रहा है। यह मानवता हेतु शुभ संकेत नहीं है। इसका मूल कारण है आर्थिक विकास, विकास की लंबी दौड़ में हमने पर्यावरण का क्षरण किया है तथा इसकी सुरक्षा हेतु आवश्यक सुझावों की अनदेखी की है। कई नियामक संस्थाएँ भी अपने कर्तव्यों की प्रति सजग नहीं रहीं। इन सब पर्यावरणीय संरक्षण की चुनौतियों का विशद् विश्लेषण *सत्यप्रकाश त्रिपाठी* ने अपने शोधपत्र में प्रस्तुत किया है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु बने संगठनों का अपने दायित्वों पर खरा नहीं उतरना तथा न्यायिक निर्णयों के आंशिक प्रभाव के कारण आमजन इस प्रक्रिया से कटे हुए हैं। भारत पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के परीक्षण से विदित होगा चाहे यह मामला उनके पर्यावरणीय विरोधी आदतों पर नियंत्रण रखने का हो या उनकी आजीविकीय प्राथमिकता का प्रश्न हो। तमाम मुद्दों पर विवेचन के पश्चात् यह अनुशंसा की जा सकती है कि पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण नियंत्रण हेतु बनी संस्थाओं और विभिन्न पर्यावरणीय नीतियों के कार्यान्वयन की जिम्मेवारी किसी ऐसे प्राधिकरण को दी जाये जिसे स्वायत्तता प्राप्त हो इसकी अनिवार्यता के विषय में *रवीन्द्र कुमार वर्मा* ने अपने लेख में प्रकाश डाला है।

नगरीकरण एवं उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण आज ठोस कचरे की मात्रा एवं प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन आया है। इस कारण, ठोस कचरा प्रबंधन को एक जन-आन्दोलन का रूप देना होगा। प्रस्तुत लेख में *सुरेन्द्र कुमार* ने पटना के संदर्भ में ठोस कचरा प्रबन्धन की समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया है। यह अध्ययन सम्पूर्ण बिहार के लिए नीतिगत निहितार्थ हैं। कारण, यदि पटना में नगर निकाय, जो बिहार सरकार की नाक के नीचे कार्य कर रहे हैं, ठोस कचरा प्रबंधन की रणनीति विकसित नहीं कर पा रहे हैं तो राज्य के अन्य भागों का क्या होगा, जहाँ के नगर निकाय भारी आर्थिक तंगी एवं अन्य समस्याओं से जूझ रहे हैं।

विकास तथा पर्यावरण एक दूसरे के पूरक हैं। संतुलित एवं शुद्ध पर्यावरण बिना मानव का जीवन कष्टमय हो जायेगा। हमारा अस्तित्व तथा जीवन की

गुणवत्ता स्वच्छ पर्यावरण पर निर्भर है। विकास हमारे लिए जरूरी है इसके लिए प्राकृतिक साधनों का उपयोग करना चाहिए। सतत् विकास में आर्थिक समानता, लैंगिक समानता एवं सामाजिक समानता के साथ-साथ पर्यावरण संतुलन भी निहित है इसलिए कहा जाता है कि मानव का वास्तविक कल्याण सतत विकास द्वारा ही संभव है। महात्मा गाँधी ने कहा था– ''हमारे उद्योग मानव प्रधान होने चाहिए न कि मशीन प्रधान'' सतत् विकास के संदर्भ में उनकी यह बात हमें बहुत कुछ सिखाती है। इसका विश्लेषण *ममतामणि त्रिपाठी* ने अपने लेख में किया है।

पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु अनेकों कदम उठाए गए हैं जिसमें जलवायु एवं मृद्धा संरक्षण कानूनों के साथ-साथ इन्हें लागू करवाने हेतु अनेकों नियामकीय संगठनों एवं निकायों की स्थापना भी की गई है। पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय तथा विभागों के अतिरिक्त राष्ट्रीय हरित न्यायाधीकरण तथा प्रादेशिक हरित न्यायाधीकरणों तथा पर्यावरण अदालतों का गठन पिछले दो दशकों में किया गया है ताकि पर्यावरण विकास को सुनिश्चित किया जा सके और इसका क्षरण करने वालों को दण्डित किया जा सके। इस प्रकार *राजबीर सिंह दलाल व सरबन कुमार* ने अपने लेख में पर्यावरण विकास और नियामकीय संस्थाओं की भारत के संदर्भ में समीक्षा की है।

नूर फातिमा अंसारी ने पर्यावरण विकास एवं पर्यावरण में प्रदूषणों के प्रकारों की व्याख्या की है कि वह किस प्रकार से अनेक रूपों में पर्यावरण को नष्ट कर रहे हैं जो मानव जाति के लिये घातक है। तथा इन सब को किस प्रकार भिन्न-भिन्न योजनाओं तथा नियामकीय संस्थाओं के निर्माण के द्वारा रोका जा सकता है। परन्तु यह संस्थायें वैश्विक राजनीति के द्वारा विचार-विमर्श तक ही सीमित न रह कर प्रभावशाली भूमिका निभाये। उन देशों का आत्म मंथन की जरूरत है। जो कि सम्पोषणीय विकास की प्राप्ति में बाधा पहुँचाते हैं।

एक शीर्ष निकाय के रूप में भारत में पर्यावरण संरक्षण में मंत्रालय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। परन्तु उसकी प्रभावशीलता में कुछ कमी है क्योंकि मंत्रालय को दी गई शक्तियाँ पर्याप्त अथवा जांच प्रकृति की हैं। *हरीश दत्त* ने अपने लेख में पर्यावरण संरक्षण में मंत्रालय को पुनर्गठित करने और पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिये, इसे कैसे प्रभावी निकाय बनाने के लिये, उसे प्रभावी अधिकार देने चाहिये एवं राजनीति हस्तक्षेप को कम करना चाहिये। इस बारे में विस्तृत विवेचन किया है।

विकास तथा पर्यावरण दोनों अनिवार्य हैं। दोनों के पोषण में ही मानव कल्याणार्थ विकास की अवधारणा संरक्षित होती है। विनाश की कीमत पर विकास का कोई औचित्य नहीं। औद्योगिक संयत्रों की स्थापना हमारी आवश्यकता है। अतः ऐसी परियोजनायें और औद्योगिक संयत्र लगाते समय ऐसी तकनीक का

उपयोग किया जाना चाहिये जो प्रदूषणरोधी हो तथा पर्यावरण को हानि न पहुंचाये। इस संयत्रों में सभी प्रकार की प्रदूषणरोधी विधियाँ लगायी जाये तथा समय-समय पर उनके पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिए निगरानी की जाये। इन्हीं समस्याओं एवं समाधानों का *सच्चिदानंद मिश्र* ने अपने लेख में प्रकाश डाला है।

पर्यावरण का अस्वास्थ्यकर हो जाना ही पर्यावरण-प्रदूषण है। पर्यावरण-सरंक्षण आज सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। जनसंख्या-वृद्धि एवं विलासितापूर्ण जीवन-शैली के चलते पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है। जल, वायु, ध्वनि, मृदा, समुद्र इत्यादि सभी खतरनाक स्थिति तक प्रदूषित हो चुके हैं। उष्मा-प्रदूषण, नाभिकीय-प्रदूषण, वैचारिक-प्रदूषण इत्यादि भी चरम सीमा पर है। ऐसी स्थिति में सबको चिन्तित होना चाहिए। जनसंख्या को सीमित करना और 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' के सिद्धांत को अपनाना पर्यावरण-सरंक्षण के लिए निर्विकल्प है। इसमें नियामकीय संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण साबित होगी। यह *मदन गोपाल सिन्हा* ने अपने लेख में बतलाया है।

राष्ट्रीय हरित, प्राधिकरण (NGT) एक नियामक संस्था है। जो पर्यावरण संरक्षण के लिये स्थापित की गई थी। *रश्मि चौहान* ने इसका विश्लेषण अपने लेख में किया है कि किस प्रकार यह संस्था भी राजनीति और प्रशासन की मिली भगत से बेबस हैं इसलिये NGT के तथ्यों का क्रियान्वित होना चुनौतीपूर्ण है। इसकी वजह से पर्यावरण की अवहेलना हो रही है।

पर्यावरण की रक्षा हमारे सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं का ही अंग है। प्रस्तुत आलेख में *कमलेश नारायण मिश्र एवं सुधीर कुमार शुक्ल* ने भारत की पर्यावरण नियम नीति, नियामक और न्यायपालिका की सक्रियता की समीक्षा का एक प्रयास किया है। इनका यह अध्ययन वर्तमान परिस्थितियों में नीति नियामकों का पुर्न प्रस्तुतीकरण, पुनरूद्वार एवं इन संस्थाओं की सीमा, सामर्थ्य एवं स्वतंत्रता बढ़ाने की आवश्यकता महसूस करता है। इसके साथ-ही-साथ सामाजिक चेतना, युवाओं की भागेदारी, नागरिक समाज की हिस्सेदारी और संबंधित विशेषज्ञों की अधिकतम भागेदारी की आवश्यकता है।

पर्यावरण प्रदूषण ने वैश्विक स्तर पर भूमि, जल और वायु को प्रभावित कर मानवता के लिए बड़ी चुनौती उत्पन्न कर दी है। पर्यावरण संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेवारी हो गई है। इसलिये देश में पंचायतों को पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्य सौंपने से बड़ा बदलाव किया जा सकता है। स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से पर्यावरण की प्रक्रिया को तेज कर स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। यही कारण है कि भारतीय संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को न सिर्फ संवैधानिक दर्जा दिया गया, वरन् अनेक अधिकार भी सौंपे गए हैं। संविधान की 11वीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं

को जो 29 कार्य सौंपे गए हैं, उनमें नौ कार्यों का सीधा संबंध पर्यावरण संरक्षण से है। इसका विवरण *शीला कुमारी* ने अपने लेख के माध्यम से बखूबी किया है।

मानव जीवन का उद्‌भव और विकास सदैव पर्यावरण पर निर्भर करता है। मनुष्य और पर्यावरण के मध्य एक अन्योन्याश्रित संबंध है, जो आदि काल से चला आ रहा है। भोजन, शिकार तथा कुछ अन्य जरूरतों के लिए मनुष्य प्रारम्भ से ही पर्यावरण पर निर्भर रहा है। यद्यपि कि 2006 के वन कानून ने जनजातियों के साथ सदियों से चले आ रहे अन्याय का खात्मा किया है तथा वनों और मनुष्य के सहजीविता और साहचर्य को महत्व प्रदान करने की चेष्टा की है, परन्तु इससे समस्या का आंशिक समाधान होता हुआ ही दिख रहा है। वास्तव में जब तक आधुनिक/उत्तर आधुनिक मनुष्य संपूर्णता में मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य और अन्योन्याश्रय को स्वीकार करके अपने लिए उपयुक्त जीवन शैली का चुनाव नहीं कर लेता है तब तक समस्या समाप्त नहीं होगी। इसका विवेचन *विश्व दीपक त्रिपाठी* ने अपने लेख में किया है।

पर्यावरण प्रत्येक मानवीय जीवन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ढंग से प्रभावित कर रहा है। तीव्र आर्थिक विकास हेतु अनियंत्रित रूप से प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन, औद्योगिक क्रांति, द्रुतगामी परिवहन साधनों एवं बढ़ते मशीनीकरण ने आज सम्पूर्ण वैश्विक जगत के समक्ष 'पर्यावरण संकट' को ज्वलंत समस्या के रूप में उपस्थित किया है। हमें ऐसी विकासात्मक व्यवस्था को प्राथमिकता देनी होगी, जिसमें मानवीय आवश्यकताओं और संसाधनों के मध्य सदैव संतुलन एवं समायोजन स्थापित किया जा सके और स्वच्छ, सुन्दर व शुद्ध पर्यावरण की प्राप्ति सम्भव हो सके। इसी को *महेश कुमार सिंह* ने अपने लेख में दर्शाया है।

ऋतेश भारद्वाज का यह लेख स्वच्छ गंगा अभियान से जुड़े हुए सरकार के प्रयासों के आकलन के साथ-साथ राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की स्वच्छ गंगा अभियान पर निगरानी व दिशा-निर्देशों का राजनीतिक-आर्थिक अवलोकन करता है। नियामक निकाय एक सार्वजनिक प्राधिकरण होता है जो नियामकीय या पर्यवेक्षणीय क्षमता के तहत मानव गतिविधियों के कुछ क्षेत्रों पर स्वायत्त प्राधिकरण हेतु उत्तरदायी होता है। नियामक निकाय प्रशासनिक कानून-विनियमन या कानून-निर्माण के क्षेत्र में कार्य करते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में *अम्बुजेश कुमार मिश्र* ने ''पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं उपाय'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय विमर्श में बढ़ता हुआ प्रदूषण एक ज्वलंत समस्या जिसके दुष्परिणामों से समस्त जीवधारियों को विविध प्रकार के रोगों से ग्रसित होना पड़ रहा है। यहाँ यह ध्यातव्य होना चाहिए कि प्रदूषण की वृद्धि का प्रमुख कारण मानवीय अवांछनीय गतिविधियाँ हैं, जो प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का अतिशय विदोहन करते हुए वसुन्धरा को कूड़े-कचरे के ढेर का स्वरूप प्रदान कर रही हैं।

उच्च जीवन स्तर, स्वच्छ वातावरण अर्थात प्रदूषण रहित पर्यावरण में ही सभंव है। पर्यावरण संरक्षण हेतु कई उपाय किये गये हैं। भारत में अनेकों नियोजक निकायों को विवरण हुआ है। संविधान में भी संशोधन किये गये। निवारक संस्थानों की पर्यावरण को सुरक्षित रखने में अहम भूमिका है और वह इसे किस तरह निभाते हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिये केवल सरकार या संस्थानों को नहीं प्रत्येक व्यक्ति को भी अपने स्तर पर योगदान देना होगा। यह *मीना मिश्रा* ने अपने लेख में बताने की कोशिश की है।

इस विशेषांक में पर्यावरण विकास एवं नियामकीय संस्थाओं की भूमिका पर सांगोपांग विचार हुआ है। पर्याप्त विश्लेषण के उपरांत सबसे महत्वपूर्ण यही प्रश्न उभरता है कि पर्यावरण विकास में नियामकीय संस्थाओं की क्या भूमिका है? तथा वे अपना कर्तव्य निभाने में कितनी सफल रहीं।

इस विशेषांक के संपादन में प्रो. महेन्द्र प्रसाद सिंह सम्पादक, आई.जे.पी.ए.के सहयोग-सद्भाव के लिये मैं अति आभारी हूँ। श्रीमती स्नेहलता की अथक सक्रियता एवं निष्पादन के लिये सधन्यवाद!

& lEiknd

भारत में पर्यावरण विकास एवं स्वतंत्र नियामक आयोग

सुधांशु त्रिपाठी

Ikjk'k *आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य-व्यवस्था के युग में लोकतंत्र के गहराते विस्तार तथा जनता की निरन्तर बढ़ती माँगों की पूर्ति में संलिप्त रहने के कारण जहाँ राज्य पर कार्यों का बोझ अत्यधिक बढ़ गया है वहीं वर्तमान बाजार संस्कृति में राज्य का स्वरूप भी बाज़ारू होता जा रहा है। जनता की बढ़ती आवश्यकताओं ने व्यापक स्तर पर औद्योगिकीकरण एवं यंत्रीकरण के लिए विवश किया है जिस कारण पर्यावरण इतना प्रदूषित हो गया है कि आज शुद्ध जल, वायु, अन्न, फल, फूल आदि का पूर्ण अभाव हो गया है। परिणामस्वरूप अनेकों शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों ने व्यक्ति का जीवन जीना दूभर कर दिया है। अतः पर्यावरण संरक्षण से जुड़े व्यापक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में अमेरिका एवं अन्य यूरोपीय देशों के सदृश स्वतंत्र नियामक आयोग जैसी नियामक संस्थाओं के गठन की आवश्यकता महसूस की गयी जिससे देश में पर्यावरण की सुरक्षा के साथ प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग प्रभावी ढंग से रोका जाए एवं वन्य प्राणियों की रक्षा भी की जा सके। इसी के साथ घने जंगलों में रहने वाले कबीलायी एवं अन्य हाशियाई समुदायों तथा महिलाओं की रक्षा करना भी इन नियामक संस्थाओं का कार्य निर्धारित किया गया।*

प्रस्तावना

औद्योगिक क्रांति के कारण जनसंख्या में वृद्धि एवं शहरीकरण बहुत अधिक मात्रा में हुआ जिससे पर्यावरण पर गंभीर दुष्प्रभाव पड़ने लगा। आगामी दशकों में जनसंख्या के विस्फोट तथा शहरीकरण की बढ़ती आवश्यकता ने विश्व में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों की स्थिति को और भी गंभीर बना दिया है जिसमें पर्यावरण प्रदूषण एक बहुत बड़ी चुनौती है। पर्यावरण से जुड़ी समस्याएं वैज्ञानिक क्रांति के उदय के फलस्वरूप तीव्र औद्योगिकीकरण तथा पूंजीवाद के आगमन से अनियोजित शहरीकरण और विकास से जुड़ी अंधाधुंध गतिविधियों का परिणाम हैं, जो लगभग दो सदी पूर्व

मुख्य रूप से पश्चिमी यूरोप से प्रारंभ हुई जिसके साथ नवोदित व्यापारी वर्ग ने अपने व्यापारिक मुनाफे के लिए कच्चे माल के रूप में प्राकृतिक संसाधनों का निर्बाध गति से दोहन प्रारंभ किया जिससे पर्यावरण की स्थिति में उत्तरोत्तर गिरावट आती गयी। वर्तमान में विश्व का लगभग प्रत्येक देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण में हो रही निरतंर गिरावट से प्रभावित हैः जैसे वैश्विक तापमान में वृद्धि, ओज़ोन परत में क्षरण, ग्रीन हाउस प्रभाव आदि। इस क्रम में 21वीं सदी इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि पर्यावरण और पारिस्थितिकी से संबंधित समस्याओं के प्रति जनजागरण ने आज एक सशक्त आंदोलन का रूप ले लिया है जिसके कारण संपूर्ण जनमानस में पर्यावरण की रक्षा के प्रति एक गंभीर चेतना जाग चुकी है तथा विभिन्न सरकारें पर्यावरण की रक्षा के प्रति विशेष रूप से सक्रिय हो चुकी हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा अन्य सगठनों ने पर्यावरण की समस्याओं के निराकरण के लिये गंभीर प्रयास शुरू किए हैं। आधुनिक लोककल्याणकारी राज्यव्यवस्था के युग में लोकतंत्र के गहराते विस्तार तथा जनता की निरन्तर बढ़ती माँगों की पूर्ति में संलिप्त रहने के कारण जहाँ राज्य पर कार्यों का बोझ अत्यधिक बढ़ गया है वहीं वर्तमान बाजार संस्कृति में राज्य का स्वरूप भी बाजारू होता जा रहा है। जनता की बढ़ती आवश्यकताओं ने व्यापक स्तर पर औद्योगिकीकरण एवं यंत्रीकरण के लिए विवश किया है जिस कारण वातावरण इतना प्रदूषित एवं विषाक्त हो गया है कि आज शुद्ध जल, वायु, अन्न, फल, फूल आदि का पूर्ण अभाव हो गया है। परिणामस्वरूप अनेकों शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों ने व्यक्ति का जीना दूभर कर दिया है। स्थिति इतनी गंभीर हो चुकी है कि विकास एवं विनाश दोनों एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं क्योंकि विकास की इस दौड़ में संभवतः मानवजाति स्वयं ही लुप्त हो जाएगी। अतः मानव जाति की रक्षा के लिए जहाँ एक तरफ पर्यावरण संरक्षण की चुनौती है वहीं दूसरी ओर पिछले दो सदियों से बढ़ते निजी औद्योगिकीकरण से उत्पन्न प्रदूषण और पर्यावरण के क्षरण की गंभीर समस्या को रोकना दुनिया भर की सरकारों का एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य बन चुका है। अतः पूंजीवाद के तेजी से बढ़ते समय में अमेरिका में सर्वप्रथम निजी उद्योगों पर सार्वजनिक हित में नियंत्रण एवं नियमन की आवश्यकता समझी गई जिसका उद्देश्य प्रकारान्तर से पर्यावरण संरक्षण ही था। इस उद्देश्य हेतु वहाँ स्वतंत्र नियामक आयोग जैसी संरचनायें 19वीं शताब्दी में अस्तित्व में आयीं तथा बाद में यूरोप के देशों में इनका आगमन हुआ जिसकी तर्ज पर भारत में भी ऐसी नियामक संस्थाओं का गठन हुआ। ऐसे चुनौतीपूर्ण वैश्विक वातावरण में लगभग तीन दशक पूर्व से ही पूंजीवादी तथा साम्यवादी दोनों ही राजनीतिक व्यवस्थाओं में राज्य की स्थिति चरमरा सी गयी है। आज विश्व के अधिकतर देशों में राज्य वस्तुतः अपने मूल दायित्वों का ही निर्वहन कर सकने में स्वयं को अक्षम पा रहे हैं। ऐसी विशम परिस्थिति में नियामक आयोग जैसी संस्थाओं के निर्माण होने से जहाँ एक तरफ औद्योगिक गतिविधियों के मनमाने आचरण, विशेषतया प्राकृतिक संसाधनों का निर्बाध

एवं अनियंत्रित दोहन तथा पर्यावरण प्रदूषण, पर नियंत्रण संभव हो सकेगा वहीं दूसरी तरफ राज्य अपने प्राथमिक दायित्वों का निर्वहन भी भली भांति कर सकेगा।

प्रस्तुत लेख की प्रस्तावना में पर्यावरण के तीव्र क्षरण से उत्पन्न खतरों का उल्लेख करने के साथ ही साथ पर्यावरण की रक्षा हेतु स्वतंत्र नियामक आयोग जैसी संस्थाओं की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया। लेख के दूसरे भाग में पर्यावरण के प्रति संपूर्ण विश्व में बढ़ती जागरूकता का वर्णन किया गया है तथा तीसरे भाग की व्याख्या में स्पष्ट किया गया है कि स्वतंत्र नियामक आयोग जैसी संस्थायें निजी आर्थिक एवं व्यापारिक उद्यमों पर लोकहित में सार्वजनिक नियंत्रण की स्थापना हेतु निर्मित संरचनाएँ हैं जो अपने क्षेत्राधिकार संबधी विषयों पर विशेषज्ञता रखती हैं तथा वे विभागीय नियंत्रण से स्वतंत्र होने के कारण अपने निर्धारित लक्ष्यों को शीघ्रता, कार्यकुशलता एवं मितव्ययी तरीके से पूरा कर लेती हैं। लेख के अगले भागों में तत्संबंधी सभी तथ्यों का भारत के परिपेक्ष्य में वर्णन करने के उपरान्त समाधान के रूप में निष्कर्ष दिया गया है कि पश्चिमी देशों की तरह भारत में भी पर्यावरण संरक्षण को प्रोत्साहन देने वाली अत्याधुनिक तकनीकों के अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया जाये जिससे पर्यावरण का पोषण एवं संवर्धन हो। इसी के साथ नियामक संस्थाओं को अधिक शक्ति संपन्न बनाने के अतिरिक्त उनके उत्तरदायित्व को भी तय किया जाये जिससे वे अमूल्य प्राकृतिक संपदाओं के सदुपयोग को सुनिश्चित करने के साथ ही साथ उनके संरक्षण हेतु आवश्यक उपायों को कड़ाई से लागू अवश्य करें। अंत में महिलाओं के प्रकृति के साथ गहरे संबध को देखते हुए उनके प्रति पुरूषवादी शोषणात्मक एवं भोगवादी नजरिये में परिवर्तन लाना सुनिश्चित किया जाये जिससे पर्यावरण संरक्षण में उनका अमूल्य योगदान प्राप्त हो सके एवं मानव जाति की सतत् रक्षा हो सके।

पर्यावरण संरक्षणः जनजागरूकता एवं आंदोलन

संभवतः इन्हीं खतरों को ध्यान में रखते हुए संपूर्ण विश्व में पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जनजागरूकता आती जा रही है जिसने आज संपूर्ण विश्व में एक प्रमुख आंदोलन का रूप ले लिया है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति ये जनचेतना प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने के साथ-साथ महिलाओं व बालिकाओं के हितों का संरक्षण करेगी तथा कबीलाई समुदायों एवं जनजातियों की परम्परागत संस्कृतियों की भी रक्षा करने में सफल हो सकेगी। क्रिस्टोफर रूटस, 1999 के अनुसार ('पर्यावरण आंदोलनों को लोगों व संगठनों के एक विशाल तंत्र के रूप में देखा जा सकता है जो पर्यावरणीय लाभों की प्राप्ति हेतु सामूहिक क्रिया में संलग्न हैं। पर्यावरणीय आंदोलनों को विविध एवं जटिल माना जाता है)।' उनके संगठनात्मक रूप कहीं या तो अति व्यवस्थित व विधिवत रूप में हैं अथवा अन्यत्र वे मूलतः अनियमित या अस्त-व्यस्त रूप में हैं जिस कारण इनकी गतिविधियों का दायरा एक मुद्दे विशेष

से लेकर वैश्विक पर्यावरणीय चिंताओं की पूरी एक विशाल कड़ी के रूप में संपूर्ण विश्व में फैला है। ऐसी जनचेतना एवं संयोजित विचार पर्यावरण संरक्षण रूपी शाब्दिक प्रयोग के अनूकूल हैं और ये समेकित भाव से पर्यावरणीय आंदोलनों के विभिन्न स्तरों व रूपों के बीच संबंध स्थापित करने में सभी को सक्षम बनाते हैं। (क्रिस्टोफर रूटस, 1999 : 2) भारत में विशेष रूप से 1970 के दशक के बाद बड़ी संख्या में पर्यावरण संबधी आंदोलनों का उद्‌भव नवीन वामपंथ के उदय के साथ शुरू हुआ। कुछ लोग इसे नवीन वामपंथ का ही विस्तार मानते हैं। ये पर्यावरण आंदोलन विभिन्न काल एवं स्थानों पर स्थानीय मुद्‌दों के स्वाभाविक रूप से उदय होने के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे जो उत्तरप्रदेश के हिमालयी स्थलों से केरल के उष्णकटिबंधीय वनों तक तथा गुजरात एवं त्रिपुरा तक संपूर्ण देश में फैले हुए थे। (संजीव कुमार, 2017 : 412) भारत में पर्यावरण आंदोलन अपने पश्चिमी रूप से भिन्न रहा है। पश्चिम में पर्यावरण आंदोलन का मुख्य क्रेंद 'संरक्षण एवं सुरक्षा' है वहीं भारत में ये आंदोलन मुख्य रूप से संसाधनों की 'उपयोगिता संरक्षणवाद' पर बल देता है क्योंकि यहाँ जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा पर्यावरण पर सीधे आश्रित है। (सुनीता नारायण, 2002 : 16-20)

नियामक संस्थाएँ

वास्तव में भारत के संविधान निर्माताओं ने संभवतः आगामी दशकों में होने वाले पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले खतरों का पूर्वानुमान कर लिया था। इसीलिए उन्होंने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48 (अ) के अंतर्गत पर्यावरण सुरक्षा के समुचित उपाय किए हैं जिनमें अमेरिका एवं अन्य यूरोपीय देशों के सदृश स्वतंत्र नियामक आयोग जैसी नियामक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके स्वतंत्र क्षेत्राधिकार के निर्धारण के साथ एक स्वतंत्र वित्तीय व्यवस्था आदि शामिल हैं अर्थात ये संस्थायें राज्य में मुख्य कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रहतीं है। (हूवर कमीशन टास्क फोर्स रिपोर्ट ऑन रेगुलेटरी कमीशनंस, 1949 : 20) वस्तुतः नियामक संस्थायें केंद्र अथवा राज्य सरकार द्वारा निर्मित वे संरचनाएं हैं जो सामान्य रूप से दो प्रकार के कार्य करती हैं: *पहला,* ये उद्योगों के संचालन के लिए मानक तथा नियमों का निर्धारण करती हैं तथा *दूसरा,* ये इन मानकों एवं नियमों को लागू भी करती हैं। इस प्रकार इन्हें प्रशासनिक विधि निर्माण तथा क्रियान्वयन के साथ ही इनसे संबधित विवादों के निपटारे के संदर्भ में प्रशासनिक न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। इन संस्थाओं में अधोलिखित लक्षण पाये जाते हैं:

(क) ये संस्थायें कुछ विशेषज्ञों द्वारा योजित होती हैं जिनकी संख्या सीमित होती है,

(ख) इनका स्वरूप सामूहिक नेतृत्व प्रकार का होता है जिसमें सदस्यों का समूह विचार-विमर्श के उपरान्त बहुमत के आधार पर निर्णय लेता है, तथा

(ग) ये तुलनात्मक रूप से मुख्य कार्यपालिका – (अर्थात 'अमेरिका में' राष्ट्रपति) - के नियंत्रण से मुक्त होती हैं।

वास्तव में नियामक संस्थायें व्यक्तिगत आर्थिक एवं व्यापारिक उद्यमों पर सार्वजनिक नियंत्रण की स्थापना हेतु निर्मित ऐसी संरचनाएँ हैं जो अपने क्षेत्राधिकार से संबधित विषयों पर विशेषज्ञता रखती हैं तथा वे विभागीय नियंत्रण से स्वतंत्र होने के कारण अपने निर्धारित लक्ष्यों को शीघ्रता, कार्यकुशलता एवं मितव्ययी तरीके से पूरा कर लेती हैं। (महेश्वरी एवं अवस्थी, 1982-83:154) उनके द्वारा पर्यावरण संरक्षण तथा संर्वधन हेतु आवश्यक नियंत्रण की व्यवस्था के संदर्भ में विभिन्न उपाय आदि भी शामिल है जिसके लिये उन्हें शासन द्वारा समुचित रूप से शक्ति संपन्न किया गया है। ऐसी संस्थाएँ मुख्य रूप से दो प्राथमिक कार्य करती हैं: *प्रथम,* पर्यावरण सुरक्षा से संबधित कानून बनाना तथा *दूसरा,* बनाए गए नियमों को प्रभावी ढंग से लागू करना तथा तत्संबधी विवादों का यथा शीघ्र निपटारा करना भी है। ये संस्थाएं मुख्यतः संद्यातव्य व्यवसाय के अंर्तगत आती हैं तथा पर्यावरण की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य की रक्षा करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत के संविधान की व्यवस्था के अंर्तगत तत्संदर्भ में 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि सरकार पर्यावरण की सुरक्षा के साथ जंगलों, नदी, झील, वन्य पशुओं तथा अन्य जीव जन्तुओं आदि की रक्षा एवं संर्वधन करेगी। आगे चल कर इन्हें भारतीय संविधान के भाग- 4 (क) के अंर्तगत मूल कर्तव्यों में भी समाहित किया गया है जिससे जनता में जागरूकता आ सकेगी तथा पर्यावरण तथा वन्य जीव-जंतुओं का महत्व भी उजागर होगा। इन्हीं लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए देश में नियामक संस्थाओं के गठन की आवश्यकता महसूस की गयी जिससे देश में पर्यावरण की सुरक्षा होने के साथ साथ प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग रोका जाए एवं वन्य प्राणियों की रक्षा जा सके। इसी के साथ घने जंगलों में रहने वाले कबीलायी एवं अन्य हाशियाई समुदायों की रक्षा करना भी इन नियामक संस्थाओं का कार्य निर्धारित किया गया। सभवतः विगत् भारत की सबसे बड़ी त्रासदी, भोपाल में गैस रिसाव की दुर्घटना के बाद भारत सरकार ने 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम लागू किया, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव पर्यावरण संबंधी सम्मेलन में पर्यावरण की रक्षा और मानव समेत अन्य प्रजातियों के लिए पर्यावरणीय खतरों को रोकने संबधी निर्णयों को स्थान दिया गया। इसी संदर्भ में देश में 1986 का अधिनियम एक महत्वपूर्ण शुरूआत थी। जिसके अंतर्गत नियामक संस्थाओं को अधोलिखित निर्देश दिये गए थे:

(क) नियामक आयोग को अधिकार होगा कि वे औद्यागिक परियोजनाओं को अनुमति दें।

(ख) इन परियोजनाओं के द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करें।

(ग) यह सुनिश्चित करें कि राज्य सरकार द्वारा पर्यावरण संबंधी अनुमति भी मिल सके।

(वर्ष 2018 हेतु *लोक प्रशासन* के 'पर्यावरण विकास एवं नियामक संस्थायें' विशयक विशेषांक के कॉन्सेप्ट नोट से उद्धृत)

इस प्रकार नियामक संस्थाओं की अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में सफलता एवं उपयोगिता को देखते हुए भारत सरकार ने पर्यावरण संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण एवं लोक कल्याणकारी लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित करने के उद्देश्य से देश में ऐसी संस्थाओं का गठन प्रारंभ किया। इसी के साथ भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्य गंभीर वैधानिक उपाय भी शुरू किये गये जिनका उद्देश्य भारत की पर्यावरण संबधी विभिन्न चिंताओं पर भली भाँति ध्यान केंद्रित करने के साथ उनके सम्यक निराकरण के लिये उन्हें देश की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल किया जाना था।

पर्यावरणीय चिंताएँ, पंचवर्षीय योजनाएँ एवं अन्य वैधानिक प्रयास

यद्यपि पर्यावरण के निरन्तर क्षरण से उत्पन्न पर्यावरणीय चिंताओं को भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी स्थान दिया गया है जैसा कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना वर्ष 1974-79 में नियोजित विकास और पर्यावरणीय क्षरण के बीच संतुलन बनाये रखने पर बल दिया गया था। इसी प्रकार छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में एक पूरा अध्याय पर्यावरण और पारिस्थितिकी के सिद्धांत के आधार पर भूमि के प्रयोग, कृषि, वानिकी, मतस्य पालन और समुदी-संसाधनों के प्रयोग आदि के संबंध में स्वस्थ और समावेशी उपभोग के निदर्शन से संबंधित था। पर्यावरणीय स्थिरता और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिये वर्ष 1988 में राष्ट्रीय वन नीति लागू की गयी थी जिसके अंतर्गत स्थानीय लोगों के सहयोग द्वारा वनों और पेड़ों की संख्या में वृद्धि और उनके संरक्षण का उत्साहजनक कार्यक्रम चलाया गया है जो इस अवधि। में चल रही सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90 में पर्यावरण के सतत् विकास कार्यक्रम का भी लक्ष्य था। आगे चल कर वर्ष 1991 में नई आर्थिक नीति शुरू की गयी जिसके अंतर्गत वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण को प्रोत्साहन मिला जिससे औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला फलतः पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता और भी बढ़ गई। इसी लक्ष्य हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा इकोमार्क नाम की एक नई योजना शुरू की गयी जो पर्यावरण को नुकसान न पहुंचाने वाले उपभोक्ता उत्पादों को दिया जाने वाला एक प्रमाण-पत्र था जो यह उत्पादकों को प्रेरणा देने और उपभोक्ताओं को पर्यावरण संरक्षण के लिए दी जाने वाली सहायता व सुझाव की शुरुआत थी। इसी के साथ आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992-97 में बढ़ती हुई गरीबी और देश की विकासशील स्थिति को देश में पर्यावरणीय समस्याओं के कारणों के रूप में चिन्हित किया गया। (विजयालक्ष्मी, मोतीलाल, 2012 : 293-94) अतः उनके

निराकरण हेतु देश में पर्यावरण की रक्षा के प्रति जागरूकता को बढ़ाने तथा तत्संबधी मानकों के प्रभावी प्रत्यावर्तन व मूल्यांकन के उद्देश्य से 'पर्यावरणीय प्रभाव' नामक एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम-योजना की शुरूआत की गई, जिसके अंर्तगत पर्यावरण पर नीतियों, योजनाओं और क्रियान्वयन के प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है। वर्ष 1994 में ई. आई. ए., अधिसूचना प्रकाशित हुई और पर्यावरण एंव वन मंत्रालय द्वारा पर्यावरण पूर्वानुमति लेना अनिवार्य कर दिया गया। ई0 आई0 ए0, जनवरी 1994 से विकास की 30 गतिविधियों के लिए अनिवार्य कर दिया है। ई0 आई0 ए0, द्वारा देखी जा रही परियोजनाओं में औद्योगिक परियोजनाएँ, ताप-उर्जा परियोजनायें, खनन, और आधारभूत परियोजनायें सम्मिलित हैं।' वर्ष 1993 में बदलती आर्थिक नीतियों से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट के समक्ष विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाने के लिए पर्यावरण एक्शन प्रोग्राम बनाया गया। इसी प्रकार 2001 में उर्जा-संरक्षण के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने उर्जा-संरक्षण अधिनियम जारी किया जिसके अंतर्गत 2002 में उर्जा दक्षता ब्यूरो की स्थापना की गई। यह ब्यूरो उर्जा दक्षता की गतिविधियों के लिए नीतियों, कार्यक्रमों तथा सहयोग के लिए उत्तरदायी है। इन्हीं के साथ आपदा प्रबंधन अधिनियम अपनाया गया जो देश में आपदाओं से सामना करने के लिये तैयार रहने हेतु पूरा अभ्यास, तकनीकी तौर पर सक्षमता, समावेशी विकास की रणनीति अपनाकर अपने हिस्सेदारों को समकालीन निषेध और तैयारी की संस्कृति अपनाने पर बल देता है। भारत सरकार ने 2006 में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति लागू की जो देश में स्वच्छ पर्यावरण संबंधी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48 (ए) और 51 (ए) 'जी' की भावना के अनुरूप है। इस नीति का ध्यान महत्वपूर्ण पर्यावरण संबंधी संसाधनों के संरक्षण, आर्थिक और सामाजिक नीतियों के पर्यावरणीय हितों, पर्यावरण-संसाधनों के कुशलतम उपयोग और बेहतर पर्यावरणीय प्रशासन पर था जो समग्रतः पर्यावरणीय हितों के रूप में नवीं 1997-2002 एवं दसवीं 2002-07 पंचवर्षीय योजना के अंर्तगत समाहित था। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन से होने वाले दुष्प्रभावों से रक्षा के लिए भारत के योगदान को उल्लिखित करने हेतु वर्ष 2008 में सरकार ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय क्रियान्वयन योजना लागू की। इस योजना में आठ राष्ट्रीय मिशन हैंः (क) राष्ट्रीय सोलर मिशन, (ख) उर्जा कुशलता बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय मिशन, (ग) राष्ट्रीय जल मिशन, (घ) हिमालय इकोसिस्टम की सतत्ता के लिया राष्ट्रीय मिशन, (ड़) राष्ट्रीय हरित भारत मिशन, (च) राष्ट्रीय कृषि सतत्ता मिशन, तथा (छ) जलवायु परिवर्तन पर रणनीतिक जानकारी का राष्ट्रीय मिशन। (दिनेश कुमार, 2015 : 310) पुनः समाज के कमजोर तथा उपेक्षित वर्गों एवं हाशिए पर रहने वाले समुदायों की प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जनजाति और अन्य वन्य जीवी समुदाय अधिनियम दिसंबर 2006 में पारित किया गया जिसे वन अधिकार अधिनियम और अनुसूचित जातियों का अधिकार अधिनियम आदि भी कहा जाता है। यह कानून वन्य जीवी समुदायों के

भूमि संबंधी स्वामित्व के दशकों से अप्राप्त अधिकारों को बहाल करता है जिससे ऐसे समुदाय वन्य जीवन पर आधारित अपनी एक अलग सांस्कृतिक पहचान बनाए रख सकें। इन्हें ग्यारहवीं 2007-12 पंचवर्षीय योजना के अंर्तगत पर्यावरणीय हितों के संरक्षण हेतु एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में सम्मिलित भी किया गया है।

भारत सरकार ने पर्यावरण सुरक्षा और वन एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और शीघ्र निस्तारण के लिए वर्ष 2010 में राष्ट्रीय हरित ट्राइब्यूनल की स्थापना की है। यह पर्यावरणीय मामलों के हल के लिए विशेषज्ञों से युक्त एक विशिष्ट संस्था है जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार गठित है तथा यह प्रत्येक भारतवासी को स्वच्छ पर्यावरण में रहने का अधिकार प्रदान करती है। इसी प्रकार जल संसाधन मंत्रालय द्वारा 2012 में राष्ट्रीय जल नीति की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य जल संसाधनों के महत्तम सदुपयोग और उनके सतत् विकास को सुनिश्चित करना था। इस नीति ने जल के एक आर्थिक वस्तु के रूप में प्रयोग के साथ-साथ जल संरक्षण एवं उसके कुशलतम प्रयोग पर बल दिया। फरवरी 2015 में वर्तमान बीजेपी के नेतृत्व में एनडीए सरकार ने पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का नाम बदल कर पर्यावरण एवं वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय कर दिया है और वह उद्योगों को हरित मानदंडों की बाध्यता के प्रति सजग तथा अनुपालन हेतु प्रोत्साहित भी कर रही है।' (दिनेश कुमार, वही : 310)

जनजातियाँ तथा ग्रामीण महिलाएँ

पर्यावरण असंतुलन से सर्वाधिक प्रभावित समाज में निर्धन किसान एवं हाशिए पर रहने वाले समुदाय हैं जिनमें जनजातियों तथा ग्रामीण क्षेत्र के विपन्न लोगों के साथ-साथ महिलाएँ विशेष रूप से प्रभावित हैं। (पी. पी. करन, 1994 : 32) चूंकि महिलाओं का जीवन-निर्वाह के साधनों से पुरूषों की अपेक्षा कहीं अधिक सीधा सबंध होता है क्योंकि परिवार, और उनका स्वास्थ्य, भूमि, वन और अन्य प्राकृतिक संसाधन उनकी दैनिक गतिविधियों में अपना अहम स्थान रखते हैं। वस्तुतः महिलाओं का मुख्य उत्तरदायित्व घर की देखरेख व प्रबंधन का है परंतु उनकी प्रबंधन, नियंत्रण व निर्णय में भागीदारी नहीं है। वनों के निरन्तर काटने से ईंधन की उपलब्धता में कमी आई है, जिसके द्वारा वे खाना बनाती हैं। ईंधन की कमी के कारण उन्हें लकड़ियाँ इकट्ठा करने में अत्यधिक श्रम करना पड़ता है तथा उनका बहुत अधिक समय इस हेतु अनावश्यक खर्च हो जाता है। यही स्थिति पेय जल के भी साथ है चूंकि गाँव में पेय जल एकत्रित करने का काम भी महिलाओं के जिम्मे रहता है। पर्यावरण के असंतुलन से पेय जल में कमी आई है अतः पानी की तलाश में महिलाओं तथा बालिकाओं को दूर-दूर तक आना-जाना पड़ता है जिससे उनका श्रम एवं समय बरबाद होता है। जल के बर्तन के अधिक भार ढोने से विशेष कर बालिकाओं का

शारीरिक विकास प्रभावित होता है जो मुख्य रूप से प्रजनन की समस्या को जन्म देता है और प्रसव सबंधी कठिनाइयां पैदा कर देता है। वस्तुतः स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संबधी निर्णयों और नीतियों में महिलाओं की हिस्सेदारी आज न के बराबर है। इसके विपरीत महिलाओं की जिम्मेदारियाँ एवं उत्तरदायित्व घर, समाज तथा देश के प्रत्येक क्षेत्र में शामिल है तथापि किसी स्वस्थ नीति व समझ के अभाव में इन्हें उनसे अलग-थलग कर दिया गया है। फलतः उत्पीड़न की पीड़ा महिलाओं को सर्वाधिक झेलनी पड़ती है। अतएव जब तक उनकी वांछित भागीदारी और नीतिगत महत्व को सुनिश्चित नहीं किया जाता, तब तक उनको उत्पीड़न की पीड़ा से बचाया नही जा सकेगा और पर्यावरण क्षरण में सुधार भी संभव नहीं हो सकेगा। (अजीम शौकत, 157-61)

समाधान एवं निष्कर्ष

समग्रतः पयार्वरण प्रदूषण की समस्या आज संपूर्ण विश्व में एक विकराल संकट का रूप धारण कर चुकी है जिससे भारत जैसे विकासशील तथा तृतीय विश्व के लगभग सभी देश गंभीर रूप से प्रभावित और त्रस्त हैं। यद्यपि पर्यावरण क्षरण पर नियंत्रण लगाने के लिए सरकार द्वारा गठित विभिन्न नियामक संस्थाएँ अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहीं हैं तथापि बढ़ते भ्रष्टाचार तथा संगठित अपराधों में निरन्तर वृद्धि के कारण न तो वनों की अवैध कटाई पर अंकुश लग पा रहा है न ही नदियों और सरोवरों में कारखानों द्वारा लगातार गंदा एवं जहरीला कचड़ा फेकनें तथा शहरों में घरों एवं अस्पतालों के सीवेज तथा नालों के भी दूषित प्रवाह को नदियों और सरोवरों में मिलाए जाने से रोक पाने में सक्षम हो पा रही है। सरकार द्वारा चलाए जाने वाले वृक्षारोपण कार्यक्रम मात्र कागजों पर ही रह जाते हैं तथा नये सरोवरों एवं पोखरों का निर्माण भी नहीं हो रहा है। अतः देश में संपूर्ण देशवासियों को सजग तथा एकजुट होकर पर्यावरण संरक्षण हेतु वृहत स्तर पर नियमित वृक्षारोपण तथा जल संचयन का कार्य करना होगा तथा महिलाओं एवं बालिकाओं का सभी प्रकार से शोषण रोकने के साथ उन्हें पुरूषों के समान दर्जा देना होगा। जैसा पर्यावरण नारीवादियों का मानना है कि प्रकृति का शोषण मानव शोषण के अंत के बिना संभव नहीं है और न ही मानव शोषण प्रकृति के शोषण के अंत के बिना संभव है। (वंदना शिवा, 1988) सरकार के द्वारा विभिन्न नियामक संस्थाओं के माध्यम से उद्योग-धंधों द्वारा किये जा रहे प्रदूषण पर कड़ाई से अंकुश लगाना होगा तथा उन्हें पर्यावरण रक्षा संबधी निर्धारित मानकों का पालन करने के लिये विवश करना होगा। पश्चिमी देशों की तरह पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष रूप से निर्मित अत्याधुनिक तकनीकों के अधिकाधिक प्रयोग पर भी बल देना होगा भले ही वे अधिक मँहगीं क्यों न हों। साथ-ही-साथ पर्यावरण का पोषण एवं संवर्धन करने के उपायों की खोज हेतु निरन्तर शोध की भी आवश्यकता है। इसी के साथ नियामक संस्थाओं को अधिक

शक्ति संपन्न बनाने के अलावा उनके उत्तरदायित्व को भी तय करना होगा जिससे वे अमूल्य प्राकृतिक संपदाओं के सदुपयोग को सुनिश्चित करने के साथ-ही-साथ उनके संरक्षण एवं संवर्धन हेतु कल-कारखानों द्वारा आवश्यक अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग करवाना भी सुनिश्चित अवश्य करें।

संदर्भ

अवस्थी अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1982-83), *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ.154-58।

करन पी. पी. (1994), एनवायरमेंटल मूवमेंट इन इंडिया, *जियोग्राफिकल रिव्यू,* वॉल्यूम 84, नं.1 पृ. 32।

कुमार दिनेश (2015), 'भारत में पर्यावरण आंदोलन', *समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन,* अभय प्रसाद सिंह संपा., ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि, नई दिल्ली, पृ. 291-315।

कुमार संजीव (2017), 'पर्यावरणवादः एक सामाजिक आंदोलन', *भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र और राजनीतिक प्रक्रिया,* तपन बिस्वाल संपा., ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि, नई दिल्ली, पृ. 411-432।

गुहा रामचंद्र (2013), द पास्ट एंड प्रेजेंट ऑफ इंडियन एनवायरटेलिंस्म, द *हिंदू,* 27 मार्च।

नंदा विजयालक्ष्मी, मोतीलाल शशि (2012), *हयूमन राइटस, जेंडर एंड एनवायरमेंट,* एलाइड पब्लिर्शस, पृ. 293-94।

वदंना शिवा (1988), *स्टेइंग एलाइवः वूमेन, इकोलाजी एंड सरवाइवल इन इंडिया,* नई दिल्ली।

नारायण सुनीता (2002), चेंजिंग एनवायरमेंटलिस्म, *सेमिनार,* 516, अगस्त, पृ.16.20।

हूवर हरबर्ट, (1949), *हूवर कमीशन टास्क फोर्स रिपोर्ट ऑन रेगुलेटरी कमीशनंस,* मैक्ग्राहिल, न्यूयार्क, पृ. 20।

शौकत अजीम, संपा., *इम्पैक्ट ऑन इनवायरमेंटल डिग्रडेशन ऑन वूमेन, इनवायरमेंटल कंर्सन एंड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट,* नई दिल्ली, पृ. 157-59।

रूटस क्रिस्टोफर (1999), एनवायरमेंटल मूवमेंटसः फ्रॉम लोकल टू द ग्लोबल, *एनवायरमेंटल पालिटिक्स,* वॉल्यूम 8, नं.1, पृ.1-12।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की नियामकीय भूमिका

राजेंद्र कुमार पांडेय

Ikjk'k% *भारत में आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में शीर्ष नियामकीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन 2005 में किया गया था। इसके गठन के पीछे मूल सोच यह थी कि देश में आपदा प्रबंधन से सम्बंधित समग्र चिंतन और तदनुसार नियामकीय रूपरेखा का स्वरूप यह प्राधिकरण उपलब्ध कराएगा। अपने 13 वर्ष के जीवनकाल में प्राधिकरण ने निश्चित रूप से देश में आपदा प्रबंधन से सम्बंधित एक वैचारिक चेतना का संचार किया है। अपने नियामकीय उत्तरदायित्वों के निर्वहन के निमित्त इसने अनेकों मार्गदर्शक सिद्धांतों, दिशानिर्देशों तथा नीतिगत दस्तावेजों को निर्गत किया है। परन्तु मूल प्रश्न यह खड़ा होता है कि प्राधिकरण द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न नियामकीय पहलों को व्यावहारिक धरातल पर कितना उतारा गया और इसी मुद्दे पर प्राधिकरण की कार्यक्षमता और नियामकीय पौरुष पर प्रश्नचिन्ह लगता नज़र आता है। इस आलेख में एक नियामकीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।*

प्रस्तावना

पर्यावरण और विकास की अंतर्क्रिया के विमर्श में प्राकृतिक आपदाएं एक महत्वपूर्ण प्रतिफलन के रूप में हमेशा से उपस्थित रही हैं। इनकी सार्वकालिक और सार्वदेशिक उपस्थिति भारत जैसे देशों में और अधिक मायने रखने लगती है जहाँ लाखों लोगों की जिंदगियां हर समय किसी-न-किसी प्राकृतिक आपदा के खतरे से दो-चार होती रहती हैं। अव्वल तो, भारत जैसे भौगोलिक रूप से वैविध्यपूर्ण देशों में प्राकृतिक आपदाएं व्यक्तियों के जीवन का हिस्सा होती हैं और स्वतः ही मौजूद रहती हैं। परन्तु इनकी विभीषिका का स्वरूप और बारम्बारता तब और विकराल रूप धारण कर लेती है जब विकास के नाम पर पर्यावरणीय प्रक्रियाओं और संतुलन को नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। अर्थात, पर्यावरण और विकास की अवैज्ञानिक और

विध्वंसकारक अंतर्क्रिया ने प्राकृतिक आपदाओं के क्रम को नया आयाम दिया है। इस सन्दर्भ में पिछले कुछ वर्षों तक देश में किसी प्रभावी निमायक संस्था के अभाव ने स्थिति को और भी विकराल स्वरूप प्रदान किया था। विकास के नाम पर पर्यावरण और अन्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ होने वाले खिलवाड़ ने भारत में प्राकृतिक आपदाओं की लड़ी सी लगा दी थी जिसके फलस्वरूप भारत की गिनती संसार के अधिकतम आपदाग्रस्त देशों में होने लगी। इस दृष्टि से 2005 में गठित राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण वर्तमान समय में प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों प्रकार की आपदाओं की शीर्ष निमायक संस्था के रूप में कार्य कर रही है। प्रस्तुत आलेख में देश में आपदा प्रबंधन के नियामक के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पर्यावरण, विकास और प्राकृतिक आपदा

पर्यावरण, विकास और प्राकृतिक आपदाओं का परस्पर गूढ़ सम्बन्ध है। इनकी आपसी अंतर्क्रिया मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। इस अंतर्क्रिया का मूल आधार पर्यावरण द्वारा प्रदान किया जाता है। वस्तुतः यह सर्वविदित है कि धरती पर मानव जीवन का आधार पर्यावरण द्वारा प्रदान की गयी वह अनुकूल जलवायु है जिसके बिना मानव जीवन संभव ही नहीं है। दूसरे शब्दों में, धरती पर किसी भी प्रकार के जीवन की चिरकालिक उपस्थिति के लिए प्रकृति के पर्यावरणीय अवयवों की नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार पर्यावरणीय अवयवों के अन्तर्गत लगभग वे सभी तत्त्व समाहित हो जाते हैं जो देश की भौगोलिक रचनाओं को स्वरूप प्रदान करते हैं जैसे पहाड़, महासागर, नदियां, वायुप्रवाह, हिमखंड, भूसंरचना, इत्यादि। जैसाकि इयान बर्टन ने संकेत दिया है, ये पर्यावरणीय अवयव एक तरह तो धरती पर मानव जीवन को संभव और चिरकालिक बनाते हैं और दूसरी तरह ये ही लोगों के जीवन में प्रलयकारी आपदाओं के प्रस्फुटन में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। परन्तु इयान बर्टन के इस संकेत का यह अर्थ कदापि नहीं निकालना चाहिए कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरणीय अवयव व्यक्ति के जीवन को संकट में डालने के हेतु से ही अस्तित्व में आये हैं। इसके विपरीत यह मानना अधिक श्रेयस्कर होगा कि मानव जीवन को सुगम और सुन्दर बनाने के लिए प्रकृति के विभिन्न अंशों की स्वाभाविक रचना हुई है। अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि यदि पर्यावरणीय अवयव मानव जीवन को आधारभूत तत्त्व प्रदान करते हैं तो फिर ये लोगों के उसी जीवन को तहस-नहस करने का कारक कैसे बन जाते हैं ? वास्तव में हमें इसी प्रश्न के उत्तर की खोज के क्रम में पर्यावरण और विकास की अंतर्क्रिया के विविध आयामों की तह तक जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

वास्तव में, पर्यावरण के साथ मानव की अंतर्क्रिया एक स्वाभाविक क्रम है और इसी के द्वारा मानव जीवन की विविध आवश्यकताओं तथा प्रक्रियाओं का समायोजन

किया जाता है। 'किन्तु प्राकृतिक अवयवों के साथ मानव के परस्पर अंतर्क्रिया की संरचना में यह समझ निहित है कि दोनों - प्राकृतिक अवयव तथा मनुष्य - एक दूसरे की प्रकृति व अधिकार क्षेत्र का सम्मान करते हुए अपने-अपने कार्यक्षेत्र तक सीमित रहेंगे। यदि कदाचित इस मर्यादा का उल्लंघन होता है तो मानव जीवन प्राकृतिक खतरों से अपने आप को रूबरू करता है।' वर्तमान समय में पर्यावरणीय दृष्टि से मानव जीवन को जिस क्रम ने सबसे अधिक अभिशप्त किया है वह है अंधाधुंध और विनाशमूलक विकास की अवैज्ञानिक प्रक्रिया। इस सन्दर्भ में फ्रेडरिक कूनी ने काफी पहले ही हमें चेता दिया था कि प्राकृतिक खतरों को प्रलयकारी आपदाओं में परिवर्तित करने में विकास के नाम पर व्यक्ति द्वारा किये जा रहे पर्यावरण क्षरण को पर्याप्त हद तक उत्तरदायी माना जा सकता है। पूर्व में लोग अपनी पारम्परिक समझ और कौशल के द्वारा विकास के मार्ग पर तो अग्रसर थे। किन्तु इस विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण की अपूरणीय क्षति अन्तर्निहित नहीं थी। कालांतर में जीवन की अनेकानेक विसंगतियों व बढ़ती हुई भौतिक आवश्यकताओं के दबाव में व्यक्ति ने अपनी पारम्परिक समझ को तिलांजलि देकर प्रकृति से एक प्रकार का युद्ध ठान लिया। इस संग्राम में उसकी अद्वितीय सहायता विज्ञान और तकनीक के अविष्कारों ने की। अंततोगत्वा ऐसी स्थिति उप्तन्न हुई कि व्यक्ति अपनी परंपरागत बुद्धिमत्ता और विवेक को त्याग कर ऐसी जीवन शैली और संरचनाओं को अपना बैठा जो कि उसके जीवन और संपत्ति को काफी हद तक जोखिम में डाल देते हैं। इस तरह वर्तमान समय में पर्यावरण और विकास की अंतर्क्रिया एक ऐसी स्थिति पैदा कर देती है जहाँ प्राकृतिक आपदाओं का स्वरूप प्रलयकारी होना अवश्यम्भावी सा प्रतीत होता है।

वैसे तो भारत की भौगोलिक संरचना और भूगर्भीय प्रक्रियाएं इसे संसार के कुछेक अत्यधिक आपदाग्रस्त देशों की श्रेणी में प्रतिस्थापित करती हैं, देश के विभिन्न हिस्सों में लोगों के पर्यावरणीय कारकों के साथ विकास के नाम पर होने वाली अंतर्क्रिया ने स्थिति को पर्याप्त भयावह बना दिया है। उदाहरण के लिए, देश के उत्तर में स्थित विशालकाय हिमालय की विविध पर्वत श्रृंखलाओं में जिस प्रकार से वन सम्पदा का क्षरण हो रहा है, पनबिजली परियोजनाएं बहुतायत में स्थापित की जा रहीं हैं और पर्यटन के नाम पर वहां के पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पंहुचायी जा रही है। उससे ये पहाड़ हमारे लिए वरदान से अभिशाप बनने में अधिक समय नहीं लगाएंगे। इसी प्रकार देश के विशाल मैदानी क्षेत्रों में नदियों का मृतप्राय होना, गंभीर जल और मृदा प्रदूषण के साथ-साथ शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा हानिकारक कृषि पद्धतियों ने इन क्षेत्रों में रहने वाले करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी को अभिशप्त कर दिया है। फलतः, जहाँ वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण से शहरी लोगों का जीवन दूभर हो रहा है वहीं प्रायः घटित होने वाली बाढ़ और सूखे की घटनाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में

रहने वाले लोगों को संकट में डाल रखा है। जैसी स्थिति हमें हिमालय और उत्तर के मैदानी क्षेत्रों में देखने को मिलती है, कमोबेश वैसी ही स्थिति देश के अन्य क्षेत्रों में भी दृष्टिगोचर होती है।

इस स्थिति को नियामक संस्थाओं के व्यापक परिपेक्ष्य में देखने पर दो महत्वपूर्ण बातें ध्यान में आती हैं। *प्रथम,* देश में विकास के नाम पर जिस प्रकार से पर्यावरणीय कारकों के साथ खिलवाड़ किया गया वह दीर्घकाल में लोगों के लिए सुखद और सुरक्षित जीवन की गारंटी बनाने की बजाय उनके लिए मुसीबतों का प्रमुख कारण बना। इस विकास के क्रम में केवल सरकारी और अन्य संगठित क्षेत्र के उद्यम ही अग्रणी नहीं बने अपितु व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक व्यक्ति अपने अल्पकालिक स्वार्थ की पूर्ति हेतु पर्यावरण को धता बताने में पीछे नहीं रहा। प्रथम बिन्दु से ही उद्घाटित *दूसरी* महत्वपूर्ण बात यह है कि चूँकि व्यक्ति द्वारा पर्यावरण के साथ खिलवाड़ सर्वथा जगविदित है और इसके दुष्परिणाम भी सुस्पष्ट हैं, अतः कुछेक स्थानों पर यह बात बलवती होती रही कि मनुष्य के पर्यावरण के साथ अंतर्क्रिया के नियमन के लिए कुछ नियामकीय संस्थानों का गठन किया जाना चाहिए जिससे कि पर्यावरण को होने वाली अपूरणीय क्षति को नजरअंदाज न किया जा सके और विकास के ऐसे मानक बनाये जा सकें जिनके द्वारा दीर्घकाल में विनाशकारी विकास के स्थान पर सम्पोषित विकास की अवधारणा को अमली जामा पहनाया जा सके।

पर्यावरणीय और आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में नियमन के प्रयास

भारत में नियमन और नियामक संस्थाओं की वैचारिक परंपरा, सामान्यतौर पर भी, और आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में विशेष रूप से, चिर पुरातन नहीं रही है। वस्तुतः, नियमन की उर्वर परंपरा संसदीय शासन प्रणाली, जिसे भारत ने स्वतंत्रायोत्तर काल में सहर्ष स्वीकार किया था, में पर्याप्त स्वीकृत नहीं है। इस शासन व्यवस्था के अंतर्गत अपरिहार्य परिस्थितियों में ही स्वतंत्र नियामक संस्थाओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। अन्यथा शासन के विभिन्न अवयव पूरी तरह से सरकार के अधीन होते है जिसकी अनन्य जवाबदेही संसद के प्रति होती है। अतएव, भारत में हालांकि संविधान के द्वारा ही कुछ निमायक संस्थाओं का गठन किया गया है, कालांतर में आवश्यकतानुसार कुछ अन्य नियामक संस्थाओं का निर्माण सरकार के द्वारा भी किया गया। परन्तु आश्चर्यजनक बात यह थी कि इन आरंभिक नियामक संस्थाओं में पर्यावरण और आपदा प्रबंधन से सम्बंधित संस्थाओं का सर्वथा अभाव था। यह वस्तुस्थिति इस बात की परिचायक थी कि काफी लम्बे अरसे तक सरकार की प्राथमिकताओं में पर्यावरण से सम्बंधित मुद्दे और समस्याएं समुचित स्थान न पा सकीं थीं।

तथापि उत्तरोत्तर विकराल रूप धारण करती पर्यावरणीय समस्याओं ने सरकार को इस क्षेत्र में भी नियमन और नियामक संस्थाओं के गठन की बात पर विचार करने के लिए विवश सा कर दिया। इस दृष्टि से प्रथम ठोस प्रयास 1986 में संसद द्वारा पारित पर्यावरणीय सुरक्षा अधिनियम को माना जा सकता है। इस अधिनियम से पहले भी हालाँकि वायु और जल से सम्बंधित कुछ विधियों का निर्माण संसद द्वारा हुआ था परन्तु उन कानूनों का दायरा काफी संकुचित था और वे पर्यावरण सुरक्षा को समग्र रूप में देखने में सर्वथा असमर्थ थे। इस प्रकार 1986 के पर्यावरणीय सुरक्षा अधिनियम द्वारा सरकार ने पहली बार पर्यावरण के बारे में व्यापक दृष्टि अपनाते हुए वायु, जल, भूमि, आदि तत्वों के साथ-साथ खतरनाक वस्तुओं के बारे में भी समुचित सुरक्षा के प्रावधान किये। इस अधिनियम के द्वारा 1974 में गठित केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को और अधिक नियामकीय अधिकार दिए गए जिससे कि इस अधिनियम के उद्देश्यों को प्राप्त करने में बोर्ड प्रभावी भूमिका निभा सके। तदुपरांत पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण से सम्बंधित कई अन्य अधिनियम पारित किये गए और विनियमों का निर्माण किया गया परन्तु इन सब में आपदा प्रबंधन से सम्बंधित मुद्दे और समस्याएं लगभग अनुपस्थित थे। इसका मूल कारण यह था कि, एक तरफ तो तब एक आपदाओं की समझ केवल प्राकृतिक आपदाओं तक ही सीमित थी, और दूसरी तरफ प्रकृति से सम्बंधित समस्त मुद्दों को पर्यावरण में ही समाहित करके देखा जाता था।

इस बात को निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारत में आपदा प्रबंधन के नियमन और तदुनुरूप एक विस्तृत तंत्र की स्थापना के लिए कोई ठोस पहल देशज शक्तियों और प्रक्रियाओं द्वारा नहीं हुई। इस क्रम के उद्भावक के रूप में अंतरराष्ट्रीय प्रक्रियाओं को ही श्रेय देना चाहिए। वस्तुतः विश्व के लगभग हर हिस्से में वर्षानुवर्ष कहर बरपाने वाली प्राकृतिक आपदाओं से आक्रांत देशों की पहल पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 90 के दशक को अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक के रूप में मनाने का निर्णय लिया। संयुक्त राष्ट्र का यही सुविचारित निर्णय अंततोगत्वा भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में प्राकृतिक आपदाओं के बारे में लोगों की चेतना को जगाने का उत्प्रेरक बना। दूसरे शब्दों में, देश में प्राकृतिक आपदाओं के नियमन और प्रबंधन के विषय में भारत की सुसुप्त मेधा को संयुक्त राष्ट्र ने जगाया। 'संयुक्त राष्ट्र के आदर्शों और क्रियाकलापों का अनन्य समर्थक होने के कारण भारत सरकार ने भी 90 के दशक को देश में आपदा प्रबंधन के उद्देश्यों और प्रक्रियाओं को नए दृष्टिकोण से पुनर्गठित करने का निर्णय लिया। इस प्रकार भारत में आपदा प्रबंधन के एक नए स्वरूप और ढांचे के निर्माण का प्रयास संयुक्त राष्ट्र के आग्रहों और संकेतों को ध्यान में रखकर आरम्भ हुआ। वर्तमान में देश में आपदा प्रबंधन का जो स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है उसका उद्भव अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण के दौरान किये गए प्रयासों को ही माना जा सकता है।[7]

भारत में आपदा प्रबंधन के विषय पर समग्रता से विचार हेतु प्रथम यत्न अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक के मध्य यानि 1995 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के अंतर्गत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन केंद्र की स्थापना के रूप में हुआ। अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक की पूर्णता अर्थात् 1999 में इस विषय पर दीर्घकालीन विचार और योजना निर्माण हेतु आपदा प्रबंधन पर उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया गया। अपनी रपट में इस समिति ने भारत में आपदा प्रबंधन के विषय पर समग्र और दीर्घकालिक चिंतन पर बल देते हुए कहा कि देश में आपदा प्रबंधन का एक विस्तृत संस्थागत ढांचा खड़ा होना चाहिए जो नियमन से लेकर विनियमों के क्रियान्वयन तक की एक सटीक रूपरेखा तैयार कर सके। पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात् इसी समिति की संस्तुतियों के अनुसार 2003 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन केंद्र को उच्च स्तर प्रदान करते हुए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। परन्तु ये संस्थागत प्रयास वस्तुतः आपदा प्रबंधन के अकादमिक और शोधमूलक विषयों की तरफ अधिक उन्मुख थे बनिस्पत इसके कि वे आपदा प्रबंधन नियमन की कोई सटीक रूपरेखा प्रस्तुत करते। अतः, इस दिशा में भगीरथ प्रयास करते हुए संसद ने 2005 में आपदा प्रबंधन अधिनियम पारित किया जिसने देश में आपदा प्रबंधन के संपूर्ण विचार में आमूलचूल परिवर्तन का सूत्रपात किया। आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 ने देश में आपदा प्रबंधन की एक विस्तृत विधायी रूपरेखा प्रस्तुत की।[8] नियमन की दृष्टि से इस अधिनियम का अनन्य योगदान राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के गठन का प्रावधान था जिसकी विस्तृत चर्चा हम आगे के पृष्ठों में करेंगे।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में 2005 में गठित राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण देश की शीर्ष नियामक संस्था है। इसके गठन का प्रावधान आपदा प्रबंधन अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत किया गया है। अधिनियम द्वारा प्रधानमंत्री को इसका पदेन अध्यक्ष बनाकर इस प्राधिकरण को शासकीय पदसोपान में समुचित प्रभावी स्थिति प्रदान की कोशिश की गयी है। हालाँकि नियमतः प्राधिकरण की सदस्य संख्या नौ तक हो सकती है किन्तु अभी तक इसके सदस्यों की संख्या चार-पांच के बीच ही रही है। इसके सदस्यों में से ही किसी एक के प्राधिकरण का उपाध्यक्ष बनाने का प्रावधान है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में प्राधिकरण की बैठकों की अध्यक्षता करने के साथ-साथ इसके रोजमर्रा की गतिविधियों को भी संचालित करता है। कालांतर में प्राधिकरण के उत्तरदायित्वों के अनुसार इसकी सदस्यता का स्वरूप एक निश्चित ढाँचे में ढलता प्रतीत होता है। सामान्यतः इसके सदस्यों में थलसेना का एक सेवानिवृत्त वरिष्ठ अधिकारी, प्रशासनिक अधिकारी, विषय विशेषज्ञ इत्यादि पदस्थित रहते हैं। इस प्रकार प्राधिकरण का स्वरूप इसके दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों-

आपदा प्रबंधन से सम्बंधित गतिविधियों का नियमन, और आपदाओं के दौरान त्वरित राहत और बचाव - के प्रभावी निष्पादन को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है।

देश में आपदा प्रबंधन की शीर्ष संस्था होने के नाते राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के कार्यों और उत्तरदायित्वों की एक वृहत सूची आपदा प्रबंधन अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत निर्दिष्ट की गयी है। मोटे तौर पर, आपदाओं के समय पर और प्रभावी मोचन सुनिश्चित करने हेतु प्राधिकरण को आपदा प्रबंधन के लिए नीतियां, योजनाएं और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करने के लिए प्रतिबद्ध किया गया है।

परन्तु इन बीज उत्तरदायित्वों के निष्पादन के क्रम में प्राधिकरण के कार्यों का विस्तार किया गया है। आपदा प्रबंधन अधिनियम की धारा 6(2) के प्राधिकरण में निम्न कार्यों का उल्लेख किया गया है:

(क) आपदा प्रबंधन के सम्बन्ध में नीतियां अभिकथित करना;

(ख) राष्ट्रीय योजना का अनुमोदन करना;

(ग) भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों द्वारा राष्ट्रीय योजना के अनुसार तैयार की गई योजनाओं का अनुमोदन करना;

(घ) राज्य योजना करते समय राज्य प्राधिकरणों द्वारा अनुसरित किये जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अभिकथित करना;

(ड़) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा के निवारण या उसके प्रभाव के शमन के उपायों के एकीकरण के प्रयोजनों के लिए अपनाये जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अभिकथित करना;

(च) आपदा प्रबंधन के लिए नीति और योजना के प्रवर्तन और कार्यान्वयन को समन्वित करना;

(छ) शमन के प्रयोजन के लिए निधियों की व्यवस्था करने की सिफारिश करना;

(ज) बड़ी आपदाओं से प्रभावित अन्य देशों को ऐसी सहायता उपलब्ध कराना जो केंद्र सरकार द्वारा अवधारित की गई हो;

(झ) आपदा के निवारण या शमन या आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए ऐसे अन्य उपाय करना जिन्हें वह आवश्यक समझे;

(ञ) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के कार्यकरण के लिए विस्तृत नीतियां और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करना।[9]

प्राधिकरण के विधायी कार्यों के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट है कि इसका गठन मूलतः एक नियामक संस्था के रूप में कार्य करने के लिए किया गया है। परन्तु आपदा प्रबंधन विषयक कार्यों के वैविध्य को देखते हुए इसके कार्यक्षेत्र का नियामकेत्तर विस्तार भी किया गया है। दूसरे शब्दों में, नियमन के साथ-साथ प्राधिकरण को कुछ कार्यकारी दायित्व भी सौंपे गए हैं। नियमन के अंतर्गत वस्तुतः प्राधिकरण के प्रमुख कार्य आपदा प्रबंधन योजनाओं के अनुमोदन व मार्गदर्शक सिद्धांतों के अधिकथन से सम्बंधित हैं। इसके विपरीत कार्यकारी दायित्वों के अंतर्गत प्राधिकरण के मुख्य कार्य विविध इकाईयों के मध्य समन्वय, विदेशी देशों को आपदा प्रबंधन से सम्बंधित सहायता उपलब्ध कराना, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के बारे में नीतिगत निर्णय लेना और राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के ऊपर कार्यकारी नियंत्रण रखना शामिल है। ये कार्य एक तरह से राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण को देश में आपदा प्रबंधन से सम्बंधित कार्यों हेतु एक छत्र संगठन के रूप में स्थापित करते हैं। इन कार्यों के निष्पादन में प्राधिकरण का रिकॉर्ड मिश्रित प्रतीत होता हैं हालाँकि अभी तक इसके कार्यकरण के विविध पक्षों पर न ही अधिक शोध हुए हैं न ही इसकी अल्पकालिक अवस्था के कारण ऐसे अध्ययन समीचीन ही कहे जा सकते हैं।

प्राधिकरण के कार्यों का मूल्यांकन

अपनी स्थापना के बाद से राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने अपने दायित्वों के निर्वहन के क्रम में अनेक पथप्रदर्शक कृत्यों का निष्पादन किया है। ये कार्य मूलतः नियमन के रूप में देखे जा सकते हैं। इन कार्यों की श्रृंखला का श्रीगणेश वास्तव में विभिन्न स्तरों पर आपदा प्रबंधन की नीतियों के निर्माण के रूप में देखा जा सकता है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के प्रावधानों के अनुसार देश में आपदा प्रबंधन की नीतियों का निर्माण विभिन्न स्तरों पर किया जाना निश्चित किया गया है। अर्थात, आपदा प्रबंधन की नीतियों का निर्माण राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ राज्य तथा केंद्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के स्तर पर भी किया जाना है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण का महता दायित्व प्राधिकरण के कन्धों पर ही आता है। अतः प्राधिकरण का प्रथम ठोस कार्य देश की प्रथम राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति के मसौदे को तैयार करने के रूप में था। विभिन्न सम्बंधित पक्षों तथा देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्राधिकरण द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति के मसौदे को 2009 में कैबिनेट की स्वीकृति मिली।[10] इस नीति का मूल मंत्र हैः भारत में एक ऐसे समाज का निर्माण करना जो तकनीक तथा अन्य अन्वेषणों के सहारे लोगों में प्राकृतिक आपदाओं से न्यूनतम जान माल की हानि के साथ निबटने की क्षमता का निर्माण कर सके। राष्ट्रीय नीति द्वारा स्थापित लक्ष्यों और मानदंडों के अनुरूप ही विभिन्न राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में संभावित प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों प्रकार की आपदाओं को दृष्टिगोचर करके राज्य आपदा

प्रबंधन नीति के निर्माण को अंतिम रूप देना होता है। सौभाग्य से कतिपय कारकों के कारण देश के कई राज्यों में आपदा प्रबंधन को लेकर पर्याप्त जागरूकता और प्रयत्न काफी समय से देखने को मिलते हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति के अमल में आने से अन्य राज्यों को भी इस दिशा में अग्रसर होने का सटीक सन्देश मिला। वर्तमान में देश के लगभग प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश में आपदा प्रबंधन की नीति किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। राज्यों के साथ-साथ सरकार के उन विभागों और इकाईयों को भी अपनी-अपनी आपदा प्रबंधन की नीति का निर्माण करना होता है जिनके कार्यों का स्वरूप मानव जीवन के समग्र विकास के किसी-न-किसी पक्ष से जुड़ा होता है। इस प्रकार आपदा प्रबंधन की राष्ट्रीय नीति के साथ-साथ विविध क्षेत्रीय इकाईयों तथा विभागों को भी आपदा प्रबंधन की नीति बनानी होती है। इस पूरी प्रकिया में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की महती भूमिका विविध स्तरों पर बनी नीतियों में एक संरचनात्मक तारतम्यता के साथ ही उसे राष्ट्रीय नीति के अनुरूप निर्दिष्ट करने की रही है जिसे प्राधिकरण बखूबी निभाता प्रतीत होता है।

कालांतर में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति को सार्थक और प्रभावी कार्यरूप देने के लिए एक सुस्पष्ट राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रकार आपदा प्रबंधन की नीति को अमली जामा पहनाने के लिए 2016 में सरकार द्वारा प्राधिकरण द्वारा निर्मित एक आपदा प्रबंधन योजना को स्वीकृति दी गयी। यह योजना वास्तव में देश में आपदा प्रबंधन की नीति को मोदी सरकार की 'न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन' की नीति के अनुरूप समायोजित करने के लिए बनाई गयी प्रतीत होती है। इससे भी अधिक, इस योजना को आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा स्थापित वृहत ढांचे को ठीक प्रकार से अपने कर्तव्यों के निर्वहन में तज्ञ करने हेतु एक रोडमैप प्रदान करने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है। इस योजना का केंद्रीय बिन्दु यह है कि किस प्रकार देश के आपदा प्रबंधन तंत्र को ऐसा लक्ष्योंन्मुख बनाया जाये कि वर्ष प्रति वर्ष आने वाली भीषण प्राकृतिक आपदाओं की विभीषिका से आम लोगों को बचाया जा सके। साथ ही जोर इस बात पर भी दिया गया है कि देश का आपदा प्रबंधन तंत्र विश्व स्तरीय मानदंडों और उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में ठोस कदम उठा सके। इस प्रकार आपदा प्रबंधन योजना देश में आपदा प्रबंधन नीति को मूर्तरूप देने का नवीनतम प्रयास माना जा सकता है। आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा भारत में आपदा प्रबंधन का जो क्रम 2005 में आरम्भ किया गया था, 2016 की आपदा प्रबंधन योजना उसी प्रकिया को तार्किक परिणति तक ले जाने का प्रयास माना जा सकता है। इस योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् यह अपेक्षा की जा रही है कि देश में आपदाओं से होने वाले भारी जान माल के नुक्सान को न्यूनतम किया जा सकेगा। देश में आपदा प्रबंधन के नीतिगत पहलू के बारे में एक बात तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि अब देश में आपदा प्रबंधन

की नीति का एक सुस्पष्ट तथा व्यापक खाका खींचा जा चुका है। आपदा प्रबंधन अधिनियम से लेकर आपदा प्रबंधन नीति और आपदा प्रबंधन योजना के द्वारा आपदा प्रबंधन तंत्र और प्रक्रिया को इस प्रकार साधने का प्रयास हुआ है कि अब आपदा प्रबंधन का लक्ष्य महज औपचारिकता बन कर ना रह जाये। इसी के साथ, योजनाओं के सम्बन्ध में प्राधिकरण का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह राज्य व जिला स्तर पर बनने वाली राज्य आपदा प्रबंधन योजना के निर्माण हेतु बुनियादी मार्गदर्शक सिद्धांतों का निर्दिष्टीकरण करे। इस कार्य को भी प्राधिकरण ने काफी हद तक विविध प्रकार के मार्गदर्शक सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत करके किया है।

आपदा प्रबंधन की शीर्ष नियामक संस्था के रूप में प्राधिकरण का एक अतिमहत्वपूर्ण कार्य देश में विविध प्रकार की वास्तविक अथवा संभावित आपदा की स्थितियों से बचाव और निपटान के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों का निर्माण करना है। ऐसे सिद्धांत वस्तुतः इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं कि अपने देश में प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों प्रकार की आपदाओं के लिए उत्तरदायी कारकों में लोगों की लापरवाही, अनधिकृत क्षेत्रों में अतिक्रमण तथा कई बार जानबूझकर आपदा संभावित क्षेत्रों में मानव बस्तियों अथवा स्थाई भौतिक परिसम्पतियों का निर्माण करना रहा है। इसलिए नियामक संस्था के रूप में प्राधिकरण का यह पुनीत कर्त्तव्य बनता है कि वह आपदा संभावित लोगों, क्षेत्रों, परिसम्पत्तियों इत्यादि को इस बात के लिए आगाह करे कि इसके द्वारा संस्तुत मार्गदर्शक सिद्धांतों को अपनाकर न केवल आपदाओं से बचा जा सकता है अपितु उनसे होने वाले अपूरणीय जान और माल की क्षति को भी न्यून किया जा सकता है। इस क्रम में प्राधिकरण द्वारा अब तक छब्बीस विभिन्न प्रकार की आपदा संभावित परिस्थितियों से बचाव और निपटान हेतु मार्गदर्शक सिद्धांतों की रचना की जा चुकी है।[12] हालाँकि प्राधिकरण द्वारा निर्दिष्ट इन दिशानिर्देशों का पालन अभी भी एक गंभीर चुनौती के रूप में हमारे सामने मौजूद है लेकिन इस बात से इंकार नही किया जा सकता है कि इन दिशानिर्देशों से एक दृष्टि अवश्य प्राप्त होती है जिसको अपनाकर आपदा की त्रासद संभावनाओं से बचा जा सकता है।

देश में आपदा प्रबंधन के शीर्ष नियामक संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने हालांकि अनेक नीतिगत और योजनमूलक गतिविधियों को निष्पादित किया है, परन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में जिस चीज की सबसे अधिक कमी महसूस होती है वह है प्राधिकरण द्वारा सुझाये गए नियामक बिन्दुओं का समग्र क्रियान्वयन। वस्तुतः राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ही नहीं अपितु देश में विद्यमान अधिकतर नियामक संस्थाओं की सबसे बड़ी विडंबना यही रही है कि नीतियों और योजनाओं के स्तर पर तो इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली काफी उत्कृष्ट रही है परन्तु जैसे ही चर्चा इन संस्थाओं द्वारा सुझाये गए कार्यों और विनियमों के क्रियान्वयन की होती है तो एक अजीब तरह की निराशा और असफलता का भाव उत्पन्न होता है। अंतिम

विश्लेषण के रूप में यह प्रतीत होता है जैसे कि देश में वर्षानुवर्ष आने वाली विभिन्न आपदाएं हमारे लिए सामान्य घटना की तरह हो गयी हैं और इनसे कुछ भी सीखने का क्रम तो हम भुला ही चुके हैं।- इस दृष्टि से राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण द्वारा किये गए विविध नियामकीय प्रयासों की उपादेयता काफी सीमित प्रतीत होती है।

फिर भी, इन दुरूहताओं तथा कठिनाईओं के बावजूद आपदा प्रबंधन के जिस पक्ष ने देश के आपदा प्रबंधन तंत्र, विशेषकर राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण को, अपना चेहरा दिखाने लायक छोड़ा हुआ है वह है राष्ट्रीय आपदा मोचन बल का गठन और उसके क्रियाकलापों की गौरवशाली परंपरा। वास्तव में राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के गठन का प्रावधान राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम में ही किया गया था और इस बल को राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के समग्र दिशानिर्देश में कार्य करने के लिए संस्तुति प्रदान की गयी है। अपने गठन के समय से ही इस बल ने देश के विभिन्न हिस्सों में आने वाले विविध प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं में पीड़ित लोगों के जान और माल को बचाने और राहत कार्यों में देश को गौरवान्वित किया है। इस प्रकार राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के उत्कृष्ट कार्यों को छोड़ दिया जाये तो देश के आपदा प्रबंधन तंत्र के समक्ष नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बंधित सुशासन की अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं। यही कारण है कि 2009 में केंद्र सरकार ने आपदा प्रबंधन अधिनियम के विविध प्रावधानों तथा उनके समुचित क्रियान्वयन के विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में हालांकि देश के आपदा प्रबंधन के सामान्य तंत्र को तो पर्याप्त माना किन्तु आपदा प्रबंधन की नीतियों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन की अनेक चुनौतियों को उजागर किया।[14] परन्तु इस सन्दर्भ जो बात उल्लेखनीय है वह यह कि आपदा प्रबंधन नियमन के क्षेत्र में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का कार्यक्षेत्र नियामकीय दिशानिर्देशों के निर्माण का है ना कि उनके व्यावहारिक धरातल पर क्रियान्वयन का। इस दृष्टि से प्राधिकरण के क्रियाकलापों का आलोचनात्मक विश्लेषण काफी दुरूह और चुनौतीपूर्ण रहा है।

निष्कर्ष

भारत जैसे देश में जहाँ विविध प्रकार के संकटों और आपदाओं को लोग ईश्वर प्रदत्त बात या घटना मानकर न सिर्फ हंसीखुशी बर्दाश्त कर लेते है अपितु बहुत शीघ्र ही उसे भुलाकर अपने सामान्य जीवनचर्या में व्यस्त हो जाते हैं वहां की प्रशासनिक व्यवस्था में पेशेवर आपदा प्रबंधन की परिकल्पना पर्याप्त क्रन्तिकारी लगती है। इसलिए जब आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में शीर्ष नियामकीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना का प्रारूप प्रस्तुत किया गया तब यह बात देश में किसी प्रकार की विशेष हलचल पैदा करने में

असफल रही। इसके दो संभावित कारण स्पष्ट थे *प्रथम*, इस देश में लोगों ने जब आपदाओं को न ही असहनीय माना और न ही उनसे सीख लेकर उनसे बचने के कोई विशेष उपायों के बारे में सोचा, तब सरकार की तरफ से किये जाने वाले महती प्रयास लोगों में बहुत अधिक उत्साह और आशा प्रस्फुटित करने में असफल रहे। *द्वितीय*, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के विशेष सन्दर्भ में, इससे पूर्व में गठित होने वाले अनेक अन्य नियामकीय संस्थाओं का दुखद हश्र लोग भलीभांति देख चुके थे। प्रदूषण नियंत्रण और गंगा स्वच्छता से सम्बंधित नियामकीय संस्थाएं ऐसे त्रासद दृष्टांतों के ज्वलंत उदाहरण हैं। इसलिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन देश में आपदा प्रबंधन के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन लाने में बहुत अधिक सहायक नहीं रहा इसके बावजूद प्राधिकरण ने निसंदेह बहुत ही अल्प अवधि में देश में आपदा प्रबंधन के विमर्श में उल्लेखनीय परिवर्तन करने में सफलता हासिल की है। परन्तु प्राधिकरण के नियमन के प्रयासों को सिरे चढ़ाने के लिए अन्य सहयोगी क्रियान्वयनकर्ता संगठनों का सक्रिय सहयोग यक्ष प्रश्न के रूप में सदा विद्यमान रहेगा।

lUnHk xUFk lph

1. इयान बर्टन, द *एन्वायरन्मेंट ऐज हैजर्ड*, न्यूयॉर्कः द गोल्फोर्ड प्रेस, 1993, पृ. 72।
2. राजेंद्र कुमार पांडेय, "प्राकृतिक आपदा और विकास", *लोक प्रशासन*, 3(2), जुलाई-दिसंबर 2011, पृ. 347।
3. एफ. सी. कूनी, *डिजास्टर्स एंड डेवलपमेंट*, न्यूयोर्कः आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1963, पृ. 17।
4. डब्ल्यू. निक कार्टर, *डिजास्टर्स मैनजमेंट*, मनीलाः एसियन डेवलपमेंट बैंक, 1991, पृ. 63।
5. भारत में स्वतंत्र नियामक संस्थानों की वैचारिक पृष्ठभूमि के लिए देखें, राजेंद्र कुमार पांडेय, "इंटेलेक्चुअल रूटस ऑफ़ इंडिपेडेंट रेगुलेटरी अथॉरिटीज इन अमेरिका एंड इंडिया" *इंडियन जर्नल ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, LXIV (3), जुलाई-अक्टूबर 2018, (आने वाला है)।
6. पी. एम्. प्रसाद, "एनवायरनमेंट प्रोटेक्शनः रोल आफ़ रेगुलेटरी सिस्टम इन इंडिया", *इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली*, 41(13), 2006 पृ. 1279।
7. राजेंद्र कुमार पांडेय, "आपदा प्रबंधन में सुशासन की चुनौतियाँ" *लोक प्रशासन*, 9(2), जुलाई-दिसंबर 2017, पृ. 139।
8. भारत में आपदा प्रबंधन की विधायी रूपरेखा की विस्तृत जानकारी हेतु देखें, राजेंद्र कुमार पांडेय, "लीगल फ्रेमवर्क ऑफ़ डिजास्टर मैनेजमेंट इन इंडिया" *आई एल आई ला रिव्यू, विंटर इशू*, 2016, पृ. 172–190।
9. भारत सरकार, आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005, उपलब्धः https://ndma.gov.in/images/ndma-pdf/DMAct 2005Hindi.pdf, 10 जून 2018 को दृष्टिपातित।

10. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, *राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति,* राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, नयी दिल्ली, 2009।
11. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, *राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन कार्ययोजना,* राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, नयी दिल्ली, 2009।
12. https://ndma.gov.in/hi/ndma-guidelines.html, 10 जून 2018 को दृष्टिपातित।
13. पंकज चतुर्वेदी, "आपदा प्रबंधन अनुभवों से कुछ नहीं सीखा", हिंदुस्तान, 12 जुलाई 2011, पृ. 10।
14. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, *आपदा प्रबंधन अधिनियम की कार्यप्रणाली पर कार्यबल की रिपोर्ट,* नयी दिल्ली, 2013।

पर्यावरण एवं हमारा दायित्व

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

Ikjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य ''पर्यावरण एंव हमारा दायित्व'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। अखिल ब्रह्माण्ड में मात्र पृथ्वी ही अकेला ग्रह है, जिस पर जैवमण्डल की सम्भावना विद्यमान है। अर्थात् जिन्दगी की धड़कने सुनाई पड़ती हैं। अन्यत्र कहीं भी किसी भी ग्रह पर जीवन की किसी सम्भावना की तलाश नहीं हो पायी है। अतएव यदि मानवीय कृत्यों से पर्यावरण असंतुलित हुआ तो समस्त जैव–अजैव प्रजातियाँ काल कवलित हो जायेंगी। अतः स्वयं की सुरक्षा हेतु पृथ्वी का संरक्षण वांछनीय ही नही अपरिहार्य भी है। आज जिस जल, जंगल और जमीन के जरिये पर्यावरण की चिंता की जा रही है, उनके प्रति हमारा दायित्व काफी हद तक जमीनी हकीकत को चिन्तनीय बनाता हैं। इक्कीसवीं सदी में हम दुनिया से लोहा लेने हेतु तत्पर हैं, लेकिन हमारे पर्यावरण अर्थात् जल, जंगल, जमीन व हवा आदि प्रकृति के उपादान भयावह रूप से क्षरित व प्रदूषित होते जा रहे हैं। फिर भी हम आज पर्यावरण संरक्षण हेतु किसी ठोस उपाय के बजाय केवल बहस करने व एक-दूसरे देशों पर आक्षेप लगाने में नखशिख उलझे हुए हैं। व्यवहारतः उन दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पा रहे हैं, जिन्हें वास्तव में करना चाहिए। मसलन–जीवन शैली में बदलाव, विकास की अवधारणा में बदलाव, उपभोक्तावाद से परहेज, यंत्रों व तकनीकों का सीमित उपयोग अपनी लिप्सा पर पूर्ण नियंत्रण आदि नहीं कर पा रहे हैं, जो पर्यावरण की संजीवनी हेतु यथेष्ठ उपाय है।*

प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक परिवेश में पर्यावरण और उसके प्रति हमारा दायित्व गहन चिंतन का विषय है। पर्यावरण का सीधा सम्बन्ध मानव अस्तित्व से है। प्राणी-जगत का अस्तित्व न सिर्फ प्रकृति और पर्यावरण से प्रभावित होता है, अपितु प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को यदि सीमित नहीं किया गया, तो प्रकृति और मनुष्य दोनों का ही आस्तित्व खतरे में है। *एनवॉयरनमेण्ट* (Environment) अर्थात् पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द *एनवॉयरनर* (Enviroer) से है, जिसका आशय है परिवेश। अर्थात् चतुर्दिक विद्यमानता से है।[1] ''समाज के अन्तर्गत पर्यावरण के प्रभाव और महत्व का

चिंतन तथा उसमें विश्वास पर्यावरणवाद के नाम से विदित है''[2]। पारिस्थितिकी (Ecology) का यूनानी परंपरा के आशय गृह-अध्ययन (Home Study) से है। जर्मन लेखक अर्न्स्ट हेकेल (Ernst Heackel) ने पारिस्थितिकी की परिभाषा 'सावयवियो' (जीवधारियों) और उनके पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों का विज्ञान (The Science of Relations between Organisms and their Environment) के रूप में की है।[3] वस्तुतः मनुष्यों और पर्यावरण के बीच सम्बन्ध ही पारिस्थितिकी का विषय है।[4] सी.सी. पार्क के अनुसार, ''पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है, जो मनुष्य को निश्चित समय व स्थान पर आवृत्त करती हैं''[5]। यह पर्यावरण वह है, जो परिवेशित करता है अर्थात् पर्यावरण प्रकृति का वह भाग है जो किसी जीव या जीव समुदाय को परिवृत्त करता है। पर्यावरण का तात्पर्य केवल बाह्य जगत के लिये ही नहीं है, जो व्यक्ति को चारों ओर से आवृत्त करती है, बल्कि वे सभी वस्तुएँ जो मानव को सतत् प्रभावित करती हैं, पर्यावरण के ही अन्तर्गत आती हैं।

भारतीय दर्शन पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से जितना समृद्ध है, उतना किसी अन्य देश का नहीं। भारत में प्राचीन काल से ही सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पतियों, सरिताओं और सरोवरों को पूजनीय मानने की परंपरा रही है जिसके मूल में पर्यावरण संरक्षण का भाव ही निहित है। सूर्योपासना, ग्रहों की अभ्यर्थना, अग्नि-पूजा, वृक्षपूजा जैसी परंपराएँ विकसित कर इस देश में सदैव पर्यावरण संरक्षण को आगे बढ़ाने का कार्य किया गया है। यहाँ पर जैव विविधता को संरक्षित रखने तथा उसे समृद्ध बनाने पर पूरा ध्यान दिया गया है। यहाँ के अनेक आदिवासी क्षेत्रों में पशुओं, वृक्षों एवं वनस्पतियों को पूजने की अबाधित परंपरा है। गाय भारतीय समाज में पूजनीय है। राजस्थान का बिश्नोई समुदाय आज भी काले हिरनों को शुभ मानकर उसकी पूजा करता है। भारतीय दर्शन में पर्यावरण को ईश्वर के प्रतिरूप में सम्मानित एवं संरक्षणीय माना गया है। तैतरीय उपनिषद् में कहा गया है कि– ईश्वर आत्मा से आकाश की, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की और अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में कहा गया है–

अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु
मातरत् औषधि नाम्
मा ते मर्म विमृग्वरि माते ह्रदयमर्पितम्।[6]

अर्थात् हे! भूमि, तेरे वन हमारे लिए सुखकारी हो। भूमि तेरे वृक्षों को मैं इस तरह काटू कि शीघ्र ही वे अंकुरित हो जायें, सम्पूर्ण रूप से काटकर मैं तेरे मर्मस्थल पर प्रहार न करूँ। भूमि को औषधियों की माता माना गया है। भारतीय संस्कृति में धरती को माता के रूप में संबोधित किया गया है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहयं पृथिव्याः'[7] अर्थात् पृथ्वी हमारी माँ है और हम पृथ्वी के पुत्र हैं, तथा जीवनदायिनी नदियों को भी माँ के तुल्य माना गया है। ऋग्वेद के नदी सूक्त में कहा है कि–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जले स्मिन्निधिं कुरू।।[8]

मानव जीवन को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रकृति एवं पर्यावरण को संरक्षित और समृद्ध बनाए रखना नितांत आवश्यक है। हमारी सांस्कृतिक परम्परा में रची-बसी प्रकृति की अन्यान्य धरोहर कभी हर घर के आंगन, पूजा घर या रसोई घर का अभिन्न हिस्सा हुआ करती थी, किन्तु बढ़ती मानव आबादी और आर्थिक लाभ एवं लोभ के कारण ये सबके घरों से ही नहीं, वरन् अपने मूल वास से भी गायब हो रही है।[9] भारत में पर्यावरण और प्रकृति प्रेम को जीवन से अभिन्न रूप से जोड़कर इसके संरक्षण के संस्कार विकसित किये गए। वृक्षारोपण की महत्ता को दर्शाते हुए वाराहपुराण में यह संदेश दिया गया है कि *'पंचामवाती नरके न याति'* अर्थात् आम के पाँच पेड़ लगाने वाला कभी नरकगामी नहीं होता। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् में लिखा है कि– *'न दत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्'*। अर्थात् शकुन्तला फूलों से इतना प्रेम करती थी, वह अपने श्रृँगार तक के लिए फूलों और पत्तियों को नहीं तोड़ती थी। प्रकृति और पर्यावरण से प्रेम उनके प्रति मानवीय दायित्वों के निर्वहन की एक मिसाल हो सकती है।

आज पूरे विश्व में पर्यावरण असन्तुलन की समस्या विद्यमान है। पर्यावरण असन्तुलन का प्रभाव मौसम पर सबसे ज्यादा पड़ रहा है। 'ग्लोबल वार्मिंग' बढ़ रही है तो ग्लेशियर के पिघलने से नयी तरह की समस्याएँ सामने आयीं हैं। सबसे महत्वपूर्ण समस्या ग्लोबल वार्मिंग की है। वायुमण्डल से 'ग्रीन हाउस' गैसों का निरन्तर बढ़ता हुआ सान्द्रण भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। 1861 के बाद पृथ्वी के तापमान सम्बंधी उपकरणों द्वारा अंकित विश्वसनीय आँकड़े उपलब्ध हैं। ग्लोबल वार्मिंग के सम्बंध में वास्तविक जानकारी प्राप्त करने हेतु संयुक्त राष्ट्र ने 1988 में Inter Governmental Panel on Climate Change' (IPCC) का गठन किया। प्रारंभिक अनुमान के अनुसार 1861 से 1991 तक पृथ्वी के औसत तापमान पर अब तक के सर्वाधिक विश्वसनीय आँकड़े जुटाते हुए IPCC ने 03 फरवरी 2007 को पेरिस में एक रिपोर्ट जारी की। इस रिपोर्ट में ग्लोबल वार्मिंग के लिए मानव समाज को अभियुक्त माना गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार 1900 से 2006 तक पृथ्वी के औसत तापमान में 0.7^0 से 0.8^0 सेल्सियस तक वृद्धि हो चुकी है तथा सन् 2100 तक पृथ्वी के तापमान में 1.1^0 से 6.4^0 सेल्सियस तक वृद्धि हो सकती है।

ग्लोबल वार्मिंग के लिए मुख्यतः कार्बन डाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन और हेलोन जैसे गैस उत्तरदायी हैं। इन गैसों का सान्द्रण वायुमण्डल में निरंतर बढ़ता जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण 21वीं सदी के अंत में समुद्री जलस्तर में 18 से 58 सेमी. तक वृद्धि की आशंका है। इससे मालद्वीव जैसे–निम्न समुद्र तटीय भाग जल निमग्न हो जायेंगे, जिनमें आज की 25 प्रतिशत अर्थात् एक अरब जनसंख्या बेघर हो जायेगी। समुद्री खारे पानी के ऊपर आ जाने से पेयजल संकट उपस्थित हो जायेगा तथा समुद्री अपरदन भी बढ़ जायेगा।[10] ग्लोबल वार्मिंग के कारण भारत का तटीय क्षेत्र प्रभावित होगा जो अत्यन्त उपजाऊ तथा सघन

जनसंख्या वाला क्षेत्र है। उत्तर भारत में गेहूँ की प्रधानता वाले परिक्षेत्र की स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डेविड बी. लावेल एवं एडम सिब्ली व अन्तर्राष्ट्रीय मक्का व गेहूँ उन्नयन केन्द्र के जे. इवान ओर्टिज मोनेसटेरियों द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार, तापमान में एक डिग्री की अधिकता गेहूँ की फसल को 10 प्रतिशत तक प्रभावित कर देती है। वही विश्व स्वास्थ्य संगठन का यह मानना है कि जलवायु परिवर्तन का न केवल हमारे स्वास्थ्य पर असर पड़ेगा, बल्कि गरीब देशों के प्रमुख खाद्यान्नों में कमी आयेगी, जिससे कुपोषण बढ़ेगा। वर्ष 2050 तक भारत में सूखे से गेहूँ के उत्पादन में 50 फीसदी की कमी आने की आशंका जतायी जा रही है[11]। IPCC की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार, 2080 तक एक अरब 10 करोड़ लोगों को अनाज उपलब्ध नहीं होगा।

पर्यावरण असंतुलन के कारण ही ओज़ोन परत के क्षीण होने तथा उसमें छेद होने की समस्या सामने आयी है। ओज़ोन ऑक्सीजन का ही एक रूप है, जिसमें दो की जगह तीन अणु होते हैं। यदि यह परत नष्ट हो जाए या कमजोर पड़ जाए, तो पैराबैगनी किरणें पृथ्वी की सतह तक पहुँचती है जो न केवल जीव जन्तुओं के लिए अपितु वनस्पतियों के लिए हानिकारक होती हैं। ओजोन परत के क्षरण के लिए मानवीय गतिविधियाँ ही उत्तरदायी हैं। भौतिक रूप से जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा विलासिता के साधन सृजित करने के चक्कर में उन रसायनों का जमकर प्रयोग किया गया है जो ओज़ोन परत को क्षति पहुँचाते हैं। ओज़ोन क्षरण से ओज़ोन के अणु पृथ्वी के निचले वायुमण्डल में प्रविष्ठ कर जाते हैं, जिससे वायु श्वांस लेने हेतु जहरीली हो जाती है। आज पर्यावरण की स्थिति बदल गयी है। उसके लिए छेड़छाड़ असहाय हो गयी है। पिछले दो दशकों में दुनिया भर में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं में चार गुना वृद्धि हुई है। अब प्रकृति के प्रकोप को सूनामी, ज्वालामुखी विस्फोट तथा भूस्खलन से जोड़कर देखा जा रहा हैं। इनके बीच अन्तर्सबंधों की पड़ताल के लिए व्यापक शोध की आवश्यकता है।

पर्यावरण असन्तुलन के कारण जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है। पृथ्वी पर कार्बन डाई ऑक्साइड एवं हरित गृह गैसों के निरंतर बढ़ते प्रयोग के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि देखी गयी है। इस घटना को वैश्विक तापन कहते हैं। यद्यपि वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा केवल 0.03 प्रतिशत है, जिसे मौसम की चाँबी या कुंजी भी कहा जाता है।[12] जलवायु परिवर्तन पर गठित अन्तर्सरकारी पैनल ने वैश्विक तापन के बढ़ते खतरों की ओर ध्यान दिलाते हुए अपनी एक रिपोर्ट में बताया है कि यदि तापमान में होने वाली वृद्धि जारी रही तो वर्ष 2100 तक पृथ्वी की सतह का तापमान 1.4^0 से 5.8^0 सेल्सियस तक बढ़ जायेगा। बताया जाता है कि यह तापमान उससे भी अधिक होगा जितना की पिछले 10,000 वर्षों में हुआ है। भूमण्डलीय तापमान बढ़ने का मुख्य कारण है – जीवाष्म ईधनों का अतिशय प्रयोग, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, ओज़ोन मण्डल में छेद होने की वजह से सूर्य की पैराबैंगनी

किरणों का धरातल पर पहुँचना तथा अतिऔद्योगीकरण। जलवायु परिवर्तन के कारण मानव जीवन एवं सम्पूर्ण परितंत्र पर अत्यन्त नकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं। यथा–

- जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव तापमान वर्षण एवं ऋतुचक्र पर पड़ता है। इसका सीधा प्रभाव मृदा आर्द्रता, जीवाणुओं की उत्पत्ति एवं प्रजनन, पौधों की वृद्धि, पुष्पन एवं फलधारण पर पड़ता है।
- बाढ़, सूखा, सूनामी जैसी आपदाओं में तीव्र गति से वृद्धि देखी जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्तमान में विशषतः समुद्रतटीय क्षेत्रों के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा है।
- पर्यावरण एवं परितंत्र पर भी जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को जैव-विविधता पर मंडरातें संकट के रूप में देखा जा सकता है। इसके कारण से अनेक प्रकार के पौधों एवं जीव जन्तुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं तथा इससे भी अधिक विलुप्त होने की कगार पर हैं। जलवायु परिवर्तन से हुए वैश्विक तापमान ने मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दक्षिण पूर्व एशिया परिक्षेत्र एक करोड़ 40 लाख लोगों के मौत का कारण जलवायु परिवर्तन बनेगा। जिसमें 40 फीसदी मौतों के लिए संक्रामक बीमारियाँ जिम्मेदार रहेंगीं।[13] आज जलवायु परिवर्तन से ही कैंसर, मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, पीत ज्वर, चर्मरोग समेत अनेक संक्रामक बीमारियाँ फैल रही हैं। जलवायु परिवर्तन और पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के लिए मानवीय गतिविधियाँ सर्वाधिक जिम्मेदार हैं।

अतः आज वैश्विक स्तर पर इस खतरे से निपटने हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे हैं –

- संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा ब्राजील की राजधानी रियो-डी जनेरियो में पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन आयोजित किया गया। इसे पृथ्वी शिखर सम्मेलन भी कहा जाता है। इसमें सतत् विकास का नारा दिया गया और विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के मध्य तालमेल की बात कहते हुए व्यापक कार्यवाही योजना के रूप में एजेण्डा-21 विकसित किया गया।
- इसके पश्चात् वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक महत्वपूर्ण समझौता किया गया जिसे क्योटो प्रोटोकाल के नाम से जाना गया। इसकी उद्घोषणा 1997 में की गई थी वर्ष 2005 में इस समझौते को लगभग 141 देशों द्वारा अनुमोदित किया गया। इस समझौते के माध्यम से 35 औद्योगिक राष्ट्रों को कहा गया है कि ये कार्बन का उत्सर्जन क्रमशः कम करें। यह समझौता फरवरी 2005 से प्रभावी हो गया परन्तु इसमें अमेरिका शामिल नहीं हुआ।

- संयुक्त राष्ट्र ने जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य आपसी सहमति निर्माण हेतु एक वैश्विक मंच संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के नाम से तैयार किया ताकि सभी देश मिलकर इस वैश्विक समस्या के समाधान के लिए अग्रसर हों। इसकी 20वीं बैठक 1 से 12 दिसम्बर 2014 के मध्य पेरू के लीमा में हुई। लीमा में आयोजित बैठक मे 190 से ज्यादा देशों द्वारा वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कटौती के राष्ट्रीय संकल्पों के लिए आम सहमति वाला प्रारूप स्वीकार किया गया।
- इस समझौते में विकासशील देशों की चिंताओं को भी स्वीकारते हुए विभेदीकरण के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है। यह समझौता वर्ष 2020 से प्रभावी होगा।

जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के मार्ग में अनेक समस्याएँ भी हैं। वस्तुतः विकसित देश एक ऐसा वैश्विक समझौता चाहते हैं, जो एक समान रूप से सभी देशों में लागू हो, जबकि विकासशील देश समझौते के सम्बंध में विभेदीकरण के सिद्धान्त को लागू करना चाहते हैं। उनका कहना है कि समझौते में विकसित एवं विकासशील देशों के लिए कार्बन कटौती की शर्तें एवं उत्सर्जन के मानक भिन्न-भिन्न हों। साथ ही विकसित देश विकासशील देशों को ''स्वच्छ प्रौद्योगिकी एवं तकनीक'' कम कीमत पर उपलब्ध कराएँ। यद्यपि विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य प्रबल मतभेद बना हुआ है फिर भी एक बात अवश्य निश्चित है कि पर्यावरण का मुद्दा करोड़ों लोगों के जीवन-मरण से सम्बन्धित है, उनकी जीवनशैली से, उनके स्वास्थ्य से, उनके वर्तमान तथा उससे अधिक उनके भविष्य से।[14]

प्रकृति के कोप नित नए रूपों में सामने आ रहे हैं। वर्ष 2016 में महाराष्ट्र के लातूर जिले में इतना भयानक जल संकट पैदा हुआ कि वहाँ ट्रेनों से पानी पहुँचाना पड़ा। अनेक विश्वस्तरीय एजेन्सियों की रिपोर्ट में यह चेतावनी भरा तथ्य सामने आया है कि वर्ष 2020 तक भारत में कम-से-कम 21 शहरों का भूजल स्तर शून्य तक पहुँच जायेगा। अनुमान है कि वर्ष 2030 तक भारत में पानी की आवश्यकता डेढ हजार अरब क्यूबिक लीटर होगी जबकि पानी की आपूर्ति सिर्फ 740 अरब क्यूबिक लीटर है। विकास के नाम पर जल का अंधाधुंध एवं अनियोजित प्रयोग किये जाने से भारत में भू-जल का स्तर तेजी से गिरा है। केन्द्रीय भूजल बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार देश के 6584 भू-जल ब्लाकों मे से 1034 ब्लाकों का बहुत ज्यादा प्रयोग किया गया है। भू-जल की चिंताजनक स्थिति को देखते हुए इसमें सुधार लाने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार की अटल भू-जल योजना प्रस्तावित है, जिससे कृषि पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है। वैश्विक स्तर पर जो पर्यावरणीय संकट वर्तमान में उत्पन्न हुआ है इसके लिए स्वयं औपनिवेशिक शक्तियों का उत्तरदायित्व कमतर नहीं है, तेल हो या खनिज अपनी आवश्यकता हेतु

संसाधनों का दोहन करते वक्त प्रकृति के स्वास्थ्य की कोई चिन्ता विकसित देशों ने कभी नहीं की।[15] उस अनियोजित विकास का प्रतिफल हालिया उदाहरण दक्षिण अफ्रीका के बड़े शहर केपटाउन के रूप में हमारे सामने है। जहाँ लगातार तीन वर्षों से सूखा पड़ने के कारण पानी की किल्लत हो गयी यहाँ भूजल का स्तर शून्य हो गया है। कार्बन उत्सर्जन के नियन्त्रण के उद्देश्य से वर्ष 2015 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में ''पेरिस जलवायु परिवर्तन सम्मेलन'' को स्वीकृति प्रदान की गयी। इस सम्मेलन में 195 देशों और यूरोपीय संघ ने पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौते को स्वीकृति प्रदान की। इस समझौते का मुख्य बिन्दु है – वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि को पूर्ण औद्योगिक स्तरों से दो डिग्री सेल्सियस से पर्याप्त रूप से कम रखना तथा इसे 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के प्रयासों को जारी रखना। यह समझौता 4 नवम्बर 2016 से प्रभावी हुआ। इस सन्दर्भ में विकसित देशों की नीयत कितनी साफ है इसका पता इसी से चलता है कि 1 जून 2017 को अमेरिका द्वारा इस समझौते से बाहर होने की घोषणा की गई।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण एवं निवारण हेतु सुझाव

Hkfe-izn"k.k

भूमि-प्रदूषण का कारण है–वनों का विनाश, खदानें, भू-क्षरण, रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाओं का उपयोग आदि। भूमि की उर्वरता बढ़ाने हेतु रासायनिक खाद का तथा फसल को कीड़ों और रोगों से बचाने के लिए कीटनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता है, जो भूमि को प्रदूषित कर देते हैं।

जल-प्रदूषण–पृथ्वी का तीन-चौथाई हिस्सा जलमग्न है फिर भी करीब 0.3 फीसदी जल ही पीने योग्य है। विभिन्न उद्योगों और मानव बस्तियों के कचरे ने जल को इतना प्रदूषित कर दिया है कि पीने के करीब 0.3 फीसदी जल में से मात्र करीब 30 फीसदी जल ही वास्तव में पीने के लायक रह गया है।

वायु और ध्वनि-प्रदूषण–पर्यावरण के लिए वायु और ध्वनि प्रदूषण भी कम घातक नहीं है। वायुमंडल में ऑक्सीजन का प्रचुर भंडार है किन्तु औद्योगिक प्रगति के कारण वह प्रदूषित हो चला है। घरेलू ईंधन, वाहनों की बढ़ती संख्या और औद्योगिक कारखानें इसके लिए जिम्मेदार हैं।

जीव-जंतुओं के अलावा पेड़-पौधों तथा भवन आदि भी वायु प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। आये दिन मशीनों, लाउडस्पीकरों, कारों द्वारा तथा विवाहोत्सव, त्यौहारों, धार्मिक कार्यों के अवसरों पर होने वाला ध्वनि प्रदूषण न जाने कितनों की नींद हराम करता रहता है। अनियंत्रित जनसंख्या, शहरों में यातायात के विविध साधनों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समारोहों में ध्वनि विस्तारक यंत्रों तथा कल-कारखानों के कारण बहुत शोरगुल बढ़ रहा है।

पर्यावरण के प्रदूषण से बचने के उपाय

- प्रत्येक व्यक्ति प्रति वर्ष यादगार अवसरों (जन्मदिन, विवाह की वर्षगांठ) पर अपने घर, मंदिर या ऐसे स्थल पर फलदार अथवा औषधीय पौधारोपण करे, जहाँ उसकी देखभाल हो सके।
- उपहार में भी सबको पौधें दें।
- शिक्षा संस्थानों व कार्यालयों में विद्यार्थी, शिक्षक, अधिकारी और कर्मचारीगण राष्ट्रीय पर्व तथा महत्वपूर्ण तिथियों पर पौधो रोपे।
- विद्यार्थी एक संस्था में जितने वर्ष अध्ययन करते हैं, उतने पौधे वहाँ लगाये और जीवित भी रखें।
- प्रत्येक गांव/शहर में हर मोहल्ले व कॉलोनी में पर्यावरण संरक्षण समिति बनायी जाये।
- निजी वाहनों का उपयोग कम-से-कम किया जाए।
- रेडियो-टेलीविजन की आवाज़ धीमी रखें। सदैव धीमे स्वर में बात करें। घर में पार्टी हो तब भी शोर न होने दें।
- जल व्यर्थ न बहायें। गाड़ी धोने या पौधों को पानी देने में इस्तेमाल किये गये पानी का प्रयोग करें।
- अनावश्यक बिजली की बत्ती जलती न छोड़ें। पॉलीथीन का उपयोग न करें। कचरा कूड़ेदान में ही डाले।
- अपना मकान बनवा रहे हों तो उसमें वर्षा के जल-संरक्षण और उद्यान के लिए जगह अवश्य रखें।

वस्तुतः प्रकृति हमारी रक्षा तभी करती है, जब हम प्रकृति की रक्षा करें। अब वह समय आ गया है कि हम अपने अस्तित्व की रक्षा और दुनिया को बचाने के लिए प्रकृति की रक्षा करें। इसके लिए हमें विकास के मौजूदा विनाशकारी और अनियोजित मॉडल को त्याग कर टिकाऊ विकास से जुड़ना होगा। टिकाऊ विकास एक ऐसा विकास है जो पृथ्वी पर जीवन में सहायक प्राकृतिक तंत्र को क्षति नही पहुंचाता है। यह पर्यावरण और विकास का वह मुद्दा है, जिसमें विकास को पर्यावरण के अनुकूल बनाने को वरीयता दी जा रही है। स्थायी विकास में पर्यावरण नीतियों और विकास कार्यक्रमों की सन्तुलित रूपरेखा स्पष्ट होती है। विकास की प्रक्रिया में उन प्राकृतिक प्रणालियों को खतरे में नही डाला जाता है, जिनसे, पृथ्वी पर जीवन बना हुआ है।

प्रकृति और पर्यावरण के प्रति अपने दायित्वों की अनदेखी की जाती रही तो प्रकृति का कोप हमें सर्वनाश के कगार पर खड़ा कर देगा। पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण की दिशा में निरन्तर ध्यान देने एवं इसके मूल स्वरूप को वापस लाने के प्रयास से भावी

विनाश से बचा जा सकता है। यह एक वैश्विक समस्या है, अतएव प्रयास भी वैश्विक स्तर पर होना चाहिए।

ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए गम्भीर प्रयास किया जाना आवश्यक है। ग्लोबल वार्मिंग के लिए मूलतः उत्तरदायी गैस कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में कमी लाने के लिए जीवाष्म ईंधन के दहन में कमी लानी चाहिए। इनके स्थान पर वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में कुछ विशेष कदम विचारणीय हैः

- वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक तथा वृक्षारोपण द्वारा वन क्षेत्र में विस्तार करना।
- जनसंख्या की तीव्र वृद्धि पर प्रभावी अंकुश लगाया जाना चाहिए क्योंकि IPCC की 2007 की रिपोर्ट में ग्लोबल वार्मिंग के लिए मानव के क्रियाकलापों को सबसे प्रमुख कारण माना है।
- प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग तथा वैकल्पिक स्रोत का विकास करना है।
- क्लोरो फ्लोरोकार्बन (CEC) जैसे मानव जनित घातक रसायनों के उत्पादन को सीमित करना।
- ग्रीन हाउस गैसों का सबसे अधिक उत्सर्जन करने वाले विकसित देशों को मानव जाति के हित में इन गैसों के उत्सर्जन मे कटौती करनी चाहिए तथा पर्यावरण की सुरक्षा हेतु उचित उपाय करने चाहिए।
- पर्यावरण प्रदूषण को रोकने तथा ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन पर रोक लगाने वाले अंतर्राष्ट्रीय कानूनों एवं संधियों का कठोरतापूर्ण पालन तथा इनका उल्लंघन करने वाले देशों के विरूद्ध कड़े प्रतिबंध लगाने चाहिए।

आज विश्व मानव के समक्ष असंतुलित होता जा रहा पर्यावरण बड़ी चुनौती के रूप में उपस्थित है। अविवेकपूर्ण विकास के मानकों ने पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति पहुँचायी है। विकासशील देशों में अधिक जनसंख्या घनत्व के कारण पर्यावरण का असंतुलन भयावह स्थिति में पहुँच चुका है। तीसरी दुनिया में पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास एक-दूसरे के विरोधी माने जा रहे हैं। विकास को ही साध्य मान लेने वाले अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा की है। टिकाऊ, मजबूत और मनुष्य–साध्य विकास पर्यावरण के साथ तादात्मय बनाए रखकर ही सम्भव हो सकता है। आधुनिक अध्ययनों में आर्थिक आधार पर पर्यावरण से होने वाले नुकसान का आकलन किया जा रहा है। मत्थु कुमार द्वारा सम्पादित पुस्तक *'ग्रीनिंग इंडियाज़ ग्रोथ'* के अध्ययन के अनुसार सन् 2009 तक भारत में पर्यावरण से

हुई क्षति की कीमत 3.7 लाख करोड़ रुपये थी जो कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद की 5.7 प्रतिशत थी।

निःसंदेह भारत में पर्यावरण के असंतुलन का मुख्य कारण अपनी विरासत के प्रति हमारी उदासीनता का भाव है। हमें अपनी संस्कृति के अनुरूप ही विकास के प्रतिमान को अपनाना चाहिए। हमारी संस्कृति त्यागपूर्वक भोग *(तेन त्यक्तेन भुन्जीथा),* तथा प्रकृति से मैत्री की रही है। प्रकृति में सभी मनुष्यों के भरण-पोषण की अद्भुत क्षमता है और वह ऐसा सभ्यता के प्रारंभ से करती आ रही है। किन्तु मनुष्य की अतिशय लोभ एवं दुराकांक्षा की पूर्ति वह नहीं कर सकती। प्रकृति की विस्मयकारी विराटता और अभिभूत कर देने वाली जटिलता का बोध हमारे प्राचीन मनीषियों को था। इसी कारण प्रकृति के विभिन्न अवयवों का दैवीकरण कर देवरूप में उनकी आराधना की गयी। आथर्वण ऋषि ने अथर्ववेद में *'मात भूमिः पुत्रोऽहयं प थिव्याः'* का उद्घोष किया जो पृथ्वी के समस्त जीव-जन्तु, वन-पर्वत (जड़ चेतन) से रोगात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का अनूठा प्रयास था। हमारे ऋषि प्रकृति के असीम प्रसाद एवं उद्दाम कोप से परिचित थे। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का यह कथन कि मैं वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) हूँ *(अश्वत्थः सर्वव क्षाणां,* 10/26), पक्षियों में गरूड़ *(वैनतैय च पक्षिणाम्),* स्थावरों में हिमालय *(स्थावराणां हिमालयः* 10/25) तथा शिखर वाले पर्वतों में मेरू हूँ *(मेरूः शिखरिणामहम्* 10/23) इत्यादि से स्पष्ट है कि भारतीय चेतना में प्रकृति के प्रत्येक कण में परमसत्ता का अधिवास माना गया है, जिसका मूलार्थ प्रकृति के साथ मानव के अविनाभाव सम्बन्ध को बताना था। हमारी संस्कृति में जड़-चेतना एक दूसरे के पूरक माने गये हैं।

भारतीय संस्कृति में कल्पवृक्ष एवं कामधेनु की अवधारणा का विकास हुआ। भारतीय वाङ्मय में प्रकृति के अवलंबों के देवत्व संबंधी अनेक दृष्टांत मिलते हैं जैसे–गाय, पर्वत, वनों को देवता कहा गया है, साथ ही कलाकृतियों पर प्रकृति के विविध रूपों का उत्कीर्णण है। सिन्धु सभ्यता से मिली मुहरों, आहत मुद्राओं पर सूर्य, पर्वत, नदी, वनस्पति, पशु जगत, सरीसृप का अंकन प्राप्त होता है, तो दूसरी ओर, श्रमण परम्परा में मानुषी वृद्धों की अवधारणा विकसित हुई जिसमें प्रत्येक वृद्ध को किसी विशिष्ट वृक्ष के साथ सम्बन्ध किया गया है। उल्लेख्य है कि अनेक वृक्षों को देवताओं का अधिवास बताया गया, जिसने लोक-मानस को अत्यधिक प्रभावित किया है। यथा–नीम में सूर्य का, अश्वत्थ (पीपल) में वासुदेव का, स्थाणु में शिव एवं यक्षणी का, एवं बेल में श्री (लक्ष्मी) का। यह वृक्षों के माहात्म्य के साथ ही इनके संरक्षण, वर्धन का एक ठोस आधार था यह भारतीय मनीषियों की दूर-दृष्टि तथा पर्यावरणीय चेतना का ही प्रमाण है। भारतीय कला में शालभंजिकाओं के अंकन में जो लास्य, मनोहरता, रमणीयता दिखाई जाती है, वह पृष्ठभूमि में प्रकृति-प्रेम के कारण ही है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का अद्भुत वर्णन प्राप्त होता है। वृक्षों, पशुओं से तादात्म्य स्थापित करती, प्रकृति से श्रृंगार करती कालिदास की शकुन्तला प्रकृति की ही संतान प्रतीत होती है।

पर्यावरण क्षरण की समस्या से निपटने के लिए विलासी और भोगवादी वृत्तियों पर अंकुश लगाना होगा। हमें प्रकृति की ओर लौटकर ही अपना बचाव करना होगा। जूट बैगों का प्रयोग पॉलिथीन की जगह करें। यह कदम पर्यावरण को बचाने में सहायक होगा। वृक्षारोपण पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए तथा इसके लिए लोगों को प्रेरित भी किया जाना चाहिए। वनों की कटान, वृक्षों की कटान का यथासम्भव विरोध किया जाना चाहिए। लोक पर्वों में वृक्ष पूजन की परंपरा है। इसके बावजूद वनाच्छादित क्षेत्र में कमी यह इंगित करती है कि कहीं-न-कहीं हम उन दायित्वों से पीछे हटे हैं, जो पर्यावरण के संरक्षण के लिए आवश्यक है। विकास के सामयिक आत्मकेन्द्रित मॉडल के कारण हमारा समकालीन व्यवहार पर्यावरण के प्रति मित्रवत् नहीं रहा। सतत् विकास की जैसी पहल होनी चाहिए थी वैसी नही हुई, मानव सभ्यता के विकास की कहानी, वास्तव में प्रकृति अथवा पर्यावरण के अंधाधुंध एवं अविवेकपूर्ण दोहन की कहानी है।

भारत में हरित जीडीपी के जरिये संपोषणीय विकास की तरफ बढ़ना थोड़ा कठिन जरूर है, किन्तु असंभव नही है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है तथा विश्व में ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में यह चौथे पायदान पर है। वह अपनी अर्थव्यवस्था की औसत वृद्धि को बढ़ाना भी चाहता है। ये बातें ग्रीन जीडीपी के मार्ग में बाधक हैं। बढ़ते हुए पर्यावरणीय संकटों को देखते हुए वैश्विक समुदाय की यह साझा जिम्मेदारी बनती है कि वह पर्यावरण को बचाने के लिए आगे आयें। पर्यावरण संरक्षण से मानवता की रक्षा होगी और भावी पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित रहेगा। इसके लिए दुनिया के देशों को अपने निजी हितों का परित्याग कर हरित अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ना होगा, और इसमें निवेश को भी बढ़ाना होगा। दुनिया को हरा-भरा रखकर ही उसे संपोषणीय विकास के रास्ते पर आगे ले जाया जा सकता है। यही मानवता के उत्थान का एकमात्र रास्ता है।

हमारी संस्कृति में प्रकृति एवं उसके विभिन्न अवयवों को पूजा का विषय माना गया हैं इसीलिए उसे निर्दोष बनाये रखने के लिए स्वयं को विषय माना गया है तथा स्वयं को अनुशासित बनाए रखा लेकिन जब से पश्चिम के विनाशकारी विकास के प्रतिमान को हमने चुना है, अनेक प्राकृतिक विपदाओं से आए दिन साक्षात्कार हो रहा है जो हमारी मानसिक दासता का प्रतिफल हैं कि हमें किसी भी दूसरी संस्कृतियों के विचार एवं प्रतिमान को अपनी विचार प्रणाली में पचाकर एवं अपनी संस्कृति के अनुकूल होने पर ही ग्रहण करना चाहिए। पश्चिमी विकास की अवधारणा ने जहाँ पारम्परिक समझ को कुन्द कर दिया है, वहीं हमारे पर्यावरण को भी पर्याप्त क्षति पहुँचाई है। प्रकृति के आन्तरिक नियमों का ज्ञान मनुष्य को अवश्य उस स्थिति तक पहुँचा सकता है जहाँ मनुष्य प्रकृति को अपने अनुशासन में ला सके लेकिन मनुष्य प्रकृति को तभी अनुशासित कर सकेगा जब यह प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए तत्पर हो।

I UnHk

1. प्रो0 श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2018, पृ0–94
2. Iain McLean and Alistair McMillan, Oxford Concise Dictionary, of Poliltics, Indian Edition, Oxford University Press, New Delhi, 2007, P. 173.
3. Ibid, P. 161
4. Graham Evans and Jeffrey Newnham The Penguin Dictionary of International Relations, Penguin Books, London, 1998, P. 149.
5. C.C. Park, 1980 : Ecology and Environmental Management, London.
6. अथर्ववेद : 12/1/11, 17
7. अथर्ववेद : 12/1/12
8. ऋग्वेद, नदी सूक्त–10/75/5
9. योजना, जून 2013, पृ0–57
10. प्रो0 जगदीश सिंह, पर्यावरण एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाश, गोरखपुर, 2005, पृ0–165
11. योजना, दिसम्बर 2015, पृ0–54–55
12. डॉ0 चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ0 एम0एस0 सिसोदिया, पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं विकास, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2015, पृ0–220
13. स्टर्न एन0 द इकनॉमिक क्लाइमेट चेंज : द स्टर्न रिव्यू, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007.
14. एन0डी0 अरोड़ा, राजनीतिक विज्ञान, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ0–38.8
15. पुष्पेश पंत ''21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'' मैकग्रा हिल एजुकेशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0–VIII–47

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण–मीमांसा

कौशल किशोर मिश्र

Ikjk'k यजुर्वेद ने पर्यावरण की परिभाषा दी है ''परितः आवृणोतिति पर्यावरणम्'', इसका अर्थ है जो चारों ओर से आवृत करता है, वह पर्यावरण ही है। 'परि' और 'आ' उपसर्गपूर्वक 'वृञ् आवरणे' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय (भाव में) होकर बना, वह 'पर्यावरण' शब्द संस्कृत में पर्यावृत्ति और परिवेष्टन अर्थ में प्रयुक्त है। सामान्य अर्थ में पर्यावरण से तात्पर्य उस भौतिक परिवेश से है जिसमें समस्त जीव जगत् निवास करता है, अर्थात् हमारे चतुर्दिक जो कुछ भी व्याप्त है, वह सभी पर्यावरण है। स्थावर-जंगम, आदि के अलावा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में चारों तरफ से आच्छादित करने वाला पदार्थ या तत्व समूह पर्यावरण है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्राणी मात्र का अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर करता है। वेद की यह परिभाषा आधुनिक पर्यावरण की परिभाषा से व्यापक है। जब हम प्राणी की बात करते हैं तो इसका अर्थ केवल मनुष्य नहीं होता। प्राणियों के संसार में मनुष्य एक भाग बस है। पर्यावरण की संरक्षा केवल मनुष्य के लिये नहीं होनी चाहिये सभी जीवों के लिये होनी चाहिये। पर्यावरण सम्पूर्ण है। वैश्विक है। पर्यावरण पर विचार करते समय प्रकृति को भी समझना आवश्यक है। प्रकृति के घटक तत्व ही पर्यावरण का निर्माण करते हैं। प्रकृति के घटक तत्व हैं– पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि। यही पाँचों तत्व प्रकृति का निर्माण करते हैं। इनमें से एक का भी रूप बिगड़ जाये तो प्रकृति का रूप बिगड़ जाता है। यह तत्व मानव शरीर का भी निर्माण करते हैं। तुलसी दास जी ने स्पष्ट कहा है– ''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंचरचित यह अधम शरीरा'', अर्थात जो ब्रह्माण्ड में हैं, वही शरीर में है। ब्रह्माण्ड बिगड़ेगा तो शरीर बिगड़ेगा। ब्रह्माण्ड और शरीर का सम्बन्ध अन्यतम है। प्राणी मात्र का अस्तित्व व उसका विकास सबकुछ उसके पर्यावरण पर ही निर्भर करता है, क्योंकि पर्यावरण के घटक तत्व पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि यही प्रकृति का निर्माण करते हैं, इन्हीं पंच तत्वों से प्राणी मात्र का निर्माण होता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति ने मानव सहित सभी प्राणियों के शरीर के साथ प्रकृति को जोड़ने की बात की है। लगातार यह प्रार्थना की है कि उसका संरक्षण और संवर्धन हो।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति ने केवल बाह्य पर्यावरण की बात नहीं की, आन्तरिक पर्यावरण की भी चर्चा की। वर्तमान भारत में जिस प्रकार, बलात्कार, आत्महत्या, हिंसा, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार बढ़ने के संकेत मिल रहें हैं, उसका कारण है कि देश का बाह्य और आन्तरिक पर्यावरण दोषपूर्ण हो गया है क्योंकि पंचभूतों में व्याप्त पर्यावरण पर ही समस्त व्यष्टि और समष्टि संसार अथवा मानव शरीर एवं सम्पूर्ण विश्व आधारित है। इन पंचभूतों के संतुलित सामंजस्य पर ही सम्पूर्ण जीवन निर्भर है। वास्तव में सम्पूर्ण पर्यावरण 'पञ्चसत्तात्मक' है। इसमें वायु को पंचभूतों में सर्वोपरि विश्व पर्यावरण का आधार स्वीकार किया गया है। वायु ऊर्जा का स्रोत है। वायु बिना जीवन कैसा? वृक्ष कैसा? नदी कैसी? पर्यावरण में प्रवाहमान वायु अन्य चार तत्वों को प्रवाहमान करती है। आकाश तत्व को सभी तत्वों को संवलित वाला कहा गया। जल को मानव जीवन का मुख्य आधार कहा गया। अग्नि को पंचमहाभूतों में अन्यतम तथा सर्वातिशयी कहा गया। पृथ्वी को मातृवात्सल्यमय कहा गया। इन सभी तत्वों के पर्यावरणीय वैशिष्ट्य को भारतीय संस्कृति ने उद्घाटित किया है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय वैशिष्ट्य को उद्घाटित कर पर्यावरण संरक्षण का संकल्प लिया गया है। वेद पर्यावरण शब्द का उल्लेख नहीं करता, किन्तु उसके समस्त घटक तत्वों का पृथकतः अथवा सम्मिलित उल्लेख करता है।

चारों वेदों में से यजुर्वेद कर्मकाण्ड परक यज्ञ प्रधान वेद माना गया है। यहाँ यज्ञ का प्रधान रूपेण अंगीकृत करते हुये वस्तुतः पर्यावरण के प्रत्येक घटक तत्व की स्वच्छता, शुद्धता एवं पवित्रता की रक्षा का संकल्प लिया गया है। यजुर्वेद में पर्यावरण के पाँचों घटकों का स्वरूप तथा उनका पर्यावर्णयीय सौष्ठव घटकों का स्वरूप तथा उनका पर्यावरणीय सौष्ठव वर्णित किया गया है। यज्ञ विधि द्वारा उसके संरक्षण का भी विधान किया गया है। पृथ्वी तत्व का वर्णन करते हुये यजुर्वेद में उसे बल देने वाली, कल्याण करने वाली तथा आनन्द देने वाली कहा गया है। बैठने के लिये स्थान देने वाली यह पृथ्वी अन्न से मुक्त तथा पेय से भी युक्त हैः–

'सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चाम्युर्जस्यनी चासि पयस्वती च।'

एक अन्य स्थल पर पृथ्वी को सुखों को देने वाली, विश्व को पुष्ट करने वाली तथा सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करने वाली कहा गया हैः–

''भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री''।।

इस मंत्र के माध्यम से हमें पृथ्वी को संचालित करने का बल मिलता है, वह हमें सबकुछ देती है, तो हमें भी उसकी सुरक्षा करनी चाहिये, जिसमें हम सभी प्राणियों का सुरक्षा कवच बना रहे। पृथ्वी की सुरक्षा, ही पर्यावरण की सुरक्षा है। जल, जंगल, जमीन की पवित्रता बनी रहे यह अनिवार्य है।

जल तत्व की लोकोपकारता प्रदर्शित करते हुये सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में बार-बार प्रार्थना की गई है। यजुर्वेद में कहा गया है कि दिव्य जल सबका कल्याण करने वाला, शान्ति व सुख देने वाला तथा निरोगी करने वाला हो तथा औषधियाँ, वनस्पति तथा धान्य हमारी रक्षा करने वाले हों–

'इमा आपः भामु में सन्तु देवीरोशधे त्रायस्व।'

जल दिव्य शक्ति है। जल के बिना कोई जीवन नहीं। जल के अभाव में पर्यावरण का अस्तित्व संकटग्रस्त है। जल का स्रोत पृथ्वी और आकाश है। नदियाँ, तालाब, वृक्ष जल का संरक्षण करते हैं। तालाब, नदियाँ, वृक्ष पृथ्वी का सौन्दर्य हैं। तालाब पाट दिये जायें, नदियाँ सूख जायें, वृक्ष काट दिये जायें तो जीवन कैसे सम्भव होगा? जल को माता कहा गया है। माता पवित्र करने वाली होती है। माता ही शरीर और आत्मा को पवित्र करती है। माता ही सभी दोषों को दूर करती है–

''आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु धृतेन नो धृतस्व पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति।''

'आपः मातरः' जल माताओं के समान हितकारी है। पवित्र है। शुद्ध है। जल की पवित्रता से ही सम्पूर्ण प्रकृति पवित्र होती है। इसमें किसी प्रकार का प्रदूषण हमारे मन बुद्धि शरीर और चरित्र को भी प्रदूषित कर देता है।

भारतीय परम्परा में संकल्प की परम्परा है। हम प्रतिदिन सांस्कृतिक एकता और पर्यावरण संरक्षा का संकल्प लेते हैं–

हरिः ओम् तत्सदद्य श्री मद् भगवतो महापुरूषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्री ब्रह्मणों ऽह्नें द्वितीय प्रहरार्द्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमेकलियुगे कलि प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भरत खण्डे, भारते वर्षे कुमारिका खण्डे आर्यावर्तेक भारत खण्डे, भारते वर्षे कुमारिका खण्डे आर्यावर्तेक देशे अविमुक्त वाराणसी क्षेत्रे, आनन्द बने भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे विक्रम शके बौद्धावतारे अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुक वासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुकं शर्माहं ममोपात दुरितः क्षय द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थे प्रातः सन्ध्योपासनं करिष्ये''।

यह संन्ध्योपासना का संकल्प है। सन्ध्योपासना कोई धार्मिक कृत्य, धार्मिक कृत्य मात्र नहीं है। यह जल संरक्षण की प्रक्रिया है। इस संकल्प का अर्थ है। हरि ओम ही सत्य है। आज दिन महापुरूष भगवान विष्णु की आज्ञा से प्रवर्तमान, ब्रह्मा जी की आयु के प्रथम दिन के दूसरे प्रहरार्ध में, श्वेत वाराहकल्प में, वैवस्वत मन्वन्तर में, 28वें कलियुग के प्रथम चरण में, जम्बूद्वीप में, भरतखण्ड में, भारत वर्ष में, कुमारिका खण्ड में, आर्यावर्त के एक भाग में, अविमुक्त देव के वाराणसी क्षेत्र में, आनन्द वन में भागीरथी के पश्चिम तट पर, विक्रम संवत् में, अमुक तिथि में, अमुक दिन, अमुक नाम का मैं अपने पापाचरण का क्षय करते हुये भगवान की प्रीति के लिये सन्ध्योपासन

करूँगा। इस संकल्प का एक वृहत रूप भी है जिसकी रचना यादवों के मंत्री हेमाद्रि ने की। उसमें भारतवर्ष का भौगोलिक, पर्यावरणीक वर्णन, पुण्य पुरी, जनपद और नदियाँ की वृहद् सूची भी सम्मिलित है। यह संकल्प मात्र नहीं है। इसमें नदियों का वर्णन पर्यावरण की दृष्टि से किया गया है। संध्योपासना नदी में जल की उपस्थिति से होता है। यदि जल अपवित्र हो, तो सन्ध्योंपासना का क्या अर्थ? नदियों में संन्ध्योपासना का अर्थ है कि सन्ध्योपासना के आधार पर नदियों की संरक्षा करने की दृष्टि का विकास हो। संकल्प में नदियों के उल्लेख का अर्थ है कि नदियाँ जल की स्रोत है, उनकी पवित्रता बनाये रखना हमारा संकल्प है। अर्थात पर्यावरण संरक्षा का प्रश्न भारतीय संस्कृति में धार्मिक एवं आध्यात्मिक रूप में जुड़ा है। सन्ध्योपासना की परम्परा आज कमजोर है। तीर्थों में नदियों के किनारे तो सन्ध्योपासना की परम्परा जीवित है, अभी। नदियाँ को 'टूरिस्ट प्लेस' बनाने से नदियों की पवित्रता भंग होती जा रही है। जब तक नदियाँ संस्कृति, संस्कार और धार्मिक अनुष्ठानों का केन्द्र थीं, तब तक नदियाँ पूरी तरह पवित्र थीं।

पंचतत्वों में पृथ्वी की मान्यता बहुत है। पृथ्वी से ही जल है। जल और पृथ्वी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पर्यावरण की समस्त समस्यायें पृथ्वी पर ही उत्पन्न होतीं हैं। भारतीय मनीषियों ने पर्यावरण के सन्दर्भ में पृथ्वी को संरक्षित करने पर विशेष जोर दिया। पृथ्वी को मातृभूमि का स्थूल रूप माना। पृथ्वी यदि माता है तो कोई अपनी माता को कैसे प्रदूषित करना चाहेगा? पर्यावरण की शुद्धता भूमि और जन में ऐक्य प्रदान करती है। इसलिये कहा गया कि 'पृथ्वी हमारी माता है, हम सब उसके पुत्र है''। यह पर्यावरण संरक्षण का सबसे बड़ा मंत्र है। पर्यावरण की समस्या पृथ्वी पर ही उत्पन्न होती है। जल, पावक, गगन, समीर इन चार तत्वों को प्रदूषित करने का कारक पृथ्वी माता के पुत्र ही हैं।' पुत्र कुपुत्र हो सकता है पर माता कुमाता नहीं हो सकती है'' यह दृष्टान्त पर्यावरण की सुरक्षा के सन्दर्भ में अधिक सटीक है। पृथ्वी पर्यावरण नहीं दूषित करती, पुत्र दूषित करते हैं। इसलिये पृथ्वी कुमाता नहीं है, पुत्र कुपुत्र है, जो पृथ्वी माता की ही पवित्रता भंग करने में तुले हुए हैं। जल, पावक, गगन, समीर पृथ्वी की बहनें है। यदि पृथ्वी के पर्यावरण की संरक्षा होगी तो जल, पावक, गगन, समीर के पर्यावरण की संरक्षा होगी। भारतीय संस्कृति में कहा गया कि पृथ्वी और उसके जन के बीच माता और पुत्र का सम्बन्ध नित्य और देवी धरातल पर होता है। फलतः पर्यावरण संरक्षण नित्य और दैवी कार्य है। पृथ्वी का मूल अनन्त पोषक रस है। पृथ्वी माता के प्रति कर्तव्यपरायणता के भाव के कारण, कृतज्ञता के भाव के कारण पर्यावरण संरक्षित रहता है। पृथ्वी पर बसने वाले जनों में जब कर्तव्य पारायणता का भाव विखंडित होता है तो पर्यावरण का संकट खड़ा होता है। यदि *'मातृभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यां'* की अनुभूति सुदृढ़ हो जाये, तो पर्यावरण संकट समाप्त हो सकता है। लेकिन यह अनुभूति कैसे दृढ़ हो? यह विकट समस्या है। स्वार्थपूर्ण

भौतिकवादी मानसिकता ही इस अनुभूति को सुदृढ़ करने में सर्वाधिक बाधा उत्पन्न करती है।

पृथ्वी सूक्त में जिस मातृभूमि की भावना का वर्णन किया गया है, उसमें पर्यावरण संरक्षण का सिद्धान्त भी निहित है। मातृभूमि के भाव में भूमि, राष्ट्रीय जन, भौतिक स्थिति और पर्यावरण की पवित्रता का आधार निहित है। भूमि 'कामदुधा' है। 'कामदुधा' भूमि तभी बनी रहेगी जब वह दोष मुक्त होगी। 'कामदुधा' का मतलब नियंत्रित रूप से भूमि का दोहन। जैसे एक बच्चा अपनी भूख मिटाने के लिए माँ का दूध पीता है। माँ अपना दूध उसे पिलाती है बड़े गर्व से, बड़े स्वाभिमान से, खुशी से, स्नेह से। बच्चा माँ का उतना ही दूध पीता है, जितने में उसकी भूख या क्षुधा शान्त हो जाये। उसमें माँ का दूध और स्तन दोनों संरक्षित रहता है, बच्चे की अगली पीढ़ी के लिये। उसी तरह जन की समस्त कामनाओं का दोहन भूमि से इस तरह होना चाहिये जैसे अडिग भाव से माँ अपने दूध की धाराओं को करती है। जैसे धेनु दूध की धाराओं से पेन्हाती है। पृथ्वी के पर्यावरण का दोहन माता या धेनु के दुग्ध की तरह होनी चाहिये। पृथ्वी की भौतिक दुग्ध के पीछे एक अमृत है, जो जन को अमरता प्रदान करता है। अमरता तभी सम्भव है, जब पर्यावरण की पवित्रता बनी रहे। पर्यावरण क्षय का प्रमुख कारण स्वार्थ और निजी पोषण है। स्वार्थ और निजी पोषण से ऊपर उठकर पृथ्वी के पुत्र अर्थात् जन अपनी अमरता पहचानता है, तभी वह पर्यावरण की शुचिता को पहचान पाता है अमरता का आनन्द ले पाता हो। पृथ्वी अर्थात् मातृभूमि का पोषण शक्ति अनन्त है। वह 'विश्वम्भरा' है। किसी व्यक्ति या समुदाय या जाति या धर्म के लिये मातृभूमि वरदान नहीं है। पर्यावरण मातृभूमि का आवरण है। मातृभूमि का दुग्ध या संसाधन समस्त पुत्रों के लिये है, वह ''विश्ववायम्'' है। सबका भरण-पोषण करने वाली है। भरण-पोषण के नाम पर पुत्रों को पृथ्वी का शोषण कर उसके पर्यावरण को नष्ट करने का अधिकार नहीं है। पृथ्वी के पर्यावरण के वरदानों के समान वितरण में जब रूकावट पड़ती है तब इतिहास की सिमटी हुई शक्तियाँ अपने प्रचंड वेग से उस रूकावट को हटा देती हैं, इसके लिये फिर चाहे कितना भी मूल्य चुकाना पड़े। पृथ्वी अपने पर्यावरण को स्वयं ठीक करती है, उसके लिये चाहे जो भी हो जाये। पृथ्वी का संदेश है कि पर्यावरण को सदैव संतुलित रखिये।

पृथ्वी का स्थूल रूप अनेक प्रकार के आकर्षण की वस्तु है। भौतिक रूपों में जो श्री या सुन्दरता है, उससे प्रत्येक देश के जन को गर्व होता है। 'श्री' ही पर्यावरण है। पर्यावरण की सुन्दरता है। सृष्टि में जो सौन्दर्य है वह उसकी निधि है। सृष्टि का सौन्दर्य कैसे रहेगा? जब पर्यावरण पवित्र होगा, सन्तुलित होगा तो सृष्टि की निधि अर्थात् सौन्दर्य बना रहेगा। पृथ्वी प्रत्येक दिशा में रमणीयता से भरी पड़ी है– *''आशां आशां रण्यां''*। पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ने से रमणीयता तो नष्ट होती है।

पर्यावरण में पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सभी आते हैं। पर्वतों के उष्णीय और समुद्रों की मेखला से अलंकृत भूमि पुष्कल सौन्दर्य की प्रतिभा है। सौन्दर्य का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है। पृथ्वी, जन और पर्यावरण का अनूठा सम्बन्ध है। पर्यावरण युक्त प्राकृतिक शोभा पृथ्वी के शरीर का ऐसा लावण्य है जो युगों तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी-पृथ्वी और जन अर्थात व्यक्ति के अस्तित्व को संरक्षित रखता है। अथर्ववेद में प्रार्थना की गयी है कि पृथ्वी के सौन्दर्य का दर्शन करने के लिये सौ वर्षों तक हमारे नेत्रों की ज्योति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे और हमें सूर्य का अनुराग प्राप्त हो, (पृथ्वी सूक्त 33)। इसका निहितार्थ है कि व्यक्ति या जन की आयु पर्यावरण प्रदूषण से घटती है, पर्यावरण की शुद्धता से बढ़ती है।

वृक्ष पृथ्वी का श्रृंगार है। वृक्ष ही पर्यावरण का आधार है। वृक्ष नहीं तो न जल है, न, पावक है, न गगन का अस्तित्व न हवा है। इसलिये भारतीय संस्कृति में वृक्षारोपण को महत्व दिया गया है। वृक्षारोपण के सन्दर्भ में बाराह पुराण कहता है कि– जो व्यक्ति पीपल, नीम या बरगद का एक वृक्ष, अनार या नारंगी के दो, आम के पाँच, कटहल के तीन एवं लताओं के दस वृक्ष लगाता है, वह कभी नरकीय पीड़ा नहीं भोगता न ही नरक यात्रा करता है। मतलब इन वृक्षों के लगाने और उसका पालन पोषण करने से व्यक्ति रोग, व्याधि से मुक्त रहता है। भारतीय घरों में जो पूजा पद्धति है, उसमें जो कर्मकाण्ड है, वह हमें प्रकृति प्रेम करने और पर्यावरण को संरक्षित करने का सन्देश देते हैं। इस सन्दर्भ में एक महत्व पूर्ण मंत्र है– *''ओम् द्यौ शान्तिरन्तरक्षि, ऊँ शान्तिः, पृथिवि शान्तिरापः, शान्तिरोषधय शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्म शान्ति, सर्व ऊँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्ति, सा मा शान्तिरेषि।। ऊँ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।। सर्वारिष्टसुशान्तिर्भवतु''।*

उक्त मंत्र द्वारा जल का अभिसंचन कर्मकाण्ड का आदि और अन्त करते हैं, जिसमें देव शक्तियों से प्रार्थना की जाती है कि यह पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष सब शान्त हों। वनस्पतियाँ और औषधियाँ भी शान्त हों शान्ति चित्त व्यक्ति ही किसी समस्या का समाधान अच्छी तरह कर सकता है। इस मंत्र का गम्भीर निहितार्थ है। पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष कब शान्त होंगे? उनकी अशान्ति का क्या असर होगा? वनस्पति और औषधियों को क्यों शान्त रहने की बात की गई? जब मनुष्य प्रकृति के नियमों से छेड़-छाड़ नहीं करेगा, तभी सब शान्त रहेगा। पृथ्वी का अन्धाधुन्ध दोहन स्वार्थ के लिये करेंगे तो कैसे पृथ्वी शान्त रहेगी? भूकम्प का प्रवाह बढ़ेगा ही। नदियों के अनवरत प्रवाह को बाँधेगें तो बाँढ़ आयेगी ही? नदियों का जल प्रवाह रूकेगा तो प्यासे लोग मरेंगे ही। नदियाँ प्रदूषित होगी औद्योगिक कचरे से तो प्राणी संकट में पड़ेगा ही। वृक्ष लगातार काटे जायेंगे, नये वृक्ष लगाकर उसका लालन-पालन नहीं होगा, तो जीवन संकटग्रस्त होगा ही। औषधियों को संरक्षित नहीं करेंगे तो रोग-व्याधि बढ़ेगी ही। अन्तरिक्ष प्रतिस्पर्धा कायम रहेगी तो पृथ्वी पर बसने वाले राष्ट्र-राज्यों का अस्तित्व संकटग्रस्त होगा ही।

कुल मिलाकर यह मंत्र पर्यावरण और प्राकृतिक नियमों के संरक्षण की याद मनुष्य को दिलाता है। संकट यह है कि हम प्रतिदिन मंत्र धार्मिक दृष्टि से पढ़ते हैं, लेकिन उसकी व्यावहारिकता और संदेश को ग्रहण न कर अपने स्वार्थ में उसके विपरीत कार्य करते हैं। वर्तमान में पर्यावरण संकट का यही मूल कारण है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति यानि आयुर्वेद मुख्यतः वानस्पतिक चिकित्सा से जुड़ा हुआ है। शान्त पृथ्वी, जल, आकाश एवं वनस्पतियाँ ही एक सुखी समृद्ध खुशहाल जीवन दे सकती हैं और उद्विग्नता का विनाश कर सकती हैं। जब भूकम्प आता है, समुद्र अपनी सीमा लांघ कर सूनामी का रूप ले लेता है तो पृथ्वी पर उत्पन्न वनौषधियाँ कैसे उद्विग्नता से अछूती रह सकती है? यदि हमें स्वस्थ खुशहाल जीवन जीना है तो हमारे वेद, भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्मग्रन्थ में उल्लिखित विज्ञान सम्मत बिन्दुओं का विश्लेषण समय की आवश्यकता है, उसका अक्षरतः क्रियान्वयन सरकारों का दायित्व है। यदि हम न्यूटन के गति के तृतीय नियम का उल्लेख करें तो समझ आयेगा कि क्यों पर्यावरण शान्ति की आवश्यकता है। इस नियम के अनुसार हर क्रिया के बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है और रसायन शास्त्र की उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं का साम्यावस्था का सिद्धान्त पूर्णतः हमारे जैवमण्डल पर भी लागू होता है। उदाहरणस्वरूप-रासायनिक उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$H_2 + I_2 + \frac{K_2}{K_2} + 2HI$$

हाइड्रोजन + आयोडीन ⇆ हाइड्रोजन आयोडाइड, उक्त उदाहरण में हाइड्रोजन और आयोडीन क्रिया करके हाइड्रोजन आयोडाइड बनाते है। संकेत ⇆ उत्क्रमणीय अभिक्रिया को दर्शाता है। पहले हाइड्रोजन और आयोडीन क्रिया करके हाइड्रोजन आयोडाइड बनाते है। और पुनः कुछ अन्तराल के बाद जब प्रचुर मात्रा में हाइड्रोजन आयोडाइड बन जाता है तो वह विघटित होकर पुनः हाइड्रोजन और आयोडीन देता है। साम्यावस्था स्थापित होने पर हाइड्रोजन और आयोडीन के क्रिया का दर हाइड्रोजन आयोडाइड के विघटन की दर के बराबर हो जाती है। अग्र अभिक्रिया की दर (हाइड्रोजन और आयोडीन की क्रिया कराने की दर) = K_1 [H_2], [I_2].

और विपरीत अभिक्रिया की दर (हाइड्रोजन आयोडाइड के विघटन की दर) = K_2 [H_1], [HI].

यहाँ पर K_1 और K_2 अग्र और विपरीत अभिक्रिया का वेग स्थिरांक है और [H_2], [I_2], [H_1], हाइड्रोजन, आयोडीन और हाइड्रोजन आयोडाइड के सान्द्रण को प्रकट करता है।

साम्यावस्था में,

$K_1[H_2]\ [I_2] = K_2[HI]^2$

या

$$\frac{K_1}{K_2} = \frac{[HI]^2}{[H_2][I_2]}$$

या

$$K = \frac{K_1}{K_2} = \frac{[HI]^2}{[H_2][I_2]}$$

यहाँ पर $K = \frac{K_1}{K_2}$ साम्य स्थिरांक के नाम से जाना जाता है।

साम्यावस्था में विपरीत क्रिया के वेग एवं मात्रा में ही समानता नहीं होती, बल्कि उसके स्वरूप और प्रतिफल में भी एक रूपता होती है। अच्छे कार्य का फल अच्छा और बुरे कार्य का फल बुरा होता है। कहने को तो यह सिद्धान्त पुराना है। परन्तु इसके पीछे का तथ्य वैज्ञानिक है। यह सिद्धान्त सृष्टि के कण-कण में कार्य कर रहा है। अन्न का बीज पृथ्वी में पड़कर असंख्य बीजों में फलित होता है। अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ भी अपने अनुरूप प्रतिक्रियायें उत्पन्न करती हैं। निस्सन्देह प्रकृति के असंतुलन और पर्यावरण प्रदूषण का दोषी मनुष्य स्वयं है। वातावरण की विषाक्त के परिशोधन में भारतीय दर्शन में वर्णित यज्ञीय परम्परा को अपनाने पर बल दिया गया है। यज्ञ देवता वातावरण को परिशोधित कर संतुलित पर्यावरण मानवीय सुख समृद्धि का आधार प्रस्तुत है। अगर हम प्रकृति का दोहन वृक्ष वाटिका का या जल का अत्यधिक दुरुपयोग करते रहेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि हम असहाय गर्मी का संकट झेलेंगे और झेल रहे हैं। कहीं अत्यधिक वर्षा कहीं अत्यधिक सूखा कहीं बाढ़ और कहीं भूकम्प से मानव का अस्तित्व खतरे में रहेगा।

भारतीय संस्कृति में वेद यह संदेश देता है कि यदि मनुष्य वायु, जल, भूमि, प्रकृति के घटकों को स्वच्छ रखता है तो पर्यावरण स्वयं से हमारे हितकारी और शुद्ध होगा। वेद हमारा मार्ग प्रशस्त करता है कि किस प्रकार हमें प्रकृति के तत्वों का उपयोग लेना है और कैसे इनकी रक्षा करती है। अथर्ववेद कहता है–

त्रीणी छन्दासि कवयो वियेतिरे
पुरूरूपं दर्शनं विश्व चक्षणम्।
आपो वाता ओशधयः
तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि।।

साधारणतः समझा जाता है कि जल वायु ही पर्यावरण के घटक हैं किन्तु इस मंत्र ने स्पष्ट किया है कि औषधियाँ भी महत्वपूर्ण घटक हैं।

वेदों में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन (Ozone) की परत का उल्लेख आया है। ऋग्वेद में ओज़ोन की परत के लिये 'महत् उल्व' शब्द आया है तथा उसे स्थविर अर्थात स्थूल अथवा मोटी परत कहा गया है। उल्व शब्द गर्भस्थ शिशु के उपर ढकी

हुई झिल्ली (Membrane) के लिये आता है। यहाँ पर पृथ्वी को एक गर्भस्थ शिशु मानते हुये उसकी रक्षा के लिये विद्यमान ओज़ोन की परत को महान् और स्थूल उल्व कहा गया है। मंत्रों के द्वारा स्पष्ट पता चलता है कि ओज़ोन की परत पृथ्वी की रक्षा करती है। इसको हानि पहुँचाना उसी प्रकार संकटकारी है, जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली से छेड़छाड़ करना–

''महत् तदुल्वं स्थविरे तदासीद्, येनाविश्टितः प्रविवेशिशायः। तस्योत जायमानस्य–उल्व आसीद् हिरण्यमः''।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य पर्यावरण संरक्षण के प्रति पूर्ण सतर्क रहे हैं। हमने भारतीय परम्परा पर शोध करना, शिक्षण, प्रशिक्षण में उसे व्यावहारित करना, उसकों वैज्ञानिक मानना छोड़ दिया, परिणामतः पर्यावरण संकट खड़ा हुआ। उस संकट का उपाय हम अप्राकृतिक ढंग से खोजने लगे। आवश्यकता है भारतीय परम्परा में वर्णित पर्यावरण संरक्षण के उपायों से जन प्रशिक्षण की, भारतीय परम्परा में वर्णित पर्यावरण के उपायों की वैज्ञानिकता सिद्ध करने की। भारतीय परम्परा में वर्णित पर्यावरण संरक्षा के उपाय और दर्शन विश्व मानवता के लिये अनुपम देन है।

I UnHk

1. देखें, यजुर्वेद में पर्यावरण– डॉ0 उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, चौखम्भा, संस्कृत भवन, वाराणसी
2. शुक्ल यजुर्वेद 1/27 पर सातवलेकर भाष्य
3. वैदिक वांगमय विश्लेषण, डॉ. कृष्ण लाल, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
4. वैदिक संहिताओं की विविध विद्यायें, डॉ. कृष्णलाल, जे.पी. पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
5. अथर्ववेद 18/1/17
6. वही, 4/25/1 से 7
7. वही, 4/25/3
8. वही, 4/13/3
9. ऋग्वेद 10/185/1 से 3
10. वही, 10/186/3
11. यजुर्वेद 29/53
12. वही, 30/56
13. पद्मपुराण क्रिया भोग 818 से 10
14. मनु 11/63–66 आदि।

पर्यावरण संरक्षण की वैश्विक जिम्मेवारी और भारत

गाँधीजी राय

lkjka'k वर्तमान सदी में वायुमंडल में कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) की मात्रा निंरतर बढ़ने से भूमंडलीय तापन का संकट भी गहराता जा रहा है। जिस मात्रा में CO_2 का उत्सर्जन हो रहा है, उसी अनुपात से पृथ्वी के तापमान में भी बढ़ोतरी हो रही है। इससे वैज्ञानिकों ने यह संकेत दिया है कि धरती के गरमाने पर आगामी वर्षों में समुद्री जल स्तर में 200 सेमी तक की वृद्धि हो सकती है। iVkxu की रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि इससे जान-माल दोनों की नुकसान होने की संभावना है, क्योंकि vVkdVdk की पिघलती बर्फ इंसानी वजूद के लिए खतरे की घंटी है। ऐसी स्थिति में यदि हम सचेत नहीं हुए तो प्रकृति हमें दूसरा मौका नहीं देने वाली है। वैश्विक तापमान का प्रभाव fodfIr तथा fodkI 'khy सभी राष्ट्रों में समान रूप से पड़ता है। इस दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर एक सकारात्मक Ik> i;kI की आवश्यकता है। इसके लिए 22 अप्रैल 1970 को आयोजित iFoh fnol से लेकर 22 अप्रैल 2018 तक वैश्विक स्तर पर I;Dr jk"V की देखरेख में अनेक सम्मेलन हुए हैं। पर्यावरण संरक्षण से संबंधित 1997 की D;kVks Ifl/k वर्तमान में कार्बन उत्सर्जन पर लागू है। इसकी संपुष्टि ifjI f'k[kj IEeyu (2015) में की जा चुकी है। जलवायु परिर्वतन के आलोक में भारत समेत विश्व के कई इलाकों में भूजल स्तर में तेजी से गिरावट आ रही है जिससे आज f'keyk सहित पूरे देश में जल संकट के चलते स्थिति गंभीर हो गई है। पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत में बने विभिन्न अधिनियमों के बावजूद fo'o LokLF; IxBu द्वारा 2018 में जारी रिपोर्ट में विश्व के सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण से प्रभावित 15 शहरों में 14 भारत में है। fo'o LokLF; IxBu की रिपोर्ट से जाहिर है कि राजस्थान और काश्मीर घाटी के साथ-साथ गंगा के मैदानी इलाकों की जद में हैं, लेकिन भारत के अन्य शहरों में वैश्विक स्तर पर बढ़ा प्रदूषण पर्यावरण संरक्षण में हमारी लापरवाही जाहिर करते हैं। ऐसी भयावह स्थिति में पर्यावरण संरक्षण के लिए बने अधिनियमों का सख्ती

अनुपालन करना हमारी नैतिक जिम्मेवारी है। हजारों वर्षों से जो धरती हम सबका संरक्षण और पोषण करती रही है, आज हम उसके स्वास्थ्य की चिंता करें, क्योकि हमारा भविष्य भी धरती के भविष्य से जुड़ा है। देशांतर्गत दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण तथा कम होते जल देश के लिए एक बड़ी चुनौती है। जल के प्रति लापरवाही को यदि हम नहीं सुधार पाए तो मई 2018 में शिमला में जल संकट को देखते हुए आने वाले दिनों में हम प्यासे मरेंगे। अतः ***ty lp;u*** *के लिए आज हमारी सामूहिक प्रतिबद्धता आवश्यक है। इसके साथ ही,* ***lykfLVd*** *के विरूद्ध राष्ट्रव्यापी अभियान चलाकर बड़े पैमाने पर पर्यावरण को सुरक्षित बनाया जा सकता है।*

भूमिका

आज प्रायः हर महानगर, नगर एवं गाँव प्रदूषण की समस्या से प्रभावित है। वर्तमान सदी में किसी भी औद्योगिक संयंत्र द्वारा प्रदूषण-नियंत्रण मापदंड नहीं अपनाने से भूमि, वायु, जल तथा ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) की मात्रा निरंतर बढ़ने से भूमंडलीय तापन का संकट भी गहराता जा रहा है। जिस मात्रा में CO_2 का उत्सर्जन हो रहा है, उसी अनुपात से पृथ्वी के तापमान में भी बढ़ोतरी हो रही है। आशंका प्रकट की जा रही है कि इन गैसों के अंधाधुंध उत्सर्जन से वायुमंडल के 1,000 भाग में CO_2 की मात्रा सात भाग हो जाएगी, जो फिलहाल तीन भाग के करीब है। इसका दुष्परिणाम होगा कि पृथ्वी का तापमान 21वीं सदी के अंत तक साढ़े तीन डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा। पर्यावरणविदों का मानना है कि इस तापवृद्धि से ग्रीनलैंड और आर्कटिक महासागर की बर्फ पिघलने की गति में तेजी आने से समुद्र का जलस्तर बढ़ जाएगा। वैज्ञानिकों ने यह भी संकेत दिया है कि धरती के गरमाने पर 2025 तक समुद्री जलस्तर में 200 सेमी तक की वृद्धि हो जाएगी। संभव है कि बांग्लादेश और मालदीव जैसे अनेक राष्ट्रों का आस्तित्व ही मिट जाए।

पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती

पर्यावरण संरक्षण आज एक वैश्विक चुनौती है, क्योंकि **iVkxu** की एक रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि इससे जान-माल दोनों की नुकसान होने की संभावना है। **,M;k ek'ky** द्वारा तैयार की गई इस रिपोर्ट में परमाणु चुनौती से वातावरण में अचानक आनेवाले परिवर्तनों से पूरे विश्व में अफरा-तफरी मच सकती है। रिपोर्ट के प्रमुख लेखकों **Mk jMky** व **ihVj LDokVt** के विचार में इन बदलावों पर 'तत्काल प्रभाव से' विचार करना आवश्यक है क्योंकि ऐसा न होने से विश्व के देशों के बीच संघर्ष बढ़ेगा और युद्ध का खतरा निरंतर मंडराने लगेगा।[1] रिपोर्ट में निम्नलिखित भयावह स्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है–

1. ऐसा हो सकता है कि ब्रिटेन में ऐसा ही जाड़ा पड़ने लगे जैसा फिलहाल साइबेरिया में पड़ता है, क्योंकि 2020 तक यूरोप के तापमान में भारी गिरावट आने की संभावना है।
2. नीदरलैंड के एक बड़े हिस्से में ऐसे भयावह तूफान आ सकते हैं जिससे कैलिफोर्निया तक प्रभावित हो।
3. सागरतल के बढ़ते स्तर के कारण जिन लोगों के घर बर्बाद होंगे, वे अमेरिका और यूरोप की ओर रुख करेंगे।
4. वर्ष 2020 तक पेयजल और बिजली की कमी से संघर्षों और युद्धों का सिलसिला भी प्रारंभ हो सकता है।
5. लेखकों का मानना है कि ऐसा कभी भी, किसी समय शुरु हो सकता है।[2]

उपर्युक्त रिपोर्ट के अलावा पर्यावरण से संबंधित **vU; ekeys** भी विचारणीय हैं–

1. विश्व में कृषि योग्य भूमि में अब कोई वृद्धि नहीं हो रही है, उपजाऊ भूमि के एक बड़े भाग की उर्वरता कम हो रही है, चारागाहों के चारे समाप्त हो रहे हैं, मतस्य–भंडार, जलाशयों की जलराशि बड़ी तेजी से घट रही है।
2. संयुक्त राष्ट्र के **fo'o fodkl izfrosnu ¼2006½** के अनुसार, विश्व के विकासशील देशों के एक अरब बीस करोड़ लोगों को पीने के लिए साफ पानी उपलब्ध नहीं होता। 2018 की रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि पानी की किल्लत झेल रहे लोगों की संख्या 2050 तक 5.7 अरब तक पहुँच सकती है।[3]
3. वन जलवायु एवं जल-चक्र को संतुलित रखने में सहयोग करते हैं। वनों की हर रोज हो रही कटाई से लाखों लोग विस्थापित हो रहे हैं।
4. भूमि के ऊपरी वायुमंडल में ओज़ोन परत में छेद हो जाने से पारिस्थितिक तंत्र के साथ-साथ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी खतरा मंडरा रहा है।
5. समुद्र तटीय इलाकों में बढ़ रही लोगों की सघन आबादी से समुद्री पर्यावरण की गुणवत्ता में भारी गिरावट आ रही है।
6. 19 वीं सदी में धरती का औसत तापमान लगभग 0.1 डिग्री की तुलना में 20 वीं सदी में लगभग 0.7 डिग्री बढ़ चुका है। वर्ष 2100 तक धरती का औसत तापमान लगभग दो से छह डिग्री तक बढ़ सकता है।[4]

अंटार्कटिका की पिघलती बर्फ, इंसानी वजूद के लिए खतरे की घंटी–

अंटार्कटिका में पानी के अंदर की बर्फ पिघलने की दर प्रत्येक 20 वर्षों में दोगुनी हो रही है। **^upj ft;kfkbl*** में प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने

बताया है कि समुद्री जल का तापमान बढ़ने के चलते वर्ष 2010 से 2016 तक के बीच दक्षिणी ध्रुव के निकट बर्फ की सतह प्रभावित होने से इस क्षेत्र में करीब 1,463 वर्ग किमी तक बर्फ का आधार सिकुड़ गया है। '**;fuofl Vh vkQ yhM l d ^;d lVj Qkj ikyj vkC tjo'ku ,o ekMfyx***' द्वारा किए गए शोध में दर्शाया गया है कि जलवायु परिवर्तन का असर अंटार्कटिका पर इसके पूर्व आकलनों से कहीं अधिक हुआ है और समुद्र का स्तर संभवतः वैश्विक अनुमान से कहीं ज्यादा बढ़ सकता है।[5] प्रोफेसर **,M;s 'kQM** का कहना है, ''अंटार्कटिका में आधार तल पिघल रहा है। हम इसे देख नहीं सकते, क्योंकि यह समुद्र की सतह से काफी भीतर हो रहा है। इस अध्ययन में करीब 16,000 किमी समुद्रतट को शामिल किया गया है''। **;jkih; Li l ,t lh** के **Øk;k lVs&2** से प्राप्त आंकड़ों द्वारा **vkfdehfM t d fl)kr** के आधार पर बताया गया है कि इस तरह बर्फ पिघलने से समुद्र के स्तर में बड़ा बदलाव होने की आशंका है। इसमें सबसे अधिक गिरावट पश्चिम अंटार्कटिका में देखी गई है जहाँ मौजूद 65 ग्लेशियरों में **vkB** के पिघलने की दर बीते आखिरी हिमयुग के बाद पाँच गुना अधिक तेजी से बढ़ी है। इस संबंध में प्रोफेसर एंड्रयू शेफर्ड कहते हैं ''यही कारण है कि यह लोगों की चिंता का एक बड़ा विषय होना चाहिए।[6]

lenh ty Lrj c<u dk [krjk& अमेरिका के **i;koj.k lqj{kk ,t lh** का आकलन है कि सौ सालों में समुद्री जल स्तर छह से आठ इंच (15 से 20 सेंटीमीटर) बढ़ा है।[7] अंटार्कटिका के **ikbu vkbyS M c** इलाके के दो ग्लेशियर यदि पिघल जायेंगे तो दुनिया के समुद्रों का जल स्तर 11 फीट तक उठ सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि समुद्र के किनारे बसे धरती के सभी शहर डूब जायेंगे। ये ग्लेश्यिर कब तक पिघलेंगे, यह समय के सबसे बड़े सवालों में एक है। इसका आकलन लगाने के लिए वैज्ञानिक 11 हजार साल पूर्व के अंतिम हिमयुग के अध्ययन में लगे हैं। अबतक के सबूत इंगित करते हैं कि उस समय **ikbu vkbyS M c** के ग्लेश्यिर बहुत तेजी से टूटे थे और विश्व भर के तटीय इलाकों में बाढ़ आयी थी। अंटार्कटिका के इस हिस्से के केंद्र की ओर सामुद्रिक सतह गहरी होती जाती है। इसके चलते जब भी कोई नया आइसवर्ग टूटता है तब टूटने की खाई बड़ी होती है। बर्फ के भार को सहना इन खाइयों के लिए असंभव हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि टूटन की प्रक्रिया तेज हो जाती है तो इसे रोका नहीं जा सकता। वैज्ञानिक इसी प्रक्रिया की गति का अनुमान लगाने की कोशिश में जुटे हैं।[8] वैज्ञानिकों के विचार में **VkVu Xyf'k;j** अंटार्कटिका में सबसे तेज तैरनेवाला और सबसे बड़ा ग्लेशियर है।[9] **uklk** की एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2002 से 2016 के बीच अंटार्कटिका में प्रतिवर्ष 125 गीगाटन बर्फ पिघली। इसके परिणामस्वरूप दुनियाभर में समुद्र स्तर सालाना 0.35 मिलीमीटर बढ़ गया है।[10] उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण

से सभी वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि वैश्विक तापन के चलते दोनों ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। 2016 में **uklk** के वैज्ञानिक **ih; l lyl** ने ग्रीनलैंड का दौरा कर जो कुछ देखा, वह भविष्य के लिए बड़े खतरे का संकेत है। ग्रीनलैंड में प्रतिवर्ष करीब 287 बिलियन मीटरिक टन बर्फ पिघल रही है। अमेरिका से प्रकाशित **U;;kdj** ने उनसे बातचीत के आधार पर एक लंबी रिपोर्ट छापी है।[11]

iFoh d vfLrRo ij eMjkrk ladV& संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल–**vkbihlhlh** द्वारा 309 वैज्ञानिकों की समिति से 2014 में जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन आज व्यापक रूप ले चुका है और इसके नतीजें दिखने लगे हैं।[12] ऐसी स्थिति में यदि हम सचेत नहीं हुए तो प्रकृति हमें दूसरा मौका नहीं देने वाली है। वैश्विक तापमान का प्रभाव विकसित तथा विकासशील सभी राष्ट्रों में समान रूप से पड़ता है, लेकिन इसका सर्वाधिक कहर विकासशील देशों को अधिक झेलना पड़ता है, क्योंकि संसाधनों के चलते ग्लोबल वार्मिंग के अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि के थपेड़ों को सहन करने का उनमें सामर्थ्य नहीं होता। **fo'o ekle foKku** संबंधी संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2016 में दुनिया की हवा में कार्बन डाईऑक्साइड का हिस्सा 400 पीपीएम (दस लाख कणों में 400 कण) हो जाएगा। मौजूदा सदी की शुरुआत तक माना जाता था कि 550 पीपीएम कार्बन डाईऑक्साइड वायुमंडल का तापमान दो डिग्री सेल्सियस बढ़ा देगा, जिससे धरती पर विनाशकारी प्राकृतिक घटनाओं की न रोकी जा सकने वाली एक श्रृंखला शुरु हो जाएगी। 2013 से 2014 के बीच इसमें 1.9 पीपीएम की बढ़ोतरी दर्ज की गई थी, जो वर्ष 1990 के दशक की 1.5 पीपीएम औसत वृद्धि से अधिक और पिछले दशक की 2.06 औसत वृद्धि से थोड़ी कम है, लेकिन यह वृद्धि पांच डिग्री सेल्सियस की ओर उन्मुख है। तापमान का यह अंतर भले ही छोटा लगे, लेकिन पिछले हिमयुग और आज के तापमान में मात्र पांच डिग्री सेल्सियस का यह अंतर है।[13] **uklk** के एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने चेतावनी दी है कि यदि ठोस कदम नहीं उठाए गए तो पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के कारण हम भुनकर टोस्ट बन जायेंगे। **xkMMM bLVhV;V vkQ Lil lkblt** के निदेशक **tEl glu** का कहना है, ''दुनिया भर के वातावण में ग्रीन हाउस गैसों के चलते तापमान काफी समय पहले ही खतरनाक स्तर को पार कर चुका है, दुनिया को अब 1988 से पहले के स्तर पर लौटने की जरूरत है। यदि यही सिलसिला रहा तो जलवायु मॉडल के अनुसार CO_2 का उत्सर्जन 2100 में 1990 में उत्सर्जित सात बिलियन टन की जगह 20 बिलियन टन हो जाएगा। इसके साथ ही नई नीतियों के अभाव में CO_2 की मात्रा 2030 तक औद्योगीकरण के पूर्व स्तर से दो गुना हो जाएगी।[14]

भारत पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

भारत में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव स्पष्ट नजर आने लगा है। वर्ष 2015 में हुई

बेमौसम बरसात, बर्फबारी एवं अनेक संक्रामक बीमारियों ने मौसम वैज्ञानिकों को भी चिंतित कर दिया है। 2015 में उत्तरी एवं मध्य भारत में मौसम का मिजाज तमाम पूर्वानुमानों के विपरीत एक नई दिशा में जा रहा है। इसके चलते कहीं बेमौसम बरसात हो रही है तो कहीं भारी बर्फबारी। उदाहरण के तौर पर बेमौसम बरसात और बर्फबारी से खड़ी फसलें तबाह हो रही हैं।[15] ग्लोबल वार्मिंग का प्रत्यक्ष प्रभाव भारत के **lqanjou** क्षेत्र में बहुत पहले ही दिखाई देने लगा था। इसने सुंदरवन के मेग्रोव वनों पर भी अपना प्रभाव डाला है। इसके चलते ही बंगाल की खाड़ी का जल स्तर बढ़ने लगा है, जिसके कारण इस क्षेत्र के कई द्वीप जलसमाधि ले चुके हैं और अन्य दूसरे क्षेत्रों पर भी इसका खतरा मंडराने से पर्यावरण–शरणार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। बदलते मौसम की इस प्रवृत्ति ने देश की कृषि अर्थव्यवस्था को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। इससे सिर्फ फसल और फसल चक्र के ही नुकसान होने का खतरा नहीं है, बल्कि इसका दूरगामी प्रभाव संपत्ति के नुकसान के रूप में भी पड़ेगा। **ynu Ldy vkQ bdkukfeDl** के प्रोफेसर **fleku Mt** ने इंग्लैंड के अखबार **n xkft;u** को बताया कि लंबे समय के लिए निवेश करने वालों को सुझाव है कि वे कम कार्बन उत्सर्जन करने वाले क्षेत्रों में ही पैसा निवेश करें। उल्लेखनीय है कि 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' का अध्ययन **upj Dykbe V pt** ने प्रकाशित किया है।[16] **o:.k xk/kh** का मानना है कि ''जलवायु परिवर्तन हमारी पूरी खाद्य उत्पादन श्रृंखला और खाद्यान्न सुरक्षा को प्रभावित करेगा''[17]। ऐसी स्थिति में विश्व के विकसित और विकासशील राष्ट्रों का पर्यावरण संरक्षण के लिए समन्वित प्रयास की आवश्यकता है।

i;koj.k lqj{k.k dh oSf'od i;kl

इसके लिए अब तक विश्व स्तर पर निम्नलिखित सम्मेलन अयोजित हुए हैं–

1- **iFoh fnol ¼22 vizy 1970½&** प्रत्येक वर्ष 22 अप्रैल को पूरे विश्व में पृथ्वी दिवस मनाया जाता है। इसकी शुरुआत **lusVj xyksM usYlu** ने 22 अप्रैल 1970 में की। इसका उद्देश्य पारिस्थितिकी को बढ़ावा देकर जल, जंगल और जमीन से जुड़ी समस्याओं से विश्व के लोगों को जागरूक बनाना था।[18]

2- **tyok;q ifjorZu lEesyu ¼1972½&** 1972 में स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में 119 देशों के सम्मेलन में यह तय हुआ कि प्रत्येक देश जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए घरेलू नियम बनाएगा। इसकी पुष्टि के लिए 1972 में **la;qDr jk"Vª i;koj.k dk;ZØe** का गठन कर नैरोबी में मुख्यालय बनाया गया।

3- **iFke fo'o tyok;q lEesyu ¼1979½&** यह **tusok** (स्विट्ज़रलैंड) में आयोजित किया गया।

4- **fo;uk lEesyu ¼1985½&** क्षतिग्रस्त ओज़ोन परत के बढ़ते खतरे को देखते हुए 1985 में वैज्ञानिकों ने इस 'सम्मेलन का आयोजन किया।

5- **ekfV;y le>kSrk ¼1987½&** ओज़ोनमंडल की सुरक्षा के मुद्दे पर विचार-विमर्श करने के लिए 1987 में **ekfV;y** में 48 देशों के प्रतिनिधियों की बैठक में एक समझौते पर सहमति हुई, जिसे **ekfV;y le>kSrk** कहा गया। इस समझौते में यह प्रावधान किया गया कि सभी देश अपने यहाँ चरणबद्ध तरीके से 2000 तक क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) के प्रयोग पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा देंगे। इस समझौते में कहा गया कि यदि विकसित और विकासशील देश मिलकर क्लोरोफ्लोरोकार्बन का प्रयोग प्रतिवर्ष कम कर दें तो आगामी कुछ वर्षों में CFC की कुल मात्रा में 50 प्रतिशत कमी हो जाने की संभावना हो सकती है।[19]

6- **VkjoVk lEesyu ¼1988½&** इस सम्मेलन में CO_2 की दर कम करने की अपील की गई तथा **tyok;q ifjorZu vUrjjk"Vªh; iSuy** की स्थापना हुई।

7- **iFoh lEesyu ¼1989½&** मांट्रियल सम्मेलन के बाद मार्च 1989 में फ्राँस के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने पुनः ओजोन परत की सुरक्षा के संबंध में विचार-विमर्श के लिए एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें अमेरिकी राष्ट्रपति **tkt Z c'k** सहित भारतीय प्रधानमंत्री **jktho xk/kh** ने भी शिरकत की। इसी बीच 123 देशों की एक बैठक ब्रिटिश प्रधानमंत्री **ekjxjsV Fkpj** ने भी बुलाई और बाद में ब्राजील में 'पृथ्वी सम्मेलन' हुआ। इन सम्मेलनों की बड़ी उपलब्धि यह रही कि क्लोरोफ्लोरोकार्बन की समाप्ति के लिए समय-सीमा का निर्धारण हो गया कि 2000 तक इसके प्रयोग पर रोक लग जानी चाहिए।

8. **f}rh; fo'o tyok;q ifjorZu ¼1990½&** इस सम्मेलन में अंतरशासकीय संधि वार्ता समिति की स्थापना की गई।

9. **la;qDr jk"Vª i;koj.k o fodkl lEesyu ¼1992½&** ब्राजील के **fj;ks Mh tSusfj;ks** में जलवायु परिवर्तन समझौते पर हस्ताक्षर हुए, जिसे 1994 में कार्य रूप दिया गया। इसे पृथ्वी सम्मेलन भी कहा जाता है। इसमें 170 देश, हजारों स्वयं सेवी संगठन तथा अनेक बहुराष्ट्रीय निगमों ने भाग लिया।

10- **cfyZu lEesyu ¼1995½&** 1992 में ब्राजील में उपस्थित 170 राष्ट्रों द्वारा जिस जलवायु संरक्षण समझौते पर हस्ताक्षर हुए, उसका प्रथम सम्मेलन अप्रैल 1995 में बर्लिन में हुआ।

11- tuok lEeyu ¼1996½& जलवायु परिवर्तन समझौते के पक्षधरों का द्वितीय सम्मेलन जुलाई 1996 में **tuok** में हुआ।

12. D;kVk lEeyu ¼1997½& जापान के **D;kVk** शहर में आयोजित इस विश्व पर्यावरण सम्मेलन में 159 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के दौरान विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के बीच जबरदस्त मतभेद प्रकट हुए। पर्यावरण में परिवर्तन पर 1992 के पृथ्वी सम्मेलन की संधि को और प्रभावी बनाने के लिए क्योटो सम्मेलन में कार्बन डाईऑक्साइड, मैथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन्स, परफ्लोरोकार्बन्स तथा सल्फर हेक्साक्लोराइड गैसों के उत्सर्जन के संबंध में 34 देशों के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी सीमाएँ निश्चित की गईं। फिर भी सम्मेलन के अंतिम समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए विकासशील राष्ट्रों, यूरोपीय संघ तथा अमेरिकी लॉबी के बीच वैचारिक मतभेद चरमोत्कर्ष पर रहा। अंतिम दिन 11 दिसंबर को समस्त पक्षों द्वारा लचीला रुख अपनाते हुए अंतिम समझौते में स्पष्ट किया गया कि औद्योगिक देशों से निकलनेवाले प्रदूषित ईंधन के विस्तार को रोका जाए, लेकिन इस समझौते के मसविदा से उस अंश को निकाल दिया गया जिसमें पर्यावरण का तापमान बढ़ाने वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन कम करने में विकासशील राष्ट्रों को शामिल करने की बात कही गई थी। सम्मेलन के दौरान ही जापान, यूरोपीय संघ और अमेरिका ने आपस में एक समझौता किया कि यूरोपीय संघ ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में आठ प्रतिशत, अमेरिका सात प्रतिशत तथा जापान छह प्रतिशत की कटौती करेगा तथा 21 अन्य राष्ट्र भी इन गैसों में उतनी ही कटौती करेंगे। ये कटौतियाँ 2008-12 के बीच होनी थीं। इसके साथ ही 30 अन्य देश ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में पांच प्रतिशत की कटौती कर गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर पर पहुँचाने पर सहमत हुए। समझौते में आस्ट्रेलिया को आठ प्रतिशत, नॉर्वे को एक प्रतिशत तथा आइसलैंड को 10 प्रतिशत गैसों के विसर्जन बढ़ाने की छूट मिली। रूस को यथास्थिति में बने रहने का प्रावधान किया गया जबकि कनाडा को अपने गैस-उत्सर्जन में छह फीसदी कटौती करनी पड़ी। यूरोपीय संघ, अमेरिका और जापान से 2002 तक गैसों के उत्सर्जन में वांछित कटौती करने को कहा गया था।[20] **i;koj.k lqj{k.k lEcf/kr D;kVk lfe/k orZeku e dkcu mRltZu ij yxke gA** इस संधि के अंतर्गत अमीर देशों को कार्बन उत्सर्जन को सीमित करना आवश्यक है, परंतु विकासशील देशों को इस दिशा में सिर्फ सुझाव दिया गया है। विकासशील देशों को दी गई इस छूट के विरोध में अमेरिका ने क्योटो संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये। दिसंबर 2011 में अमेरिका और चीन

जैसे उत्सर्जक राष्ट्रों को देखते हुए कनाडा ने भी क्योटो संधि से हटने की घोषणा की।

13. **ckyh tyok;q lEesyu ¼3&15 fnlacj 2007½&** 2007 में इंडोनेशिया के **ckyh** में संपन्न इस सम्मेलन में दुनिया के 193 देशों के 11 हजार से ज्यादा प्रतिनिधि, पर्यावरणविद् तथा पत्रकार शामिल हुए। 'बाली सम्मेलन' का मुख्य उद्देश्य वर्ष 2009 में होने वाले 'कोपेनहेगन सम्मेलन' के दौरान एक अंतरराष्ट्रीय संधि के लिए रोडमैप तैयार करना था जो वर्ष 2012 में 'क्योटो प्रोटोकॉल' का स्थान लेता।

14. **dksiugxe tyok;q lEesyu ¼7-18 fnlacj 2009½&** डेनमार्क की राजधानी **dksiugxu** में 7-18 दिसंबर 2009 को आयोजित जलवायु सम्मेलन 192 देशों के प्रतिनिधियों का पर्यावरण की रक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य 2012 के बाद एक वैश्विक जलवायु समझौता करना था, क्योंकि 2012 तक क्योटो-प्रोटोकॉल प्रभावी था। इस समझौते से पृथ्वी को ग्रीन हाउस गैसों के खतरों से बचाने की जो मुहिम 1997 में क्योटो-प्रोटोकॉल से शुरु हुई थी, उसे आगे बढ़ाना था। 18 दिसंबर 2009 को अंतिम दिन गैर बाध्यकारी **dksiugxe le>kSrk** को स्वीकार किया।[21]

15. **dkudqu lEesyu ¼29 uoacj&10 fnlacj 2010½&** जलवायु परिवर्तन पर 12 दिवसीय सम्मेलन मेक्सिको के **dkudqu** में 29 नवंबर-10 दिसंबर 2010 को संपन्न हुआ। दिसंबर 2009 के कोपेनहेगन सम्मेलन की तरह इस सम्मेलन में भी कार्बन-उत्सर्जन पर कोई बाध्यकारी समझौता नहीं हो सका। इसकी बड़ी उपलब्धि 100 अरब डॉलर के एक **xzhu DykbeV QaM** के मामले में सहमति होनी रही। विश्व का औसत तापमान औद्योगिक काल के पूर्व की स्थिति की तुलना में दो डिग्री से ज्यादा न बढ़ने देने के लिए गरीब देशों की मदद के लिए 2020 तक 100 अरब डॉलर जुटाने का फैसला सम्मेलन के अंतिम दिन लिया गया।[22]

16. **Mjcu lEesyu ¼28 uoacj&9 fnlacj 2010½&** 17 वाँ संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 28 नवंबर-9 दिसंबर 2011 के दौरान दक्षिण अफ्रीका को डरबन में संपन्न हुआ। 192 देशों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित थे। क्योटो संधि के स्थान पर लाई जानेवाली इस संधि को 2015 तक अंतिम रूप प्रदान करने का निर्णय डरबन पैकेज में लिया गया।[23]

17. **nksgk lEesyu ¼26 uoacj&8 fnlacj 2012½& nksgk** में संपन्न 18 वाँ सम्मेलन काफी महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि दिसंबर 2012 की समाप्ति के साथ ही

D;kVk lf/k भी समाप्त होने वाली थी। क्योटो प्रोटोकॉल 1997 में स्वीकार किया गया अकेला ऐसा समझौता था जिसके अनुसार विकसित देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करना था और जो बाध्यकारी था। दोहा में यह तय हुआ कि **D;kVk lf/k** वर्ष 2013 में जारी रहेगी अर्थात् वर्ष 2012 के साथ समाप्त नहीं होगी। इसकी दूसरी अवधि आठ वर्ष की होगी।[24] दोहा के एक अन्य फैसले में वनों की कटाई को रोकने के प्रयास पर विचार हुआ और यह भी तय किया गया कि संयुक्त राष्ट्र परिवर्तन सचिवालय **DykbeV xi** नामक संस्था के साथ मिलकर वैश्विक स्तर पर यह दिखाने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार कम कार्बन उत्सर्जन और स्वच्छ क्रांति लाखों लोगों के जीवन को बदल रही है।

18- okjlk tyok;q ifjorZu ¼11&12 uoacj 2013½& जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का **19ok** सम्मेलन **okjlk** में 11-12 नवंबर 2013 को संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में विकसित और विकासशील देशों के मध्य मतभेद उभरकर पुनः सामने आये। इसके बावजूद सम्मेलन में कतिपय बिंदुओं पर सहमति हुई।[25]

19. Ykhek f'k[kj lEesyu ¼1&14 fnlacj 2013½& जलवायु परिवर्तन और कार्बन उत्सर्जन को लेकर पेरू की राजधानी **yhek** में 1-14 दिसंबर 2014 तक 194 देशों के प्रतिनिधि पर्यावरण के बदलाव पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए। **20o** लीमा जलवायु सम्मेलन में कार्बन उत्सर्जन में कटौती के मुद्दे पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच दो हफ्ते से विद्यमान गतिरोध अंततः 14 दिसंबर 2014 को समाप्त हो गया और अंतिम क्षण में दिसंबर 2015 में पेरिस के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाली नई वैश्विक जलवायु संधि के मसौदा प्रस्ताव पर सहमति बन गई। इस मसौदे को दिसंबर 2015 में पेरिस में 'भिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों के आलोक में सांझी, लेकिन विभेदीकृत जिम्मेदारियाँ एवं संबंधित क्षमता के सिद्धांत' के रूप में प्रस्तुत होना था।[26]

20. Ikfjl f'k[kj lEesyu ¼30 uoacj-12 fnlacj 2015½& ifjl में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 30 नवंबर-12 दिसंबर 2015 को आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में इतिहास में पहली बार विश्व के सभी देशों द्वारा जलवायु परिवर्तन को कम करने के तरीकों पर एक सार्वभौमिक समझौते को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया गया, अगर यह कम-से-कम 55 देशों, जो वैश्विक ग्रीन हाउस उत्सर्जन के कम से कम 55 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करते हैं, द्वारा स्वीकृत, अनुमोदित या स्वीकार कर लिया जाता है तो कानूनी रूप से बाध्यकारी हो जाएगा और 2020 तक

कार्यान्वित किया जाएगा। इस समझौते के अनुसार, 21वीं सदी के औसत तापमान में, औद्योगीकरण के पूर्व के वैश्विक तापमान के स्तर की तुलना में, दो डिग्री सेल्सियस से अधिक की वृद्धि नहीं होने दी जाएगी। इसके साथ ही सदस्यों द्वारा यह प्रयास किया जाएगा कि वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखा जाए। यह आवश्यक शर्त 5 अक्टूबर 2016 को पूरी हो गई, जिसके 30 दिन बाद यह समझौता 4 नवंबर 2016 से प्रभावी हो गया। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर अंकुश लगाकर ग्लोबल वार्मिंग को औद्योगिक क्रांति के पहले स्तर से अधिकतम दो डिग्री सेल्सियस नीचे रखने का उद्देश्य इसमें निर्धारित किया गया है। इसके लिए विकासशील देशों को वित्तीय सहायता विकसित देशों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। इसके लिए 100 अरब डॉलर प्रति वर्ष की प्रतिबद्धता समझौता में व्यक्त की गई है।[27] इस समझौते पर हस्ताक्षर की कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय न्यूयॉर्क में **iFoh fnol** 22 अप्रैल 2016 को समारोहपूर्वक शुरु हुई जिसमें भारत सहित 175 देशों ने पहले ही दिन इस पर हस्ताक्षर कर दिए। 23 अक्टूबर 2016 के मध्य तक यह संख्या 191 हो गई। जिन देशों ने इस पर हस्ताक्षर इस तिथि तक नहीं किए थे, उनमें इराक, निकारागुआ, सऊदी अरब, सीरिया व उज़बेकिस्तान शामिल थे। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के मामले में चीन की हिस्सेदारी सर्वाधिक 20.09 प्रतिशत है। दूसरे स्थान पर अमेरिका है जिसका ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में 17.89 प्रतिशत हिस्सेदारी है। इन दोनों देशों ने इस समझौते की औपचारिक पुष्टि 3 सितंबर 2017 को की। भारत, जिसकी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में हिस्सेदारी 4.10 प्रतिशत है, ने इस समझौते की पुष्टि 2 अक्टूबर 2016 को की।

21- tyok;q ifjorZu ij ekjkds'k lEesyu ¼7-18 uoacj 2016½& 7-18 नवंबर 2016 को मोरक्को के **ekjkds'k** शहर में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का **22ok¡** सम्मेलन पेरिस समझौते को प्रगति देने तथा क्रियान्वयन के लिए आयोजित किया गया। जलवायु परिवर्तन के प्रति अति संवेदनशील 48 अविकसित देशों के मंच ने यह संकल्प लिया कि वर्ष 2050 तक वे अपनी 100 प्रतिशत ऊर्जा नवीकरणीय स्रोतों से प्राप्त करेंगे। इन देशों में बांग्लादेश, दक्षिणी सूडान तथा इथोपिया जैसे देश शामिल हैं। 165 देशों के अंतर्गत आने वाले विभिन्न न्यायिक क्षेत्रों ने **vUMj lsdsaM** (Under 2'S) नामक समूह बनाया। इसके तहत उन्होंने घोषणा की कि वे अपनी उत्सर्जन सीमा में (वर्ष 1990 के स्तर की तुलना में) 80-95 प्रतिशत की कटौती करेंगे। इसके साथ ही वर्ष 2050 तक प्रति व्यक्ति कार्बन

डाईऑक्साईड उत्सर्जन को दो मीट्रिक टन से कम करने की घोषणा की गई। विकसित राष्ट्रों ने 2020 तक 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर एकत्रित करने के लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई। इस सम्मेलन में वर्ष 2013 में जलवायु परिवर्तन से संबंधित नुकसान व क्षतिपूर्ति के लिए निर्मित पाँच वर्षीय okjlk vrjjk"Vªh; fØ;kfof/k के ढाँचे को स्वीकृति प्रदान की गई।

22. okuu lEesyu ¼6&17 uoacj 2017½& जर्मनी के okuu शहर में 6-17 नवंबर 2017 को 23ok जलवायु परिवर्तन सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसमें यह जानने का प्रयास किया गया कि पेरिस समझौते को हासिल करने में अभी तक कितनी कामयाबी मिली है। सम्मेलन में यह सवाल उठाया गया कि उपलब्ध dkcZu Lisl[28] के बड़े हिस्से पर कब्जा कर चुके विकसित देश क्या गरीब और विकासशील देशों को सहायता देंगे? सब कुछ होने के बावजूद वॉन सम्मेलन से यह उम्मीद मजबूत हुई कि जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान का मुद्दा अंतरराष्ट्रीय समुदाय के लिए महत्त्वपूर्ण बना रहेगा तथा पेरिस समझौते को लागू करने की दिशा में प्रयास तेज होंगे।[29]

i;koj.k lqj{kk vkSj Hkkjr

fo'o LokLF; laxBu द्वारा मई 2018 में जारी 2016 की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली समेत भारत के 14 शहर विश्व के 15 प्रदूषित शहरों में शामिल हैं।[30] पर्यावरण पर ^LVsV vkQ Xykscky ,;j 2017* के आँकड़े के अनुसार भारत विश्व में अस्वाभाविक या समय से पहले होने वाली मौतों के मामले में कई रिकॉर्ड तोड़ता दिखा है। n ;wUlsQ में प्रकाशित अध्ययन भी बता रहा है कि भारत इस मामले में चीन से आगे निकल गया है और जिस हवा में हम सांस ले रहे हैं, वह दिनोंदिन इतनी जहरीली होती जा रही है कि हर दिन कम-से-कम दो मौतें महज़ वायु प्रदूषण से हो रही हैं।[31] रिपोर्ट के अनुसार भारतीय पर्यावरण का प्रदूषण सौ सालों में पहली बार चीन से आगे गया है और यही सही समय है, जब हमें चेत जाना चाहिए। चीन ने अपने यहाँ इंतजाम कर अपनी आबोहवा को थोड़ा सुधार लिया, लेकिन भारत का प्रदूषण स्तर तमाम बहसों, सेमिनारों, अध्ययनों और चेतावनियों के बावजूद बीते एक दशक में खतरनाक दिशा में बढ़ता गया है। xhuihl bafM;k ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट (14 फरवरी 2018) ',ojikfDy;l' (Airpocalyse) में 280 शहरों के एक साल में ih,e 10 के औसत स्तर का विश्लेषण किया है। इन शहरों में देश की 63 करोड़ आबादी (करीब 53 प्रतिशत जनसंख्या) रहती है। इन 63 करोड़ में 55 करोड़ लोग ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ सीपीसीबी द्वारा तय मानक से ih,e 10 का स्तर

अधिक है जिसमें 1 करोड़ 70 लाख बच्चे भी शामिल हैं जो मानक से दोगुने **ih,e 10** स्तरवाले क्षेत्रों में निवास करते हैं। पांच साल से कम उम्र के करीब एक करोड़ 29 लाख बच्चे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र और दिल्ली के रहने वाले प्रदूषित हवा की चपेट में हैं। **xhuihl** की **jk"Vªh; ok;q xq.koÙkk lqpdkad jSfdx fjikVZ** में भारत के राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता वाले 17 शहरों का प्रदूषण स्तर भारतीय मानकों से भी कहीं ज्यादा है। **xhuihl** ही नहीं, विभिन्न स्तरों से समय-समय पर भारत को जो सुझाव मिले हैं, यदि उन पर तार्किक दृष्टिकोण अपनाया गया होता तो शायद आज इतने बुरे हालात न होते। **;s vkdM+s dgrs gSa fd gekjh dk;Zky iz.kkfy;ksa dh fo'oluh;rk dh vkSj bZa/ku djrs gSaA** भारत के अन्य शहरों के साथ-साथ दिल्ली में प्रदूषण का स्तर अभी भी उतना ही है, जितना कि सर्दियों में धुंध के दौरान हुआ करता था। इस हवा को खराब करने में गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ से 17 फीसदी पैटकॉक जैसे पेट्रो-ईंधन की 16 प्रतिशत भागीदारी है। **lh,lvkbvkj** और **dsUnzh; lM+d vuqla/kku laLFkku** द्वारा 2018 के आरंभ में किए एक गहन सर्वे से पता चलता है कि दिल्ली की सड़कों पर लगातार जाम व वाहनों के रेंगने से गाड़ियाँ डेढ़ गुना ज्यादा ईंधन पी रही हैं जिसके चलते हालात बीते **17** सालों में सबसे बुरे स्तर पर है। दिल्ली में वायु प्रदूषण का बड़ा कारण यहाँ बढ़ रहे वाहन, ट्रैफिक जाम और राजधानी से सटे जिलों में पर्यावरण के प्रति बरती जा रही कोताही है।[32]

अमेरिका के **LokLF; izHkko laLFkku** (एचईआई) 'स्टेट ऑफ ग्लोबल रिपोर्ट' के अनुसार साल 2016 में वायु प्रदूषण से पूरे विश्व में 61 लाख लोगों की मौतें हुईं। इनमें से आधी से ज्यादा मौतें अकेले भारत में 25 प्रतिशत (11 लाख) और चीन में 26 प्रतिशत हुईं।[33] वायु की तरह ही जल प्रदूषण की स्थिति भी काफी भयावह है। वाराणसी, इलाहाबाद, हरिद्वार एवं कानपुर में **xaxk unh** तथा आगरा, मथुरा तथा दिल्ली में **;equk unh** में जल प्रदूषण कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों के गिरने से हो रहा है। यही स्थिति **xkserh] lku** तथा देश की अन्य नदियों के साथ है। जल प्रदूषण के साथ-साथ **ty ladV** भी बढ़ता जा रहा है।

c<rk ty ladV

^uklk* से जुड़े वैज्ञानिकों ने अपने शोध रिपोर्ट में चिंता व्यक्त की है कि भारत समेत दुनिया के कई इलाकों में भूजल स्तर में तेजी से गिरावट आ रही है। ऐसी ही चिंता **fo'o cSad** के एक रिपोर्ट में जताई गई है।[34] **ty lalk/ku e=ky;** के तहत **lsUVªy xzkmaM okVj cksM+Z** की एक रिपोर्ट के मुताबिक भी देश के 16 फीसदी से ज्यादा भूजल संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन किया गया है। इससे खेती सहित आम लोगों की जिंदगी और देश की पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है।[35]

उल्लेखनीय है कि भूजल के इस्तेमाल के मामले में भारत का स्थान दुनिया में पहला आता है। **fo'o cd** की एक रिपोर्ट के मुताबिक, पानी की वैश्विक खपत का करीब एक-चौथाई हिस्सा भारत में है, क्योंकि भारत में पानी तक पहुँच विकेंद्रित है। इससे पूर्व **fo'o cd** की एक रिपोर्ट में यह चिंता जतायी गई है कि यदि भूजल के दोहन की यही प्रवृत्ति जारी रही तो अगले 20 वर्षों में भारत के करीब 60 फीसदी जल बेसिन की हालात भयावह हो सकती है। **lVy okVj fjlkslt ckM** की एक रिपोर्ट में यह बताया गया है कि बीते एक दशक (2003–2012) के मुकाबले 2013 में देशभर के कुओं में पानी का स्तर 56 फीसदी तक नीचे चला गया। राजधानी दिल्ली व आसपास बढ़ रही रिहायशी आबादी में भी भूजल का इस्तेमाल बढ़ रहा है।[36] यदि इस बढ़ते जल संकट के प्रति हम सचेत नहीं हुए तो **l;Dr vjc vehjkr** और **diVkmu** कहीं भी दस्तक दे सकता है।[37] भारत में भी अधिकतर तालाबों और कुओं में जहाँ पर जल स्तर 15 से 20 फीट नीचे उपलब्ध था, वहाँ आज 200 फीट से नीचे जा चुका है। **ty vk;kx** के अनुसार, देश के 91 प्रमुख जलाशय अच्छी हालात में नहीं हैं। गरमी आते-आते इनमें 20 से 22 फीसदी पानी ही बचा रहता है।[38] जल संकट की भयावह स्थिति को देखते हुए भारत के उपराष्ट्रपति **,e- odS;k uk;M** का कहना है, ''यदि अब भी पानी के संरक्षण व इसके कम इस्तेमाल को लेकर कठोर कदम नहीं उठाए जाएँगे तो वह दिन दूर नहीं, जब बेंगलुरू जैसे नगरों में राशन की तरह पानी की आपूर्ति करने के लिए भी प्रशासन को मजबूर होना पड़ेगा''।[39] इसी तरह ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, खनन प्रदूषण, बांधों एवं जलाशयों के चलते बढ़ते प्रदूषण तथा औद्योगिक संयंत्र से संबंधित प्रदूषणों ने पर्यावरण को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। इन कारणों से राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत पूरे उत्तर भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए आपात जैसी स्थिति पैदा हो गई है। **ih,e&2-5** समेत विभिन्न अतिसूक्ष्म कणों और जहरीली गैसों से बने **Lekx** से लोगों को सांस लेने मे तकलीफें हो रही हैं। वर्षों से लगातार बिगड़ती स्थिति तस्दीक करती है कि अब तक अलग-अलग स्तरों पर हुआ हर प्रयास नाक़ाफी रहा हैं।

i;koj.k lqj{k.k dh fy, Hkkjr dh igy

जलवायु परिवर्तन तथा भारत की वास्तविक समस्या का आकलन करने वाले सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा हरित क्रांति के जनक **Mk- ,e- ,l- LokehukFku** ने कहा है कि गाँवों के देश भारत में किसी भी पर्यावरण संबंधी समस्या का निदान ग्रामवासियों के सक्रिय सहयोग के बिना संभव नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया है कि प्रत्येक पंचायत में दो युवकों/युवतियों को **tyok;q ic/kd** बनाया जाए जिनका मुख्य काम अपने गाँव के लोगों को जलवायु तथा कृषि संबंधी जानकारी प्रस्तुत करना हो। उनका यह भी सुझाव है कि कृषि महाविद्यालयों के छात्रगण प्रत्येक साल

दो महीने गाँवों में किसानों से मिलकर उन्हें जानकारियाँ दें। ऐसा करने से ही प्रयोगशाला से खेत तक का नारा सफल हो सकेगा। भारत में जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रतिकूल प्रभावों की जानकारी एवं अनुसंधान के लिए 127 से अधिक संस्थाएँ एवं अनुसंधान केंद्र क्रियाशील हैं। अक्टूबर 2009 में इन सभी संस्थानों को मिलाकर जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव के मूल्यांकन के लिए **^bfM;u u;ood Qkj DykbesV p t vlesV*** **(INCCA)** बनाया गया जो जलवायु संबंधी अनुसंधान एवं अध्ययन के लिए मिलकर कार्य करता है। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए भारत की प्रतिबद्धता का यह एक बेमिसाल उदाहरण है।[40] **Hkkjrh; lafo/kku** की **mÌs'kdk** में जिस समाजवादी राज्य की परिकल्पना की गई है, वह तभी संभव है जब सभी का जीवन स्तर ऊँचा हो और सभी का जीवन स्तर सिर्फ स्वच्छ पर्यावरण में ही संभव है। संवैधानिक संशोधन के पूर्व भारतीय संविधान के **47 o vuqPNn** में पर्यावरण के बारे में प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य अपने स्तर को पोषाहार और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा। 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए अधिनियम पारित करके संविधान के **Hkkx iv** में राज्य के नीति निदेशक एवं मूल कर्तव्यों में सम्मिलित कर अग्रलिखित बातें कही गई हैं– **1- vuqPNn 48** के अनुसार राज्य पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की व्यवस्था करेगा तथा वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करेगा **2-** संविधान के **Hkkx iv ¼d½** के अनुच्छेद 51 में **eS dr0;k** में पर्यावरण का उल्लेख है जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी तथा अन्य जीव भी हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्द्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे **3- vuqPNn 21** के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उन गतिविधियों से बचाया जाना चाहिए, जो उसके जीवन, स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहुँचाती हो तथा **4-** संविधान के अनुच्छेद **252** व **253** पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने के लिए अधिकृत करते हैं। **jk"Vªh; izko/kku** के अंतर्गत **Hkkjrh; naM lafgrk** की विभिन्न धाराएँ, यथा 268, 269, 272, 277, 278, 284, 290 तथा 426 में प्रदूषण के लिए दंडात्मक प्रावधान किए गए हैं। इसी तरह भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अंतर्गत भी प्रदूषण को रोकने के लिए व्यापक प्रावधान किए गए हैं। **Hkkjrh; ou vf/kfu;e] 1927** के तहत वनों की सुरक्षा के लिए प्रभावी नियम बनाए गए हैं। भारत में पर्यावरण संरक्षण में भूमिका निभा रहे प्रमुख पर्यावरणीय कानून और नियम निम्नलिखित हैं:–

1- **oU; thou lajf{k.k vf/kfu;e 1972&** कृषि, उद्योगों और शहरीकरण से भारत में वनों के अधिक कटाव से अनेक वन्यजीव जंतुओं की प्रजातियाँ या तो लुप्त हो गईं हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं। इन्हें बचाने के लिए 1952 में **Hkkjrh; oU; thou cksM** का गठन इस दिशा में एक सकारात्मक पहल

था। संयुक्त राष्ट्र के ;uLdk द्वारा संचालित 'मानव और जैव मंडल' कार्यक्रम भी भारत में चलाया गया और विलुप्त होती विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए परियोजनाएँ संचालित की गईं। उदाहरण के लिए 1972 में flg, 1973 में ck?k तथा 1984 में exjePN तथा भूरे रंग के fgj.k के लिए ऐसी परियोजनाएँ चलाई गई हैं। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 में लुप्त होती प्रजातियों के व्यापार की भी मनाही है। इस अधिनियम को प्रभावी बनाने के लिए इसमें वर्ष 1986 तथा 1991 में संशोधन किए गए और सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए oU; thou lj{k.k fun'kd तथा दिल्ली, मुंबई, कोलकत्ता व चेन्नई जैसे महानगरों में चार mifun'kdk की नियुक्ति की गई है।

2- ty ¼in"k.k fuokj.k ,o fu;a=.k½ vf/kfu;e 1974& देश के अंतर्गत निरंतर बढ़ते जल प्रदूषण के लिए 1963 में गठित समिति ने जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण के लिए केंद्रीय कानून बनाने की सिफारिश की। 23 मार्च, 1974 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद ty ¼in"k.k fuokj.k ,o fu;a=.k½ vf/kfu;e 1974 बना जो 26 मार्च, 1974 से पूरे देश में लागू है। इस अधिनियम द्वारा एक dsUæh; in"k.k fu;a=.k ckM+ तथा राज्यों में प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की गई। इसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर निर्धारित मानकों की अवहेलना करता है तो उसे कानून में निर्धारित दंड दिया जाएगा।'[41]

3- ty ¼in"k.k fuokj.k fu;a=.k½ vf/kfu;e 1977&यह पर्यावरण संरक्षण के लिए केंद्रीय तथा राज्य प्रदूषण बोर्डों को अनेक शक्तियाँ प्रदान करता है।

4- ou lj{k.k vf/kfu;e 1980& वनों के संरक्षण तथा विकास के लिए इस अधिनियम को पारित किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य वनों का विनाश और वन भूमि को गैर-वानिकी कार्यों में उपयोग से रोकना था। इसे अधिक प्रभावी करने के लिए 1988 में इसमें संशोधन किया गया।

5- ok;q ¼in"k.k ,o fu;a=.k½ vf/kfu;e 1981& यह अधिनियम 29 मार्च 1981 को पारित हुआ तथा 16 मई 1981 से लागू किया गया। इस अधिनियम के पारित होने के पीछे जून, 1972 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्टाकहोम (स्वीडन) में मानव पार्यावरण सम्मेलन की भूमिका रही है। इसकी iLrkouk में कहा गया है कि इसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु समुचित कदम उठाना है। इसमें मुख्यतः मोटरगाड़ियों और अन्य कारखानों से निकलने वाले धुएँ और गंदगी का स्तर निर्धारित करने तथा उसे नियंत्रित करने का प्रावधान है। 1987 में इसमें ध्वनि प्रदूषण को भी

सम्मिलित कर **dsUnzh; izn"k.k fu;a=.k cksM** को ही वायु प्रदूषण अधिनियम लागू करने का अधिकार दिया गया है।

6- **/ofu izn"k.k fu;a=.k dkuwu&** वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1981 में वर्ष 1987 में संशोधन करते हुए इसके अंतर्गत 'ध्वनि प्रदूषकों' को भी 'वायु प्रदूषकों' की परिभाषा के अंतर्गत सम्मिलित किया गया। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 की **/kkjk 6** के अंतर्गत ध्वनि प्रदूषकों सहित वायु तथा जल प्रदूषकों की अधिकता को रोकने के लिए अधिनियम बनाने का प्रावधान है। इसका प्रयोग करते हुए **/ofu izn"k.k ¼fofu;e ,oa fu;a=.k½ vf/kfu;e 2000** पारित किया गया। ध्वनि प्रदूषकों को आपराधिक श्रेणी में मानते हुए इसके नियंत्रण हेतु भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा **268** तथा **290** का इस्तेमाल किया जा सकता है।

7- **i;kZoj.k ¼lajf{k.k½ vf/kfu;e 1986&** 5 जून 1972 को स्टॉकहोम में संपन्न पर्यावरण सम्मेलन में पारित उद्देश्यों से प्रभावित होकर भारत ने पर्यावरण के संरक्षण के लिए **i;kZoj.k ¼lajf{k.k½ vf/kfu;e 1986** पारित किया। इस अधिनियम की महत्त्वपूर्ण बात है कि पहली बार नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से इस अधिनियम का पालन नहीं करने वाले कारखानों के विरूद्ध मामला दर्ज करने का अधिकार दिया गया है।

8- **tSo-fofo/krk lajf{k.k vf/kfu;e 2002&** जैव-विविधता संरक्षण के लिए भारत सरकार ने 2000 में एक **jk"Vªh; tSo-fofo/krk lajf{k.k fØ;kUo;u ;kstuk** की शुरुआत की। इसी प्रक्रिया में सरकार ने 2002 में जैव-विविधता संरक्षण अधिनियम पारित किया।

9- **jk"Vªh; ty uhfr 2002&** जल के महत्त्व को स्वीकारते हुए जल संसाधनों के नियोजन, विकास और प्रबंधन के साथ ही इसके सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करने के लिए 'राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद' ने 1 अप्रैल 2002 को **jk"Vªh; ty uhfr** पारित किया।[42]

10- **jk"Vªh; i;kZoj.k uhfr 2004& i;kZoj.k rFkk ou eU=ky;** ने दिसंबर 2004 में **jk"Vªh; i;kZoj.k uhfr 2004** का मसौदा जारी किया, जिसकी **izLrkouk** में कहा गया है कि समस्याओं को देखते हुए एक व्यापक पर्यावरण नीति की आवश्यकता है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अनेक उद्देश्य हैं।

11- **ou vf/kdkj vf/kfu;e 2006&** यह अधिनियम वन संबंधी नियमों का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, जो 18 दिसंबर 2006 को पारित हुआ। यह जंगलों में रहने वाले लोगों की भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकार से जुड़ा है।

12- bfM;u uVod Qkj Dykbe V pt vl leV (INCCA) 7 vDVcj 2009& भारत में जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रतिकूल प्रभावों की जानकारी एवं अनुसंधान के लिए 127 से अधिक संस्थाएँ एवं अनुसंधान केंद्र कार्य कर रहे हैं। इन सभी संस्थाओं को मिलाकर जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव के मूल्यांकन के लिए 'इंडियन नेटवर्क फॉर क्लाइमेट चेंज असेसमेंट' बनाने की घोषणा 7 अक्टूबर 2009 को की गई जो जलवायु संबंधी अनुसंधान एवं अध्ययन के लिए मिलकर कार्य करेगा। इसकी पुनः घोषणा 25 जनवरी 2012 को भी की गई।[43]

13- jk"Vªh; ty uhfr 2012& सरकार द्वारा 7 जून 2012 को राष्ट्रीय जल नीति 2012 का संशोधित प्रारूप जारी किया गया। जल नीति में संसाधनों का सदुपयोग करने से लेकर विभिन्न समस्याओं तथा संरक्षण के लिए अपेक्षित उपायों की चर्चा की गई है।[44]

14- i;koj.k lqj{k.k lacaèkh dkuuksa dh leh{kk dj fy, xfBr lfefr dh fjiksVZ 2014& भारत में बने पर्यावरण संरक्षण संबंधी कानूनों एवं अधिनियमों की समीक्षा के लिए **i;koj.k] ou ,oa tyok;q ifjorZu e=kky;** ने 29 अगस्त 2014 को पूर्व कैबिनेट सचिव **Vh- ,l- vkj- lqczeU;e** की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति गठित की। इस समिति ने नवंबर 2014 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इस समिति के जिम्मे भारत के पर्यावरण संबंधी विनियमों का फिर से अध्ययन करना था। इस समिति से कहा गया कि वे 'पर्यावरण, वन व जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के विभिन्न अधिनियमों की समीक्षा' करके उन्हें 'उनके उद्देश्यों के अनुरूप बनाने के लिए' आवश्यक संशोधन सुझाए। समीक्षा के लिए **Ng** अधिनियम थे– भारतीय वन अधिनियम 1927, वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972, जल (संरक्षण व प्रदषण नियंत्रण) अधिनियम 1974, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु (संरक्षण व प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986। पर्यावरण सुरक्षा के लिए एक नए अम्ब्रेला लॉ– (Environment Loss Management Act- ELMA) लाने तथा इसके तहत राष्ट्रीय स्तर पर **jk"Vªh; i;koj.k izca/ku izkf/kdj.k** (National Environment Management Authority- (NEMA) तथा राज्य स्तर पर राज्य स्तरीय (State Environment Management Authority- (SEMA) के गठन का सुझाव समिति ने अपनी रिपोर्ट में दिया है। समिति ने कहा है कि परियोजनाओं की मंजूरी का काम पर्यावरण प्रस्तावित प्राधिकरण (NEMA) के पास होना चाहिए। राज्यों में भी इसी तरह के राज्य स्तरीय प्राधिकरणों (SEMA) के गठन का सुझाव देते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है

कि राज्य स्तरीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों का विलय इनमें ही कर दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, केंद्रीय स्तर पर कार्यरत् 'केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' का विलय नए प्रस्तावित **jk"Vªh; i;koj.k izca/ku izkf/kdkj** में होना चाहिए। सुब्रमण्यम समिति ने जल एवं वायु अधिनियम को पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम में शामिल करने का सुझाव दिया है। पर्यावरण संरक्षण में उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी के विकास के लिए 'इंडियन काउंसिल ऑफ फॉरेस्ट्री रिसर्च एंड एजूकेशन' की तर्ज पर एक 'नेशनल एनवायरमेंट रिसर्च इंस्टीट्यूट' की स्थापना करने तथा पर्यावरण क्षेत्र में दक्ष व्यक्तियों के प्रवेश के लिए 'इंडियन एनवायरमेंट सर्विस' (IES) नाम से एक नई **vf[ky Hkkjrh; lsok** प्रारंभ करने का सुझाव समिति द्वारा दिया गया है।[52]

vU; iz;kl& उल्लेखनीय है कि विश्व सतत् विकास सम्मेलन–**MCyw, lMh, l** 'द एनर्जी एंड रिसोर्स इंस्टिट्यूट' (TERI) का आयोजन 15–17 फरवरी को नई दिल्ली में हुआ जिसका 16 फरवरी 2018 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उद्घाटन किया। सम्मेलन का मुख्य विषय "Partnership for a Resilient Planet" था। इसी तरह **xhu xM MhM+l vfHk;ku 2018** भी पर्यावरण संरक्षण को जन आंदोलन का स्वरूप प्रदान करने का प्रयास है जिसके तहत **Mk- g"kZo/kZu** नामक एक 'डिजिटल मोबाइल ऐप' 28 फरवरी 2018 को नई दिल्ली में लाँच किया गया। इसमें लोगों से प्रतिदिन हरियाली से जुड़ा कम-से-कम एक उत्तम कार्य करने का अनुरोध किया गया है। इसमें लगभग 500 'ग्रीन गुड डीड्स' शामिल हैं। **U;k; ikfydk** ने भी संविधान के **vuqPNn 21** में वर्णित जीवन के अधिकार की सकारात्मक व्याख्या करके इस अधिकार में ही 'स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार' को निहित घोषित किया है। उसने 1980 में ही पर्यावरण-हितैषी दृष्टिकोण अपनाकर विविध मामलों में निर्णय देते हुए स्पष्ट किया कि गुणवत्तापूर्ण जीवन की यह मूल आवश्यकता है कि व्यक्ति स्वच्छ पर्यावरण में जीवन व्यतीत करे। पर्यावरण संरक्षण पर न्यायपालिका के महत्त्वपूर्ण निर्णय अनेक हैं। **tufgr ;kfpdkvksa** के द्वारा भी न्यायपालिका के निर्णय महत्त्वपूर्ण रहे हैं। पर्यावरण सुरक्षित रखने के कार्य में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों द्वारा आरंभिक क्षेत्राधिकार के संविधान के **vuqPNn 32** और **326** को आधार बनाकर महत्त्वपूर्ण उपाय किए गए।

puk©rh ,oa lq>ko

उपर्युक्त प्रयासों और अधिनियमों के बावजूद भारत में पर्यावरण की स्थिति काफी गंभीर है। **fo'o LokLF; laxBu** की रिपोर्ट में वर्ष 2010 में वैश्विक स्तर पर सबसे अधिक जहरीली हवा में सांस ले रहे शहरों में सिर्फ दिल्ली और आगरा का नाम था, वहाँ 2018 में जारी **fo'o LokLF; laxBu** की 2016 की रिपोर्ट में विश्व के सबसे ज्यादा वायु प्रदूषण से प्रभावित 15 शहरों में 14 भारत में हैं। ये शहर

कानपुर, फरीदाबाद, वाराणसी, गया, पटना, दिल्ली, लखनऊ, आगरा, श्रीनगर, गुरुग्राम, जयपुर, पटियाला तथा जोधपुर हैं।[46] नालें, नदियाँ तथा झीलें औद्योगिक कचरों से भरी हुई हैं। दिल्ली में यमुना नदी एक नाला बन कर रह गई है। वन क्षेत्र में कटाव लगातार बढ़ता जा रहा है जिसका परिणाम बिहार सहित अन्य राज्यों में आई भीषण बाढ़ के रूप में देखने को मिल रहा है। पूरे भारत में पानी का संकट भी भयावह रूप लेता जा रहा है। भूमि प्रदूषण ने भूमि की उर्वराशक्ति घटाने के साथ-साथ अनेक रोगों को उत्पन्न किया है। इसी तरह खनन, बाँधों एवं जलाशयों ने भी पर्यावरण को काफी प्रभावित किया है। बीते तीन दशकों में करीब 24 हजार औद्योगिक, रक्षा और जल-विद्युत परियोजनाओं के कारण 14 हजार वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र समाप्त हो चुके हैं। 15 हजार किलोमीटर वन क्षेत्र अतिक्रमण के चलते नष्ट हो गए हैं। देश के 21.34 फीसदी हिस्से में अर्थात lkr लाख वर्ग किलोमीटर से कुछ अधिक में वन बचे हैं। करीब 250 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र को हर साल अन्य गतिविधियों के लिए दे दिया जाता है। fo'o LokLF; lxBu की रिपोर्ट से जाहिर है कि राजस्थान और काश्मीर घाटी के साथ गंगा के मैदानी इलाकों की हवा दुनिया में सबसे खराब है। दिल्ली, आगरा और कानपुर तो पहले से ही वायु प्रदूषण की जद में हैं, लेकिन भारत के अन्य 11 शहरों में वैश्विक स्तर पर बढ़ा प्रदूषण पर्यावरण संरक्षण के मामले में हमारी लापरवाही जाहिर करते हैं। इस स्थिति को यदि नदियों में प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाओं के बढ़ते कहर, जल एवं वायु प्रदूषण, ऊर्जा की बढ़ती खपत जैसी समस्याओं के साथ जोड़कर देखें, तो यह समझना मुश्किल नहीं होगा कि पर्यावरण की रक्षा कितनी आवश्यक है।[47] देश में बढ़ते पानी संकट के संबंध में भारत के उपराष्ट्रपति ,e- oSd;k uk;Mw ने fo'o ty fnol पर देश को सचेत किया कि पानी संकट को लेकर अब उदासीन नहीं रहा जा सकता। उनके विचार में ''हमें तत्काल सामूहिक प्रयास शुरु कर देना होगा। एक-एक बूंद पानी बचाने की हर व्यवस्था को बढ़ावा देना होगा'' ।[48]

देशांतर्गत दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण तथा कम होते जल देश के लिए एक बड़ी चुनौती है। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अनिल प्रकाश जोशी ने इस संबंध में सर्वप्रथम जल पर एक राष्ट्रीय कानून बनाने की सिफारिश की है। उनके अनुसार 'ऐसे कई देश हैं, जहाँ जल कानूनों ने जल दुरुपयोग पर बड़ा अंकुश लगाया है। bVtjk;y और vkLVªfy;k जैसे देश जल कानून बनाकर उनपर अमल करते हैं।' अपने देश का 65-70 फीसदी जल खेती में लगा दिया जाता है। इस संबंध में उनके अनुसार ईजरायल जैसे देशों से खेती में जल का बेहतर उपयोग सीखने की आवश्यकता है। उनके विचार में, ''हमें रास्ते तैयार करने होंगे, वह चाहे हरेक नागरिक से जुड़ा उपाय हो या कॉरपोरेट घरानों से, हमें पानी को जोड़ने के लिए हर तरह की कोशिश करनी पड़ेगी'' ।[49] उनका कहना सही है कि इस तरह के संकटों में समझदारी और

दायित्व मात्र सरकार के जिम्मे नहीं छोड़ा जा सकता। हमारी सामूहिक जागरूकता भी इसके लिए आवश्यक है। जल के प्रति लापरवाही को यदि हम नहीं सुधार पाए तो आने वाले दिनों में हम प्यासे मरेंगे। **l;Dr jk"V** ने भी अपनी वार्षिक 'विश्व जल विकास प्रतिवेदन' में कहा है कि जल प्रबंधन और उन्हें साझा किए बिना वर्ष 2030 तक दुनिया के सामने वैश्विक जल संकट होगा।[50] भारत में यह समस्या और विकट हो रही है। दुनिया की 16 फीसदी आबादी भारत में रहती है, लेकिन यहाँ विश्व का महज चार फीसदी पानी ही उपलब्ध है। देश में सिंचाई का करीब 80 फीसदी पानी भूजल के रूप में शामिल किया जाता है। देश के 10 करोड़ बच्चों के लिए पीने के पानी का नियमित रूप से कमी रहती है। हर साल लगभग छह लाख बच्चों की जानें दूषित पानी पीने से जाती हैं। **fo'o LokLF; lxBu** के मुताबिक करीब 20 फीसदी बीमारियाँ पानी से संबंधित हैं। **fo'o cSad** का मानना है कि यदि भारत में इसी तरह भूजल का दोहन होता रहा तो वर्ष 2020 तक भारत के अधिकांश शहरों में पीने के पानी का गंभीर संकट पैदा होने की आशंका है। पर्यावरण कार्यकर्ता **KkuUnz jkor** ने 22 अप्रैल 2018 को अपने **vkys[k** में बताया है कि संकट से गुजर रही पृथ्वी को बचाने की मुहिम शुरु करने का समय आ गया है।[51] उल्लेखनीय है कि जलवायु परिवर्तन से पृथ्वी को बचाने के लिए 30 नवंबर से 12 दिसंबर 2015 तक **ifjl f'k[kj lEesyu** संपन्न हुआ। पेरिस समझौते के अनुसार **21oh** सदी के औसत तापमान में औद्योगिकीकरण के पूर्व में वैश्विक तापमान के स्तर की तुलना में दो डिग्री सेल्सियस से अधिक की वृद्धि नहीं होने दी जाएगी और वैश्विक औसत तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखा जाएगा। पेरिस सम्मेलन में हुए समझौते के मार्ग की कठिनाइयों तथा अमेरिका के असहयोगात्मक रवैये के आलोक में भारत में **cSchlh** के ब्यूरो प्रमुख **ekd Vyh** का मानना है कि हमें ''जीवन की ऐसी योजना विकसित करने होगी, जो टिकाऊ साबित हो''।[52] स्पष्ट है कि विश्व भर के **lk>s i;kl** और कोशिश से ही धरती को बचाया जा सकता है। इसकी जो शुरुआत अमेरिका के सेनेटर **xkyMu uSYlu** ने वर्ष 1970 में की, उसका दीप जलते रहना चाहिए। पृथ्वी को आज सबसे अधिक खतरा प्लास्टिक से है। **KkuUnz jkor** का मानना है कि प्लास्टिक कचरे के चलते आज पूरा पर्यावरण गंभीर संकट में है। एक शोध के अनुसार 2050 में सागर में प्लास्टिक की तुलना में मछलियाँ कम होंगी। आर्कटिक में अभी 1200 टन प्लास्टिक हो सकता है जो विभिन्न धाराओं के जरिए इसमें जमा हुआ है।[53] ऐसी स्थिति में यदि पर्यावरण को बचाना है तो प्लास्टिक को तोबा करने के साथ ही बोतल बंद पानी से दूरी बनानी होगी।

वायु एवं जल की भाँति ध्वनि प्रदूषण भी आज पर्यावरण की ज्वलंत समस्या है। **iVuk gkbZdksVZ** ने ध्वनि प्रदूषण की खतरनाक स्थिति पर राज्य सरकार और

fcgkj jkT; iznw"k.k fu;a=.k cksM से नाराजगी जताते हुए 17 अप्रैल 2018 को राज्य सरकार से चार सप्ताह में रिपोर्ट देने को कहा।[54] इस संदर्भ में केंद्र और राज्य सरकारों को ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए एक ऐसा प्रभावी तंत्र बनाना चाहिए जो पूरे वर्ष रात–दिन प्रदूषण नियंत्रण और पर्यावरण जागरूकता के बारे में काम करे। **lokZPp U;k;ky;** ने 10 अप्रैल 2018 को एक सुनवाई के दौरान अपनी नाराजगी व्यक्त की और कहा कि विधायिका अदालत को बेवकूफ बना रही है और पर्यावरण संरक्षण के लिए जमा राशि को अन्य मद्दों में खर्च किया जा रहा है।[55] इसी तरह 13 नवंबर 2017 को दिल्ली एन सी आर में प्रदूषण को लेकर केंद्र सरकार के साथ दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा सरकारों को नोटिस जारी करते हुए पराली जलाने और सड़कों की धूल से होनेवाले प्रदूषण पर अंकुश के निर्देश देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने इन सभी सरकारों से स्पष्टीकरण मांगा।[56] राष्ट्रीय राजधानी **fnYyh** समेत पूरे उत्तर भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए आपात जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। जहाँ 2018 में पर्यावरण के मामले में वैश्विक स्तर पर भारत की रैंकिग 180 देशों में 177वीं है, वहाँ 2016 में यह रैंकिंग 141 थी। ऐसी भयावह स्थिति को देखते हुए ही उपराष्ट्रपति **,e- oSadS;k uk;M** ने कहा है, ''अब सरकार के लिए जरूरी है कि वह पर्यावरण कानूनों का उल्लंघन करने पर सख्त कार्यवाही करे''।[57]

fu"d"kZ

uklk के वैज्ञानिकों द्वारा दी गई यह चेतावनी है कि यदि जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए वैश्विक स्तर पर ठोस कदम नहीं उठाए गए तो पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के कारण हम भुन कर टोस्ट बन जाएँगे। दुनिया को अब 1988 से पहले के तापमान स्तर पर लौटने की जरूरत है। मानवीय गतिविधियों से उपजी कार्बन डाईऑक्साइड को पृथ्वी का वातावरण सिर्फ कुछ दशकों तक और संभाल सकता है। इसके बाद जीवों का बड़े स्तर पर सफाया, पारिस्थितिकी तंत्र में गड़बड़ी और समुद्र के स्तर में नाटकीय बढ़त देखी जाएगी। **vkbZihlhlh fjikVZ** (2017) के अनुसार वर्ष 1980-99 की तुलना में 2100 में वैश्विक तापमान में 6.4 डिग्री सेल्सियस तक वृद्धि हो सकती है। भयावह होते जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए 22 अप्रैल 1970 से शुरु हुआ पृथ्वी सम्मेलन 22 अप्रैल 2018 तक पहुँच चुका है। उल्लेखनीय है कि पर्यावरण संरक्षण से संबंधित **D;ksVks lfU/k** वर्तमान में कार्बन उत्सर्जन पर लागू है। इस संधि के अंतर्गत जहाँ अमीर देशों को कार्बन उत्सर्जन को सीमित करना आवश्यक है वहाँ विकासशील देशों को इस दिशा में सिर्फ सुझाव दिया गया है, उन पर कानून प्रतिबंध नहीं है। पेरिस समझौते के अनुसार 21वीं सदी के औसत तापमान में, औद्योगीकरण के पूर्व के वैश्विक तापमान के स्तर की तुलना में, दो डिग्री सेल्सियस से अधिक की वृद्धि नहीं होने दी जाएगी। इसके साथ ही सदस्यों द्वारा यह प्रयास किया जाएगा कि वैश्विक औसत तापमान

में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखा जाए। जलवायु परिवर्तन पर हुए पेरिस समझौते के आलोक में ही नवंबर 2016 में **ekjkds'k** तथा नवंबर 2017 में **oku** सम्मेलन हुए। स्पष्ट है कि जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान का मुद्दा अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सार्थक एवं नैतिक पहल से ही सुलझाया जा सकता है। आज हमारी पृथ्वी के सम्मुख **lykfLVd** कचरे ने पूरे पर्यावरण को प्रभावित करते हुए समुद्री जीवों के लिए मुसीबत खड़ी कर दी है। अतः प्लास्टिक पर रोक एक वैश्विक जिम्मेदारी है। पर्यावरण संरक्षण के संबंध में बनाए गए अधिनियमों को सख्ती से लागू करने का अब समय आ गया है।[58] आज समय की माँग है कि पर्यावरण ह्रास के प्रति हम सचेत हो जाएँ, क्योंकि हजारों वर्षों से जो धरती हम सबका संरक्षण और पोषण करती रही है, आज हम उसके स्वास्थ्य की चिंता करें क्योंकि हमारा भविष्य धरती के भविष्य से जुड़ा है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम में भारत की जिम्मेदारी इसलिए भी अहम हो जाती है कि **fo'o LokLF; lxBu** द्वारा जारी 2016 की रिपोर्ट के अनुसार 15 सबसे प्रदूषित शहरों में 14 भारत के हैं।[59]

lanHk xzFk

1. पेंटागन रिपोर्ट, 31 जनवरी, 2010
2. *उपरोक्त*
3. संयुक्त राष्ट्र का **fo'o fodkl ifrosnu**, 2018
4. पेंटागन रिपोर्ट, *उपरोक्त*
5. प्रोफेसर एंड्रयू शेफर्ड का आलेख 'अंटार्कटिका की पिघलती बर्फ' : *प्रभात खबर* (पटना, 5 अप्रैल 2018), पृ.9
6. *उपरोक्त*
7. *उपरोक्त*
8. *उपरोक्त*
9. ग्लेश्यिर बर्फ का विशालकाय हिस्सा होता है। जब वे पिघलते हैं तो समुद्र का स्तर बढ़ने में उनका बड़ा योगदान होता है। देखिए प्रोफेसर **iky foucjh**, उदघृत *प्रभात खबर* (पटना, 5 अप्रैल 2018), पृ.9
10. *उपरोक्त*
11. See the New Yorkers' Report, February 1, 2016 issue
12. संयुक्त राष्ट्र की इस संस्था को 2007 में शांति नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया (नोबेल प्राइज डॉट ओर्ग. 12 अक्टूबर 2007, http://nobelprize.org/nobelPrizes/peace/laureates/2007/press.htm अभिगमन तिथि : 3 नवंबर 2013)।

13. World Metrological Organization Report- WMO Secretary General Petteri Taalas, Press Release Number : 04/2017
14. See the Report of the Guarded Institute of Space Science
15. *The Times of India* (Patna, 31 March 2018), p.1, पुनः 7 अप्रैल 2018 को उत्तर बिहार में आँधी-पानी के साथ ओले पड़े और जान–माल की क्षति के साथ-साथ खड़ी फसलें भी बर्बाद हुईं– *दैनिक भास्कर* (पटना, 8 अप्रैल 2018), पृ.1
16. *प्रभात खबर* (पटना, 24 अप्रैल 2016), पृ.9
17. देखिए वरूण गाँधी का आलेख 'बदलते पर्यावरण में खेती का संकट' : *हिन्दुस्तान* (पटना, 23 मई 2016), पृ.12
18. *प्रभात खबर* (पटना, 24 अप्रैल 2015), पृ.11
19. दक्षिण गोलार्द्ध में तापमान में व द्धि की वजह माना जानेवाला अंटार्कटिक की ओज़ोन परत में मौजूद छिद्र सिकुड़ता जा रहा है। समाचार एजेंसी Mh- ih- ,- के मुताबिक वैज्ञानिक LVhQu oM कहते हैं कि 1987 की मांट्रियल संधि काम कर रही है : *हिन्दुस्तान* (पटना, 4 दिसंबर 2010)
20. See the proceedings of Kyoto Protocol (1997) of the United Nations Framework Convention on Climate Change, 11 December 1997
21. See the proceedings of Copenhagen Summit of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 18 December 2009
22. See the proceedings of Cancun Summit of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 10 December 2010
23. See the proceedings of Durban Summit of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, November-December 2011
24. See the proceedings of Doha Summit of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 26 November- 8 December 2012
25. See the proceedings of Warsaw Summit of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 11-12 November, 2013
26. See the proceedings of Lima Conference of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 14 December 2014

27. See the proceedings of Paris Conference of the United Nations Framework Convention on Climate Change- UNFCCC, 12 December 2015

28. जलवायु परिवर्तन पर अंतर–सरकारी पैनल **vkbZihlhlh** ने अपने 5वें **vkdyu fjikVZ** में एक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन बजट प्रकाशित किया था। दरअसल, CO_2 उत्सर्जन की 2900 गीगाटन की यह सीमा ही **dkcZu Lisl** है।

29. *प्रभात खबर* (पटना, 19 नवंबर 2017), प .10

30. *प्रभात खबर* (पटना, 6 मई 2018), प .10

31. *हिन्दुस्तान* संपादकीय (पटना, 21 अक्टूबर 2017), प .14

32. पंकज चतुर्वेदी, वरिष्ठ पत्रकार का आलेख 'स्मॉग से कहीं ज्यादा प्रदूषित है इस मौसम की हवा'– *हिन्दुस्तान* (पटना, 20 अप्रैल 2018), पृ.12

33. See the State of Global year Report – April 2018, *हिन्दुस्तान* (पटना, 20 अप्रैल 2018), पृ.16

34. *प्रभात खबर* (पटना, 25 जून 2015), पृ.11

35. See the report of Ground Water Board, June 2015, Ministry of Water Resources, Government of India

36. *प्रभात खबर* (पटना, 25 जून 2015), पृ.11

37. देखिए अनिल प्रकाश जोशी का आलेख ''केपटाउन कहीं भी दस्तक दे सकता है'' : *हिन्दुस्तान* (पटना, 21 फरवरी 2018), पृ.10

38. *उपरोक्त*

39. देखिए उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू का आलेख 'ताकि अगली पीढ़ी को भी पानी मिले' : *हिन्दुस्तान* (पटना, 22 मार्च 2018), पृ.10

40. देखिए दिनेश मणि आईसेक्ट विश्वविद्यालय द्वारा अनुसृजीत परियोजना के अंतर्गत निर्मित पुस्तक ***tyok;q ifjorZu&2015***

41. देखिए जल प्रदूषण निवारण नियंत्रण अधिनियम, 1974

42. See the report of Ministry of Water Resources, Government of India, April 2002

43. Indian Network for Climate Change Assessment "Climate Change and India: A 4x4 Assessment- Asectoral and regional analysis for 2030's." Ministry of Environment and Forests, Government of India.

44. National Water Policy, 2012
45. See the Subramanian Swamy Committee report- 29 August 2014
46. *प्रभात खबर* (पटना, 6 मई 2018), पृ.10
47. देखिए संपादकीय, *प्रभात खबर* (पटना, 13 अप्रैल 2018), पृ.8
48. देखिए उपराष्ट्रपति ,e- o[d;k uk;M का आलेख 'ताकि अगली पीढ़ी को भी पानी मिले', पूर्वोक्त
49. देखिए अनिल प्रकाश जोशी का आलेख ''केपटाउन कहीं भी दस्तक दे सकता है'', पूर्वोक्त
50. See United Nations World Water Development Report – WWDR, 20 March 2015
51. देखिए ज्ञानेन्द्र रावत का आलेख : 'पृथ्वी को बचाने की मुहिम शुरु करने का दिन', *हिन्दुस्तान* (पटना, 21 अप्रैल 2018), पृ.12
52. मार्क टली का आलेख 'जलवायु संकट से निपटने की अनूठी उम्मीद' : *दैनिक भास्कर* (पटना, 31 अगस्त 2015), पृ.10
53. ज्ञानेन्द्र रावत का आलेख : 'प्लास्टिक कचरे ने खड़ी की समुद्री जीवों के लिए मुसीबत' : *हिन्दुस्तान* (पटना, 14 मार्च 2018), पृ.14
54. देखिए संपादकीय *दैनिक जागरण* (पटना, 18 अप्रैल 2018), पृ.10
55. संपादकीय *प्रभात खबर* (पटना, 13 अप्रैल 2018), पृ.8
56. *दैनिक भास्कर* (पटना, 14 नवंबर 2017), पृ.12
57. देखिए उपराष्ट्रपति ,e- o[d;k uk;M का आलेख 'पर्यावरण कानून सख्ती से लागू करने का वक्त : *दैनिक भास्कर* (पटना, 24 अप्रैल 2018), पृ.6
58. *उपरोक्त*
59. *दैनिक जागरण* (पटना, 3 मई 2018), पृ.12

पर्यावरण संरक्षणः विकास एवं प्रदूषण के बीच संघर्ष

शशि भूषण कुमार एवं श्वेताम्बु गौतम

Ikjk'k *पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज न केवल अखिल भारतीय स्तर पर देखी जा रही है बल्कि समूचा विश्व इससे आक्रांत है। तीव्र आर्थिक विकास तथा बढ़ती मानव आबादी ने आज देश के पर्यावरण, अधिसंरचना (infrastructure) एवं प्राकृतिक संपदा पर अत्यधिक दबाव बना डाला है। औद्योगिक प्रदूषण, भूक्षरण, वनों का कटाव, तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण और भूमि का सिकुड़न इत्यादि कुछ ऐसे कारक हैं जो पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा दे रहे हैं। भूमि और जल जैसे प्राकृतिक संपदाओं का अत्यधिक दोहन एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप इन प्राकृतिक संपदाओं का पर्यावरणीय क्षरण शुरू हो गया। मानव सहित इस धरती पर रहने वाले सभी प्राणियों एवं वनस्पतियों के समक्ष आज पर्यावरण प्रदूषण एक विकराल समस्या के रूप में है। वैश्विक तापमान में बढ़ोतरी, अम्ल वर्षा, जलवायु परिवर्तन, ओज़ोन परत में छेद, बाढ़, सूखा, चक्रवात (सूनामी), भूमिगत जल का प्रदूषित होना, वायु प्रदूषण, तटीय जल प्रदूषण इत्यादि प्राकृतिक आपदा की एक लंबी सूची है, जिसका धरती पर रहने वाले सभी जीव - जन्तु सामना कर रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण के संवैधानिक प्रावधानों एवं नियामक संस्थाओं के बावजूद भारत में पर्यावरण संकट गहराता जा रहा है। प्रस्तुत लेख में पर्यावरण संकट के विभिन्न आयामों एवं पर्यावरण* संरक्षण की दिशा में किए गए प्रयासों का सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना

पर्यावरण दो शब्दों 'परि' और 'आवरण' से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ परि यानि चारों ओर और आवरण यानि घेरा है अर्थात् हमें चारों ओर से घेरनेवाला पर्यावरण है। लुई थामस ने अपनी पुस्तक *द लाइव्स ऑफ ए सेल* में धरती को एक जीवंत सेल (living cell) और उसके चारों ओर के वातावरण को उसकी रक्षा का एक आवरण बताया है। यही रक्षा-कवच पर्यावरण है जो धरती की सतह के

ऊपर हवा को रोक रखने में सहायता करता है।[1] पर्यावरणीय ज्ञान कोष (1975) के अनुसार पर्यावरण उन सब परिस्थितियों और प्रभावों का कुल योग है जो जीवधारियों के जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं।[2] साधारण शब्दों में, जीवित प्राणियों के अस्तित्व, जीवन और पुनरूत्पादन को प्रभावित करने वाले सभी तत्व और कारक पर्यावरण कहलाते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की समझ

प्रकृति एक निश्चित नियमबद्धता से कार्य करती है। यदि उसके किसी अवयव या क्रिया के साथ ज्यादती की जाए तो उसका संतुलन बिगड़ जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग से बढ़ाई गई मानव की उत्पादन क्षमता ने पर्यावरण के प्रदूषण का संकट उत्पन्न किया है।[3] पर्यावरण के विविध अंगों जल, थल, आकाश, वायु आदि में ऐसा परिवर्तन, जो कि उपर्युक्त तत्वों के भौतिक, रासायनिक, जैविक गुणों में हानिकारक परिवर्तन कर दे, उसे प्रदूषण कहा जाता है। जब हम पर्यावरण प्रदूषण की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि कोई प्राकृतिक अथवा मानवीय संसाधन मानवीय अथवा लाभकारी प्रयोग के लिए भौतिक, रासायनिक अथवा जीव वैज्ञानिक कारणों से अनुपयुक्त हो गया है।

प्रकृति जो जीवन प्रदान करती है तथा प्राकृतिक संसाधन जिसने मानवीय विकास व मानवीय जीवन को शक्ति प्रदान की, हर तरह से पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की, लेकिन आज हमने अपनी इस प्राकृतिक विरासत को खत्म होने के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया है। मानवीय क्रियाकलापों से पर्यावरण पहले से अधिक बिगड़ता जा रहा है। वर्तमान जीवन शैली ने संपूर्ण विश्व को पर्यावरण विनाश के खतरे के प्रति चिंतित कर दिया है। 2 फरवरी 2007 को दुनिया के शीर्ष पर्यावरणविदों के एक पैनल ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि वैश्विक तापमान (Global warming) में बढ़ोतरी की सच्चाई पर अब कोई संदेह नहीं रहा है और इसके लिए मनुष्य खुद जिम्मेदार है। प्रतिवेदन में कहा गया है कि पूरी दुनिया में समुद्र के तापमान और वायु-चक्र में बदलाव हुआ है, पहाड़ों पर बर्फ पिघल रही है और समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। इससे वातावरण बदल रहा है। भविष्य में पिछड़े देशों को इसका खामियाजा सबसे ज्यादा भुगतना पड़ेगा।[4]

विश्व में औद्योगीकरण और तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण इतना बढ़ चुका है कि प्रकृति का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (डब्लू.ई.डी.सी.) की रिपोर्ट के अनुसार जीवाष्म ईंधन के दहन से वायुमंडल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है जो विश्व के तापमान को धीर-धीरे बढ़ा रही है। वर्तमान शताब्दी के आरंभ में यह 'ग्रीन हाउस प्रभाव' विश्व के औसत तापमान को इतना बढ़ा सकता है कि हमें कृषि उत्पादन के

क्षेत्र बदलने पड़ सकते हैं, समुद्री जल-स्तर बढ़कर तटीय नगरों को जलमग्न कर सकते हैं तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था चरमरा सकती है। आयोग ने इन्हें विकास की असफलताएँ और मानवीय पर्यावरण के व्यवस्थापन की कमियाँ कहा है।[5] यह समस्या विकसित एवं विकासशील दोनों देशों के सम्मुख है, यद्यपि उसका स्तर और स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। अतः विश्व के सभी भागों में जनसाधारण अब पर्यावरण के प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के तीव्र विनाश के प्रति चिंतित हो गए हैं और पर्यावरण संरक्षण के लिए जन आंदोलन विश्वजनीन स्तर पर देखे जा सकते हैं। यह महसूस किया जाने लगा है कि भौतिक विकास का परिणाम वर्तमान में अच्छे समाज और स्वस्थ जीवन की स्थापना के लिए किए गए प्रयत्नों के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए सुखद और सुरक्षित जीवन का उद्देश्य हो, न कि प्रकृति का विनाश। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक विशेषज्ञ समिति के प्रतिवेदन के अनुसार धरती का वातावरण नाशवान है और खुद को शुद्ध कर लेने की उसकी शक्ति सीमित है। समकालीन समय में विश्व बैंक की प्रमुख प्राथमिकताओं में सर्वोपरि आर्थिक विकास की निरंतरता (Sustainability) है।[6] परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र में पर्यावरण के प्रति जागरूकता और पर्यावरण संबंधी नीतियों का निर्माण किया गया है।

पर्यावरण और विकास का मिथक

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति की ओर बढ़ता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर विकास की गति हमारे लिए कष्टकारी सिद्ध होती जा रही है। इसी विकास के कारण हमारा पर्यावरण प्रभावित होकर प्रदूषित होता जा रहा है। विकास का सामान्य अर्थ माना जाता है 'नियोजित परिवर्तन', बड़ी आधारभूत संरचना अथवा आर्थिक वृद्धि। किंतु यह विस्तृत एवं सही अर्थ नहीं है, क्योंकि विकास मानव गरिमा एवं स्वतंत्रता का पर्याय भी होता है, जैसा कि प्रो. अमर्त्य सेन ने माना है, *'डेवेलपमेंट इज़ फ्रीडम'*।[7] वह मानते हैं कि विकास मनुष्य की वास्तविक स्वतंत्रताओं को विस्तारित करने की प्रक्रिया है तथा आर्थिक वृद्धि (सकल घरेलू उत्पाद और निजी आय में वृद्धि) उसे प्राप्त करने का मात्र एक साधन है। मगर मानव की वास्तविक स्वतंत्रताएँ तमाम सामाजिक और आर्थिक निर्धारकों यथा– स्वास्थ्य, शिक्षा, नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार पर निर्भर करती हैं। उनके अनुसार विकास के लिए अस्वतंत्रता के प्रमुख स्रोतों यथा– गरीबी, व्यवस्थापरक सामाजिक वंचना, प्रतिकूल आर्थिक अवसर, निरंकुशता, असहनशीलता आदि को दूर करना जरूरी है। अमर्त्य सेन के अनुसार बाजार का आर्थिक वृद्धि में योगदान महत्वपूर्ण है लेकिन उसके पहले उत्पादों और उपहारों के विनिमय की महत्ता को स्वीकार करना जरूरी है।[8] विकास को सच्चे अर्थ में क्रांतिकारी संरचनात्मक परिवर्तन के रूप में लिया जाना श्रेयस्कर होगा, जिसमें भूमि के वितरण, जल के संरक्षण एवं उपयोग, वनों के संरक्षण, लघु वनोपज पर सामुदायिक अधिकार,

खान-खदान पर सामुदायिक/पंचायत हक शामिल है।

विकास के विभिन्न स्वरूपों के पक्ष में तरह-तरह की दलीलें दी जाती है और विकास को 'आधुनिकीकरण' तथा आधुनिकीकरण को 'पश्चिमीकरण' का पर्याय मानते हुए कई मिथक गढ़ लिए जाते हैं, जिससे बुद्धिजीवियों से लेकर आम लोगों तक को सहज विश्वास दिलाया जा सके कि विकास का पश्चिमी मॉडल ही सर्वश्रेष्ठ है। अकादमिक दुनिया से लेकर आमजन तक प्रचलित विकास संबंधी कुछ मिथक या भ्रांतियाँ इस प्रकार हैं :

I. विकास का तात्पर्य आर्थिक वृद्धि मात्र है जिसे अर्थशास्त्री बाजार योग्य उत्पाद एवं सेवाओं के रूप में शामिल करते हैं जो अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद तथा निजी आय में शामिल की जाती है। इसमें प्रकृति संरक्षण के पारंपरिक तरीकों को शामिल नहीं किया जाता है क्योंकि इनसे आर्थिक संव्यवहार या लेन-देन सम्पन्न नहीं माना जाता है। महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घरेलू कार्यों की गणना सकल घरेलू उत्पाद में शामिल नहीं है, क्योंकि इन सब के लिए भुगतान नहीं किया जाता है।

II. विकास का आशय आज पश्चिमी औद्योगीकरण का अनुकरण है क्योंकि यह मिथ्या धारणा बना ली गई है कि सारी दुनिया को विकास के उन्हीं चरणों से गुजरना पड़ेगा जिनसे यूरोप और अमेरिका के देश गुजर चुके हैं अर्थात् आर्थिक वृद्धि के उच्चतम स्तर पर पहुँचना, पश्चिमी मूल्यों (भोगवादी संस्कृति), संस्थाओं और व्यवहारों को अपनाना, लेकिन इससे मानवीय प्रसन्नता गायब सी हो गयी है।

III. विकास विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक मापदंडों (विवेकशीलता, मापने की क्षमता, मात्रा में गणना करने की क्षमता) पर खरा उतरने की शर्त पर ही संभव है, लेकिन कई धार्मिक पद्धतियाँ और रीति.रिवाज आर्थिक विकास में सहायक होते हैं जैसे सामाजिक सद्भाव, सांप्रदायिक सौहार्द इत्यादि। पश्चिमी यूरोप में समाजवादी मैक्स वेबर के अनुसार प्रोटेस्टैंट संप्रदाय के विचार–'टाइम इज़ मनी' पूंजीवाद की भावना विकसित करने में सहायक हुए।

IV. आज विकास का अर्थ उपभोग का ऊँचा स्तर होता है अर्थात् ज्यादा क्रय या उपभोग बेहतर (more is better) का सिद्धांत लागू होता है। आजकल का आप्त वचन है 'मैं हूँ क्योंकि मैं खरीदता हूँ' जबकि विवेकवादी देकार्त का नारा था 'मैं हूँ क्योंकि मैं सोचता हूँ'।

V. विकास का अर्थ है बड़ी संरचना का होना अर्थात आकार का महत्व (size matters) है। यह इ.एफ.शुमैकर के 'लघुता के सौंदर्य' (small is beautiful) को नहीं मानता है। बड़े-बड़े बांध, लंबी-चौडी सड़कें, बड़े-बड़े पुल, बड़ी-बड़ी

इमारतें आदि को महत्व दिया जाता है। दुर्भाग्यवश बड़ी संरचनाओं के निर्माण के कारण भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक करोड़ों लोग विस्थापित हो चुके हैं और अभी तक उन्हें पुनर्वासित नहीं किया जा सका है। विश्व की अनेक जीवनदायिनी और व्यापारिक मार्गों वाली नदियाँ अपना मार्ग बदल रही हैं और कुछ नदियाँ सूखने की कगार पर हैं।

VI. विकास का अर्थ है विश्व में एकरूपता हो, दूरी कम हो और हर चीज की गति तेज हो। भूमंडलीकरण, जो वास्तव में 'भूमंडीकरण' है, को जीवन को आरामदायक बनाने की कारगर प्रक्रिया मानी जाती है तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं को नजरअंदाज करके विश्व को एक बड़े गांव (global village) के रूप में घोषित किया जाता है। थॉमस फ्रीडमैन ने 'वर्ल्ड इज फ्लैट' की अवधारणा दी है, जो यथार्थ में मौजूद नहीं है।

VII. विकास की धारा पहले ऊँचे तबके के लोगों के पास पहुँचेगी और कालांतर में 'रिसाव सिद्धांत' (Trickle down theory) के अनुसार निचले तबके तक पहुंचेगी, किन्तु 1947 से आज तक भारत में ऐसा नहीं हुआ। दूसरे अन्य विकासशील देशों में भी ऐसा फलीभूत नहीं हुआ।

VIII. विकास का स्वरूप मूर्त हो, जो आसानी से सबको प्रत्यक्ष दिखे। जो नहीं दिखता (जैसे अंतर्वस्तु) वह मान्य नहीं होता। जैसे शिक्षा का सीधा-सपाट अर्थ आकर्षक भवनों का निर्माण, यूरोपीय वेश में अध्यापकों की नियुक्ति, विद्यार्थियों का नामांकन, उनकी परीक्षा और उसके परिणाम तक सीमित किया जाता है जबकि विकास का स्वरूप पढ़ाई-लिखाई की गुणवत्ता से होना चाहिए जो सिरे से गायब है।

IX. विकास का कार्य किसी बाह्य एजेंसी (सरकारी या निजी) के द्वारा ही संपन्न किया जा सकता है, विशेषकर बहुराष्ट्रीय निगमों और बहुराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा प्रदत्त धन, ज्ञान, प्रौद्योगिकी इत्यादि से। वास्तव में यह प्रवृत्ति पराश्रयता की सूचक है। कोई स्थानीय समुदाय अपने संचित देशज ज्ञान से भी बेहतर विकास कार्य संपन्न कर सकता है, किंतु इसके लिए प्रायः पहल नहीं होती है।[9]

स्पष्ट है कि विकास मात्र आर्थिक वृद्धि से सीधे प्राप्त होना आवश्यक नहीं है। दूसरे शब्दों में, विकास के लिए आर्थिक वृद्धि जरूरी है, मगर पर्याप्त नहीं है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. अमित भादुड़ी ने 'प्रतिष्ठापूर्ण विकास' की अवधारणा पेश की है जिसमें मानव विकास से वृहत्तर परिवर्तन की बात कही गई है जो तथाकथित 'मुक्त बाजार' और 'भूमंडलीकरण' की यूरोप-केंद्रित आधुनिकता और औद्योगीकरण से बिल्कुल भिन्न है।[10] इसीलिए भूटान जैसे देश में सुख (जो सबसे ज्यादा विस्तृत अवधारणा

है) का आधार आर्थिक वृद्धि को नहीं माना गया है बल्कि वहाँ राष्ट्रीय प्रसन्नता सूचकांक (नेशनल हैप्पीनेस इंडेक्स) को 1972 से ही शुरू किया गया जिसमें भौतिक सुविधाओं की अपेक्षा सतत् विकास के लिए अच्छे जीवन के रूप में अभौतिक पहलुओं को ज्यादा महत्व दिया गया है। भारत को एक विशेष दर्शन में आध्यात्मिक देश माना जाता था और सांसारिक चीजों को प्रायः त्याज्य माना जाता था। यद्यपि पूर्व में कई भौतिकवादी दर्शन भी यहाँ थे जैसे लोकायत (चार्वाक), सांख्य आदि लेकिन विकास के विस्तृत अर्थ में तमाम मानवाधिकारों की व्यावहारिक उपलब्धता जरूरी थी।

यहाँ इस बात पर जोर देना जरूरी है कि भारत जैसे सभी विकासशील देशों में पारंपरिक ज्ञान, पारंपरिक पारिस्थितिकी संरक्षण, जैव-विविधता आदि की जानकारी उपलब्ध रही है, जो यूरोप, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि की तथाकथित आधुनिक विज्ञान से भिन्न है और जो सस्ती, टिकाऊ तथा स्थानीय समुदायों द्वारा आसानी से उपयोग में लाने के योग्य है। बिहार में आहर-पईन सिंचाई की सस्ती तथा सुलभ व्यवस्था मौजूद रही है किंतु सरकार, समुदाय और समाज की उपेक्षा के कारण यह धवस्त हो गई। अब इन आहर-पईन और नहर-नाला को मिट्टी से पाटकर सड़क का निर्माण हो रहा है। भारत में वनस्पतियों की पूजा की परंपरा रही है। इसीलिए पाश्चात्य ज्ञान से हटकर टिकाऊ और सुग्राह्य देशज ज्ञान पद्धति के पुनरावलोकन की महती आवश्यकता है ताकि विकास के वर्तमान मिथक से बाहर निकलकर पर्यावरण के प्रति सचेत हो सकें। विकास का उद्देश्य तात्कालिक लाभ हेतु प्रकृति का विनाश कदापि नहीं होना चाहिए। मनुष्य प्रजाति को पारिस्थितिकी तंत्र की अन्य जैविक प्रजातियों (वनस्पतियों, जीव-जंतुओं) के साथ-साथ अजैविक पदार्थों (यथा पहाड़ों, नदियाँ, झीलों इत्यादि) का भी पर्याप्त सम्मान करना चाहिए क्योंकि उनका उपयोगितापरक मूल्य (Instrumental value) के साथ–साथ आंतरिक मूल्य (Intrinsic value) भी है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण के सांस्कृतिक पहलू

मानवीय जीवन के आरंभ से ही मनुष्य एवं पर्यावरण में आपसी संबंध बना हुआ है। मनुष्य प्रकृति पर निर्भर करता है। अतः उसके अस्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश अनिवार्य है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण कोई नवीन अथवा अछूती बात नहीं है। पर्यावरण संरक्षण भारतीय संस्कृति में व्याप्त है और हमारी सांस्कृतिक दृष्टि सदैव पर्यावरण की पोषक रही है क्योंकि उनकी यह मान्यता है कि मानव प्रकृति की श्रेष्ठतम कृति है। अतः यदि प्रकृति का पोषण होता रहा तो उसके माध्यम से मानवीय व्यक्तित्व भी परिपुष्ट होता रहेगा। भारतीय संस्कृति की विशिष्टताएँ– अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता आदि न केवल मानव तक बल्कि प्रकृति के हर जीव तक व्याप्त है।[11] हम प्रकृति पूजक रहे हैं जिसमें अग्नि, इंद्र, वरूण, सोम, सूर्य, उषा आदि आराध्य हैं। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के बीज मंत्र, यज्ञ, पीपल, अश्वत्थ, तुलसी आदि की

उपासना पर्यावरण की शुद्धि के परिचायक हैं।[12] आज भी जब कोई व्यक्ति या संगठन नया निर्माण शुरू करता है अथवा किसान भूमि की जुताई शुरू करता है तो हमारे यहाँ धरती माता को प्रसन्न करने के लिए भूमि पूजन जैसी खास परंपरा है, जो हम भारतीयों का प्रकृति के प्रति अनुराग को दर्शाता है।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण के लिए वैदिक युग में नदियों के देवत्व वाला स्वरूप उभरकर हमारे समक्ष उपस्थित हुआ था। नदी सूक्त में कहा गया हैः *गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती। नर्मदे सिंधु कावेरी जले स्मिन्निधिं कुरू।।*[13] एक समय था जब स्वयं गंगा शब्द नदी मात्र की द्योतक थी अर्थात् सभी नदियाँ गंगा थीं। नदी मात्र के प्रति जो आत्मीयता थी, वह आज भी सुरक्षित है। वेदों में भी कहा गया है *'रक्षाये प्रकृति पातुं लोका"*[14] अर्थात् प्राणीमात्र के लिए प्रकृति की रक्षा कीजिए। आर्य वृक्षों को भी पूजते थे और नदियों को भी, जो वन और जल-संपदा के संरक्षण के माध्यम तो थे ही, वातावरण के प्रदूषण से मुक्ति का माध्यम भी थे। तुलसी, वट, पीपल और बेल आदि वृक्ष पवित्र माने जाते थे। आधुनिक वैज्ञानिक खोज इन्हीं की महत्ता को वैज्ञानिक धरातल पर सत्य प्रमाणित कर रही है जैसे पीपल अत्यधिक ऑक्सीजन से युक्त है और तुलसी अनेक रोगों की निवारक। वेदों, उपनिषदों, बौद्ध और जैन परंपरा सभी में जीव-हत्या अथवा वृक्ष काटने की मनाही है। प्राचीन युग के विद्वान कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में वन संरक्षण का उल्लेख किया है तथा पशुओं के शिकार के संबंध में अनेकों जटिल नियम प्रस्तुत किए हैं। अधुनातन परिभाषा के अनुसार कौटिल्य भारत के प्रथम वन एवं वन्य जीव संरक्षक थे।[15] इस प्रकार भारत के धर्म, दर्शन, रीति-रिवाज एवं विविध त्यौहार सब भारतीय पर्यावरण की शुद्धि और संतुलन में सहायक थे।[16] अतः यही कहा जा सकता है कि पर्यावरण के संरक्षण के लिए न केवल वर्तमान में बल्कि प्राचीन समय से भारत में जागरूकता विद्यमान थी।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

अंधाधुंध वनों की कटाई, वन्य-पशुओं का शिकार, वनस्पतियों एवं जीवों के आपसी संबंधों में कमी, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण में वृद्धि, जनसंख्या-विस्फोट, परमाणु भट्टियों से पैदा होने वाली रेडियोधर्मी ईंधन की राख, रासायनिक प्रदूषक तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जनित प्रदूषक सामग्री के विस्तार से जो पारिस्थितिकी परिवर्तन सामने आ रहे हैं, उससे हम तेजी से पर्यावरण अधोगति की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। प्रकृति के अन्यायपूर्ण दोहन के कारण जो स्थितियाँ पैदा हो रही हैं उसमें प्रकृति कब तक मनुष्य का साथ दे पाएगी; यह अनुमान लगाना कठिन है। विकसित देश जिस आर्थिक विकास का लाभ आज उठा रहे हैं, वह भूतकाल में पर्यावरण के संरक्षण को ध्यान में रखे बिना प्राप्त किया गया था।[17] ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड, जलवाष्प, क्लोरो-फ्लोरो कार्बन, मीथेन, नाइट्रस

ऑक्साइड व ओज़ोन गैसें) की वृद्धि से वायुमंडल में विकिरणों के अवशोषण करने की क्षमता में लगातार वृद्धि हो रही है, जिससे पृथ्वी का तापमान बढ़ता जा रहा है। तापमान में वृद्धि को ही 'ग्लोबल वार्मिंग' कहा जाता है। ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण बढ़ती हुई गर्मी ध्रुवों के बर्फ को पिघलाकर प्रलय मचा देगी।

भारत सरकार की आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट 2018 में मौसम के बदलाव के कई तथ्य सामने आ रहे हैं। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, तेलंगाना और झारखंड– इन नौ राज्यों के 61 से भी ज्यादा जिलों में विगत् वर्षों में तापमान में 0.25 से 0.75 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हुई। इसके अनुसार देश में मानसून का पैटर्न बदलता दिखाई दे रहा है। 2005 से 2015 तक दस वर्षों में मध्य प्रदेश के 23, महाराष्ट्र के आठ, पंजाब के सात, झारखंड के पांच और गुजरात के चार जिलों में वर्षा का औसत स्तर 50 से 500 मिमी. कम हुआ है। विगत् दस वर्षों में बदलते मौसम का सबसे ज्यादा असर उत्तर प्रदेश और बिहार पर हुआ है। दोनों राज्यों में औसतन वर्षा 150 से 500 मिमी. कम दर्ज हो रही है।[18]

भारत में पिछले कुछ वर्षों की समस्या को गौर से देखें तो जलवायु परिवर्तन का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा है। अगस्त 2010 में लेह शहर बादल फटने से तबाह हो गया था। इस कहर में लगभग 200 लोगों की मौतें हुई थी। जून 2013 में उत्तराखण्ड में हिमालयन सूनामी की महात्रासदी देखने को मिली जिसमें हजारों लोग मारे गए। सितंबर 2014 में जम्मू और कश्मीर ने 60 वर्षों की सबसे भयानक बाढ़ के अभिशाप को झेला जिसमें छः लाख लोग प्रभावित हुए और लगभग 200 से ज्यादा लोग मरे।[19] राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) की हैदराबाद स्थित राष्ट्रीय दूर संवेदी केन्द्र (NRSC) के नए अध्ययन के अनुसार भारत के 46,35,580 हेक्टेअर वन आच्छादित क्षेत्र (जिसमें मैंग्रोव वन सहित 14 प्रकार के वन शामिल हैं) 2001 से 2014 के बीच अपनी हरियाली को खोते जा रहे हैं। कुल वन आच्छादित क्षेत्र का लगभग 55,02,860 हेक्टेअर वन (महत्वपूर्ण वनों सहित) सूखने की कगार पर है जो कि जैव-विविधता के नुकसान का कारण बन सकता है। ऊंचाई वाले वन क्षेत्रों का सूखना तापमान में बढ़ोतरी के कारण हो रहा है।[20] भारत सरकार का जल संसाधन मंत्रालय के अधीन कार्यरत् केंद्रीय भूमिगत जल बोर्ड के एक अध्ययन के अनुसार भारत में 2007 से 2017 के बीच भूमिगत जल के स्तर में 61 प्रतिशत का ह्रास हुआ है। महानगरों की बढ़ती आबादी के कारण भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन से भूमिगत जल का संकट उत्पन्न हो गया है।[21]

यह हम सबके लिए चिंता का कारण होना चाहिए कि 2018 में भारत की पर्यावरण रैंकिंग 180 देशों में 177वीं रही, जबकि 2016 में यह 141 थी। येल और कोलंबिया विश्वविद्यालयों द्वारा विश्व आर्थिक मंच के साथ मिलकर तैयार की गई द्विवार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, 'ठोस ईंधन, कोयला और वाहनों से निकले धुएँ ने

लाखों भारतीयों के लिए हवा की गुणवत्ता बहुत गिरा दी है।[22] प्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण आज पूरी दुनिया के लिए गंभीर चुनौती है। एक गैर-लाभकारी संस्था अर्थ डे नेटवर्क (ई.डी.एन.) के अनुसार, 'समुद्री जीवन को विषैला बनाने और उसे जख्म पहुँचाने से लेकर हमारे भोजन, हार्मोन प्रणाली में बाधा डालने और कई प्राणघातक रोग पैदा करने वाले प्लास्टिक की मात्रा में हो रही वृद्धि हमारी धरती के अस्तित्व के लिए खतरा है।' अनुमान है कि हर साल दुनिया 500 अरब प्लास्टिक थैला इस्तेमाल करती है और 80 लाख टन प्लास्टिक समुद्र में चला जाता है। हम जो प्लास्टिक इस्तेमाल करते हैं उसमें 50 प्रतिशत एकल इस्तेमाल (single use) प्लास्टिक है। 2017 में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने अनुमान लगाया था कि भारत में हर साल करीब 25,940 टन प्लास्टिक पैदा होता है।[23]

अतः आज भारत सहित दुनिया के सभी देश पर्यावरण संकट के दौर से गुजर रहे हैं जिसने दुनिया के सभी देशों का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खींचा है और जिस पर समयानुकूल कार्रवाई की अनिवार्यता है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति अंतर्राष्ट्रीय जागरूकता

पिछले शताब्दी के उत्तरार्ध में विकसित व संपन्न पाश्चात्य राष्ट्रों में पर्यावरण संरक्षण हेतु कुछ समूहों का उदय हुआ। पाश्चात्य देशों में जिस आंदोलन का जन्म हुआ, वह प्राकृतिक संसाधनों के अति प्रयोग और विनाश की चिंता के साथ-साथ एक दूरगामी और विशाल दृष्टिकोण का भी परिणाम था, जो मानवता के लंबे अस्तित्व और जीवन की गुणवत्ता पर केंद्रित था। सर्वप्रथम इसकी परिणति संयुक्त राज्य अमेरिका में 1960 के दशक में प्रारंभ हुए 'पुष्प शिशु' (Flower children) आंदोलन में हुई।[24] उसी समय वहाँ के राष्ट्रपति चुनावों के दौरान पर्यावरण का मुद्दा भी उठाया गया जिसके परिणामस्वरूप अमेरिका में जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण रोकने हेतु विधियों का निर्माण किया गया।[25] लगभग उसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिन्होंने संपूर्ण विश्व का ध्यान पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या और मानव स्वास्थ्य पर उसके प्रभाव की ओर आकर्षित किया जैसे 1963 में जापान में मिनमाटा दुर्घटना, 1966 में नीगाटा दुर्घटना इत्यादि जिनमें पारे के प्रदूषण से अनेक हृदय-विदारक मौतें हुईं। इन घटनाओं से उत्पन्न चिंता के परिणामस्वरूप 1972 में स्टॉकहोम में 'मानव पर्यावरण सम्मेलन' संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में आयोजित हुआ, जिसमें 113 राष्ट्रों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्देश्य प्रदूषण की रोकथाम और प्राकृतिक संसाधनों तथा वन्य जीवन के संरक्षण के लिए विश्वजनीन अभियान की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करना था।[26] 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन के पहले पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए 1970 में न्यूयॉर्क में पहले *अर्थ*-डे का आयोजन किया गया था।

सम्मेलन का एक सकारात्मक परिणाम पर्यावरण के प्रति जागरूकता के विश्वजनीन प्रसार में हुआ और साथ ही विकास, संसाधनों के प्रबंध और नियोजन के समय पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए कार्ययोजना का निर्माण हुआ। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) की घोषणा हुई तथा संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) प्रारंभ हुआ जिसके अंतर्गत पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए अनेक आयोगों, संस्थानों और सम्मेलनों के माध्यम से विश्व पर्यावरण के बेहतर प्रबंध के लिए प्रयत्न प्रारंभ किए गए।

fo;uk lEesyu– संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1985 में विएना सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसका प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की गतिविधियों से उत्सर्जित होने वाले हानिकारक पदार्थों से ओज़ोन की सुरक्षा करना था।

ekfV;y lEesyu& 1987 में ओज़ोन क्षरण करने वाले पदार्थों पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से मांट्रियल में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। प्रोटोकॉल के माध्यम से ओज़ोन क्षरण के लिए उत्तरदायी पदार्थों की मात्रा कम तथा अंततः समाप्त करने के लिए समय-सीमा निर्धारित की गई।

l;Dr jk"V i;koj.k vkj fodkl lEesyu ¼UNCED½& इस सम्मेलन का आयोजन 1992 में *रियो डी जेनेरियो* में किया गया था। इसे 'पृथ्वी सम्मेलन' भी कहा जाता है। इसके घोषणापत्र में पर्यावरण तथा विकास के क्षेत्र में विश्वव्यापी सहयोग, पृथ्वी के पर्यावरण के समन्वय तथा स्वास्थ्य, संरक्षण, सुरक्षा एवं पुनर्स्थापना को सुनिश्चित करने की व्यवस्था, पर्यावरण की रक्षा हेतु जन भागीदारी, सतत विकास हेतु प्रभावी प्रयास, पर्यावरण संबंधी वैधानिक प्रावधानों का क्रियान्वयन इत्यादि शामिल थे।

D;kVk lEesyu& संयुक्त राष्ट्र द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के नकारात्मक प्रभाव पर बल देते हुए दिसंबर 1997 में क्योटो सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें कार्बन डाई ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रो-फ्लोरो कार्बन, परफ्लोरो कार्बन, सल्फर हेक्साफ्लोराइड गैसों को ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों के रूप में पहचान की गई।

fo'o lrr fodkl lEesyu& जोहांसबर्ग में 2002 में आयोजित सतत् विकास सम्मेलन ने विकासशील देशों को भूमंडलीकरण के कुप्रभावों पर चर्चा के साथ-साथ पारिस्थितिकी, पर्यावरण तथा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आयामों के अंतर्संबंधों की व्याख्या का अवसर भी प्रदान किया। सभी राष्ट्रों को एकजुट होकर सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। अंततः सतत् विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कई प्रमुख सिद्धांतों पर लगभग 200 देशों ने सहमति व्यक्त की।

iFke varjk"Vªh; lkyj vyk;al lEesyu& सौर ऊर्जा के अधिकतम इस्तेमाल को लेकर नई दिल्ली में 11 मार्च 2018 को भारत और फ्रांस के संयुक्त प्रयास से प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सोलर अलायंस सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में 121 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। 2015 में भारत और फ्रांस के संयुक्त प्रयास से अंतर्राष्ट्रीय सोलर अलायंस का गठन किया गया था। इसमें शामिल करीब 80 प्रतिशत देश कर्क और मकर रेखा के बीच के हैं जहाँ साल भर पर्याप्त सूर्य की रोशनी उपलब्ध है।[27] पर्यावरण संरक्षण की दिशा में यह एक कारगर अंतर्राष्ट्रीय पहल माना जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि पर्यावरणीय चेतना की बात उन औद्योगिक देशों ने उठाई है, जिन्होंने दीर्घावधि तक प्रकृति का शोषण कर विलासपूर्ण जीवन-स्तर प्राप्त कर लिया है। अब पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए वे विकासशील देशों की प्रगति के प्रयासों में बाधा डाल रहे हैं तथा पर्यावरण संरक्षण पर बल दे रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण एवं भारतीय परिदृश्य

संवैधानिक प्रावधान

भारत प्राचीन काल से ही पर्यावरण संरक्षण को लेकर सदैव सजग रहा है। इसी कारण उसने संवैधानिक स्तर पर भी पर्यावरण संरक्षण की तरफ ध्यान दिया और हमारे संविधान निर्माताओं ने इसका ध्यान रखते हुए संविधान में पर्यावरण की जगह भी सुनिश्चित की। संविधान 42वां संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा अनुच्छेद 51(ए) के माध्यम से नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों में और अनुच्छेद 48(ए) के द्वारा राज्य के दायित्वों में पर्यावरण की सुरक्षा– वन और वन्य प्राणियों की सुरक्षा तथा विकास की बात सम्मिलित कर दी गई।[28] इसके पूर्व भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 में यह प्रावधान था कि नागरिकों के पोषण और जीवन-स्तर में सुधार एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार राज्य का एक प्राथमिक कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 21 जीवन, जीवन के गौरव, एक संतुलित पर्यावरण में रहने, संक्रामक बीमारियों एवं उनके खतरों से बचाने की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 48(ए) यह घोषणा करता है कि राज्य पर्यावरण के सुधार व संरक्षण हेतु प्रयास करेगा और राष्ट्र के वन्य जीवन की सुरक्षा का भी प्रयास करेगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 51(ए) यह व्यवस्था करता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार व उसका संरक्षण करे। पर्यावरण में वन, झीलें, नदियाँ सभी सम्मिलित हैं, जो वन्य जीवन के लिए आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण की सुरक्षा के लिए भारतीय दंड संहिता में धारा 288 से 291 तक कुछ प्रावधान किए गए हैं, जिनमें सार्वजनिक जीवन में बाधा से लेकर सार्वजनिक जल स्रोतों को दूषित

करना और वातावरण को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बनाना आदि का अपराधों के रूप में उल्लेख है जिनका उद्देश्य मूलतः पर्यावरण नियंत्रण ही है।[29] यद्यपि 1976 तक संविधान में प्रत्यक्षतः पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख नहीं था, तथापि अनुच्छेद 21,42,43,47,48 और सातवीं अनुसूची में आबंटित विषयों में से अनेक से अप्रत्यक्ष तौर पर संसद और राज्य विधान मंडलों को पर्यावरण संबंधी कानून बनाने का अधिकार मिल जाता था।[30]

पर्यावरण संरक्षण के लिए विधायकी उपबंधों को जाँचने, कार्यपालिका संबंधी गतिविधियों का मूल्यांकन करने और तुरंत अपेक्षित की संस्तुति करने आदि के उद्देश्य से 1972 में *'नेशनल कमिटी ऑन इनवायरनमेंट एण्ड कोऑर्डिनेशन'* बनी। 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन के हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों में से भारत भी एक था और इस संकल्प का सहभागी था कि मानवीय पर्यावरण का संरक्षण और सुधार सभी राष्ट्रों का पावन कर्तव्य है।[31] पुनः 1980 में एक अन्य पर्यावरण समिति का गठन किया गया जिसकी सिफारिशों के आधार पर नवंबर 1980 में देश में पर्यावरण संरक्षण एवं उसकी समृद्धि के लिए पर्यावरण विभाग स्थापित किया गया। पर्यावरण विभाग को महत्व प्रदान करते हुए वर्ष 1985 में केन्द्र सरकार ने एक अलग मंत्रालय 'पर्यावरण एवं वन मंत्रालय' (MOEF) की स्थापना की।[32] पर्यावरणीय नियोजन और सहयोग के लिए राष्ट्रीय समिति का गठन हुआ, जो पर्यावरण सुरक्षा संबंधी सभी मामलों में शीर्ष संस्था के रूप में कार्य करे। पर्यावरणीय चिंताओं को विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी स्थान दिया गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) में नियोजित विकास एवं पर्यावरण क्षरण के बीच संतुलन बनाए रखने पर बल दिया गया था। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में एक पूरा अध्याय पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के सिद्धांतों पर समर्पित था। इन सिद्धांतों के आधार पर भूमि के प्रयोग, कृषि, वानिकी, मतस्य पालन और समुद्री संसाधनों के प्रयोग आदि के संबंध में स्वस्थ और समावेशी उपभोग के निर्देशन से संबंधित था।[33]

पर्यावरण संबंधी विधायन

स्टॉकहोम में 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन ने पर्यावरण के क्षेत्र में भारत में अनेक कानूनों के निर्माण को दिशा प्रदान की। हालाँकि पर्यावरण संरक्षण हेतु 1853 में बनाए गए 'शोर एक्ट' (बंबई व कोलाबा) पर्यावरण के प्रति जागरूकता को दर्शाता है, लेकिन विशेष तौर पर पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य से विधि-निर्माण की गति धीमी रही। 1984 में घटित भोपाल गैस दुर्घटना से भारतीय वैधानिक प्रणाली की अनेक खामियाँ सामने आई। इस घटना ने पर्यावरण संरक्षण संबंधी विधायन की तरफ सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। पर्यावरण संरक्षण के लिए संसद द्वारा अनेक अधिनियम पारित किए गए हैं यथा कीटनाशक अधिनियम 1968, वन्य-जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972, जल-प्रदूषण (निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

1974 (संशोधन 1988), वन-संरक्षण अधिनियम 1980 और वायु-प्रदूषण (निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 (संशोधन 1987) पर्यावरण-संरक्षण से संबंधित उल्लेखनीय कानून हैं। लेकिन सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रयत्न पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986 कहा जा सकता है जिसके द्वारा निवर्तमान समस्त अधिनियमों की कमियों को दूर करने तथा पर्यावरण के सभी आयामों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न किया गया है। 1989 के पर्यावरण कानून के द्वारा पर्यावरण संरक्षण का सर्वोच्च उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार को सौंपा गया है।

1991 में भारत में शुरू नई आर्थिक नीति के तहत वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ गई। 1991 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 'इकोमार्क' नाम की नई योजना शुरू की। यह पर्यावरण को नुकसान न पहुँचाने वाले उपभोक्ता उत्पादों को दिया जाने वाला प्रमाण पत्र था। पर्यावरण पर नीतियों, योजनाओं और क्रियान्वयन के प्रभाव का मूल्यांकन हेतु 1994 में पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (ई.आई.ए.) अधिसूचना प्रकाशित हुई और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा पर्यावरण क्लीयरेंस लेना अनिवार्य कर दिया गया। ई.आई.ए. जनवरी 1994 से विकास की 30 गतिविधियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया।[34] 1993 में 'पर्यावरण एक्शन प्रोग्राम' बना जिसका उद्देश्य बदलती आर्थिक नीतियों से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट के समक्ष विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाना था। 2001 में भारत सरकार ने उर्जा संरक्षण अधिनियम जारी किया जिसके तहत 2002 में 'उर्जा दक्षता ब्यूरो' की स्थापना की गई। यह ब्यूरो उर्जा दक्षता की गतिविधियों के लिए नीतियों, कार्यक्रमों और सहयोग के लिए उत्तरदायी है।

2006 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अपनाई। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति का ध्यान देश में महत्वपूर्ण पर्यावरणीय संसाधनों के संरक्षण, आर्थिक और सामाजिक नीतियों के पर्यावरणीय हितों, पर्यावरण संसाधनों के कुशलतम प्रयोग और पर्यावरणीय प्रशासन पर था। जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए 2008 में भारत सरकार ने 'जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय क्रियान्वयन योजना' लागू की। इस योजना में आठ मिशन हैं जिसमें राष्ट्रीय सोलर मिशन, राष्ट्रीय जल मिशन, हिमालयन इको-सिस्टम की सतत्ता के लिए मिशन इत्यादि शामिल हैं।

भारत सरकार ने पर्यावरण सुरक्षा और वन एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और शीघ्र निस्तारण के लिए 2010 में 'राष्ट्रीय हरित ट्रिब्यूनल' (NGT) की स्थापना की। यह पर्यावरण से संबंधित मामलों के हल के लिए विशेषज्ञों की विशेषीकृत संस्था है। 2012 में जल संसाधन मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय जल नीति की घोषणा की गई। इस नीति ने जल के आर्थिक वस्तु के रूप में प्रयोग और जल संरक्षण एवं उसके कुशलतम प्रयोग पर बल दिया। फरवरी 2015

में राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक गठबंधन की सरकार ने पर्यावरण और वन मंत्रालय का नाम बदलकर पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय कर दिया है और वह उद्योगों को हरित मानदंडों में छूट दे रही है।

पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986 पर्यावरण से संबंधित एक विस्तृत अधिनियम है जो भारत सरकार को इसके उद्देश्यों को पूरा करने हेतु आवश्यक नियमों और विनियमों के निर्माण हेतु अधिकृत करता है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन एवं निष्पादन हेतु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (पी.सी.बी.) की स्थापना की गई। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वि-स्तरीय व्यवस्था है। केन्द्रीय स्तर पर केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्यों के स्तर पर राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड।

1974 के जल प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम के अंतर्गत जल बोर्ड की स्थापना जल के प्रदूषण की रोकथाम के लिए की गई थी। बाद में बोर्ड के जिम्मे वायु प्रदूषण अधिनियम 1981 के प्रावधानों के अंतर्गत वायु-प्रदूषण की रोकथाम की जिम्मेदारी भी सौंपी गई। पर्यावरण सुरक्षा कानून 1986 के अंतर्गत जल बोर्ड का नाम बदलकर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड कर दिया गया। पर्यावरण सुरक्षा नियमों के अंगीकरण के साथ-साथ प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की जिम्मेदारी भी बढ़ती जा रही है और पर्यावरण के संरक्षण में यह महत्वपूर्ण नियामक संस्था के रूप में कार्य कर रही है।

न्यायपालिका का दृष्टिकोण

यह प्रसन्नता का विषय है कि पिछले 25-30 वर्षों के दौरान पर्यावरण के प्रति चिंता काफी बढ़ी है। इस चिंता ने मानवीय स्वरूप भी ग्रहण किया है और न्यायपालिका के दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया है। *रतलाम नगरपालिका क्षेत्र बनाम वर्धीचंद* मामले में उच्चतम न्यायालय ने नगरपालिका को पर्यावरण संरक्षण के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए आदेश दिया कि वह नागरिकों की शिकायत दूर करने के लिए छः महीने के भीतर योजना का प्रारूप तैयार करे।[35] *दामोदर राव बनाम एस.ओ. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन* वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण प्रदूषण अथवा पर्यावरण को नष्ट करना जो कि धीरे-धीरे पूरे वातावरण को प्रदूषित अथवा विषाक्त बनाता है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना।[36] *रूरल लेटिगेशन एण्ड इनटाइटिलमेंट केन्द्र, देहरादून बनाम उत्तर प्रदेश* राज्य वाद में न्यायाधीश पी. एन. भगवती एवं न्यायाधीश रंगनाथ मिश्रा के पीठ ने 'सतत् विकास' की अवधारणा को सामने लाया।[37] *इंडियन कांउसिल फॉर इन्वायरो–लीगल एक्शन बनाम भारत संघ* मामले में न्यायाधीश जीवन रेड्डी ने निर्णय दिया कि प्रदूषण के कारण हुए नुकसान की भरपाई में वित्तीय भार का वहन प्रदूषण फैलाने वाले को करना होगा।[38] पर्यावरण कार्यकर्ता एम.सी. मेहता ने विशेष रूप से गंगा नदी के किनारे खतरनाक

उद्योगों के अपशिष्ट पदार्थों से हो रहे पर्यावरणीय प्रदूषण की तरफ सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में कानपुर में गंगा नदी के किनारे चमड़ा फैक्ट्रियों को बंद करने का आदेश दिया।[39]

जानवरों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने 2014 के अपने निर्णय में जलीकट्टू अथवा अन्य जानवरों के बीच हिंसक मुकाबले पर रोक लगा दिया। मनुष्य के द्वारा अपने आनंद के लिए जानवरों के प्रति अत्याचार को गैरकानूनी घोषित किया गया।[40] इसी प्रकार ताजमहल को पर्यावरण प्रदूषण के कारण हो रहे नुकसान को लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने *एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ* मामले (1996) में अपना ऐतिहासिक निर्णय दिया। अपने निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने ताजमहल के आसपास स्थापित विभिन्न कारखानों, विशेष रूप से मथुरा रिफाइनरी को कोयले के इस्तेमाल पर रोक लगा दिया तथा CNG के प्रयोग की अनुमति दी गई, ताकि हवा में हो रहे प्रदूषण से ताजमहल को बचाया जा सके। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से *एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ* मामले 1991 में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के सभी सिनेमा हॉल मालिकों को प्रत्येक शो में पर्यावरण से संबंधित स्लाइड को दिखाना अनिवार्य बना दिया तथा 12वीं कक्षा तक पर्यावरण अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया गया।[41]

भारतीय संदर्भ में प्रतिवेदकों को एक तरफ तो उद्योगों के मालिकों और प्रबंधकों से संघर्ष करना पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ सरकारी विभागों और प्रशासकीय प्रबंधों के तर्कों का भी सामना करना पड़ता है, जबकि पश्चिमी देशों में पर्यावरण संबंधी मुकदमों का लक्ष्य सरकार भी उतनी ही है जितना प्रदूषण फैलाने वाले निजी उद्योग। भारत में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में न्यायपालिका का दृष्टिकोण सकारात्मक रहा है और समय-समय पर इसके निर्णयों से पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता में बढ़ोतरी हुई है। भारत में शीघ्र न्याय हेतु विशेष पर्यावरण अदालतें (Environmental Courts) गठित किए जाने की आवश्यकता है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण आंदोलन

पिछले 30-40 वर्षों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनसाधारण ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए स्वयं को सुनियोजित किया है, जो उनके जीवन-निर्वाह और जीवनशैली से जुड़ा है। 1970 के दशक से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि, जल, जंगल तथा पारिस्थितिकीय संतुलन से जुड़े कई आंदोलनों का उदय हुआ है। ये पर्यावरण आंदोलन निर्धन और हाशिए के लोगों जैसे महिलाओं, जनजातियों तथा किसानों के हितों की रक्षा में अहम भूमिका निभा रहे हैं।[42]

भारत में पर्यावरण आंदोलनों का उदय स्थानीय निर्धन लोगों के जीवन-निर्वाह से सीधे जुड़ा है। इनमें से कुछ आंदोलनों ने पारिस्थितिकीय आंदोलनों का रूप ले

लिया है क्योंकि उनका उद्देश्य जीवन-निर्वाह की मूलभूत जरूरतों से बढ़कर पारिस्थितिकीय चिंतन में बदल गया है। भारतीय पर्यावरण आंदोलनों की शुरूआत मध्य हिमालय के चिपको आंदोलन में देखी जा सकती है। 1973 में किसानों के एक समूह ने सुदूर हिमालय के गांवों में वृक्ष काटने वाले ठेकेदारों को रोक दिया। इस तरह चिपको आंदोलन का जन्म हुआ और यही आधुनिक पर्यावरण आंदोलन के रूप में विकसित हुआ।[43] इसके अतिरिक्त प्रमुख पर्यावरण आंदोलनों के रूप में कर्नाटक का चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, केरल का साइलेंट वैली आंदोलन, गुजरात का महुआ आंदोलन (2008-11), कोकाकोला के विरूद्ध पलाचीमाड़ा (केरल) संघर्ष (2000), पर्यावरण संरक्षण आंदोलन, कोयंबटूर (2012) का नाम लिया जा सकता है। भारत में नाभिकीय प्रदूषण के विरूद्ध भी विरोध-प्रदर्शन शुरू हो चुके हैं। इसके अंतर्गत परमाणु विरोधी आंदोलन, कुडनकुलम (तमिलनाडु) तथा परमाणु परियोजना विरोधी आंदोलन, हरियाणा प्रमुख हैं।

भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु चल रहे इन आंदोलनों ने हमारे नीति-निर्माताओं का ध्यान पर्यावरण संकट की ओर आकर्षित किया है तथा सरकारी एवं गैरसरकारी स्तर पर इस दिशा में अनेक सकारात्मक प्रयास भी हुए हैं। मुख्य रूप से इन आंदोलनों ने आम जनमानस में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागृति एवं चेतना का संचार किया है।

निष्कर्ष

समकालीन परिवेश में मानव विकास की दौड़ में इतना आगे बढ़ गया है कि उसे अपने पर्यावरण की ओर देखने का समय नहीं है। वैज्ञानिक, तकनीकी और वैचारिक संगठनों ने अपने पूर्ण समर्थन और भागीदारी से इसी बात को सिद्ध किया है कि पर्यावरण संरक्षण में ही अर्थतंत्र का संरक्षण संभव है। निर्वाह के साधनों का विलोप, अंधाधुंध औद्योगीकरण, बिना योजना के शहरों का विस्तारीकरण व विकास के नाम पर अविवेकपूर्ण महत्वाकांक्षी परियोजनाएँ समस्याओं का हल ढूढ़ने के बजाय उसे विकराल ही कर रही है। भारत का भूगोल विविधताओं से भरा है। जहाँ केरल का पश्चिमी घाट अपनी जैव-विविधता का एक नमूना पेश करता है, वहीं हिमालय के सुदूर क्षेत्रों में विरल वनस्पतियाँ एक भिन्न जंतु व प्राणी जगत को परिपोषित करती दिखती है। भौगोलिक दशा के आधार पर हमें उन क्षेत्रों में स्थापित होने वाली विकास परियोजनाओं की दिशा भी निर्धारित करनी होगी ताकि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाया जा सके। विकास योजनाओं के पर्यावरण संबंधी परिणामों का विश्लेषण करने के लिए पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (Environmental Impact Assesment) तथा राष्ट्रीय पर्यावरण निगरानी संगठन के कार्यकलापों में सक्रियता लाने की जरूरत है।

हालाँकि पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने हेतु पर्यावरण विभाग उपभोक्ता

उत्पादों पर इकोमार्क तथा विकास योजनाओं को पर्यावरण अनुकूल प्रमाणपत्र देने हेतु राष्ट्रीय हरित ट्रिब्यूनल जैसी नियामक संस्थाओं की स्थापना की है फिर भी अपेक्षित सुधार नजर नहीं आता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को अधिक सशक्त बनाने की अपरिहार्यता है। खुशी की बात है कि भारत ने इस वर्ष 5 जून 2018 को विश्व पर्यावरण दिवस के वैश्विक आयोजन की मेजबानी की, जिसका थीम था ''प्लास्टिक प्रदूषण को मात दो''। भारत प्लास्टिक के रिसाइकलिंग पर ध्यान केंद्रित कर रहा है और कई राज्यों ने प्लास्टिक थैलियों पर पाबंदी लगाई है।[44] पर्यावरण इतना विशाल और बहुआयामी विषय है कि स्वायत्त नियंत्रक संस्था के रूप में *राष्ट्रीय पर्यावरण आयोग* अथवा *राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण प्राधिकरण* की स्थापना आवश्यक है जिसकी इकाइयाँ प्रत्येक राज्य और केन्द्रशासित प्रदेश में हों। पर्यावरण संरक्षण की अपरिहार्यता के बावजूद भारत में किसी भी राजनीतिक दलों के घोषणा पत्र में पर्यावरण विषय को स्थान नहीं दिया जाना इसके प्रति असंवेदनशीलता का द्योतक है। शासन, समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य बिठाना संतुलित विकास की पूर्व शर्त है। अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु अनुसंधान तथा शोध परिणामों के आधार पर जन सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि विनाशरहित विकास और समन्वित पर्यावरण संवर्द्धन के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ

1. यादव, सुषमा एवं शर्मा, राम अवतार, *भारतीय राजनीतिः ज्वलंत प्रश्न*, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1997, पृ. 261.
2. *उपरोक्त.*
3. यूनाइटेड नेशंस, *डेवेलपमेंट एण्ड इनवायरनमेंट, 1972*, संयुक्त राष्ट्र, पृ. 7–8.
4. इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (IPCC), *रिपोर्ट ऑन इनवायरनमेंट*, 2 फरवरी 2007.
5. विश्व पर्यावरण और विकास आयोग का प्रतिवेदन, *'हमारा सबका भविष्य' (Our Common Future)*, दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987, पृ. 2–3.
6. गुडलैंड, 'द वर्ल्ड बैंक्स न्यू पालिसी ऑन द इन्वायरनमेंट आस्पेक्ट्स ऑफ डैम एण्ड रिजर्वेअर प्रोजेक्ट्स', *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, वोल. 35, नं. 3, जुलाई–सितंबर 1989, पृ. 607.
7. शर्मा, सुभाष, *पर्यावरण और विकास*, नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2017, पृ. I.
8. *उपरोक्त.*
9. *उपरोक्त*, पृ. 3–6.
10. *उपरोक्त*, पृ. I.

11. सिंह, दिग्विजय, *द इको–वोट पीपुल्स रिप्रेजेन्टेटिव्स एण्ड ग्लोबल एनवायरनमेंट*, नई दिल्लीः प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइ. लि., 1985, पृ. 65.
12. द्विवेदी, ओ.पी. और तिवारी, बी.एन., *एनवायरनमेंटल क्राइसिस एण्ड हिन्दू रिलिजन*, नई दिल्लीः गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृ.11–89.
13. ऋग्वेद के नदी सूक्त 10/75/5.
14. *योजना*, हिन्दी, नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिसम्बर 2015, पृ. 48.
15. *उपरोक्त.*
16. जयाल, एन.डी., *एलिमिनेटिंग पॉवर्टीः एन इकॉलाजिकल रेस्पॉन्स*, दिल्लीः आई.एन.टी. ए.सी.एच., 1986, पृ. 7.
17. सिनजेला, ए. मापाजी, 'डेवेलपिंग कंट्रीज पर्सेप्शन्स ऑफ इनवायरमेंटल प्रोटेक्शन एंड एकॉनामिक डेवेलपमेंट', *आई जे आई एल*, वोल. 24, 1984, पृ. 489.
18. *दैनिक भास्कर*, पटना, 11 मार्च 2018.
19. *योजना*, हिन्दी, नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिसंबर 2015, पृ. 54.
20. *हिन्दुस्तान टाइम्स*, पटना, 06 अप्रैल 2018.
21. *हिन्दुस्तान टाइम्स*, पटना, 10 अप्रैल 2018.
22. नायडू, एम. वैंकया, 'पर्यावरण कानून सख्ती से लागू करने का वक्त', *दैनिक भास्कर*, पटना, 24 अप्रैल 2018.
23. *उपरोक्त.*
24. डासमैन, आर.एफ., *द कंजर्वेशन अल्टरनेटिव*, चिकेस्टरः जॉन विली, 1975, पृ. 2.
25. विस्तृत जानकारी हेतु देखें; रोजेनबाउम, वाल्टर ए., *एनवायरनमेंटल पॉलिटिक्स एण्ड पॉलिसी*, नई दिल्लीः अफिलिएटेड इस्ट वेस्ट प्रेस लि.,1991.
26. रेडक्लिफ, माइकल, *डेवेलपमेंट एण्ड एनवायरमेंटल क्राइसिसः रेड ऑर ग्रीन अल्टरनेटिव्स*, लंदनः मेथुन, 1984, पृ. 48–49.
27. *दैनिक भास्कर*, पटना, 12 मार्च 2018.
28. इस प्रकार भारत उन मुट्ठीभर राष्ट्रों की श्रेणी में आ गया जहाँ संविधान में पर्यावरण संरक्षण और सुधार के दायित्व को स्थान दिया गया है। देखें; जैन, सुरेश और जैन, विमला (संपा.), *एनवायरनमेंटल लॉ इन इंडिया*, इंदौरः द लायर्स होम, 1984, पृ. 3.
29. बंसल, वी.के. और गुप्ता, एन.के., 'इनवायरनमेंटल पॉल्युशन ए कॉस्टीट्यूशनल ऑब्लीगेशन', जैन, सुरेश और जैन, विमला (संपा.), *उपर्युक्त*, पृ. 75–77.
30. *उपरोक्त.*
31. भट्ट, एस., *इनवायरमेंटल प्रोटेक्शन एण्ड इंटरनेशनल लॉ*, दिल्लीः रेडियंट पब्लिशर्स, 1985, पृ. 1.
32. चौधरी, बासुकी नाथ एवं कुमार, युवराज (संपा.), *भारतीय शासन और राजनीति*, नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइ. लि., 2011, पृ. 459–60.

33. सिंह, अभय प्र., *समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन*, नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइ. लि., 2015, पृ. 308.
34. नंदा, विजयलक्ष्मी और शशि, मोतीलाल, *ह्यूमन राईट्स, जेंडर एण्ड इनवायरमेंट*, नई दिल्लीः अलायड पब्लिशर्स, 2012, पृ. 294–99.
35. AIR 1980 SC 1622; देखें, *विजनेस एण्ड पालिटिकल आब्जर्वर*, 26 फरवरी 1993.
36. AIR 1987 AP 171.
37. AIR 1987 SC 2187.
38. AIR 1999 SC 1502.
39. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ, AIR 1998 SCR(2)538.
40. भारत का पशु कल्याण बोर्ड बनाम ए. नागराज एवं अन्य, 2014(7) SCC 547.
41. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ, WP 860/1991.
42. करन, पी.पी., 'इनवायरनमेंटल मूवमेंट इन इंडिया', *जियोग्राफिकल रिव्यू*, वोल. 84, नं. 1, जनवरी 1994, पृ. 32.
43. गुहा, रामचंद्र, 'द पास्ट एण्ड प्रेजेंट ऑफ इंडियन एनवायरमेंटलिज्म', द *हिन्दू*, 27 मार्च 2013.
44. नायडू, एम. वैंकया, 'पर्यावरण कानून सख्ती से लागू करने का वक्त', *दैनिक भास्कर*, पटना, 24 अप्रैल 2018.

पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिकाः एक अध्ययन

उमेश कुमार

Ikjk'k *वह सब कुछ जिससे चारों ओर से मनुष्य घिरा है पर्यावरण होता है। मनुष्य के आस-पास जो कुछ भी वर्तमान है, पृथ्वी के स्थल भाग पर, स्थल के ऊपर तथा पृथ्वी के आन्तरिक भागों में कहीं भी जो भी है वह प्रत्यक्ष या परोक्ष, सूक्ष्म या स्थूल, लाभप्रद या हानिप्रद, तत्काल या दूरगामी किसी न किसी प्रकार का प्रभाव मनुष्य के लिए उत्पन्न करता है, वह पर्यावरण ही है। पर्यावरण के अन्तर्गत दो प्रकार के उपादान होते हैंः–*

अजैविक तथा जैविक उपादानों के संयोग से पर्यावरण का निर्माण होता है। पर्यावरण के अन्तर्गत, उपरोक्त उपदानों के संयोग से निर्मित मकान, वन, बगीचे, जन-जीवन आदि समस्त आते हैं। पर्यावरण की प्राकृतिक स्थिति में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की प्रक्रिया एवं स्थिति जो प्रदूषित करती है, पर्यावरण-प्रदूषण कहा जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरण-प्रदूषण एक विश्वस्तरीय भयंकर समस्या बन गयी है। पर्यावरण संकट एवं पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या ने विश्व के प्रत्येक कोने के जन-जीवन को कमोबेश, प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी न किसी रूप में किन्तु सुनिश्चित तौर पर प्रभावित किया है। पर्यावरण संकट के कई कारण हो सकते हैं, जैसे बढ़ती जनसंख्या, रासायनिक पदार्थों का प्रयोग, विज्ञान का बढ़ता प्रभाव, अविवेकपूर्ण संसाधन-दोहन एवं उपभोग इत्यादि। ये सभी एक खतरनाक भविष्य की सूचना दे रहे हैं, और घातक परिणामों की और संकेत कर रहे हैं। पर्यावरण से संबंधित इन समस्याओं ने वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों एवं शिक्षाविदो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और यह महसूस किया गया है कि पर्यावरण विकास को सामान्य विकास का अनिवार्य अंग बनाया जाए तथा नियामकीय संस्थायें इस दिशा में सकारात्मक पहल करें।

प्रस्तावना

आज का मानव प्रगति की ओर सम्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति कर विकास की ओर बढ़ रहा है। जहाँ मानव विकास की ओर इतना

अधिक गतिशील हैं, वहीं दूसरी और विकास की यह गति हमारे लिए धीरे-धीरे घातक सिद्ध होती जा रही है। जिस गति से प्रौद्योगिक एवं वैज्ञानिक उन्नति हो रही है उसी गति से हमारा वातावरण भी प्रभावित होकर प्रदूषित होता जा रहा है। हमारे पर्यावरण में केवल जल एवं थल ही प्रदूषित नहीं हो रहे बल्कि हमारा अन्तरिक्ष भी इससे अछूता नहीं है। परिणामतः आज केवल हमारा राष्ट्र ही इस विकट समस्या का सामना नहीं कर रहा बल्कि पूरे विश्व में इस प्रकार की समस्या उत्पन्न हो रही है। 1972 में स्टॉकहोम में पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एक मत से ही सभी ने पर्यावरण संरक्षण को मानवता की मूल आवश्यकता स्वीकार किया।[1] 1972 में रियोडि जनेरो (Riode Janero), ब्राजील में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में मौसम परिवर्तन, वन-विनाश इत्यादि महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा हुई। इस प्रकार आज देश-विदेश सभी जगह पर्यावरण-प्रदूषण उन्मूलन तथा पर्यावरण विकास सम्बन्धी अनेकों चर्चाऐं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रही हैं।[2]

पर्यावरण का अभिप्राय हमारे चारों ओर पाये जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वातावरण से है जो हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। सामाजिक वातावरण अन्तर्गत जो हमारा समाज, समाज की मान्यताएँ, सामाजिक ढाँचा इत्यादि आता है और सांस्कृतिक वातावरण में नैतिकता, भाषा, धर्म, प्रथाएँ, परम्पराएँ, लोकाचार इत्यादि आते हैं। प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत वायु, जल, भूमि, वन, तापमान, मौसम एवं भूमि में पायी जाने वाली खनिज सम्पदाएँ आती हैं। प्रकृति के इन विभिन्न अवयवों में प्राकृतिक रूप से स्वतः ही एक सन्तुलन होता है; लेकिन इन जिज्ञासु एवं विकासोन्मुख मानव ने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक गतियों के कारण इस सन्तुलन को बिगाड़कर अपने पर्यावरण को स्वयं प्रदूषित कर दिया है और अपने सामने अनेक बीमारियों एवं समस्याओं को खड़ा कर लिया है।[3]

आज जहाँ देखिये वहीं किसी-न-किसी प्रकार का प्रदूषण अवश्य है। ऐसा लगता है मानो मानव विकास की दौड़ में इतना अधिक मग्न है कि उसे अपने पर्यावरण की ओर देखने का समय ही नहीं है। वह यह भूलता-सा रहा है कि उसे तो इस पृथ्वी पर ही रहना है। अतः अब ऐसा समय आ गया है जब देश के या विश्व के प्रत्येक व्यक्ति में, चाहे वह बच्चा हो या वृद्ध, अपने वातावरण के प्रति सजगता, जागरूकता, चेतना और पर्यावरण को विकसित करने की आवश्यकत है। तभी इस गम्भीर समस्या का समाधान गम्भीरतापूर्वक किया जा सकता है।

आज पर्यावरणीय कठिनाइयों के कारण अनेक विकास परियोजनाओं के सम्बन्ध में शंकाएँ उठ रही हैं, जिसके चलते लाभ और हानि का मूल्यांकन आवश्यक हो गया है। वास्तव में आर्थिक विकास के लिए तैयार की गई, इन योजनाओं का पर्यावरणीय पक्ष या तो भुला दिया गया है या उसे कम करके आँका गया है। चूँकि ऐसी योजनाओं में पर्यावरणविद्ों को दूर रखा जाता है, फलतः जब योजना तैयार होकर

क्रियान्वित होने लगती है तो विविध वर्गों द्वारा हंगामा शुरू किया जाता है।

भारत में स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक विकास को सर्वोपरि मानकर ऐसी भूलें की जाती रही हैं जिससे लघु अवधि के बाद ही पर्यावरणीय कठिनाइयाँ प्रकट होने लगती हैं। विकास के नाम पर लिए गये कुछ निर्णय खतरनाक प्रमाणित हुए हैं जैसे नदियों के किनारे उद्योगों की स्थापना, नगरों के नजदीक खतरनाक उद्योगों की स्थापना (कीटनाशक, रसायन, आयुद्ध, कागजों आदि) वन आधारित कागज और फर्नीचर उद्योग, अनुपयुक्त स्थलों पर बाँधों और जलाशयों का निर्माण, विकास के नाम पर वन्यजीवों के आवास का विनाश, हरित क्रांन्ति के नाम पर मृदा का दुरूपयोग, वैकल्पिक ऊर्जा के अभाव में ग्रामीणों द्वारा वन विनाश और गोबर का ऊर्जा के लिए उपयोग, जीवनदायी तत्वों, यथा-जल और वायु के प्रदूषण पर प्रतिबन्ध का अभाव, संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन, जनसंख्या नियंत्रण के प्रति उदासीनता, महानगरों का अप्रत्याशित विस्तार और जीवन के बुनियादी-पक्षों– शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन मार्ग आदि के विकास के प्रति उदासीनता ऐसे ही उदाहरण हैं। अब पर्यावरणीय कठिनाइयों ने इस पर सोचने और उचित प्रबन्धन के लिए बाध्य किया हैं।

पर्यावरण विकास को संतुलित बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण योजनाओं एवं नीतियों का अनुसरण आवश्यक है जैसे– (क) मानव सुख के लिए आर्थिक विकास की योजना सभी मानव वर्गों के हित में हो, (ख) योजना का आधार आत्मसुख से प्रेरित हो तथा (ग) मानव और प्रकृति के रिश्ते में मैत्री भाव निहित हो। इन आधारों पर बनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों से विकास कार्य संतुलित, समन्वित और टिकाऊ होगा। अतः पारिस्थितिकीय विकास का दर्शन एक ऐसे सुखी और सम्पन्न मानव समाज की रचना और प्रगति में निहित है, जो अपने पर्यावरण को कम-से-कम क्षति पहुँचाये, अपनी प्रगति को बनाये रखने में सक्षम हो। इसके लिए जहाँ एक ओर मानव-प्रकृति के सम्बन्धों को सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता पड़ती है तो दूसरी ओर एक समाज से दूसरे समाज के बीच तालमेल बनाये रखना उतना ही जरूरी समझा जाता है। यह तभी संभव है। जब राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्राविधिकीय और अन्तर्राष्ट्रीय तालमेल बनाया जा सके। बिना राजनीतिक सुव्यवस्था के नागरिकों की भागीदारी सम्भव नहीं है। भागीदारी द्वारा ही ऐसी परिस्थिति बनती है, जिसमें आर्थिक-सामाजिक मूल्य विकास की दिशा तय करते हैं। साथ ही प्राविधिकी का विकास आर्थिक-सामाजिक मान्यताओं का अनुसरण करता है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव से प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। भारत और पाकिस्तान इसी सद्भावना के अभाव में परिस्थितिकीय विकास की अवधारणा को अपनाने में कठिनाई झेल रहे हैं।

पर्यावरण विकास के पक्ष

पारिस्थितिकीय विकास की अवधारणा पर आधारित आर्थिक-सामाजिक विकास

के तीन पक्ष हो सकते हैं, यथा–

(क) संतुलित विकास (Balanced Development)

(ख) समन्वित विकास (Integrated Development)

(ग) सतत् विकास (Sustainable Development)

(क) *संतुलित विकास* : संतुलित विकास का तात्पर्य एक ऐसी विकास व्यवस्था से है, जिसमें पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाये समाज के सभी सदस्यों के लिए न्यूनतम सुविधा का प्रबन्ध हो। आज विकासशील देशों के बीच जो वैचारिक अन्तर पाया है, उससे पर्यावरण को क्षतिग्रस्त किया जा रहा है। विकासशील देशों को शोषण विकसित राष्ट्र कर रहे हैं और ऊपर से असंतुलित पर्यावरण का संकट सम्पूर्ण मानवता के लिए उत्पन्न कर रहे हैं। कहा जाताहै कि असमानता विश्व की सबसे बड़ी पारिस्थितिकीय समस्या है। विकास के मार्ग में भी यह सबसे बड़ी समस्या है। स्पष्ट है कि बिना सहयोग और सद्भाव के पारिस्थितिकी विकास को संतुलित बनाना कठिन है।

(ख) *समन्वित विकास* : समन्वित विकास में पारिस्थितिक तन्त्र की समग्रता को आधार मानकर विकास की दिशा निश्चित की जाती है। यह *''वसुधैव कुटुम्बकम्''* की अवधारणा की दूसरा रूप है। अलग-अलग राजनीतिक सामाजिक मान्यता के बावजूद सभी प्रकृति पुत्र हैं, फलतः दुःख-सुख में हिस्सा बँटाना, हमारा प्राकृतिक धर्म या मानव धर्म है। मानव मूल्य प्रकृति की मैत्री से उपजता है। यही कारण है कि भौतिकवादी समाज जो शोषण आधारित होता है, संवेदनशील हो जाता है। अपना और पराया या विकसित और विकासशील की खाई समाज को पथभ्रष्ट कर देता है। अतः समन्वित विकास के लिए समग्रता को आधार बनाया जा सकता है, जब कमजोर और शक्तिशाली राष्ट्र मिलकर विकास कार्यक्रम बनायें। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ इसके लिए उपयुक्त साधन हैं।

(ग) *सतत् विकास* : सतत् विकास या टिकाऊ विकास की अवधारणा वर्तमान के साथ भविष्य को भी समेटने का प्रयास करता है। क्षणिक सुख के लिए भविष्य को अंधकारमय बनाना भौतिकवादी जीवन-दर्शन का आधार बन गया है। वर्तमान को सुखमय बनाने के नाम पर अगली पीढ़ी की सुरक्षा का भी ध्यान रखना अनिवार्य है। यही कारण है कि 100 वर्षों के तीव्र विकास से पश्चिमी राष्ट्र अनेक पर्यावरणीय समस्याओं से घिर गये हैं। अतः यह आवश्यक है कि विकास का मार्ग सुनिश्चित और सुव्यवस्थित दिशा का अनुसरण करें। औद्योगिक विकास की आपाधापी में यह भुला दिया गया कि

वन विनाश मानवता के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा कर सकता है। इसी प्रकार ऊर्जा का अपव्यय आज संकट पैदा कर रहा है।

भारत एक प्रकृति परायण देश है। यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा प्रकृति की जीवंतता से उत्प्रेरित रही है। इसीलिए प्रकृति को माँ के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ की सम्पूर्ण जीवनशैली प्रकृति की व्यवस्थाओं से परिपूर्ण है। यही कारण है कि आधुनिक भारत के संविधान निर्माताओं ने अपनी समृद्ध विरासत के परिपेक्ष्य में यह आवश्यक समझा कि पर्यावरण के प्रति जागरूकता बनाये रखने और आचरण को नियंत्रित करने के लिए दिशा-निर्देश दिए जायें। परम्परा प्रधान होने के कारण यहाँ एक सामान्य जन को इसका बोध है कि पर्यावरण की गुणवत्ता स्वास्थ्य और सुखी जीवन का आधार है। इसीलिए हमारे आचरण को प्रकृतिपरक बनाये रखने का प्रयास हजारों वर्षों से चला आ रहा है। *''तरू देवो भव''* एक मान्यता है जो आचरणपरक होने के कारण वन संवर्धन में निहित रही है। लेकिन आधुनिक समाज विज्ञान से अवगत होते हुए कि पेड़ प्राथमिक उत्पादक हैं, वन विनाश द्वारा पर्यावरणीय संकट उत्पन्न कर दिया है। भारत की वर्षा आधारित कृषि मौसम के बदलाव से अधिक प्रभावित होने लगी है। बाढ़, सूखा और भूमिरक्षण जैसे प्राकृतिक प्रकोप के किये वन-विनाश सबसे बड़ा कारण बताया जा रहा है। इसी प्रकार यहाँ नदियाँ प्रदूषण से आक्रान्त हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव स्वास्थ्य पर प्रकट होने लगा है। कुछ क्षेत्रों में भूमिगत जल में बढ़ते आर्सेनिक एवं फ्लोराइड के कारण शरीर की हड्डियों की वक्रता से अपंगता बढ़ने लगी है। महानगर विविध प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो रहे हैं, क्योंकि वहाँ वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण और जल-प्रदूषण संकट का रूप ले रहे हैं। कुछ नदी घाटी योजनाएँ विवाद का केन्द्र बन रही हैं, जिसके कारण जन आन्दोलन शुरू हो गया है। सबसे अधिक पारिस्थितिक तंत्र की समस्या हिमालय के कुछ क्षेत्रों में हैं, जहाँ वन विनाश से भूमि नंगी होकर तीव्र कटाव से ग्रसित होने लगी है। 'चिपको आन्दोलन' इसी परिस्थिति की देन है। इन पर्यावरणीय कठिनाइयों के कारण भारत जैसे जन बहुल क्षेत्र में प्रतिवर्ष लाखों मौतें हो रही हैं तथा अपार आर्थिक हानि से अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना कठिन कार्य हो गया।

गरीबी, अशिक्षा, राजनीतिक अदूरदर्शिता और सामाजिक भेदभाव के कारण स्वतन्त्रता के बाद यहाँ की पर्यावरणीय कठिनाइयों पर बहुत कम ध्यान दिया गया। फलतः विकास का अर्थ मात्र आर्थिक उन्नति तक सीमित रहा। लेकिन विश्व स्तर पर बढ़ती पर्यावरणीय कठिनाइयों के कारण यहाँ भी जागरूकता आने लगी। 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देशन में स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत को भी सोचने के लिए बाध्य किया और यहाँ के पर्यावरण को सुरक्षित रखने का प्रयास शुरू हुआ।

पर्यावरण विकास और मूल्यांकन में सरकार की अहम् भूमिका होती है। कभी-कभी जन आन्दोलन से भी यह महत्वपूर्ण बन जाता है। भारत सरकार पर्यावरण प्रबन्धन

और नियोजन के लिए सजग हुई है। इसकी पृष्ठभूमि स्टॉकहोम की 'मनुष्य और जीवमण्डल' (Man and Biosphere) गोष्ठी है। इस गोष्ठी में भारत भी सदस्य था। गोष्ठी के बाद भारत में भी ऐसी समिति का गठन हुआ जिसका नाम रखा गया ''पर्यावरणीय नियोजन और समायोजन राष्ट्रीय समिति (National Committe on Environment Planning and Coordination- NCEPC) इसका कार्य क्षेत्र पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर सुझाव देने तक सीमित था। तत्पश्चात् पहले बनी समिति को नया नाम देकर पर्यावरण नियोजन राष्ट्रीय समिति (National Committe on Environment Planning-NCEP) कर दिया गया है। इस समिति का कार्यक्षेत्र मानव अधिवास नियोजन, पारिस्थितिकीय सर्वेक्षण और पर्यावरणीय जागरूकता के प्रचार-प्रसार तक सीमित है[4]। इस समिति के परामर्श से राज्यों में पर्यावरण बोर्डों की स्थापना की गई है। इस कार्य को और अधिक व्यापक और सार्थक बनाने के लिए 1980 में श्री नारायण दत्त तिवारी की अध्यक्षता में एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया गया जो पर्यावरण विकास की भूमिका के रूप में सामने आई। इस नवगठित समिति ने भारत में पर्यावरण विकास के लिए अनेक रचनात्मक सुझाव दिये तथा पर्यावरण सुरक्षा हेतु वैधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना के लिए एक रिपोर्ट तैयार की। यह रिपोर्ट भारत सरकार के विज्ञान और तकनीकी विभाग द्वारा माँगी गई थी। उस समिति ने वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि का अध्ययन किया तथा उनके निवारण के सुझाव प्रस्तुत किये। जल एवं थल संसाधनों के दुरुपयोग पर भी प्रकाश डाला गया तथा स्पष्ट किया गया कि देश का लगभग आधा क्षेत्रफल पर्यावरणीय समस्याओं की ओर उन्मुख है। बाढ़ से प्रतिवर्ष एक अरब रुपये की हानि होती है। वन क्षेत्र का विनाश इस तथ्य से स्पष्ट है कि केवल 12 प्रतिशत क्षेत्रफल पर सधन वन रह गये हैं जबकि यह 17 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए।[5] इस समिति की रिपोर्ट पर भारत सरकार ने पर्यावरण विभागकी स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य पर्यावरणीय समायोजन के साथ विाकस कार्यों के लिए दिशा-निर्देश तैयार करना है। वन संरक्षण को प्राथमिकता देने के लिए अनेक कार्यक्रम बनाये गये। सर्वज्ञात है कि वन विनाश से सूखा, बाढ़ एवं भूमि क्षरण जैसी समस्याएँ पैदा हो रहीं हैं। हिमालयी क्षेत्र की पारिस्थितिकी अत्यन्त कमजोर हो चुकी है तथा उसका प्रभाव आत्मघाती हो रहा है। यह भी कहा गया है कि जलवायुविक बदलाव से अगले 150 वर्षों में पर्यावरण का और विनाश हो सकता है, जैसे गंगा का मैदान मरूस्थलीकरण की ओर अग्रसर है।

तिवारी समिति की संस्तुतिः तिवारी समिति ने जैव पारिस्थितिकी के संरक्षण एवं विकास पर विशेष बल देने की संस्तुति की थी। समिति ने ध्यान आकृष्ट किया कि ग्रामीण मानव अधिवासों की स्थिति गम्भीर हो रही है। वहाँ जन सुविधाओं का अभाव है तथा ईंधन एवं पेयजल की कमी है। धूल, धुआँ, खुली नालियों की उपस्थिति और

शौचालयों के अभाव से पर्यावरण कमजोर होता जा रहा है। समिति द्वारा पर्यावरण प्रबन्धन के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किये गये थे[6]–

1. जैवमण्डल के संरक्षण की व्यवस्था हो।
2. राज्य सरकारें चारागाह सम्बन्धी नियम बनाये।
3. ऐसे पशुओं/वनस्पतियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर रोक लगे जिनका अस्तित्व खतरे में है।
4. ऐसे रसायनों के वितरण पर रोक लगे जिससे पारिस्थितिकी कमजोर होती है और विविध संकट उत्पन्न होते हैं।
5. खनन् कार्य, ईंट के भट्ठे आदि उर्वर मिट्टी का प्रयोग न करें।
6. प्रदूषण नियंत्रण हेतु प्रभावशाली कानून बने।
7. उर्वर भूमि कृषिकार्य हेतु सुरक्षित रहे।
8. वनों का व्यावसायीकरण बन्द हो।
9. ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की व्यवस्था हो।

तिवारी समिति के परामर्शों को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 1980 में एक स्वतन्त्र पर्यावरण विभाग (Department of Environment) का गठन कर उसे पर्यावरण प्रबन्धन और पारिस्थितकीय विकास का काम सौंपा। इस प्रकार भारत में पर्यावरण विकास सम्बन्धी कार्यों का शुभारम्भ हुआ। पर्यावरण विभाग की कार्यप्रणाली को व्यवस्थित करने के लिए उसके कार्यक्षेत्रों को सीमांकित किया गया, यथा–

पर्यावरण प्रबन्धन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाओं को एकत्र करने के लिए एक पर्यावरण सूचना सेवा संगठन का निर्माण किया गया है, जो विविध प्रकार की पर्यावरणीय सूचनाओं को एकत्र करने, उसे विश्लेषित करने और उसे विविध कार्यों के लिए ऐसा ठोस आधार बनाने के काम करेगा, जिससे आर्थिक-सामाजिक विकास की दिशा को निर्धारित किया जा सके। लेकिन इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ आती रहीं। मसलन इन विभागों की अधिकतर सीमा, समुचित आँकड़ों का अभाव और उपयुक्त व्यक्तियों का अभाव आदि के साथ पर्यावरण सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन में अनेक कानूनी अड़चनें भी आती रहीं। एक ओर अधिक अन्न उपजाने के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता रहा है, वहीं इनसे होने वाली हानि के मूल्यांकन के लिए कोई ठोस कार्यवाही नहीं की गई। अन्ततः भारत सरकार को सुविचारित पर्यावरणीय नीति बनाने की आवश्यकता महसूस हुई ताकि समूचे देश में पर्यावरण के प्रति जागरूकता बनाई जा सके। पर्यावरण विभाग के लिए निम्न कार्य व्यवस्था का प्रारूप तैयार किया गया।

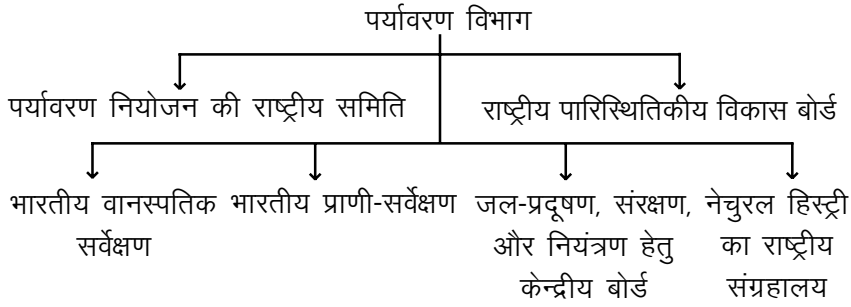

पर्यावारणीय कठिनाइयों के प्रति बढ़ती जागरूकता के फलस्वरूप 1985 में भारत सरकार ने पर्यावरण, वन और वन्यजीव मंत्रालय (Ministry of Environment, Forest and Wildlife) का गठन किया जिसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप दिया गया। मंत्रालय के जिम्मे वनस्पति और वन्यजीवों का सर्वेक्षण, इनका संरक्षण और परीक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, वन संवर्धन एवं वृक्षारोपण और भूमिरक्षण नियंत्रण जैसे महत्वपूर्ण कार्य सौपें गये हैं। यह मंत्रालय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग से पर्यावरण प्रभावों का मूल्यांकन, पर्यावरणीय शोध, विचार गोष्ठियों का आयोजन, कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन, पर्यावरणीय शिक्षा और प्रशिक्षण, पर्यावरणीय सूचनाओं का आदान-प्रदान, गैर सरकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता देकर पर्यावरणीय कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, पर्यावरणीय जागरूकता का प्रचार-प्रसार और वन्यजीवों के लिए अभ्यारण्यों की व्यवस्था जैसे कार्यों का संचालन करता है। इस मंत्रालय को निम्न जिम्मेदारी सौंपी गयी है[7]–

1. पर्यावरण और पारिस्थितिकी (Environment & Ecology)
2. भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण एवं वानस्पतिक उद्यान (Botanical Survey of India and Botanical Gardens)
3. भारतीय जीव सर्वेक्षण विभाग (Zoological Survey of India)
4. नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री (National Museum of Natural History)
5. जल-प्रदूषण नियंत्रण (Water Pollution Act, 1974, 1977)
6. वायु-प्रदूषण नियंत्रण (Air Pollution Act, 1981)
7. पर्यावरण-संरक्षण (Environment Protection Act, 1986)
8. जैवमण्डल रिज़र्व कार्यक्रम (Biosphere Reserve Programme)
9. राष्ट्रीय वन नीति और वन विभाग (National Forest Policy and Forestry Department.)

10. भारतीय वन सेवा (Indian Forest Services)
11. वन्यजीव संरक्षण (Wildlife Preservation)
12. उच्च संस्थाओं में वन आधारित शोध को प्रोत्साहन और सहयोग
13. पद्मजा नायडू हिमालयी जैव पार्क
14. राष्ट्रीय भूमि उपयोग एवं बंजर भूमि विकास कॉऊन्सिल
15. राष्ट्रीय भूमि विकास बोर्ड
16. केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण
17. जंगल संवर्धन नीति

इस मंत्रालय की शासन व्यवस्था के लिए तीन उप विभागों का गठन किया गया है, ताकि कार्य योजनाओं के क्रियान्वयन में दक्षता बनी रहें। इस व्यवस्था के तीन अंग हैं– (i) गंगा प्रोजेक्ट डाइरेक्टोरेट (Ganga Project Directorate), (ii) राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड (National Waste Land Development Board) एवं (iii) पर्यावरण एवं वन्यजीव संरक्षण के 18 उप विभाग (Divisions)।[8]

भारत सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय पार्क, अभयारण्य और गंगा सफाई योजना के अतिरिक्त बंजर भूमि सुधार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। दूरस्थ संवेदन तकनीक द्वारा (Remote Sensing Technique) किया जा रहा सर्वेक्षण इस दिशा में अधिक सहायक हो रहा है। वन विस्तार, खनिज और भूमिगत जल के आकलन में भी इस तकनीक का उपयोग किया जा रहा है, जिसके परिणाम उत्साहवर्धक हैं।

अनेक प्रचार माध्यमों से भी सरकार द्वारा पर्यावरणीय जागरूकता के लिए कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। वृक्षारोपण को सामाजिक जागरूकता से जोड़ा जा रहा है ताकि प्राचीन मान्यता को पुनः स्थापित किया जा सके। प्रदूषण नियन्त्रण को प्रभावी बनाने के लिए वैधानिक व्यवस्था को कड़ाई से पालन करने का माहौल बनाया जा रहा है। प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों पर उच्चतम न्यायाय का फैसला ऐतिहासिक बन गया है। अब ऐसे उद्योगों की स्थापना के लिए पूर्व मूल्यांकन के बाद ही स्वीकृति दी जा रही है। पेयजल की अशुद्धता के कारण फैलने वाली बीमारियों को सर्वेक्षण और निदान के लिए अनेक कार्यक्रम भारत सरकार और राज्य सरकार के सहयोग से चलाये जा रहे हैं। सरकार इसी तरह सजग रहे तो भारत के पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाये रखने और बिगड़े पर्यावरण को सुधारने में मद्द मिलेगी। गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का विकास अभी प्रारम्भिक अवस्था में हैं, लेकिन इस पर भविष्य की आँख टिकी हुई है। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में किये गये प्रयोग उत्साहवर्धक है।

पर्यावरण सुरक्षा तथा विकास सम्बन्धी कानूनी व्यवस्था

भारत में पर्यावरण सुरक्षा सम्बंधी लगभग 200 कानूनी धाराएँ हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 1500 अशासकीय अथवा स्वैच्छिक संस्थाएँ (Non- Government Organizations- NGO) हैं, जो पर्यावरण सुधार का प्रचार-प्रसार करते हैं। गोरखपुर में, 'गोरखपुर इन्वायरमेण्टल एक्शन ग्रुप (GEAG) के सहयोग से फर्टिलाइज़र खाद कारखाना, सरदार नगर चीनी मिल के निष्पादों से पर्यावरण को होने वाली हानि को रोका गया है तथा जनचेतना जागृत की गई है। पर्यावरण संरक्षण हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (International Society for Environmental Protection) का गठन गोरखपुर में हुआ जिसमें रसायनशास्त्री, इन्जीनियर, भूगोलविद्, वनस्पति विज्ञानी आदि सम्मिलित हैं। 'चिपको आन्दोलन' टिहरी बाँध सुरक्षा समिति, नर्मदा घाटी सुरक्षा समिति जैसी अनेक समितियाँ विशिष्ट पर्यावरणीय समस्याओं से जूझती रही हैं तथा सरकार को पर्यावरण के प्रति सचेत कर रही हैं। भारत की सुरक्षा नीति में अब 1986 से राष्ट्रीय पर्यावरण सुरक्षा (National Environment Security) की संकल्पना सम्मिलित की गई हैं। प्रो.टी.एन. खुशू ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन (1986) में भारत में पर्यावरणीय प्राथमिकताएँ एवं विकास विषय पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहा था कि पर्यावरण को आर्थिक विकास के साथ न तो जोड़ा गया है और न विकास सम्बन्धी योजनाओं में पर्यावरणीय प्राथमिकता निश्चित की गई है।[9]

हाल के वर्षों में भारत सरकार का पर्यावरण मंत्रालय ठोस उपलब्धियों के लिए सचेष्ट है, लेकिन भारत जैसे विशाल देश के लिए इसके कार्यक्षेत्र को प्रान्तों तक फैलाकर निरन्तर सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। भारत जैसे देश में, जहाँ पर्यावरणीय समस्याएँ अभी सीमित क्षेत्रों तक अपना प्रभाव बना सकी हैं, निरोधात्मक प्रबन्धन (Preventive Management) पर अधिक बल देने की आवश्यकता है। ऐसे कार्यों में जल-प्रदूषण और जल प्रबन्धन, वन संरक्षण, प्राणी-संरक्षण, मृदा और धरातल संरक्षण, स्वास्थ्य संरक्षण जैसी योजनाओं पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए पर्यावरणीय मंत्रालय के कार्यक्षेत्र में विस्तार के साथ अधिकार सीमा और पर्याप्त सुविधा देना आवश्यक है।

पर्यावरण विकास हेतु नियामकीय प्रयासः केन्द्र व राज्य सरकारों ने पर्यावरण सुरक्षा तथा विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण नियामकीय प्रयास किये हैं जिनका उल्लेख किया जा रहा है–

(1) *गोविन्दवल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्था की स्थापनाः* केन्द्र सरकार ने सन् 1988 में अल्मोड़ा जिले में इस संस्था की स्थापना की जिससे पहाड़ी क्षेत्रों का विकास हो और पर्यावरण शुद्ध किया जा सके।

(2) *राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्डः* सन् 1985 में इस बोर्ड की स्थापना भारत सरकार द्वारा की गई जिससे बंजर भूमि का ग्रामीण क्षेत्रों में विकास हो सके।

(3) *राष्ट्रीय वन तथा वन्य जीव सम्बन्धी नीति का निर्माणः* सन् 1988 में केन्द्र ने इस नीति का निर्माण किया जिससे पर्यावरण में प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे।

(4) *जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्रः* केन्द्र ने कुछ वनों तथा कुछ वन-क्षेत्रों को आरक्षित कर दिया है जहाँ शिकार नहीं किया जा सकता, जैसे– भरतपुर में पक्षियों का केन्द्र। सन् 1992 से इन क्षेत्रों के लिए अनेक योजनाएँ स्वीकृत हुई है।

(5) *हरित ईंधन योजनाः* एक अप्रैल सन् 1995 से दिल्ली, मुम्बई, कोलकत्ता तथा चेन्नई में सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। इस योजना को हरित ईंधन योजना अर्थात् ग्रीन फ्यूल स्कीम कहा गया है। इससे जहरीली गैसें वायुमण्डल में नहीं मिल पायेंगी।

(6) *अनुसन्धान शिक्षा एवं प्रशिक्षणः* वातावरण तथा वन से सम्बन्धित मन्त्रालय के सहयोग से अनेक संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं और पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण का स्वरूप सामने आ रहा है।

(7) *गंगा कार्य योजनाः* प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में सन् 1985 में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण की स्थापना की गई है जो गंगा को स्वच्छ रखने की अनेक योजनाएँ क्रियान्वित करता है। देश के विभिन्न राज्यों में इस समय 267 योजनाएँ चल रही हैं।

(8) *प्रदूषण नियन्त्रण कानूनों का निर्माणः* इस प्रसंग में कई कानून बनाये गये हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कानूनों का कड़ाई से पालन कराने के लिए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किये गये हैं।

(9) *राष्ट्रीय पर्यावरण फैलोशिपः* अनुसन्धान के लिए सन् 1995 में इसकी स्थापना हुई है और केन्द्र सरकार के अधीन है यह फैलोशिप।

(10) *राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता अभियानः* पर्यावरण एवं वन मंत्रालय अनेक संस्थाओं को जागरूकता अभियान चलाने के लिए वित्तीय सहायता देता है।

पर्यावरण विकास के नाम पर किये गये पर्यावरणीय अत्याचार की विकृतियाँ सचेत करने लगी हैं कि प्रकृति बहुत देर तक मानवीय उदण्डता को बर्दाश्त नहीं कर सकती है। आर्थिक-सामाजिक विकास में यूरोप और अमेरिका की अगुवाई प्रमाणित

करती है कि वहाँ विकास को केवल आर्थिक उत्पादन की वृद्धि समझा गया और इसके लिए नित नये प्रयोगों को काम में लाते समय पारिस्थितिकी की कार्यप्रणाली और मानवीय सीमाओं को ध्यान में नहीं रखा गया। पारिस्थितिकी के संतुलन को बनाये रखने के लिए संसाधनों का सदुपयोग पारिस्थितिकीय विकास की अवधारण पर होना चाहिए, लेकिन भारत यंत्रों के स्वचालीकरण तथा कम्प्यूटरीकरण में उलझता जा रहा है, जिससे मानव संसाधन की उपेक्षा हो रही है। यहाँ जन संसाधन के उपयोग की योजनाएँ मात्र दिखावा है, जिसके भयंकर परिणाम भुगतना होगा। राष्ट्र की महानता के आधार वहाँ के नागरिक होते हैं, न कि यंत्र। यही कारण है कि देश के स्वतंत्र होते ही महात्मा गाँधी ने भारतीय परिवेश के अनुकूल विकास कार्यक्रम बनाने की वकालत की थी, जिस पर कभी भी योजनाबद्ध रूप में काम नहीं किया गया।

पारिस्थितिकीय विकास की रणनीति जब तक विज्ञान और प्रकृति के समन्वित आधार पर नहीं बनाई जाती तब तक लक्ष्य तक पहुँचना आसान नहीं हैं, क्योंकि विज्ञान को पूर्णतः मानव हित की ओर मोड़ना आवश्यक हो गया है। प्रकृति के रहस्य उद्घाटन के नाम पर अनेक ऐसे काम किये जा रहे हैं जो घातक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए विषाणुओं को आयुधों में प्रयोग या वनस्पतियों और प्राणियों के वंशगुण में परिवर्तन। कहा जाता है कि महाभारत युद्ध में ऐसे आयुधों का प्रयोग किया गया था, जो पर्यावरणीय अवक्रमण का कारण बन गये, जिससे आने वाली पीढ़ी को हजारों वर्षों तक कष्ट उठाना पड़ा। इस महाविनाश के कारण भारत का पौराणिक युग सदियों पीछे चला गया। अतः आज आवश्यकता है इस बात की थी जन-जन में पर्यावरण के प्रति जागृति लायी जाये। इसके लिए प्रकृति के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विकास आवश्यक है, क्योंकि पारिस्थितिकी भी भावना समुच्चय में निहित है। यह भी उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे पारिस्थितिकी असंतुलन के कारणों की जानकारी बढ़ रही है, वैसे-वैसे पारिस्थितिकी विकास का दायरा बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के लिए पर्यावरण-प्रदूषण के लिए पहले जो कारण बताये जाते थे, उनकी संख्या में वृद्धि होती जा रही है। साथ ही प्रदूषण की परिभाषा में नये आयाम जुड़ते जा रहे हैं, जैसे सामाजिक-प्रदूषण (Social Pollution)। विश्व की बढ़ती जनसंख्या पारिस्थितिकीय विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि इसके चलते समस्याओं का समाधान कष्टसाध्य होगा। विश्व को एक इकाई मानने वालों की संख्या इतनी नगण्य है कि विश्वव्यापी पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान उतना आसान नहीं हैं। फिर भी व्याप्त पर्यावरणीय दहशत के कारण भारत के जनमानस की जनचेतना में बदलाव आ रहा है, जो शुभ लक्षण है। पश्चिमी देशों का भौतिकवादी समाज का जीवन मूल्य को नये ढंग से समझने का प्रयास कर रहा है।

इस परिपेक्ष्य में भारत की प्राचीन पर्यावरणीय मान्यताएँ नियामकीय संस्थाओं की दिशा तय करने में सहायक हो सकती है।

संदर्भ

1. Eden M.J. Environmental Hazards in the third world, London, 1978
2. Survey of the Environment, The Hindu, Madras, 1999.
3. World Development Report, World Bank, 2002.
4. राव बी.पी. तथा श्रीवास्तव बी.के., पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2010, पृ.– 527
5. वही
6. पर्यावरण संबंधी तिवारी समिति का प्रतिवेदन, भारत सरकार, 1979
7. राव तथा श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ.– 529
8. वही
9. भारतीय विज्ञान कांग्रेस, दिल्ली, 1986, अधिवेशन प्रतिवेदन।

पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियाँ

सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी

Ikjk'k% प्रस्तुत शोध पत्र में ''पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियाँ'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में हमारे समक्ष पर्यावरण संरक्षण भंयकर चुनौती के रूप में परिलक्षित हो रहा है। पर्यावरण संरक्षण हेतु नियामक संस्थाओं की उदासीनता की स्थिति में लोगों के पास ऐसे तंत्र की अनुपलब्धता होगी, जिन तक वे अपनी इस ज्वलंत समस्या हेतु मदद के आकांक्षी बन सकें। फलतः उनके पास ऐसा कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता जो उन्हें इस समस्या से निजात दिला सकें। ऐसी स्थिति में उनकी हताशा और निराशा अत्यधिक तीव्रतर होगी और अपनी आवाज को तंत्र तक पहुँचाने हेतु विरोधात्मक आक्रोश के पथ पर अग्रसर होगें, जिससे हिंसात्मक विरोधों की अभिवृद्धि होगी। गत् वर्षों में जिन हिंसात्मक गतिरोधों से हम एकाकार हुए, भविष्यगत् वर्षों में उनमें अतिवृद्धि की सम्भावना की आशंका से मन उद्वेलित होगा, जिनके कमतर होने की गुंजाइश लेशमात्र भी नहीं है। यह पर्यावरण तथा देश दोनों हेतु शुभ संकेत नहीं है। पर्यावरण संरक्षण हेतु इस तरह की उदासीनता का मूल कारण हैः– आर्थिक विकास। पर्यावरणीय नियामक संस्थाएँ भी पर्यावरण से सम्बन्धित प्रश्नों पर नियत नहीं रहीं, तो इसकी वजह यह भी है कि हमने अभी तक यह स्वीकार नहीं किया है कि पर्यावरण 'आर्थिक परिवर्तन के घटक' के रूप में भी कार्य कर सकता है। हमने आज पर्यावरणीय सुरक्षा हेतु नितान्त आवश्यक सुझावों की भी अनदेखी कर दी है।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में पर्यावरणीय परिदृश्य चतुर्दिक मानवकृत गतिविधियों से आहत है, जिससे पर्यावरण असंतुलित हो रहा है। ऐसी स्थितियाँ यदि अग्रेतर यथावत बनी रही, तो सम्पूर्ण मानवता एवं प्रकृति का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जायेगा। फलतः यह जानना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि पर्यावरण क्या है? और इसे कैसे संरक्षित किया जाए।

पर्यावरण का आशय है मानव के चारों तरफ का प्राकृतिक आवरण या परिवेश। अर्थात् जो भी प्रकृति प्रदत्त चीजें हमें अपने चतुर्दिक आवृत्त किये हुए है, यथा–वायु,

जल, मिट्टी, वनस्पतियाँ एवं जीव-जन्तुओं आदि के संघात से पर्यावरण की रचना होती है। फलतः जीवों की अनुक्रियात्मकता को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक एवं जैविक परिस्थितियों का योग, पर्यावरण कहलाता है।[1]

वस्तुतः पर्यावरण के स्वपोषण एवं स्वनियमन की अनुक्रियाएँ प्रकृति में सतत् चलती रहती हैं जिसके कारण ही प्रकृति का अस्तित्व बना रहता है किन्तु स्वार्थपरायण मानव प्रकृतिजन्य तत्वों का उपयोग करते समय यह बात विस्मृत कर देता है कि उसके उपरान्त की पीढ़ियों हेतु इन धरोहरों को सहेजने की नितान्त आवश्यकता होगी अन्यथा इस स्थिति में प्रकृति का अन्धाधुन्ध विदोहन पर्यावरण को ही असंतुलित कर देगा, जिसका दुष्प्रभाव हमारी भावी पीढ़ियों को ही भुगतना होगा। स्वभावतः स्वार्थपरायण मानव जब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विज्ञता-अविज्ञतावश प्रकृतिजन्य संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन करता है, जिसके कारण उसे भविष्यगत अन्यान्य पर्यावरणीय समस्याओं व दुष्परिणामों से दो चार होना पड़ता है जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भावी पीढ़ियाँ भी प्रभावित होती हैं।[2]

पर्यावरण संरक्षण का अभिप्राय विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ-साथ उनकी धात्री वसुन्धरा के अस्तित्व को बनाए रखने के अन्यान्य उपाय करना है अर्थात् प्रकृति एवं मानव के मध्य मित्रवत सम्बन्ध ही पर्यावरण संरक्षण है। प्रकृतिजन्य प्रेमपूर्ण आचरण ही संरक्षण की मनःस्थिति को उद्भवित करता है। पर्यावरण का संरक्षण, मानव एवं प्रकृति के मध्य सम्बन्धों को अनुकूलतम बनाने हेतु अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण की इस प्रकार की अनुकूलता के लक्ष्य को प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा नवीनीकरण द्वारा ही संरक्षित एवं विकसित किया जा सकता है। अतः पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा ज्ञानयुक्त प्रयोग जिसमें उसका नूतनता बाधित न हो, उनका अधिकतम उपयोग हो, साथ ही अन्य कारक कुप्रभावित न हो।[3]

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। जहाँ वह दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में उन्नति की उत्तंग शिखर पर चढ़ता चला जा रहा है, तो वहीं दूसरी तरफ यह विकास की गत्यात्मकता हमारे लिए कश्टप्रद एवं अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह् लगाता जा रहा है। यथा–वनों की कटाई, वनस्पतियों और जैव सम्बन्धों में कमी औद्योगीकरण एवं शहरीकरण में वृद्धि, विज्ञापन एवं तकनीकी का अप्रत्याशित प्रसार और जनसंख्या विस्फोट तथा परमाणुविक भट्टियों में उत्पन्न होने वाली रेडियोधर्मी ईंधन की राख, रासायनिक प्रदूषक एवं इलेक्ट्रानिक उपकरणजन्य प्रदूषक सामग्री के विस्तार से जो पारिस्थिति की परिवर्तन प्रदूषण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं उससे प्रकृति का संतुलन असंतुलित हुआ है। प्रकृति का अप्रतिम दोहन से जो स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उसमें प्रकृति मनुष्य सम्बन्ध कितने समय तक बना रह पायेगा, यह अनुमान तय कर पाना मुमकिन न होगा। विश्व के

विकसित देश जिस आर्थिक विकास से लाभान्वित हो रहे हैं, वह भूतकालीन मानवीय पर्यावरण के संरक्षण को ध्यान में रखे बिना ही प्राप्त किया गया था।[4]

वर्तमान समय से पाँच दशक पूर्व से ही पर्यावरणविद्ों द्वारा मानव और प्रकृति के मध्य सम्बन्धों के बिखराव के बारे में सचेत किये जाने पर भी उपभोगवादी मानव द्वारा औद्योगीकरण सतत् विकासोन्मुख है, जिससे पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है।[5] यद्यपि पर्यावरण के संरक्षण का मूलमंत्र – स्वस्थ पर्यावरण, स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिष्क है। अर्थात् मानव के स्वस्थ मानसिक विकास हेतु स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक है तथा स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ पर्यावरण का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि पर्यावरण में अस्वस्थ मिट्टी, रूग्ण वन, प्रदूषित जल एवं अशुद्ध वायु की व्यापकता होगी, तो अन्ततः मानव समाज कुपोषण, अभाव, रोग, कलह एवं युद्ध के सम्मिलित प्रभाव से विनष्ट हो जायेगा। वर्तमान परमाणविक विध्वंस के कगार पर खड़ा विश्व इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें अशांति एवं युद्ध की वर्तमान स्थिति के मूल में संसाधनों का असमान वितरण एवं अभाव ही परिलक्षित हो रहा है।[6]

पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियाँ

वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण के समक्ष निम्न चुनौतियाँ परिलक्षित हो रही है –

tula[;k of) % वर्तमान समय में, जनसंख्या की अतिशय वृद्धि पर्यावरण संरक्षण के समक्ष प्रमुख चुनौतियों में से एक है। निरन्तर जनसंख्या की वृद्धि से शुद्ध भोजन, जल, जंगल (वायु), जमीन (रहने योग्य) के साथ-साथ खनिज संसाधनों की आनुपातिक कमी परिलक्षित हो रही है, जो भावी पीढ़ियों के समक्ष एक चुनौतिपूर्ण स्थिति होगी। 'माँग और पूर्ति' का समीकरण असंतुलित होता जा रहा है, जिसका कारण मानवीय जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि है। यदि वैश्विक स्तर पर जनसंख्या स्थिरीकरण हेतु तीव्रतर प्रभावी प्रयास नहीं किये गये तो समस्त मानवता को इसके दुष्प्रभाव को भुगतना होगा।

'kgjhdj.k % जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ शहरीकरण में वृद्धि संरक्षण के समक्ष प्रमुख चुनौती के रूप में दृश्यमान है। बीसवीं शताब्दी को नगरीय क्रांति की सदी माना जाता है, जिसमें नगरीय जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि देखी गयी। शहरीकरण के प्रसार से पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा है। नगरीय अधिशासों का सघन फैलाव हो रहा है। जिससे भोज्य पदार्थ, पेयजल, वायु, जल निस्तारण, कूड़े-कचरें का निस्तारण, सड़क, प्रकाश, शौचालय, जीर्ण-शीर्ण पदार्थों आदि से प्रदूषण की समस्या तीव्रगति से वृद्धि कर रही है तथा शहरी जीवन को दुरूह बनाता जा रहा है।

vkS|kSxhdj.k % विश्व के प्रत्येक देश में भौतिक जीवन स्तर के उत्तरोत्तर उन्नयन एवं गरीबी उन्मूलन हेतु सतत् प्रयत्न किये जा रहें हैं। आर्थिक विकास ही

इस हेतु एक मात्र साधन है। आर्थिक विकास किये बिना न तो जीवन की मौलिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास) की पूर्ति हेतु अनिवार्य सामग्रियों की आपूर्ति हो सकती, न ही उच्चतर साधन (परिवहन एवं संचार के उन्नत साधन, वायुयान, कम्प्यूटर, सेलुलर फोन आदि या आरामदेह शीतताप नियंतित्र मकान, कार, रेलगाड़ियाँ या दैनिक शारीरिक श्रम बचाने वाले उपकरण वाशिंग मशीन, वैक्यूम क्लीनर या मनोरंजन हेतु मल्टीचैनल, रंगीन टी0वी0 या विविध प्रसाधन सामग्रियाँ) सुलभ हो सकते हैं।[7]

यद्यपि उद्योगों को स्थापित करने हेतु जिन आवश्यक तत्वों को जुटाना तथा विविध प्रक्रियाओं द्वारा उनसे इच्छित सामग्री पैदा करनी पड़ती है, वे अनिवार्यतः पर्यावरण से ही प्राप्य है। जिस प्रकार प्रत्येक स्तर पर पर्यावरण को प्रभावित किये बिना कोई औद्योगिक उत्पादन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार उत्पादन प्रक्रिया में अपशिष्ट सृजन एवं परिणाम स्वरूप पर्यावरण का प्रदूषित होना अपरिहार्य हो जाता है। क्योंकि औद्योगिक प्रक्रियाएँ अनिवार्यतः भौतिक पदार्थों के नैसर्गिक प्रवाह को परिवर्तित कर प्रदूषण की जननी होती है।[8]

fuoukdj.k % वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों की निरन्तर कमी हो रही है। जिस गति से वन क्षेत्र सिकुड़ रहे हैं, उस गति से वनों का संरक्षण नहीं हो पा रहा है। वस्तुतः पेड़-पौधें वायुमण्डलीय कार्बन चक्र को संतुलित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा वातावरण में कार्बन डाईआक्साइड का अवशोषण कर अपने लिए भोज्य पदार्थ का सृजन करते हैं और मानव जीवन हेतु ऑक्सीजन का उत्सर्जन करते हैं। फलतः पर्यावरण में न तो कार्बन डाईऑक्साइड की अधिकता होती है, और न ही ऑक्सीजन की कमी। किन्तु जब निर्वनीकरण की प्रक्रिया में वृक्षों का अन्धाधुंध कटान होगा, तो वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड आक्सीकृत होकर पर्यावरण को प्रदूषित करेगी, जिससे मानव जीवन जीना असम्भव होगा।

ok;q iznw"k.k % पर्यावरण में विविध प्रकार की गैसें जीवधारियों की अनेकानेक क्रियाओं द्वारा विशेष अनुपात में उपस्थित रहती हैं। इन गैसों का जीवधारियों और वायुमण्डल के मध्य चक्रीकरण होता रहता है, किन्तु मानव के विविध क्रियाओं द्वारा इस संतुलन को असंतुलित किया जा रहा है, जिससे प्रदूषण का भयावह संकट उत्पन्न हो रहा है। आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में औद्योगिक प्रदूषण ने वायु को सर्वाधिक प्रदूषित किया है। प्रदूषित वायुमण्डल में अवांछित कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2), काबर्नमोनो ऑक्साइड (CO), अधजले हाइड्रो कार्बन के कण आदि मिले रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में श्वास लेने से मानव असाध्य रोगों से ग्रसित होता जा रहा है। वायु प्रदूषण के प्रमुख कारणों में वनों का अंधाधुंध कटाई भी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कराये गये एक सर्वे में यह तथ्य ज्ञात हुआ है कि दुनिया के दस महानगरों में

प्रदूषण का स्तर इतना बढ़ गया है कि वहाँ मानव जीवन का अस्तित्व ही संकटग्रस्त होता जा रहा है।

ty in"k.k % जल जीवन हेतु बुनियादी आवश्यकताओं में से एक है। गत् वर्षों में यह व्यापक रूप से प्रदूषित हुआ है जल में खनिज तत्वों, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों एवं घुलनशील गैसों की अधिकता रहती है। यदि जल में इन घुलनशील पदार्थों की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है, जो जल में उपस्थित नहीं होते, तो जल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। वस्तुतः पृथ्वी का तीन-चौथाई हिस्सा जलमग्न है फिर भी करीब 0.3 फीसदी जल ही पीने योग्य है। विभिन्न उद्योगों एवं मानव बस्तियों से निःसृत अपशिष्ट ने जल को इतना प्रदूषित कर दिया है कि पीने योग्य 0.3 फीसदी जल में से मात्र 30 फीसदी जल ही वास्तव में पीने योग्य रह गया है।[9] उदाहरण स्वरूप, दिल्ली की वांछित अपशिष्ट द्वारा यमुना नदी में प्रतिदिन 200 मिलियन लीटर कूड़ा-करकट प्रवाहित करने से इस नदी की गणना दुनिया की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में की जाने लगी है, जिसका जल ग्रहण करने वाला जीव हैजा, पीलिया, डायरिया या पेचिश, टायफाइड आदि बीमारियों का शिकार हो सकता है।

वर्तमान सामयिक वैश्विक परिदृश्य में सामाजिक व आर्थिक विकास के नाम पर पर्यावरण के अतिदोहन से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती जा रही है। आज हवा, पानी व मिट्टी प्रदूषित होती जा रही है। जिससे मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव से उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। आज प्रदूषण ने मानव के समक्ष विविध प्रकार की खतरनाक और क्षणभर में मौत के आगोश में धकेलने वाली असाध्य रोगों को जन्म दिया है। ऐसी स्थिति में विकास के अन्य आयामों से अधिक महत्वपूर्ण पर्यावरण का संरक्षण है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि सर्वप्रथम हमें पर्यावरण का विकास (संरक्षण) करना होगा।

वर्तमान समय में पर्यावरण के समक्ष अन्यान्य चुनौतियों का यदि कोई स्थायी समाधान नहीं किया गया तो उसकी अन्तिम परिणति समस्त जैविक जगत की सामूहिक विनाश के रूप में होगी। ऐसी भयंकर त्रासदी जिसमें सिर्फ मानव का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति का विनाश हो जाएगा, जो कदापि अतिश्योक्ति न होगा। निकट अतीत में आने वाले सूनामियों व भूकम्पों से होने वाला विनाश भयावह भविष्य की वानगी है। आज जल, जंगल, जमीन व हवा आदि प्रकृति के अन्यान्य उपादान क्षरित और प्रदूषित होते जा रहे हैं, धरती से आकाश तक अपशिष्ट पदार्थों का ढेर होता जा रहा है, किन्तु स्थायी रूप से जीवन शैली में बदलाव, वैकासिक अवधारणा में परिवर्तन, उपभोक्तावाद से परहेज, यंत्रों और तकनीकों का सीमित उपयोग तथा अपनी लिप्साओं पर नियंत्रण ही पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियों हेतु किया गया ठोस उपाय होगा।

I UnHk

1. योजना, जून 2013, पृ0–45
2. डॉ0 चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ0 एम0एस0 सिसौदिया, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2015, पृ0–201
3. वही, पृ0–202
4. ए, मायाजी सिनजेला, ''डेवलपिंग कंट्रीज पर्सेप्शन्स ऑफ इन्वायरमेण्टल प्रोटेक्शन एंड एकॉनामिक डेवलपमेण्ट, आईजेआईएल, वाल्यूम 24, 1984, पृ0–489.
5. योजना, दिसम्बर 2015, पृ0–49
6. प्रो0 जगदीश सिंह, पर्यावरण एवं सविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृ0–224
7. वही, पृ0–32–33
8. वही, पृ0–33
9. प्रो0 श्री प्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धान्त के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2018, पृ0–103

भारत में पर्यावरणीय न्यायशास्त्र एवं आमजन

(क्या स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरण अनिवार्य है?)

रवीन्द्र कुमार वर्मा

lkjk'k% *भारत में विगत् तीन चार दशकों से पर्यावरण संरक्षा हेतु अनेक नीतियाँ, कानून तथा संगठनों का निर्माण हुआ है। परन्तु वांछित फल नहीं प्राप्त हो सके हैं। पर्यावरण संरक्षा हेतु बने संगठनों का अपने दायित्वों पर खरा नहीं उतरना तथा न्यायिक निर्णयों के आंशिक प्रभाव के कारण आमजन इस प्रक्रिया से कटे हुए हैं। साथ ही उनके हितों की प्रस्तुति हेतु पर्याप्त अवसर नहीं दिये जाते हैं। भारत में पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के परीक्षण से विदित होगा कि इन तमाम कानूनों और न्यायिक निर्णयों की रेडार में आमजन नहीं आ पाते चाहे यह मामला उनके पर्यावरणीय विरोधी आदतों पर नियंत्रण रखने का हो या उनकी आजीविकीय प्राथमिकता का प्रश्न हो। तमाम मुद्दों पर विवेचन के पश्चात् यह अनुशंसा की जा सकती है कि पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण नियंत्रण हेतु बनी संस्थाओं और विभिन्न पर्यावरणीय नीतियों के कार्यान्वयन की जिम्मेवारी किसी ऐसे प्राधिकरण को दी जाये जिसे स्वायत्तता प्राप्त हो और आवश्यकतानुसार मानक बना कर पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण के साथ.साथ अनवरत अनुश्रवण कर सके। इसके लिए पर्यावरण संरक्षा के हेतु एक स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरण का गठन किया जाना चाहिए।*

प्रस्तावना

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि भारत में पर्यावरण का दिन-प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। यद्यपि स्वतंत्रोत्तर भारत में पर्यावरण संरक्षा हेतु कम-से-कम दो सौ कानून, अनेक संस्थाएँ यथा केन्द्रीय मंत्राालय, राज्यों में विभागों, केन्द्रीय/राज्य/केन्द्र प्रशासित राज्यों के स्तर पर पर्यावरण नियंत्रण बोर्डों तथा हरित न्यायाधीकरण (Green Tribunals) आदि का निर्माण हुआ है, साथ-ही-साथ न्यायिक आदेशों,

सरकारी अभियानों और प्रचारों की भरमार है, फिर भी विडम्बना यह है कि हम पर्यावरणीय ह्रास के अग्रणी बने हुए हैं। विश्व के सर्वाधिक 17 प्रदूषित शहरों में 14 भारतीय शहरों का होना, बड़ी-बड़ी नदियों का उत्तरोत्तर प्रदूषित होना और सूखना, अन्य जल संसाधनों का ह्रास, हरित आच्छादन में अवसान, जलवायु परिवर्तन, आपदाओं की बढ़ती बारम्बारता, फैलती गंदगी आदि इस बात के प्रमाण हैं। यहां उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल से ही भारतीय शासक पर्यावरण संरक्षण के लिए सचेत रहे हैं और इसे संस्कृति से जोड़ कर रखा था। आज भी इतने उपाय किए जा रहे हैं। परन्तु चूक कहां हो रही है? ऐसा प्रतीत होता है कि इन चिंताओं और उपायों में आमजन की सहज सहभागिता नहीं हो पा रही है। इसी परिकल्पना के तहत प्रस्तुत आलेख में पर्यावरण संरक्षण में आमजन को केन्द्र में रखकर पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के प्रभाव तथा स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरणों की आवश्यकता के परीक्षण का प्रयास किया गया है।

पर्यावरण और हम

भारत ही नहीं पूरी दुनिया में पर्यावरण का तेजी से ह्रास हुआ है और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं उपकरणों के माध्यम से इसके संरक्षण के उपाय किये जा रहे हैं। इन्हीं उपायों के आलोक में राष्ट्रीय स्तर पर नीतियां एवं संस्थाओं का निर्माण किया जा रहा है। फिर भी पर्यावरण का ह्रास जारी है। बदलते जलवायु, बढ़ती भूमण्डलीय उष्मा, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय, शहरी वातावरण का जहरीला होना तथा आपदाओं की बढ़ती बारम्बारता आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आये दिन इससे संबंधित सांख्यिकी तथा आंकड़ों का विवेचन होता रहता है। यहां पर्यावरणीय क्षरण के आंकड़ों का विवरण करना अनावश्यक प्रतीत होता है। परन्तु यह दुहराना आवश्यक है कि पर्यावरणीय ह्रास का मुख्य कारण प्राकृतिक नहीं अपितु मानवीय गतिविधियां ही है।[1] अनुमान है कि 40 प्रतिशत प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसों का एमीशन लोगों के दैनिक जीवन की गतिविधियों और उपभोग की बदलती प्रकृति के कारण होता है, शेष 60 प्रतिशत उद्योगों, खनन, कचड़ा प्रबंधन के दोषों के कारण है। त्योहारों एवं उत्सवों में आतिशबाजी और तेज ध्वनि यंत्रों का प्रयोग इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। अभी हाल ही में एन.जी.टी. (नेशनल ग्रीन न्यायाधीकरण) द्वारा पटाखों के व्यापारियों पर रोक लगाने के बावजूद जनता ने इसका प्रयोग किया।

पर्यावरण विरोधी मानवीय गतिविधियों पर नियंत्रण करना राज्य का कर्तव्य है। सरकारी नीतियों एवं उपायों के साथ-साथ मानवीय व्यवहारों की अहम् भूमिका होती है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर पर्यावरणीय राजनीति की अवधारणा का उदय हुआ है। विद्वानों का मत है कि पर्यावरणीय राजनीति का उदय स्टॉकहोम सम्मेलन के पूर्व खासकर 1970 के दशक के प्रारंभ से हुआ है। तब से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों का अनुशीलन होता रहा है।[2] अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार पर्यावरण

को प्रदूषित करने और उनपर नियंत्रण से संबंधित विकसित और अविकसित देशों के बीच असमानता को क्योटों प्रोटोकॉल 1997 में उठाया गया क्योंकि पर्यावरण चिंतकों के बीच यह सिद्ध हो गया कि विकसित देश पर्यावरण के प्रदूषण में अधिक योगदान करते हैं जबकि अविकसित और विकासशील देशों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। इसी क्रम में पर्यावरण की चुनौतियों को भी चिन्हित किया गया जिसमें गरीबी, आर्थिक असमानता, उपभोक्ता संस्कृति और अविकास की स्थिति आदि महत्वपूर्ण हैं। भारत जैसे देश में जहां विकास और गरीबी-उन्मूलन किसी भी राजनीतिक पहल की प्रथम प्राथमिकता बनती है वहां कुछ नीतियां पर्यावरण के विरूद्ध हो जाती हैं। दूसरी ओर उपभोक्ता संस्कृति में बदलाव आने के चलते सतत् उपभोग (sustainable consumption) की स्थिति में गिरावट आयी है।[3] पर्यावरणीय नीतियों के कार्यान्वयन की सफलता आमजन की सहज, सक्रिय और प्रभावकारी सहभागिता पर निर्भर है।

सरकारी आंकड़ें बताते हैं कि भारत में आमजन की गतिविधियों जैसे कचरे का जमाव तथा फैलाव, पर्यावरण विरोधी उपभोग की आदतें (environmentally hostile consumption pattern) और पर्यावरण के प्रतिकूल आजीविका आदि का पर्यावरण के प्रदूषण में 40 प्रतिशत तक योगदान होता है। इन परिस्थितियों में कई सहज प्रश्न उठ खड़े होते हैं – जैसे पर्यावरण संरक्षा हेतु बने कानून और नियम किस प्रकार कार्य करते हैं और कितने प्रभावी हैं? क्या नीतियों एवं न्यायिक निर्णयों के रेडार (प्रेक्षण परिधि) में आमजन हैं? क्या भारत में लोग पर्यावरण संरक्षा और पर्यावरणीय ह्रास पर नियंत्रण रखने की दिशा में जागरूक, तत्पर और सक्रिय हैं? प्रस्तुत आलेख में इन प्रश्नों पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पर्यावरणीय न्यायशास्त्र

ikphu Hkkjr: भारतीय प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि हमारी प्राचीन राज व्यवस्था पर्यावरण संरक्षण के प्रति पर्याप्त सचेत रही है। इसके लिए न केवल कठोर कानून और दण्ड व्यवस्था का प्रावधाान किया गया था बल्कि इसे आमजन की दैनिक गतिविधियों से भी जोड़ा गया था। पौराणिक धर्म ग्रन्थों जैसे वेद, पुराणों तथा महाकाव्यों में पर्यावरण संरक्षा के उपायों की चर्चा है। ऋग्वेद में इश स्तुति के साथ प्रकृति की पूजा के भी प्रमाण मिलते हैं। उपनिषद्ों और पुराणों में वर्णित कर्मकाण्डों में लोगों को पर्यावरण की संरक्षा के प्रति सचेत रखा गया है। उदाहराणार्थ गरूड़ पुराण में वनस्पतियों को नष्ट करना तथा हरे-भरे पेड़ पौधों को काटना आदि पाप की श्रेणी में रखा गया है। पर्यावरण क्षरण को धर्म से जोड़ कर लोगों के दैनिक जीवन में आवश्यक बनाया जाता था। राजा और धर्मगुरूओं द्वारा लोगों से इनका पालन करवाया जाता था। आमजन भी इसे धर्म का हिस्सा मानकर पालन करते थे।

321 ई. पूर्व के बाद के काल में भारत में कौटिल्य के चिरप्रतिष्ठित राजनीतिक ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में पर्यावरण संरक्षा के विभिन्न आयामों पर कई वैधाानिक प्रावधान और राजा पर उसके पालन करवाने की जिम्मेदारी वर्णित हैं। कौटिल्य ने राजा पर बंजर शुष्क भूमि को वनस्पति लगा कर संरक्षित करने, वनों, जलाशयों (water reservoirs and water bodies) तथा खनिज संपदा की संरक्षा की जिम्मेदारी दी। अर्थशास्त्र के खण्ड II/1/39 और II/2/5-7 में जंगली जानवरों और जंगल के उत्पादों की संरक्षा के उपाय वर्णित है। कौटिल्य ने यहां तक अनुशासित किया कि दूसरे क्षेत्रों से आनेवाले जंगली जानवरों के साथ अतिथि के समान व्यवहार करना चाहिए। हाथियों की हत्या के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान है। आवासीय इलाकों, सड़कों तथा श्मशानों के निर्माण में पर्यावरण संरक्षण को प्राथमिकता देने का विवरण है। इन प्रावधानों के उल्लंघन पर दण्ड के प्रावधान किए गए हैं। आवासीय क्षेत्रों में उचित सीवरेज, कचड़ा प्रबंधन, जलसंसाधन, महिलाओं की प्रसूति के लिए जल संग्रह (खण्ड II/8/6) आदि का पालन करवाना राजा की जिम्मेदारी थी। अर्थशास्त्र के खण्ड II/36/26 में इनके उल्लंघन पर दण्ड के प्रावधान हैं। खण्ड IV/3/1 में आपदाओं का प्रबंधन और वर्गीकरण किया गया है। आठ प्रकार की दैविक आपदाओं का विवरण है जैसे– दावानल, बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, चूहों, जंगली जानवरों, सर्पों आदि का प्रकोप तथा बुरी आत्माओं का प्रकोप। राजा को इन आपदाओं से निपटने के लिए पदाधिकारियों की व्यवस्था करने का दायित्व दिया गया।[4] इसके अतिरिक्त विभिन्न पुराणों (यथा शिव पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु पुराण, गरूड़ पुराण), मनुस्मृति, पंचतंत्र, महाभारत, रघुवंशम्, यजुर्वेद आदि में प्रकृति (पर्यावरण) के प्रति मानवीय चेतना को सजग रखा गया है।[5] अशोक के पांचवें स्तंभ पर भी पर्यावरण संरक्षण के नियमों की चर्चा मिलती है।

निष्कर्षतः प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षा मात्र नैतिक उपदेश तक सीमित नहीं था बल्कि लोगों के पर्यावरण विरोधी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए धार्मिक विश्वासों को विकसित किया गया तथा राजकीय कार्यो में वैधानिक दण्डों का प्रावधान था।

आधुनिक भारत

पर्यावरणीय कानूनः वर्तमान भारत में पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन में कानूनों एवं न्यायालयों के निर्णयों का जाल सा बन गया है जिसे हम पर्यावरणीय न्यायशास्त्र के नाम से पुकारते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों ने तो 'सांस लेने के अधिकार' की मांग शुरू कर दी है। उनका मानना है कि ऐसी विकट पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्रदूषकों को दण्डित किया जाना चाहिए साथ ही सड़कों को वैक्यूम क्लीन करने और आधुनिक कचरा प्रबंधन को लागू करना चाहिए और यदि नेता और नौकरशाह इनसे अनभिज्ञ हैं तो विशेषज्ञों की राय लेनी चाहिए। ये सभी कदम केवल

कानून के द्वारा ही उठाये जा सकते है।[6] यहां पर्यावरणीय कानूनों एवं न्यायलीय आदेशों का विश्लेषण किया जायेगा।

भारत में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित 200 से अधिक कानून और नियम बने हुए हैं साथ ही साथ केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय द्वारा प्रशासनिक नियमों-परिनियमों की भी अलग सूची है। सभी कानूनों का नाम गिनाना यहां विषयांतर होगा। इन कानूनों को दो श्रेणियों में रख सकते हैं – सामान्य कानूनों में पर्यावरणीय विषयों के दण्ड प्रावधान तथा पर्यावरण-विशेष कानून। स्वतंत्रता के पूर्व के कुछ कानूनों में पर्यावरण संबंधी मुद्दे समाहित हैं उदाहरण के लिए भारतीय दण्ड संहिता के चतुर्थ खण्ड में ऐसे अपराधों का जिक्र है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा सुविधाओं के विरूद्ध हैं जिसमें जल, वायु और ध्वनि के प्रदूषण के मामले समाहित हैं। धारा 278 में वातावरण को अस्वस्थकर बनाने पर आर्थिक दण्ड का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त सीआर.पी.सी., मोटर व्हेकिल एक्ट, कैनाल एक्ट आदि भी उल्लेखनीय हैं।[7]

पर्यावरण संरक्षा से संबंधित कानूनों को निम्नलिखित श्रेणियों में रख सकते हैं – प्रदूषण नियंत्रण संबंधी, प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षा संबंधी, कचरा प्रबंधन संबंधी, सार्वजनिक आपदा संबंधी, औद्योगिक प्रदूषण नियंत्रण संबंधी कानून तथा पर्यावरणीय न्यायिक निकाय या प्राधिकरण।[8] इन कानूनों के कार्यान्वयन हेतु पर्यावरण, वन तथा पशु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किसी परियोजना को (Environmental Clearance) के लिए परिनियम और अधिसूचनाएं जारी की गईं हैं। इस संबंध में अधिसूचनाएं 1992, 1994 तथा 2006 में जारी की गईं[9] जिनके द्वारा पर्यावरणीय निगरानी हेतु परियोजनाओं का वर्गीकरण, चार स्तरीय जांच प्रक्रियाओं तथा इन्वायरन्मेंट इम्पैक्ट एसेसमेंट (EIA), इन्वायरन्मेंट मैनमजमेंट प्लान (EMP) और लोकअनुमति प्रतिवेदनों को एक्सपर्ट एप्रेजल कमिटी (EAC) के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रक्रियाएं निर्धारित की गई हैं।[10]

पर्यावरणीय न्याय प्रक्रियाः इन कानूनों एवं नियमों का उल्लंघन होने पर उसकी समीक्षा न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों द्वारा होती है। सामान्य न्यायपालिका मुकदमों के बोझ से दबे होते हैं इसलिए पर्यावरण न्यायाधिकरण की आवश्यकता पड़ी। सर्वप्रथम नेशनल इन्वायरन्मेंट ट्रीब्यूनल एक्ट 1995 द्वारा राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण की स्थापना हुई परन्तु यह कारगर नहीं हो सका। दो वर्षों के बाद नेशनल इनवायरमेंट एपीलेट ऑथॉरिटी का गठन किया गया जिसके ऊपर इन्वायरन्मेंटल क्लीयरेन्स (Environmental Clearance) से संबंधित मुद्दों के निपटारे की क्षेत्राधिकार और शक्ति प्रदान की गई ताकि इन्वायरन्मेंटल (प्रोटेक्शन) एक्ट 1986 के पर्यावरण संरक्षा संबंधी प्रावधानों के तहत पर्यावरण की सुरक्षा हो सके। परन्तु भारत सरकार को इसके प्रभावकारिता पर स्वयं संशय था इसलिए उक्त एक्ट (1997) को नेशनल ग्रीन ट्राइब्यूनल विधेयक 2009 के रूप में रीपील करने की बात

कही गई जो 2010 में कानून में परिणत हो गया और नेशनल ग्रीन ट्रॉयब्यूनल (एन. जी.टी.) की स्थापना हुई।।[11] इस विधि द्वारा इस न्यायाधिकरण को मामलों के त्वरित निष्पादन के लिए विशेष न्यायाधिकरण बनाने की व्यवस्था की गई। इसे संविधान की धारा 21 को प्रतिपूर्ति का उपकरण माना गया। यहां उल्लेखनीय है कि एन.जी.टी. को CrPC 1908 के प्रक्रियात्मक झंझटों से मुक्त रखा गया और मामलों के निपटारे के लिए सीमा छह माह के अन्दर रखी गई। एन.जी.टी. से कार्बन क्रेडिट (Carbon Credit) के लक्ष्य की प्राप्ति की उम्मीद बंधी। यह एक अद्भुत न्यायिक निकाय है जिसने 'pollutors pays' के सिद्धान्त के तहत राज्य सरकारों सहित केन्द्र सरकार के विरूद्ध कड़ी टिप्पणियां की है क्योंकि सरकारों की ओर से ठोस कदम नहीं उठाए गए।

न्यायालीय निर्णयों के मानक सिद्धान्त

भारतीय न्यायपालिका ने अब तक पर्यावरणीय प्रशासन में न्यायाधीश चालित कार्यान्वयन (judge driven implementation) की भूमिका अदा की है। पर्यावरणीय कानूनों की व्याख्या में न्यायधीशों ने पर्यावरण विशेष के अलग सिद्धांत निश्चित किए हैं। यहां उल्लेखनीय है कि पर्यावरणीय वादों में *लोकस स्टैंडाई (locus standi)* निर्धारित करने में पी.आई.एल. (public interest litigations) वादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन पर्यावरणीय वादों को न्यायालयों द्वारा मौलिक अधिकारों के हनन की श्रेणी में रख कर ज्यादा और *लॉ ऑफ टार्ट्स* (कानूनी दायित्व) पर कम। पर्यावरण संबंधी मामलों में संविधान की धारा क्रमशः 32 और 226 में प्रदत्त शक्तियों के तहत सर्वोच्च नयायालय एवं उच्च न्यायालयों द्वारा प्राथमिक क्षेत्राधिकार का उपयोग किया जाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण मुकदमें *सुभाष कुमार बनाम बिहार सरकार* एवं अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण को मौलिक अधिकार की श्रेणी में रखा। अपने निर्णय में न्यायालय ने कहा, "Right to live is a fundamental right under Art. 21 of the Constitution and it includes the right of enjoyment of pollution free water and air for full enjoyment of life"[12]. इन उच्चतर न्यायालयों द्वारा विस्तृत विषय वायु, जल, ठोस कचरा, हानिकारक कचरा, वन, खनन गतिविधियां और पुरातात्विक इमारतें आदि समाहित किये गये है और सरकार के दायित्वों को उजागर किया गया।

कालान्तर में न्यायालयों ने पर्यावरणीय वादों के निपटारे के लिए कई सिद्धान्त विकसित कर लिए हैं उदाहरणार्थ 'आमजन पर विश्वास' (Public Trust), 'एहतियात या सावधानी' (Precaution), 'प्रदूषकों को जुर्माना' (Pollutors Must Pay), 'पूर्ण उत्तरदायित्व' (Absolute Liability), 'सतत् विकास' (Sustainable Development) तथा 'आवश्यकता और पर्यावरण के बीच संतुलन' (Balance Between Need and Environment)। यहां इन सिद्धान्तों पर आधारित सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च

न्यायालयों प्रतिनिधि वादों का जिक्र करना आवश्यक प्रतीत होता है। *एम.सी. मेहता बनाम कमल नाथ,* वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य को प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षा के लिए राज्य को जिम्मेवार ठहराया। एक दूसरे वाद *एम. बिल्डर्स प्रा. लि. बनाम राधे श्याम साहू* वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु में एतिहासिक धरोहर के नीचे बने भूमिगत बाजार को ध्वस्त करने का आदेश दिया।[13] इन दोनों वादों में पब्लिक ट्रस्ट सिद्धांत का सहारा लिया गया। इसके ठीक विपरित *नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत सरकार* के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि सार्वजनिक लाभ को देखते हुए डैम के निर्माण को रोका नहीं जा सकता। एहतियात बरतने के सिद्धान्त के तहत निर्णय का उदाहरण भेलौर सीटीजन *वेलफेयर फोरम बनाम भारत सरकार* वाद में तमिलनाडु में टेनरीज के चलते हो रहे भूमिगत जल के प्रदूषण के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय ने उस पर रोक लगाया।[14] *पोल्युटर्स मस्ट पे* के सिद्धान्त के तहत एम.सी.मेहता बनाम भारत सरकार के मामले में हानिकारक एवं अस्वास्थ्यकर उद्योग को उसके पीड़ितों को मुआवजा देने का आदेश दिया गया।[15] हिमांचलप्रदेश सरकार बनाम गणेश वुड प्रोडक्ट्स के मामले में सतत् विकास को आधार बनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने वनआधारित उद्योग पर रोक लगाया।[16] दिल्ली उच्च न्यायालय ने सन् 2000 में संतुलन सिद्धान्त का सहारा लेते हुए यमुना नदी के बेड में कामनवेल्थ खेल गांव के निर्माण की मंजूरी दी तथा यमुना नदी के पानी को साफ करने तथा उस क्षेत्र में हानिकारक उद्योगों को बन्द करने का निर्णय दिया।[17] हिम परिवेश *इन्वायरन्मेंट प्रोटेक्शन सोसाइटी एवं अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश सरकार* वाद में उच्च न्यायालय ने अपने 4 मई 2012 के निर्णय में 1994 एवं 2006 के इन्वायरन्मेंट एसेसमेंट अधिसूचना के आलोक में 25 मेगावाट के सीमेंट संयत्र की मंजूरी को निरस्त करते हुए उस उद्योग पर 100 करोड़ रूपयों का जुर्माना लगाया।[18]

एन. जी. टी. के हाल के निर्णयों पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि मामलों का निपटारा तो त्वरित गति से हुआ परन्तु लगभग सभी निर्णय या तो सरकार या प्रदूषित करने वाले संगठित क्षेत्रों के व्यावसायियों के विरूद्ध दिया गया। पिछले वर्ष 2017 में दीपावली के दौरान एन. जी. टी. ने दिल्ली में पटाखों के व्यापार पर रोक लगायी थी परन्तु व्यापारियों ने आदेश के खिलाफ प्रदर्शन किए और जनता ने जमकर आतिशबाजी की। 2010 के बाद एन. जी. टी. के पूर्वी क्षेत्र ने *संजय सिन्हा बनाम बिहार सरकार* एवं अन्य के मामले में अपने 16 सितम्बर 2016 के आदेश में कहा कि इम्पैक्ट एसेसमेंट में सही विशेषज्ञों को रखा जाये तथा दूसरे मामले *अमन कुमार सिंह बनाम बिहार सरकार* में बिहार सरकार द्वारा पर्यावरण समिति के गठन को सही बताया और अपील को खारिज कर दिया। इसके अतिरिक्त बालू खनन संबंधी कई मामले भी निर्णित हुए हैं। यहां मुकदमों का विस्तृत विवरण देना प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है।[19]

उपरोक्त विधियों-नियमों एवं न्याय प्रक्रिया के विवेचन इस बात की ओर इंगित करता है कि पर्यावरण की संरक्षा भारतीय संस्कृति का अंग रही है। उपनिषदों और पुराणों में वर्णित कर्मकाण्डों के माध्यम से लोगों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील रखा जाता था। प्राचीन काल में पर्यावरण संरक्षा में राजा और जनता दोनों पर बराबर जिम्मेदारी दी जाती थी। इतना ही नहीं पर्यावरणीय नियमों के उल्लंघन पर निश्चित दण्ड की व्यवस्था की गई थी जिसमें आर्थिक दण्ड भी सम्मिलित था। महत्वपूर्ण बात यह है कि वन जीवों को अतिथि के समान सम्मान देने की बात भी कही गई थी। परन्तु वर्तमान काल में बने कानूनों का लक्ष्य प्रदूषकों और शासकों को नियंत्रित करना है परन्तु आम जनता की गतिविधियों, उपभोग की प्रकृति तथा विभिन्न कानूनों के तहत बने संगठनों के सही कार्यकरण की ओर ठोस न्याय व्यवस्था की अपर्याप्तता स्पष्ट झलकती है। जबकि पर्यावरण को प्रदूषित करने में आमजन की गतिविधियों की 40 प्रतिशत तक की हिस्सेदारी है। अध्ययनों के अनुसार आम जनता पर्यावरणीय ह्रास से अवगत तो रहते हैं परन्तु उसकी संरक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं।[20] इस स्थिति के प्रमुख कारणों में आजीविका को प्राथमिकता देना तथा पर्यावरण संरक्षा को सरकार का दायित्व मानना। दूसरी ओर राजनीतिक कर्ता को विकास और पर्यावरण के बीच प्राथमिकता तय करने में कठिनाई होती है क्योंकि आमजन के समक्ष गरीबी, बेरोज़गारी, नागरिक सुविधाओं का अभाव तथा सामाजिक प्राथमिकताएं महत्वपूर्ण होती हैं।

स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरण की अनिवार्यता

उपरोक्त कानूनों, नियमों, अधिसूचनाओं और संस्थानों एवं संगठनों के बावजूद पर्यावरण की स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण इन कानूनों और न्यायलीय आदेशों का प्रभाव केवल संबधित संगठनों, उद्योगों तथा प्रदूषित करने वाले निजी व्यावसायियों तक ही सीमित हो कर रह जाता है और तत्काल कार्रवाई के अलावा उनका अनुसरण और अनुश्रवण नहीं हो पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यावरण के निमित्त सरकारी संगठनों और निकायों का कार्यकरण दोषपूर्ण या ढीलाढाला है। महालेखापरीक्षक और नियंत्रक (सी.ए.जी.) के अकेंक्षण रिपोर्ट में इस बात की पुष्टि भी की गई है। मार्च 2017 को जारी सी.ए.जी. के पर्यावरणीय स्वीकृति तथा स्वीकृत्योपरांत अनुश्रवण संबधी रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया कि केन्द्रीय/राज्य/केन्द्र प्रशासित राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और पर्यावरण मंत्रालय के क्षेत्रीय कार्यालय अपने दायित्व निभाने में असफल रहे हैं। सबसे ज्यादा चिंतनीय यह है कि गंभीर रूप से पर्यावरणीय ह्रास वाले क्षेत्रों में चल रही परियोजनाओं के प्रति इन बोर्डों ने नियमों के अनुपालन में ढिलाई बरती है। रिपोर्ट में पाया गया है कि इन्वायरमेंट क्लीयरेंस हेतु लिए गए निर्णयों में 13 सामान्य शर्तों को अनदेखा किया गया। पर्यावरण प्रबंधन योजना के कमिटमेंट यथा ग्रीन बेल्ट का

निर्माण, उद्यमों का सामाजिक दायित्व, परिवर्तन की संभावनाओं तथा संयंत्र लगाने के समय का विचार आदि की अवहेलना पर्यावरण मंत्राालय द्वारा की गई। इसी प्रतिवेदन में कहा गया, "The existing processes for grant of Environmental Clearance suffered from various procedural deficiencies. There were delays at each stage of the Environment Impact Assessment process. Each project is treated as a single project for Environment Impact Assessment but cumulative Environment Impact Assessment which is critical in evaluating impact on environment, was found to be lacking"[21].

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन संगठनों ने आमजन और लोक संपर्क के प्रति उदासीनता बरती है। लोक संपर्क का तात्पर्य यह है कि स्थानीय प्रभावित लोगों, जिनकी विश्वसनीय भूमिका होती है, से दिये गये परियोजना के प्रभावों के प्रति विचार विमर्श किया जाय। उसके पश्चात् ही क्लीयरेंस दिया जाये। रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा गया है, "Mechanism to ensure redressal of the concerns of the public in the final Environment Impact Assessment report/EC letter and implementation of the commitments made by the PP during public consultation in a time bound manner were also not firmly in place. Besides, shortcomings were noticed in the conduct of public hearings"[22]. एक मामले में 31 मार्च 2014 को उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीश पीठ द्वारा केंद्र सरकार को यह निर्देश दिया कि पर्यावरण, वन एवं जलवायु मंत्रालय इस दिशा में निगाह रखे।

निष्कर्ष

उपरोक्त सी.ए.जी. रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है पर्यावरण संरक्षा हेतु बने संगठन अपने दायित्वों को पुरी तरह नहीं निभाते तथा बोर्डों में पर्याप्त विशेषज्ञों का होना सुनिश्चित नहीं है। साथ ही प्रभावित जनता की बातों को सही ढंग से नहीं सुना जाता। उनके हितों के प्रस्तुति हेतु पर्याप्त अवसर नहीं दिये जाते।

उपरोक्त विवेचनों में हमने पाया कि पर्यावरण हेतु बने तमाम कानूनों और न्यायिक निर्णयों की रेडार में आमजन नहीं आ पाते चाहे यह मामला उनके पर्यावरणीय विरोधी आदतों पर नियंत्रण रखने का हो या उनको होने वाली हानि के आकलन का प्रश्न हो। पर्यावरण संरक्षा तथा प्रदूषण नियंत्रण हेतु बने संस्थाओं एवं संगठनों के कार्यकरण और विभिन्न पर्यावरणीय नीतियों के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी किसी ऐसी संस्था को दी जानी चाहिए जिन्हें स्वायत्तता प्राप्त हो और आवश्यकतानुसार मानक बना कर पर्यावरण संरक्षा और प्रदूषण नियंत्रण के साथ साथ अनवरत अनुश्रवण कर सके। इसके लिए पर्यावरण संरक्षा के क्षेत्र में एक स्वतंत्र नियामकीय प्राधिकरण का गठन किया जायें। यह प्राधिकरण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, प्राकृतिक स्रोतों का गलत उपयोग तथा अभिवंचित समुदायों की रक्षा करे।

टिप्पणी एवं संदर्भ

1. Vinod Kumar Sharma, *Global Warming: Its Impact on India*, Indian Institute of Public Administration, New Delhi (Background paper of annual conference), 2008
2. देखें (1) John S Dryzek and David Schlosberg (eds), *Debating the Earth: The Environmental Politics Reader*, Oxford University Press, New York, 1998 (2) Walter A. Rosenbaum, *Environmental Politics and Policy*, (second Edition), East West Press Pvt. Ltd., New Delhi
3. Uchita De. Zoysa, *Sustainable Consumption : An Asian Review***,** Centre for Environment & Development, Colombo, Sri Lanka, 2007 accessed the website *www.sltnet.lk* on 3rd June 2015
4. विस्तृत विवरण के लिए देखें R. K. Verma, *Environmental Politics in India: A Study of Policy, Parties and People,* UGC sponsored Research Report submitted to UGC, Mimeo, R N College, Hajipur, 2017
5. रामदेव भारद्वाज, ''भारतीय वांग्मय में पर्यावरण एवं मानवीय चेतना'', *Review of Politics* Vol. XXV, No. 1-2, Jan-Dec, 2017, पृष्ठ V 73-91
6. *Times of India*, "Right to Breath", Patna, 8th November, 2016
7. देखें <https:/k/ken.wikipedia.org>
8. देखें GoI, Ministry of Environment, Forest and Climate Change - http:/k/kenvfor.nic.in/kpublic-information/kschemes-and-programmes retrieved on 13 August, 2017. lkFk gha ;g Hkh ns[ksa CPREEC, Environmental Laws in India, C P R Environmental Education Centre, Chennai retrieved on 4 July 2017 from website <www.cpreecenvis.nic.in> यहां इन श्रेणियों के कुछ महतवपूर्ण कानून इस प्रकार हैं– 1) Wildlife Protection Act 1972, Water (Prevention and Control of Pollution) Act 1974, 2). Forest Conservation Act 1980, 3) Air (Prevention and Control of Pollution) Act 1981, 4). Environmental Protection Act 1986, 5). Hazardous Waste Handling and Management Act 1989, 6). Public Liability Insurance Act 1991, 7). The National Environment Tribunal Act, 1995, 8). The National Environment Appellate Authority Act, 1997, 9). Protection of Plant Varieties and Farmer's Rights Act 2001, 10). Biological Diversity Act 2002, 11). Wildlife (Protection) Amendment Act 2002, 12). The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act 2006 and 13). National Green Tribunal Act 2010.
9. इनमें महत्वपूर्ण अधिसूचनाएं संख्या SO 1533, 2006 & SO 60 [E], 1994 हैं
10. M. P. Ram Mohan, and Himanshu Pabreja, "Public Hearings in Environmental Clearance Process Review of Judicial Intervention", *Economic and Political Weekly,* Vol, LI No 50, 10 December, 2016, pp. 68-75

11. निम्न वेबसाईट से उद्धृत <http:/k/kwww.moef.nic.in/krules-regulations/knational-environment-appellate-authority>
12. A.I.R. 1991 S.C. 420 (India).
13. AIR 1996 SC 2468:
14. AIR 1996 SC 2718
15. AIR 1987 SC 1086
16. AIR 1996 SC 149
17. Enkay Plastics Pvt. Ltd. Vs. Union of India (UOI) and Ors.,2000(56)DRJ828
18. CWP No. 586 of 2010
19. विस्तृत विवरण के लिए देखें निम्न वेबसाईट से 22 सितम्बर 2017 को रीटीशभ किया गया ढीजजचरूधधूण्पदकपंमदअपतवदउमदजचवतजंसण्वतहण्पदझ
20. वैश्विक स्तर पर स्थिति के लिए देखें R. E. Dunlap, G. Gallup, & A. Gallup, (1993). Global Environmental Concern: Results from an International Public Opinion Survey, *Environment*, 35, 1993, pp. 33-39. बिहार के संदर्भ स्थिति यही है। देखें R. K. Verma, *Environmental Politics in India: A Study of Policy, Parties and People*, UGC sponsored Research Report submitted to UGC, Mimeo, R N College, Hajipur, 2017
21. CAG Report on *Environmental Clearance and Post Clearance Monitoring*, retrieved on 11th May, 2018 from

    <https:/k/kwww.cag.gov.in/ksites/kdefault/kfiles/kaudit_report_files/Union _Government_Report_39_of_2016_PA.pdf>p.V "Executive summary
22. **ogh**, पृ. 99

ठोस कचरा प्रबंधन एवं पर्यावरण संरक्षण : पटना के संदर्भ में

सुरेन्द्र कुमार

Ikjk'k% *नगरीकरण एवं उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण आज ठोस कचरे की मात्रा एवं प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन आया है। इस कारण, ठोस कचरे का 'डिसपोज़ल' एवं प्रबन्धन एक चुनौतिपूर्ण कार्य बन गया है। सरकार, नगर निकायों तथा नीति-निर्माताओं के लिए यह एक सरदर्द बन गया है। पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। जन-स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। केवल सरकारी प्रयास ही इस समस्या से निपटने के लिए पर्याप्त नही है। आम जनता, NGOs, स्थानीय निकाय, प्रशासन एवं सरकार – इन सबका सम्मिलित प्रयास आवश्यक है। ठोस कचरा प्रबंधन को एक जन-आन्दोलन का रूप देना होगा। प्रस्तुत लेख में पटना के संदर्भ में ठोस कचरा प्रबन्धन की समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन सम्पूर्ण बिहार के लिए नीतिगत निहितार्थ हैं। कारण, यदि पटना में नगर निकाय, जो बिहार सरकार की नाक के नीचे कार्य कर रहे हैं, ठोस कचरा प्रबंधन की रणनीति विकसित नहीं कर पा रहे हैं तो राज्य के अन्य भागों का क्या होगा, जहाँ के नगर निकाय भारी आर्थिक तंगी एवं अन्य समस्याओं से जूझ रहे हैं।*

Hkfedk

विगत् वर्षों में नगरीकरण एवं उपभोक्तावादी प्रवृत्ति में अत्यंत तीव्र गति से वृद्धि हुई है। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में गति तीव्र रही है। इस कारण ठोस कचरे की मात्रा एवं प्रकृति में भी कई गुणा इजाफा हुआ है। भारत में लगभग 65 मिलियन टन कचरे का उत्पादन प्रत्येक वर्ष हो रहा है। इनमें 5.6 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा, 0.17 मिलियन टन बायोमेडिकल कचरा तथा 15 लाख टन 'ई-वेस्ट' है।[1] ठोस कचरे का 'डिसपोज़ल' एवं प्रबन्धन आज एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है। सरकार, नगर निकायों तथा नीति निर्माताओं के लिए यह एक सरदर्द बन गया है। पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। जन-स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। प्रस्तुत लेख में पटना के संदर्भ में ठोस कचरा प्रबन्धन की समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया गया

है। इस अध्ययन का सम्पूर्ण बिहार के लिए नीतिगत निहितार्थ हैं। कारण, यदि पटना में नगर निकाय, जो बिहार सरकार के नाक के नीचे कार्य कर रहे हैं, ठोस कचरा प्रबंधन की रणनीति विकसित नहीं कर पा रहे हैं तो राज्य के अन्य भागों का क्या होगा, जहाँ के नगर निकाय भारी आर्थिक तंगी एवं अन्य समस्याओं से जूझ रहे हैं।

ठोस कचरे का 'डिसपोजल' एवं प्रबन्धन

ठोस कचरे का 'डिसपोजल' एवं प्रबन्धन अलग-अलग विषय हैं।[2] सामान्यतः, दोनों को एक ही समझा जाता है। किन्तु, वास्तव में ये एक-दूसरे से अलग हैं। 'डिसपोजल' से तात्पर्य यह है कि कचरे को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित कर दिया जाये।

किन्तु प्रबन्धन का व्यापक अर्थ है। इसके अन्तर्गत कचरे को 'डिसपोज़' करने से पहले 'ट्रीट' किया जाता है ताकि पर्यावरण को कोई नुकसान न पहुँचे। कचरे को स्त्रोत पर ही अलग किया जाता है। 'नॉन–बायो–डिग्रेडेबल' कचरे का 'रिसाईकलिंग' किया जाता है ताकि उनका पुनः उपयोग किया जा सके। 'बायो-डिग्रडेबल' कचरे का 'कम्पोस्टिंग' किया जाता है जिससे खाद तैयार किया जाता है। इस प्रकार, प्रबंधन के द्वारा कचरे की मात्रा कम होती है, संपदा प्राप्त होती है तथा पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि आज ठोस कचरे का प्रबन्धन क्यों किया जाये, उन्हें 'डिसपोज' ही क्यों न कर दिया जाये ? कारण यह है कि आज ठोस कचरे की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि उन्हें 'डिसपोज' करना असंभव सा हो गया है। एक दिन आ सकता है जब कचरे को 'डिसपोज' करने के लिए जमीन ही न बचे। पुनः, कचरे की प्रकृति में भी बदलाव आया है। 'नोन-बायो-डिग्रेडेबल' कचरे यथा–औद्योगिक, नाभिकीय, 'ई-वेस्ट' इत्यादि नगर निकायों के लिए सरदर्द बने हुए हैं। अतः, कचरे का प्रबन्धन एकमात्र उपाय है जिसके द्वारा कचरे के कुछ भाग को संपदा के रूप में प्राप्त किया जा सकता है तथा पर्यावरण एवं स्वास्थ्य को भी नुकसान नहीं होता।

पटना में ठोस कचरा प्रबन्धन की वर्तमान स्थिति

पटना में ठोस कचरे का 'डिसपोजल' एवं प्रबन्धन पटना नगर निगम का दायित्व है। इसकी स्थापना 15 अगस्त, 1952 को बिहार सरकार के द्वारा की गई। इसके अन्तर्गत कुल 75 वार्ड आते हैं।[3] यह 110 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में 1.7 मिलियन आबादी (2011 जनगणना) को 'सिविक' सेवाएँ प्रदान करता है। नगर को कुल चार अंचल में बाँटा गया है – बाँकीपुर, कंकड़बाग, पटना सिटी एवं न्यू पटना अंचल। प्रत्येक अंचल में सिविल सेवाओं का दायित्व एक कार्यपालक पदाधिकारी को दिया गया है जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जाती है। नगर आयुक्त मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है।

पटना की आबादी तीव्र गति से बढ़ रही है। एक अनुमान के अनुसार, 2031 तक पटना की आबादी 27.08 लाख हो जाएगी (देखें सारणी 1.1)।

lkj.kh 1-1 : पटना की अनुमानित जनसंख्या

o"kZ	tula[;k ¼yk[k e½
2021	21
2026	23.4
2031	27.8

L=kr : बुडको,' 2016

आबादी की बढ़ती हुई यह दर पटना को भारत का पाँचवा सबसे तीव्र गति[4] से बढ़ने वाले नगर में शुमार करता है। बढ़ती आबादी कचरे के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि करती है। पटना में राज्य के अन्य भागों से प्रतिदिन आने-जाने वाले लोगों की संख्या भी लगभग 2.5 से तीन लाख के बीच है जो 2021 तक चार से पाँच लाख होने की संभावना है।[5] यह 'फ्लोटिंग' आबादी भी प्रतिदिन कचरे के उत्पादन में वृद्धि करती है। वर्त्तमान में पटना में प्रतिदिन 450-600 ग्राम प्रति व्यक्ति कचरे का उत्पादन होता है जो कुल लगभग 1000-1200 टन प्रतिदिन[6] होता है। यह कचरा पटना के घरों, होटल, व्यावसायिक संस्थान, सब्जी बाजार, अस्पताल, भवन निर्माण, औद्योगिक संस्थान इत्यादि स्थानों से उत्पन्न होता है। कुल कचरा का 40 प्रतिशत घरेलू कचरा तथा 60 प्रतिशत औद्योगिक एवं व्यावसायिक कचरा होता है।[7] अनुमान लगाया जाता है कि पटना में आनेवाले वर्षों में कचरे के उत्पादन में कई गुणा वृद्धि होगी (देखें सारणी 1.2)।

lkj.kh 1-2 : पटना में कचरा उत्पादन का अनुमान

o"kZ	dpjk mRiknu ¼Vu izfr fnu½
2021	1514
2026	1836
2031	2299

L=kr : बुडको, 2016

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि 2031 तक कचरे की स्थिति भयावह हो जाएगी जिसका निपटारा एवं प्रबंधन नगर निगम के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।

ठोस कचरे की भौतिक विशेषताओं में भी भिन्नता होती है। नगरीकरण एवं विकास का प्रभाव इन पर पड़ता है। पटना में ठोस कचरे की भौतिक स्थिति सारणी 1.3 में प्रदर्शित है।

lkj.kh 1-3 : पटना में ठोस कचरे की भौतिक विशेषताएँ

Hkkfrd fo'k"krk,¡	Hkkj (% esa)
कागज	4
कपड़ा	5
चमड़ा	3
प्लास्टिक	10
धातु	2
काँच	3
राख आदि	30
'कम्पोस्ट' पदार्थ	43

L=kr : बुडको, 2016

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि पटना के ठोस कचरे में सबसे अधिक 'कम्पोस्ट' पदार्थ (43%) है तथा सबसे कम मात्रा धातु (2%) की है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं कार्बनिक कचरे के बीच व्युत्क्रमानुपाती सम्बन्ध है। इस कारण, शहरी इलाकों में अधिक अकार्बनिक कचरा उत्पन्न होता है तथा ग्रामीण इलाकों में कार्बनिक कचरा अधिक उत्पन्न होता है।

पटना में घर-घर कचरा उठाव की व्यवस्था नहीं है।[8] लोग घरों का कचरा या तो सड़क पर रखे सामुदायिक कूड़ेदान में डालते हैं या इधर-उधर डाल देते हैं। कूड़ेदान भी हर जगह नहीं मिलते हैं। नगर निगम के सफाई कर्मचारी सड़क एवं गलियों में झाड़ू लगाते समय कचरे को उठाते हैं तथा कूड़ेदान में डालते हैं। किन्तु, गलियों एवं सड़कों की सफाई भी प्रतिदिन नहीं होती। सामान्यतः, व्यावसायिक संस्थानों के सड़क एवं महत्वपूर्ण मोहल्लों की गलियों में ही झाड़ू लगता है। बाकी सड़कों एवं गलियों की सफाई या तो नहीं होती है या कभी–कभार होती है। रविवार एवं छुट्टी के दिन सफाई नहीं होती है। सड़कों एवं गलियों की सफाई न होने के कारण चौक-चौराहों पर कूड़े का ढेर लगा रहता है जिनसे दुर्गन्ध आती रहती है। पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा अनेक गम्भीर बीमारियों का प्रकोप बढ़ता है।

नगर निगम के ट्रक, ट्रैक्टर एवं अन्य गाड़ियों के द्वारा सामुदायिक कूड़ेदानों में संग्रहित कूड़े को पटना-जहानाबाद सड़क पर 'इलाहिबाग-बौरिया'[9] नामक स्थान पर 'डम्प' कर दिया जाता है। वैज्ञानिक तरीके से उनका 'डिसपोजल' नहीं होता। इस कारण, इसके आस-पास रहने वाले लोगों को अनेक पर्यावरणीय खतरों का सामना करना पड़ता है। गर्मी के मौसम में निगम के कर्मचारी कूड़े के ढेर को जला देते हैं। आग से उत्पन्न धुँआ आस-पास के इलाकों को प्रभावित करता है। लोगों को सांस की भी समस्या होती है। कूड़ा-स्थल मक्खियों एवं मच्छरों का चारागाह बन जाता है।

बरसात के दिनों में कूड़ों के प्रवाह से भूमिगत जल भी प्रदूषित होता है। इस प्रकार, पर्यावरण एवं आस-पास के लोगों के स्वास्थ्य पर गंभीर असर पड़ता है। ठोस कचरा प्रबन्धन की संपूर्ण प्रक्रिया चित्र 1 में प्रदर्शित है।

fp= 1 : ठोस कचरा प्रबन्धन की प्रक्रिया

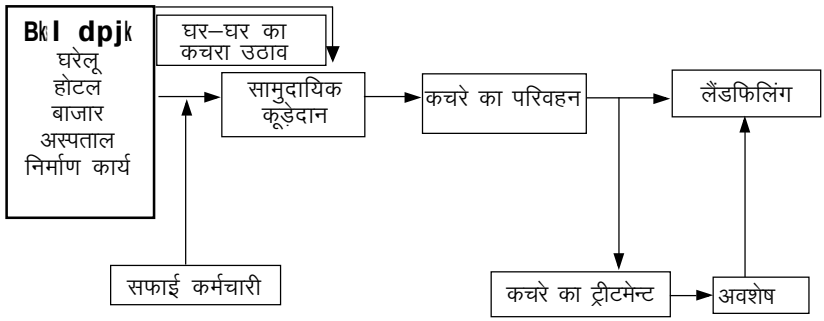

L=kr : लेखक द्वारा रचित

किन्तु, पटना नगर निगम ठोस कचरे को केवल 'डिसपोज़' करता है। उनका 'ट्रीटमेन्ट' बिल्कुल नहीं करता। इसका मुख्य कार्य ठोस कचरे को संग्रहित करके लैंडफिलिंग कर देना है। किन्तु नगरीय समाज का भविष्य ठोस कचरे के 'ट्रीटमेन्ट' में निहित है।[10] इसका कारण है कि आज अत्यधिक मात्रा में कचरा उत्पन्न हो रहा है। यह इतना अधिक है कि इन्हें एक स्थान पर 'डम्प' या 'डिसपोज' करना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त आज कचरे की प्रक ति में भी बदलाव आया है। पहले अधिक मात्रा में 'बायो–डिग्रेडेबल' कचरे होते थे। किन्तु अब 'नॉन-बायो-डिग्रेडेबल' कचरे की मात्रा में भी इजाफा हुआ है जिनका डम्पिंग' पर्यावरण के लिए नुकसानदेह है। अतः कचरे का 'ट्रीटमेन्ट' एकमात्र उपाय है। नगर निगम को यथाशीघ्र इस दिशा में सोचना होगा।

स्पष्ट है कि पटना नगर निगम अपना कार्य कुशलतापूर्वक नहीं कर पा रहा है। अनेक स्वच्छता अभियानों के बावजूद आज स्थिति कमोबेश पहले जैसी ही है। सड़क एवं चौक-चौराहों पर कचरे के अम्बार को देखकर तो ऐसा ही लगता है। किन्तु, नगर निगम अपना बचाव इस तर्क पर करता है कि लोगों में 'सिविक सेन्स' की कमी है। लोग कचरा कूड़ेदान में न डालकर इधर-उधर फेंक देते हैं।

वस्तुतः, नगर निगम अनेक समस्याओं से ग्रस्त है, यथा–धन की कमी, पर्याप्त संयत्रों का अभाव, कर्मचारियों की कमी, अद्यतन प्रौद्योगिकी का अभाव तथा प्रशासनिक कुप्रबन्धन। इन सबमें धन की कमी सबसे महत्वपूर्ण समस्या है जिसके कारण निगम कचरा प्रबन्धन का कार्य नहीं कर पाता। पर्याप्त आर्थिक संसाधन के अभाव में नगर निगम का उद्देश्य पराजित हो जाता है। पूरे शहर में कचरा उठाव एवं निष्पादन का कार्य प्रभावी तरीके से नहीं हो पाता। अनेक क्षेत्र अछूते रह जाते हैं।

कचरा प्रबन्धन का कार्य करने के लिए निगम निजीकरण[11] की भी बात करता रहा है। किन्तु क्या निजीकरण समस्याओं का समाधान है ? यह स्पष्ट नहीं है। निजीकरण में कुछ मूलभूत मुद्दे निहित हैं जिनके विश्लेषण के बाद ही इसे एक विकल्प के रूप में देखा जा सकता है। निजी क्षेत्र तब तक काम नहीं करेगा जब तक उसे मुनाफा न हो, और मुनाफा पब्लिक पर चार्ज नहीं किया जा सकता। विकसित देशों में भले ही कचरा प्रबन्धन के क्षेत्र में निजी एजेन्सियाँ कार्यरत् हैं। किन्तु, यह देखना दिलचस्प होगा कि पटना जैसे शहर में जनता पर बोझ डाले बिना क्या निजी एजेन्सियाँ कचरा प्रबन्धन का कार्य करेंगी ?

यहाँ यह भी देखा जाना चाहिए कि निजी एजेन्सियों के द्वारा किए गए कार्य पर्यावरण के हित में हैं या नहीं। ठोस कचरे का संग्रहण एवं निपटारा वैज्ञानिक तरीके से होना चाहिए ताकि पर्यावरण एवं जन-स्वास्थ्य को कोई नुकसान न हो। इस सम्बन्ध में सरकारी एजेन्सियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। उन्हें पर्यवेक्षण एवं मॉनिटरिंग का कार्य प्रभावी तरीके से करना चाहिए ताकि निजी एजेन्सियों की जिम्मेदारी सुनिश्चित की जा सके। पटना में घर-घर कचरा उठाव की जिम्मेदारी निगम के द्वारा निजी एजेन्सी को दी गई थी, किन्तु यह प्रयोग सफल नहीं हुआ।

Bkl dpjk izcU/ku dh rduhfd;k[12]

पर्यावरण संरक्षण और नागरिकों के स्वास्थ्य के लिहाज से ठोस कचरे का प्रबन्धन आवश्यक है। कचरा प्रबन्धन की कुछ प्रचलित विधियाँ निम्न हैं:

(i) *कम्पोस्टिंग (Composting)* : यहाँ घरेलू कचरे यथा-घास, पत्तियाँ, बचा खाना, गोबर इत्यादि का प्रयोग खाद बनाने में किया जाता है। गोबर तथा कूड़े-कचरे की खाद तैयार करने के लिए एक गढ्ढा खोदा जाता है। गड्ढे का आकार कूड़े की मात्रा एवं उपलब्ध स्थान के अनुरूप होना चाहिए। आम तौर पर एक छोटे परिवार के लिए एक मीटर लम्बा, एक मीटर चौड़ा और 0.8 मीटर गहरा गड्ढा खोदना चाहिए। गड्ढे का ऊपरी हिस्सा जमीन के स्तर से डेढ़ या दो फीट ऊँचा होना चाहिए। ऐसा करने से बारिश का पानी अन्दर नहीं जाएगा। गड्ढे में घरेलू कचरे को डाल कर ढँक दिया जाता है। लगभग छः महीने के अन्दर खाद तैयार हो जाता है। इसका उपयोग खेती की उपज बढ़ाने में किया जाता है।

(ii) *वर्मीकम्पोस्टिंग (Vermicomposting)* : यह भी कचरे से खाद बनाने की एक प्रक्रिया है। इसमें केंचुओं के द्वारा 'बायो-डिग्रेडेबल' कचरे जैसे सब्जी के छिलके, पत्तियाँ, घास, बचा हुआ खाना इत्यादि से खाद तैयार किया जाता है। एक लकड़ी के बक्से या मिट्टी के गड्ढे में 'बायो-डिग्रेडेबल' कचरे की एक परत बिछाई जाती है। उसके ऊपर कुछ केंचुएँ छोड़ दिए जाते हैं। इसके ऊपर कचरा डाल दिया जाता है और गीलापन बरकरार

रखने के लिए पानी का छिड़काव किया जाता है। कुछ समय के बाद यह बहुत ही अच्छी खाद के रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। इस प्रकार 'कम्पोस्टिंग' एवं 'वर्मीकम्पोस्टिंग' दोनों ही विधियों से खाद तैयार किया जाता है जिसका उपयोग खेती में उपज बढ़ाने हेतु किया जाता है। कचरे का प्रदूषण भी रूकता है। साथ ही कचरे का सदुपयोग भी हो जाता है।

(iii) *सैनिटरी लैंडफिलिंग (Sanitary Landfilling)* : कचरा प्रबन्धन की यह एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है। इसके अन्तर्गत कचरे को लैंडफिल में डाल दिया जाता है। यहाँ वैसे कचरे को डालना चाहिए जिनका पुनः उपयोग या 'रिसाइकिल' न किया जा सके। इसका प्रमुख लाभ है कि यह विधि कम खर्चीली है। लैंडफिल गैस निकासी के लिए लैंडफिल गैस प्रणाली स्थापित किए जाते हैं। छिद्रित नालियों द्वारा गैस बाहर निकाली जाती है और इसे गैस इंजन में जला कर विद्युत का उत्पादन किया जाता है। इस विधि में दक्ष कर्मचारियों की भी आवश्यकता नहीं है। अर्थात् इसकी कार्य प्रणाली सरल है।

(iv) *भस्मीकरण (Incineration)* : यह भी कचरा प्रबंधन की एक विधि है। यह 90 प्रतिशत तक कचरे की मात्रा को कम कर देता है। प्लांट लगाने के लिए भूमि की जरूरत कम पड़ती है तथा ऊर्जा भी प्रदान करता है। किन्तु, हमारे यहाँ यह सफल नहीं रहा है। इसका मुख्य कारण है कि हमारे कचरे में ऊर्जा की मात्रा कम तथा नमी ज्यादा होती है। इनमें गैर-ज्वलनशील पदार्थों का प्रतिशत भी अधिक होता है। अतिरिक्त ईंधन की जरूरत पड़ती है। प्लांट स्थापित करने में अधिक पूँजी की जरूरत पड़ती है। प्लांट के संचालन एवं रख-रखाव में दक्ष कर्मचारियों की भी आवश्यकता पड़ती है। इन सबके कारण यह विधि अत्यंत खर्चीली हो जाती है।

(v) *पुनर्चक्रण (Recycling)* : 'बायो-डिग्रेडेबल' कचरे का 'कम्पोस्टिंग' करके खाद तैयार करना चाहिए। 'नॉन-बायो-डिग्रेडेबल' कचरे यथा-प्लास्टिक, काँच, कागज इत्यादि का पुनर्चक्रण करना चाहिए तथा प्राप्त उत्पाद का पुनः उपयोग करना चहिए। इस प्रकार, पुनर्चक्रण के माध्यम से कचरे को संपदा में बदला जाता है। पुनर्चक्रण से कचरे की मात्रा में कमी आती है। कम कचरे को 'लैंडफिल' स्थल तक ले जाना पड़ता है तथा 'डिसपोज़' करने के लिए कम जगह की भी जरूरत पड़ती है । इस प्रकार, पूरी प्रक्रिया मितव्ययी भी है। किन्तु, पर्याप्त अधिक संसाधन के अभाव में नगर निगम यह कार्य भी नहीं कर पा रहा है।

इस प्रकार, कचरे के प्रबंधन की उपरोक्त प्रमुख विधियाँ हैं जिनका उपयोग कर कचरे की मात्रा में कमी की जाती है। कचरे से संपदा प्राप्त की जा सकती है तथा

अन्ततः पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। नागरिकों को स्वस्थ बनाया जा सकता है। किन्तु, पटना में यह सब नहीं हो पा रहा है। पर्याप्त आर्थिक एवं मानव संसाधन तथा तकनीकी दक्षता के अभाव में एवं प्रशासनिक कुप्रबन्धन के कारण इन विधियों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है तथा एकमात्र उपाय सम्पूर्ण कचरे को 'लैंडफिल' स्थल पर 'डम्प' कर देना है जो हमारे पर्यावरण एवं नागरिकों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है।

ठोस कचरा प्रबन्धन नियम, 2016

भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा ठोस कचरा प्रबन्धन नियम, 2016 अधिसूचित किया गया। यह ठोस कचरा प्रबन्धन नियम, 2000 का स्थान लेगा। 2016 के इस नियम के द्वारा ठोस कचरा प्रबन्धन की प्रक्रिया को और भी सशक्त करने का प्रयास किया गया है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्न हैं[13] :

(i) कचरे को स्त्रोत पर ही अलग-अलग किया जाएगा। इसके लिए तीन प्रकार की थैलियों में 'बायो-डिग्रेडेबल', सूखा (प्लास्टिक, कागज, धातु, काँच इत्यादि) तथा घरेलू खतरनाक (डायपर, नैपकिन, मच्छर क्वायल, इत्यादि) को रखा जाएगा।

(ii) स्थानीय निकायों द्वारा निर्धारित 'यूजर्स' शुल्क का भुगतान प्रदूषणकर्ता के द्वारा किया जाएगा।

(iii) कचरा प्रबन्धन के कार्य में कचरा चुनने वालों तथा कबाड़ीवालों का भी सहयोग लिया जाएगा।

(iv) कचरे को सड़क पर फेंकने, जलाने, नाली में बहाने या जमीन में गाड़ने पर 'जीरो टॉलरेन्स' की नीति अपनाई जाएगी।

(v) 'बायो-डिग्रेडेबल' कचरे का प्रबन्धन 'कम्पोस्टिंग' या 'बायोमिथेनेशन' पद्धति से किया जाएगा।

(vi) स्थानीय निकायों को घर-घर से कचरा उठाव की व्यवस्था करनी होगी।

(vii) 'कम्पोस्ट' से तैयार खाद के प्रयोग को रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय तथा कृषि मंत्रालय के द्वारा प्रोत्साहित किया जाएगा।

(viii) पर्वतीय क्षेत्रों में 'लैंडफिल' के निर्माण पर प्रतिबन्ध रहेगा।

(ix) 'लैंडफिल' स्थल, नदी से 100 मीटर, तालाब से 200 मीटर, हाईवे से 200 मीटर तथा एयरपोर्ट से 20 किलोमीटर की दूरी पर होना चाहिए।

(x) भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के सचिव के नेतृत्व में केन्द्रीय मॉनिटरिंग समिति के द्वारा नियमों के कार्यान्वयन की समीक्षा की जाएगी।

(xi) 'नॉन-बायो-डिग्रेडेबल' कचरे का प्रबन्धन कचरा से ऊर्जा (Waste to Energy) प्लांट के द्वारा किया जाएगा। भारत सरकार के गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत मंत्रालय के द्वारा प्लांट स्थापित करने के लिए सब्सिडी दी जाएगी।

उपरोक्त प्रावधानों के द्वारा कचरा प्रबन्धन के कार्य को धारदार बनाने की कोशिश की गई है। किन्तु, यह देखना होगा कि इन प्रावधानों का जमीनी स्तर पर क्या हश्र होता है ? इनका क्रियान्वयन कैसे हो पाता है? यथा, स्त्रोत पर कचरे को अलग-अलग करना तथा घर-घर कचरा उठाव को लागू करना आसान नहीं होगा। इसी प्रकार, प्रदूषणकर्त्ताओं से शुल्क वसूलना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा। अतः, उपरोक्त प्रावधानों के क्रियान्वयन हेतु ठोस कचरा प्रबंधन को एक जन-आन्दोलन का रूप देना होगा। विभिन्न हितधारकों को जागरूक करना होगा। आम जनता, NGOs, स्थानीय निकाय, प्रशासन एवं सरकार इन सबके सम्मिलित प्रयास से ही इन प्रावधानों को अमलीजामा पहनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

ठोस कचरे के प्रबंधन हेतु आम जनता का सहयोग तथा पर्यावरण के प्रति उनकी जागरूकता महत्त्वपूर्ण है। प्रायः लोग सोचते हैं कि आस-पड़ोस की सफाई की जिम्मेदारी नगर निगम की है। वे अपने घर की सफाई का तो ध्यान रखते हैं किन्तु पड़ोस की सफाई की जिम्मेदारी नगर निगम पर डाल देते हैं। इस प्रकार की सोच में परिवर्तन लाना होगा। जनता को नगर निगम के साथ सहयोग करना होगा। कचरे की मात्रा कम-से-कम करनी होगी। कचरे को इधर-उधर नहीं फेंकना होगा। निगम के द्वारा प्रदत्त कूड़ेदान में ही कूड़ा डालना होगा। विकसित देशों में पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता अत्यधिक है। लोग 'इको-फ्रेन्डली' वस्तुओं यथा कागज एवं जूट के थैलों का प्रयोग करते हैं। वे स्त्रोत पर ही 'बायो-डिग्रेडेबल' एवं 'नॉन-बायो-डिग्रेडेबल' कचरे को अलग कर देते हैं। हमारे यहाँ भी ऐसा करना होगा। इसके लिए लोगों को शिक्षित करना होगा। नगर निगम के द्वारा जागरूकता अभियान चलाना होगा ताकि लोगों को पर्यावरण सम्बन्धित मुद्दों पर शिक्षित एवं जागरूक किया जा सके। निगम के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के द्वारा जन-सम्पर्क स्थापित करना होगा तथा जनता का सहयोग लेना होगा। साथ ही, राज्य सरकार के द्वारा नगर निकायों को पर्याप्त आर्थिक एवं मानव संसाधन उपलब्ध कराने होंगे। धन के अभाव में नगर निगम अपना कार्य ठीक से नहीं कर पा रहा है। सफाई कर्मचारियों की कमी है। अनेक क्षेत्र अछूते रह जाते हैं। प्रबंधन के विभिन्न तकनीक पर भी निगम को कार्य करना होगा। घर-घर कचरा उठाव की भी व्यवस्था करनी होगी। किन्तु, केवल सरकारी प्रयास ही पर्यावरण को स्वच्छ एवं हरित रखने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। जबतक आम आदमी का सहयोग एवं उनकी भागीदारी सुनिश्चित नहीं होती, पटना का पर्यावरण स्वच्छ नहीं रखा जा सकता तथा नगर निगम के सारे प्रयास व्यर्थ चले जाएँगे।

InHK

[1]वार्षिक रिपोर्ट, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्त्तन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2016

[2]सुरेन्द्र कुमार, सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट, नार्दन बुक सेंटर, दिल्ली, 2009

[3]वार्षिक रिपोर्ट, पटना नगर निगम, पटना, 2016

[4]प्रभात खबर, (पटना, 19 फरवरी 2018), पृ. 8

[5]वार्षिक रिपोर्ट, बिहार अरबन इनफ्रास्ट्रक्चर डेवलेपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड, पटना, 2016

[6]पूर्वोक्त कृति 3

[7]वार्षिक रिपोर्ट, बिहार राज्य प्रदूषण बोर्ड, पटना, 2016

[8]दैनिक जागरण (पटना, 8 दिसम्बर 2017), पृ. 3

[9]हिन्दुस्तान (पटना, 23 अगस्त 2017), पृ. 4

[10]पूर्वोक्त कृति 2

[11]टाईम्स ऑफ इंडिया (पटना, 11 मार्च 2018), पृ. 6

[12]पूर्वोक्त कृति 2

[13]पूर्वोक्त कृति 1

गाँधी चिंतन में सतत् विकास एवं पर्यावरण

ममता मणि त्रिपाठी

I kjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य 'गाँधी चिंतन में सतत् विकास एवं पर्यावरण' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। वर्तमान समय में सभ्य सलीकेदार एवं तमीजदार होने का आचरण हम पूरी तरह भूल गये हैं। इन्हीं कम याददाश्त वालों के कारण महात्मा गाँधी ने सदैव सभ्यता को 'असाध्य रोग' की उपमा से विभूषित किया और मशीनों को ज़हर मिटाने की जहरीली दवा के सदृश माना। बड़े-बड़े ढाँचे के बजाय छोटे-छोटे ढाँचे और बड़ी-बड़ी मशीनों की बजाय, छोटे से चरखे और कुटीर ग्राम उद्योगों को बेहतर माना। अपने लिए छोटे-छोटे काम चुने, एकादश व्रत तय किये, गाँव को अपने आप में एक गणतंत्र और संयम, सादगी, स्वावलम्बन को स्वतंत्रता तथा प्रकृति ..... दोनों के संरक्षण का औजार माना। आज अपव्यय और कंजूसी में पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होता है। जूठन न छोड़ना कंजूसी नहीं, अपव्यय रोकना है। गाँवों में यह जूठन मवेशियों के काम आ जाता है या खाद गढ्ढे में चला जाता है, जबकि शहरों में यह कचरा बढ़ाता है। हमें यह चाहिए कि जिन चीजों का हम ज्यादा इस्तेमाल करते हों, उसके प्रति अनुशासित उपयोग का संकल्प लें।[1] आज 'फिटनेस अमंग द फिट' वाले ही जीवन जीयेगें, शेष चार्ल्स डार्विन के सैद्धान्तिक राह पर चले जायेंगे। गाँधी जी का यह वक्तव्य समीचीन प्रतीत होता है कि ''पृथ्वी सभी की आवश्यकताओं हेतु पर्याप्त है, किन्तु लालच हेतु नहीं''[2]।*

प्रस्तावना

विकास एक व्यापक संकल्पना है और पर्यावरण के साथ उसका जटिल एवं परिवर्तनीय सम्बंध है। विश्व के सभी देशों में आज विकास के पथ पर एक-दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ मची है और इसके लिए औद्योगीकरण से लेकर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन तक के हर सम्भव उपाय किये जा रहे हैं। विकास की होड़ में हम यह भूल गए कि हम इसे किस मूल्य पर हासिल करना चाहते हैं। जिस तरह

से विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है उससे यह अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष 2030 तक यह बढ़कर आठ अरब से अधिक हो जायेगी और जिस तरह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जा रहा है, उसका दुष्परिणाम यह होगा कि आने वाली मानव पीढ़ियों के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधन पृथ्वी पर उपलब्ध ही नहीं होंगे। पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था कि– ''हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुपयोग के माध्यम से पानी, ऊर्जा, निवास स्थान, कचरा प्रबन्धन एवं पर्यावरण के क्षेत्रों में पृथ्वी द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए कार्य करना होगा''।

वस्तुतः प्रकृति हमें विकास हेतु सतत् साधन प्रदान करती रही है, किन्तु उसमें भी समस्त पदार्थों की संख्या और अनुपात सीमित है। सतत् एवं व्यापक उपभोग के कारण उसमें अपूरणीय क्षति होती जा रही है। पर्यावरणीय ह्रास एवं असंतुलन के फलस्वरूप विकास एवं उनकी क्रियाओं में गतिरोध तब उत्पन्न हो जाता है, जब मनुष्य द्वारा प्रकृति का अतिशोषण एवं दुरुपयोग किया जाता है, तब पर्यावरणीय समस्याऐं उत्पन्न होती हैं, जो मानवता हेतु अनिष्टकारी है।[3]

फलतः सतत् विकास की सतत् प्रक्रिया जिसमें वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है, कि भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं में कटौती न हो। यही कारण है, कि सतत् विकास अपने शाब्दिक अर्थ के अनुरूप चलता रहता है। सतत् विकास में सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ-साथ इस बात पर ध्यान रखा जाता है, कि पर्यावरण भी सुरक्षित रहे। सतत् विकास की आवश्यकता निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जाती है :–

- औद्योगीकरण के पश्चात वैश्विक स्तर पर तापमान में वृद्धि हुई है, फलस्वरूप विश्व की जलवायु में प्रतिकूल परिवर्तन हुआ है, साथ ही समुद्र का जल स्तर बढ़ जाने के कारण आने वाले वर्षों में कई देशों एवं शहरों के समुद्र में जलमग्न हो जाने की आशंका है।
- जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, भूमि-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। यदि इन्हें नियंत्रित नही किया गया, तो परिणाम अत्यन्त भयंकर होंगे।
- इनवायरमेण्टल डाटा सर्विसेज़ की रिपोर्ट के अनुसार, लोगों की सुरक्षा, भोजन, ऊर्जा, पानी एवं जलवायु इन चार स्तम्भों पर निर्भर है और चारों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हैं।
- अपने आर्थिक, सामाजिक विकास के लिए मानव विश्व के संसाधनों का इतनी तीव्रता से दोहन कर रहा है कि पृथ्वी की जीवन को पोषित करने की क्षमता तेजी से कम हो रही है।

- वर्ष 2030 तक विश्व की जनसंख्या के 8.3 अरब से अधिक हो जाने का अनुमान है जिसके कारण उस समय भोजन एवं ऊर्जा की माँग 50 प्रतिशत अधिक तथा स्वच्छ जल की माँग 30 प्रतिशत अधिक हो जायेगी।

महात्मा गाँधी पर्यावरणविद् नही थे, लेकिन उनके जैसे युगपुरुष ने पर्यावरण एवं विकास के बीच संतुलन सामंजस्य जैसे गंभीर विषय को महसूस किया था। गाँधी जी का जीवन ही उनका संदेश था। उन्होंने प्रकृति के प्रतिकूल किसी भी अवधारणा को अनुचित ठहराया। धर्म, यज्ञ तथा तप को सामाजिक संतुलन एवं पर्यावरण के संरक्षण संतुलन में आवश्यक माना। पर्यावरण एवं विकास के अर्थ को गाँधी जी इस प्रकार स्पष्ट किया हैः–

- प्राकृतिक क्षरण मूलतः मानव समाज एवं उसके पर्यावरण से प्रतिकूल सम्बंधों या गलत सम्बंधों से उत्पन्न एक प्रणाली है।
- जलवायु अकेले इस क्षरण का कारण नही है बल्कि मनुष्य की लालच की उसके लिए जिम्मेदार है।
- अच्छा स्वास्थ्य अच्छे भोजन से नहीं मिलता है बल्कि अनाज जो स्वस्थ भूमि पर उगाये जाते हैं, से सम्बंधित होता है।
- अपरदन एक अकेला तत्व नही है, अपितु एक भयंकर रोग की दशा का सूचक है।

पर्यावरण एवं विकास के बीच अटूट सम्बंध है। प्रकृति एक जीवन समष्टि है, जिसके हर तत्व परस्पर ग्रंथित एवं अन्योन्याश्रित है।[4] संसाधनों के कम होने पर विकास जारी नही रह सकता। यदि विकास के समय पर्यावरण की उपेक्षा की जाए तो पर्यावरण का संरक्षण नही हो सकता है। आज विश्व में पर्यावरण जनित समस्या को गाँधी के द्वारा प्रस्तुत चिंतन दर्शन में समाधान करने का प्रयत्न प्रासंगिक हैं। इसमें प्रमुख हैं– रचनात्मक कार्यक्रम, कुटीर उद्योग, बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य, यंत्रीकरण का विरोध, विकेन्द्रीकरण, स्वदेशी नैतिक सिद्धान्त, आर्थिक समानता, संरक्षता सिद्धान्त आदि। आज समस्त समस्याओं का मूल मानव की हिंसा व स्वार्थी प्रवृत्ति है जो अनेक रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है जैसे आयुधों के उपयोग में विशाल वृद्धि जातीय धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक व राजनीतिक संघर्ष, मानवाधिकारों का शोषण आदि। इसका समाधान गाँधी चिंतन में अहिंसा व समस्त मानव कल्याण की भावना में निहित है। गाँधी केवल संत, दार्शनिक एवं मानववादी नहीं बल्कि पर्यावरणविद् भी थे। गाँधी का विश्वास था कि मनुष्य सुख के लक्ष्यों की प्राप्ति व्यक्ति के मानसिक, भौतिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास के पूर्ण अवसर पर निर्भर है जो केवल विकेन्द्रीकरण उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत ही संभव है। विकेन्द्रीकरण से मशीनों का प्रयोग भी विनियोजित हो जायेगा। आज पर्यावरण असंतुलन से मानव

चतुर्दिक भयभ्रांत हो गया है, यदि इस गति से यह असंतुलित हुआ, तो सम्पूर्ण मानव जीवन संकट में पड़ जायेगा।[5] पर्यावरण असंतुलन में शोषण व पूंजीवाद की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आत्मनिर्भर बनने में बाधक हैं। गरीब-अमीर की खाई बढ़ती जा रही है। गाँधी चिन्तन के इसका विकल्प स्वदेशी के रूप में मिलता है जनता में अधिकाँश गरीबी का कारण आर्थिक व औद्योगिक जीवन में हमने स्वदेशी नियम का उल्लंघन किया है। स्वदेशी के विकल्प को समस्या के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

गाँधी नैतिक पर्यावरण की बात करते थे, उनके अनुसार, नैतिक तत्वों के द्वारा मानव में मानवता का संचरण होता है। गाँधी जी ने अपने आश्रम में पर्यावरण संचरण के लिए एकादश व्रत का विधान किया, सत्य ब्रह्मचर्य, रसनासंयम, अस्तेय, अपरिग्रह अभय, अस्पृश्यता निवारण, जीविकार्यश्रम, सहिष्णुता, विनम्रता तथा स्वदेशी ये सारे व्रत हिन्दु शास्त्रों द्वारा निर्धारित थे। ये व्रत सार्वभौम सिद्धान्त पर आधारित हैं। इन्हें ही नीति शास्त्रीय शब्दावली में 'विधायक नीति' कहा गया है। अतएव ये व्रत के रूप में स्वीकार्य हैं। वर्तमान समय में सामान्य जन द्वारा इसका पालन नही हो पा रहा है, इसके दुष्परिणाम आज समस्त मानव जाति को भुगतने पड़ रहे हैं इसमें पर्यावरण असंतुलन प्रमुख है। इस पर्यावरण में मानव ही सर्वोत्तम प्राणी है, फिर भी प्रकृति की व्यवस्था में सर्वाधिक दखल उसी का है। मानव समुदाय ही ऐसा है, जो अन्य समुदायों को नुकसान पहुँचाकर भी अपना विकास कर सकता है, जो उसी स्वार्थपरता का चरम है। फलतः उसी की यह जिम्मेदारी भी बनती है कि ये इस तन्त्र (पारिस्थितिकी) को टूटने न दिया जाये। विकास एवं प्रकृति के मध्य सामंजस्य ही पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने में सहयोगी हो सकता है।[6] पर्यावरण संरक्षण हेतु इस नियम का पालन करना चाहिए।

गाँधी विचारधारा का प्रमुख तत्व सत्य और अहिंसा है। उनके अनुसार अहिंसा सामाजिक सद्गुण है सामाजिक जीवन में पर्यावरण का नियमन पारस्परिक व्यवहारों में अहिंसा से प्रकट होता है। सत्य और अहिंसा पर विकास को अवसर मिलना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार सृष्टि की रचना में दुख या कष्ट में नहीं, अपितु आनन्द के लिए पर्याप्त सुविधा है, बशर्ते कि मनुष्य प्रकृति के नियमों को समझकर उसके अनुसार चले। उत्तम समाज व्यवस्था के लिए निम्न जीवन सूत्रों को अमल में लाने पर व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाये रख सकता है जो सामाजिक पर्यावरण के सूत्र एवं मूल्य हैं।

- संघर्ष और होड़ नहीं सहयोग
- भोग नहीं संयम, सादा जीवन, उच्च विचार
- उत्पादन शरीर श्रम जीवन का आधार, जीविकार्थ श्रम का ईमानदारी से पालन

- स्वावलम्बन की भावना
- केन्द्रीयकरण नहीं विकेन्द्रीकरण
- कर्त्तव्य भावना से प्रति निष्ठावान बने

इन सूत्रों के आधार पर समाज की रचना हो, तो व्यक्ति और समाज दोनों सुखी हो सकते हैं और मनुष्य के अस्तित्व पर मंडराते हुए खतरों से बचा जा सकता है।

गाँधी जी की चेतावनी है, कि प्रकृति के पास हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बहुत कुछ है, परन्तु लोलुपता अथवा भोगवाद के लिए कुछ भी नहीं है। उन्होंने प्रकृति के प्रतिकूल किसी भी अवधारणा को उचित नही ठहराया। गाँधी जी का विचार था कि हम सभी प्राकृतिक रूप से अविभाज्य एक ही पर्यावरण के अंश हैं अतः हमारा नैतिक दायित्व है कि हम प्रकृति का संरक्षण करें। यदि सभी की आय समान हो जाए धन-संचय की वर्तमान दौड़ समाप्त हो जाए तो समाज में आर्थिक संतुलन पैदा हो जायेगा और समाज में आर्थिक संतुलन रहेगा, तो गरीबी कहीं भी नही होगी और समाज में शांति कायम रहेगी। आज ग्रामीण समाज, ग्रामीण बेरोज़गारी, गरीबी-जनसंख्या वृद्धि, शहरी प्रभाव से कुप्रभावित हो रहा है ग्रामीणों में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

गाँधी जी आर्थिक पर्यावरण की चर्चा करते थे, उन्होंने आर्थिक विकास की अवधारणा को नैतिकता से जोड़ने का प्रयास किया तथा सामाजिक तथा राजनीतिक चिंतन की तरह उनका भी आर्थिक चिंतन सत्य और अहिंसा पर आधारित था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रमुख पक्षों में अग्रांकित की गणना की जा सकती है–

- स्वदेशी (बेरोज़गारी की समस्या)
- यंत्रों का मर्यादा (विकेन्द्रीकरण प्रदूषण की समस्या)
- आवश्यकता की वृद्धि पर अंकुश
- शरीर श्रम (कार्मिक श्रम)
- संरक्षता का सिद्धांत (ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त)
- क्रांतिकारी मूल्य परिवर्तन
- बुनियादी शिक्षा की योजना

गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी पर अधिक बल दिया। उनके शब्दों में, स्वदेशी का अर्थ था– विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, ग्राम और स्थानीय सामुदायिक विकास, बैंकों, रोजगार और स्वालम्बन इसका अर्थ है– स्थानीय आत्मनिर्भरता और सहभागिता। उनके अनुसार, शोषणयुक्त वैश्वीकरण का आरंभ बिन्दु स्वदेशी हो सकता है। उनके अनुसार, अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन देश में किया

जाना चाहिए। गाँधी जी खादी वस्त्र के समर्थक थे। उनके अनुसार, खादी की अवधारणा और भी बड़े उद्देश्य के साथ विकसित की गई थी, और वह है– अपने गाँवों को भूख से मुक्त करना। इस उक्ति में गाँधी जी को ग्रामीण जीवन को बेहतर बनानें में खादी के योगदान का उनका सपना झलकता है। हम खादी रोज़गार जुटाकर तथा स्वदेशी का गौरव जागृत कर भारत के गाँवों के विकास में बेहतर योगदान कर सकते हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 3 अक्टूबर 2014 को अपने रेडियो अभिभाषण ''मन की बात'' में लोगों से खादी अधिक-से-अधिक उपयोग करने का निवेदन किया। देश में महिलाओं की कुल आबादी के 10 प्रतिशत को इस योजना के साथ जोड़कर महिला सशक्तिकरण के अभियान को गति दी है। खादी क्षेत्र कौशल विकास योजना से भी लाभ उठा सकता है। 20 सितम्बर 2015 को ''मन की बात'' में प्रधानमंत्री ने खादी को फैशन से जोड़ने पर जोर दिया है।

गाँधी जी विकेन्द्रीकरण के समर्थक थे। उनकी आर्थिक योजना का आधार स्वदेशी है। स्वदेशी के पालन में जहाँ खादी व चरखे का प्रयोग किया जाता है, इसके माध्यम से केन्द्रीकरण को रोका जाता है, और बड़े यंत्रोद्योग की बहुतायत कम होती है, जो पर्यावरण संतुलन में बांधक है। उनका विश्वास था कि भारत मुख्यतः एक ग्रामीण समाज है तथा उसका पुनर्जीवन संयम के आचरण एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों की ब्यूहरचना पर आधारित ग्रामीण पुर्नरचना के द्वारा हो सकता है। गाँधी जी सादा जीवन, उच्च विचार के समर्थक थे, उन्होंने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। गाँधी जी ने राजनीति को धर्म और नैतिकता से जोड़ने का प्रयास किया। वे राज्यविहीन समाज की स्थापना के पक्षधर थे तथा विकेन्द्रीकृत ग्राम्य स्वराज के समर्थक थे। गाँधी जी लोकतंत्र के इन गुणों को समाहित करते थे–

1. सत्य के प्रति निष्ठा
2. अहिंसा
3. सहयोग का भाव
4. उत्तरदायित्व वहन करने को तैयार रहना
5. मानव स्वभाव के सुधार के प्रति विश्वास
6. ग्राम पंचायत की भावना
7. राजनीति में नैतिकता को प्रतिस्थापित करना था।

गाँधी चिंतन वर्तमान समय में उपस्थित पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान का सैद्धान्तिक आधार प्रकट करता है। उनके द्वारा बतायी गयी जीवन पद्धति वर्तमान विश्व के समक्ष उपस्थित चुनौती का समाधान करती प्रतीत होती है। गाँधी चिंतन का केन्द्र बिन्दु मानवीय है। गाँधी के मत में व्यक्ति के उदय व कल्याण की धारणा अनिवार्यतः आध्यात्मिक है, किन्तु गाँधी के अनुसार मनुष्य के इस आध्यात्मिक लक्ष्य

की प्राप्ति सांसारिक यथार्थ से मुँह मोड़कर नही की जा सकती। गाँधी के मत में व्यक्ति के उदय एवं कल्याण की धारणा अनिवार्यतः आध्यात्मिक है, किन्तु गाँधी के अनुसार मनुष्य के इस आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति सांसारिक दृष्टि से टकरावपूर्ण होते हुए भी मानव मात्र के हितों में अनिवार्य एकता है। विगत् वर्षों में पर्यावरण का मूल कारककककण मशीनीकरण तथा औद्योगीकरण के माध्यम से आर्थिक विकास की यात्रा है आर्थिक विकास की इस यात्रा का कुपरिणाम मनुष्य के लिए विकराल समस्याओं का उद्भव हुआ है। आज बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता, भयावह बीमारियों और सबसे बड़ा संकट पर्यावरण संकट है। वर्तमान समय में पर्यावरण संकट में सामाजिक चुनौतियाँ भी बाधक हैं। विश्व के सभी देशों में आज विकास के पथ पर एक-दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ सी मची है और इसके लिए औद्योगीकरण से लेकर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन तक के हर संभव उपाय किये जा रहे हैं। इस सन्दर्भ में फ्रेडरिक रेटजेल अपनी पुस्तक 'The History of Mankind' में लिखा है कि, ''हमारी बुद्धि संस्कृति एवं सभ्यता की उपलब्धियों की तुलना एक चिड़िया की स्वच्छन्द उड़ान से नहीं की जा सकती, उसकी तुलना तो एक पौधे के तने से की जा सकती है क्योंकि हम सदैव पृथ्वी से आंबद्ध है तथा शाखाएँ होने पर ही अवलम्बित हो सकती है। तने पर आने वाली टहनियाँ चाहें आकाश की ओर जाती हो परन्तु पैर तो जमीन पर ही टिके रहते हैं और धूल को धूल में मिलना पड़ता है''[7]। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा है– हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के माध्यम से पानी, ऊर्जा, निवास स्थान, कचरा प्रबंधन और पर्यावरण के क्षेत्रों में पृथ्वी द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए कार्य करना होगा।

सितम्बर 2000 में दुनिया के 189 देशों के नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में मिल बैठकर विश्व से गरीबी, भूख, लैंगिक असमानता मिटाने और बच्चों में मृत्यु दर कम करने के लिए आठ ऐतिहासिक सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों पर समझौता किया था। सितम्बर 2015 में इनकी अवधि पूरी होने पर इन लक्ष्यों को और विस्तार देते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा वृद्धि अगले 15 वर्षों यानि 2030 तक के लिए एक नया एजेण्डा सतत् विकास लक्ष्यों का तय किया गया। 17 विकास लक्ष्यों को सम्मिलित किया गया ये विकास लक्ष्य हैं– गरीबी-उन्मूलन, भूख की समाप्ति, बेहतर स्वास्थ्य, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, शुद्ध जल की उपलब्धता एवं स्वच्छता, सस्ती स्वच्छ ऊर्जा, उचित रोजगार एवं आर्थिक विकास उद्योग, नई खोजें, पद्धतियाँ तथा बुनियादी ढाँचा, असमानता में कमी, टिकाऊ शहर और समाज, उत्तरदायित्व पूर्ण उपभोग एवं उत्पादन, जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए त्वरित उपाय, महासागरों तथा समुद्री स्रोतों का संरक्षण, धरती एवं जंगलों का संरक्षण आदि शामिल है। भारत ने सतत् विकास लक्ष्यों का एजेण्डा 1 जनवरी 2016 से अगले 15 सालों (2030) के लिए लागू किया था।

- सतत् विकास के संदर्भ में सर्वेक्षण कहता है कि भारत की शहरी जनसंख्या 2031 तक 600 मिलियन हो जायेगी।
- शहरी स्थानीय निकाय नगरपालिका ब्राण्ड सार्वजनिक निजी समझौता तथा क्रेडिट जोखिम गारंटी जैसे वित्तीय व्यवस्थाओं के माध्यम से संसाधन निर्माण करते हैं।
- सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आधार है–सतत् आधुनिक और सस्ती ऊर्जा
- 30 नवम्बर 2017 तक कुल ऊर्जा क्षमता में नवीकरणीय ऊर्जा का हिस्सा 18 प्रतिशत था और यह पिछलें 10 वर्षों में तीन गुना बढ़ा है।

भारत के बारे में यह संदर्भ आया है कि अभी देश में सेवा क्षेत्र के मुकाबले मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र काफी पीछे है। अतः इस क्षेत्र में क्रांति लाने के लिए *मेक इन इण्डिया* की पहल की गयी है ताकि भारत को डिजाइनिंग एवं मैनुफैक्चरिंग का केन्द्र बनाया जा सके। सरकार आर्थिक गतिविधियों और बुनियादी ढाँचों के विकास में निवेश को बढ़ावा देने के लिए जुटी है। स्वच्छ भारत मिशन, स्मार्ट सिटी, अमृत आदि आधारभूत संरचनाओं के विकास की योजनाएँ हैं। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में कई कल्याणकारी योजनाएँ चलायी गयीं हैं जैसे– अटल पेंशन योजना, दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, प्रधानमंत्री आवास विकास योजना आदि।

भारत के लिए सतत् विकास का प्रमुख लक्ष्य है– गरीबी-उन्मूलन। गरीबी को दूर करने के प्रयासों के साथ ही स्वास्थ्य, शिक्षा, विकास आदि के मुद्दे भी सुलझ जाते हैं। सतत् विकास लक्ष्यों की सफलता भी इन मोर्चे पर सफलता के साथ जुड़ी है। जल तथा स्वच्छता का लक्ष्य इन सभी के साथ जुड़ा है। आज भी हमारे देश में 50-60 करोड़ लोग खुले में शौच जाते हैं। 2 अक्टूबर 2014 को शुरू किये गये 'स्वच्छ भारत अभियान' का लक्ष्य रखा गया था कि 2019 तक यह स्थिति समाप्त हो जायेगी। इसके लिए जगह-जगह पर शौचालय बनाये जा रहे हैं। आशा है कि जल्द ही यह व्यवस्था हो जायेगी। आक्सफैम की अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार, चीन, भारत, इण्डोनेशिया, लाओस, बांग्लादेश में 10 फीसदी अमीरों की आय मे 15 फीसदी का इजाफा हुआ है तथा सबसे गरीब 10 फीसदी आबादी के आमदनी में 15 प्रतिशत की गिरावट आयी है। भारत में बढ़ती असमानता का कारण यह है कि यहाँ गरीबी-उन्मूलन को तेज आर्थिक विकास तथा शहरीकरण का पर्याय मान लिया जाए। भारत को शहरीकरण के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान देने की जरुरत है। सतत् विकास के लिए भारत को इन बातों में विशेष ध्यान देना चाहिए–

- हमें सबसे पहले जनसंख्या को स्थिर बनाने की जरूरत है।

- शिक्षा प्रणाली में सुधार एवं विकास किये बिना हम सतत् विकास की अवधारणा से लोगों को अवगत नही करा सकते।
- पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ संतुलित विकास हो।
- उपभोक्तावादी संस्कृति पर नियंत्रण प्राप्त किया जाये।
- हमें प्रत्येक कार्य करते समय प्रदूषण नियंत्रण की बात नही भूलनी चाहिए।
- हमें आम लोगों के प्रवृत्ति में परिवर्तन लाना चाहिए, हमें यह समझना आवश्यक है कि कम ही बिजली खर्च करें तथा ऊर्जा के अन्य संसाधनों का दुरुपयोग न हो।

विकास तथा पर्यावरण एक दूसरे के पूरक हैं। संतुलित एवं शुद्ध पर्यावरण बिना मानव का जीवन कष्टमय हो जायेगा। हमारा अस्तित्व तथा जीवन की गुणवत्ता स्वच्छ पर्यावरण पर निर्भर है। विकास हमारे लिए जरूरी है इसके लिए प्राकृतिक साधनों का उपयोग करना चाहिए। सतत् विकास में आर्थिक समानता, लैंगिक समानता एवं सामाजिक समानता के साथ-साथ पर्यावरण संतुलन भी निहित है इसलिए कहा जाता है कि मानव का वास्तविक कल्याण सतत विकास द्वारा ही संभव है। महात्मा गाँधी ने कहा था– ''हमारे उद्योग मानव प्रधान होने चाहिए न कि मशीन प्रधान'' सतत् विकास के संदर्भ में उनकी यह बात हमें बहुत कुछ सिखाती है।

संदर्भ सूची

- योजना, दिसम्बर–2015, पृ.-47
- प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक विज्ञान के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2018, पृ.-94
- डॉ. मधु अस्थाना, पर्यावरण : एक संक्षिप्त अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2008, पृ.-12-13
- प्रो. जगदीश सिंह, पर्यावरण एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृ.-76
- डॉ. चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ एन.एस. सिसौदिया, पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं विकास, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2015, पृ.-201
- योजना, जून–2013, पृ.-45
- Friedrich Ratzel, The History of Mankind, P. 3.

पर्यावरण विकास और नियामकीय संस्थाओं की भूमिका : भारतीय परिपेक्ष्य

राजबीर सिंह दलाल एवं सरबन कुमार

Ikjk'k% पर्यावरण और विकास दोनों एक दूसरे के प्रतिरोधी रहे हैं। यानि जैसे-जैसे विकास की रफ्तार आगे बढ़ी है उसका पर्यावरण पर प्रतिकूल असर देखने को मिला है यद्यपि अनेक पर्यावरण एवं विकास से जुड़े विचारकों का मानना है कि दोनों के मध्य यह द्वन्द्ध एक सीमा तक रहता है उसके बाद ये दोनों एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं। तीसरे विश्व के देशों में बढ़ती विकास की आवश्यकता और त्वजों ने पर्यावरण को पिछले छह दशकों में बुरी तरह प्रभावित किया है जिसका नतीजा यह है कि पर्यावरण संरक्षण एवं विकास की बात की जाने लगी। रियो घोषणा, क्योटो प्रोटोकोल, पेरिस समझौता, एजेंडा–21 आदि इस दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय कदम कहे जा सकते हैं। भारत में भी 1972 से ही पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु अनेकों कदम उठाए गए हैं जिसमें जलवायु एवं मृद्धा संरक्षण कानूनों के साथ-साथ इन्हें लागू करवाने हेतु अनेकों नियामकीय संगठनों एवं निकायों की स्थापना भी की गई है। पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय तथा विभागों के अतिरिक्त राष्ट्रीय हरित न्यायाधीकरण तथा प्रादेशिक हरित न्यायाधीकरणों तथा पर्यावरण अदालतों का गठन पिछले दो दशकों में किया गया है ताकि पर्यावरण विकास को सुनिश्चित किया जा सके और इसका क्षरण करने वालों को दण्डित किया जा सके। इस प्रकार वर्तमान लेख में पर्यावरण विकास और नियामकीय संस्थाओं की भारत के संदर्भ में समीक्षा की गई है।

भूमिका

दक्षिणी हरियाणा क्षेत्र में अब तक 95 फीसदी स्टेट वे सड़कों को हाइवे में तबदील किये जाने से करीब 50,000 से अधिक पेड़ों की बलि चढ़ चुकी है और 250 हैक्टेयर वन भूमि का सफाया किया जा चुका है। लगभग 50,000 और पेड़ों की कटाई की तैयारी चल रही है। लेकिन काटे गए पेड़ों की ऐवज में एक भी पेड़

योजना के तहत नही लगाया गया है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई का परिणाम यह हुआ है कि दक्षिणी हरियाणा का तापमान साथ लगते जिलों की अपेक्षा दो डिग्री अधिक हो गया है। इतना ही नहीं देश और प्रदेश के अन्य भागों में भी जहाँ-जहाँ बड़ी सड़कों का निर्माण हुआ है तथा औद्योगिक इकाइयां लगी हैं तथा नई बस्तियां बसी हैं वहां पर पर्यावरण का सबसे अधिक नुकसान विशेषकर पेड़ों की कटाई के रूप में देखा गया है। यहां विकास का अन्तर्द्वन्द्व कहा जा सकता है कि हम बेहतर जीवन के लिए प्रयास करके उसे और अधिक पर्यावरण क्षरण द्वारा दुष्कर बनाते जा रहे हैं। आज भारत में पर्यावरण के नाम पर अनेक संगठन एवं संस्थान कार्य कर रहे हैं जिनमें राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक हरित ट्रिब्यूनल भी शामिल है। सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों ने भी न्यायिक सक्रियता के माध्यम से अनेकों निर्णय भी दिए है। इसके बावजूद हमारे देश में पर्यावरण विकास की दिशा में कोई ठोस व्यावहारिक कार्य तथा जन आंदोलन या जन जागृति नहीं हो पाई है। नियामकीय संस्थाओं की चेतावनी एवं दण्ड के बावजूद भी जनमानस पर्यावरण क्षरण से गुरेज नहीं कर रहा चाहे मामला फसलों के अवशेषों के (फानों) जलाने का हो, भूमिगत जल का अंधाधुंध दोहन का या फिर खनन का।[1]

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए मुख्य रूप से वंशानुक्रम और वातावरण का महत्व होता है। लेकिन व्यावहारिक मनौवैज्ञानिकों के अनुसार ''वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण की भूमिका व्यक्तित्व विकास में अहम होती है''। भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का सम्पूर्ण योग जो मानव के चारों और व्याप्त होता है और मानव को प्रभावित करता है वह पर्यावरण कहलाता है। आदिकाल से ही मानव एवं प्रकृति का अटूट संबंध रहा है। सभ्यता के विकास में प्रकृति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विकास के आरम्भिक चरण में कोई भी जीवधारी या मनुष्य सर्वप्रथम प्रकृति के साथ अनूकुल होने का प्रयास करता है इसके पश्चात् वह धीरे-धीरे प्रकृति में परिवर्तन करने का प्रयास करता है परन्तु अपने विकास क्रम में मानव की बढ़ती भौतिकवादी महत्वकांक्षाओं ने पर्यावरण में इतना अधिक परिवर्तन ला दिया है कि मानव और प्रकृति के बीच का सन्तुलन, जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है धराशाही होने के कगार पर पहुंच गया है। साथ ही मानव की अदूरदर्शी विकास प्रक्रियाओं ने विनाशकारी रूप धारण कर लिया है। 1970 के दशक में ही यह अनुभव किया गया कि वर्तमान विकास की प्रकृति असंतुलित है एवं पर्यावरण की प्रतिक्रिया उससे विकाशकारी हो सकती है। संयुक्त राष्ट्र ने मई 1969 की रिपोर्ट में पर्यावरण असंतुलन पर गंभीर चिंता व्यक्त की कि मानव जाति के इतिहास में पहली बार पर्यावरण असन्तुलन का विश्वव्यापी संकट खड़ा हो रहा है। मानव जनसंख्या की वृद्धि, पर्यावरणीय आवश्यकताओं का क्षरण एवं वनस्पति जीवन पर बढ़ता हुआ विकास का खतरा ये सब इसके लक्षण हैं। इसलिये हमें पर्यावरण संरक्षण के बारे में

सोचना होगा और हमारे चारों ओर के वातावरण को दूषित होने से बचाना होगा। पर्यावरण सम्मेलन जो जून, 1972 में स्टॉकहोम में सम्पन्न हुआ था और उसमें भारत ने भी भाग लिया था में यह तय हुआ था कि पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाये जाये। अन्यथा इस धरती पर जीवन समाप्त हो जायेगा।[2] निःसन्देह पर्यावरण संरक्षण अति आवश्यक है लेकिन विकास भी उतना ही जरूरी है। लोकतांन्त्रिक शासन व्यवस्थाओं के चलते मानव की अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति का सरकारों पर निरन्तर दबाव बढ़ता जा रहा है जिसका सीधा असर पर्यावरण के क्षरण पर पड़ता है।

उद्देश्य

वर्तमान शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैः

1. पर्यावरण विकास एवं नियामकीय संस्थाओं के अन्तःसंबंधों और उनकी आवश्यकता को जांचना।
2. पर्यावरण विकास एवं नियामकीय संस्थाओं संबंधी अवधारणाओं को स्पष्ट करना।
3. पर्यावरण विकास को प्रभावित करने वाले घटकों को चिन्हित करना।
4. भारत में पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डालना।
5. भारत तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण एवं विकास हेतु उठाए गए कदमों पर प्रकाश डालना तथा इसे प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक सुझाव देना।

अवधारणा

प्रस्तुत लेख में पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं जैसी अवधारणाओं को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है ताकि इनके अन्तःसंबंधों को समझा जा सके उनका विश्लेषण किया जा सके कि किस प्रकार पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाएं एक दूसरे को प्रभावित कर पा रही हैं। शाब्दिक अर्थ से देखे तो पर्यावरण दो शब्दों के मेल की दृष्टि से मिलकर बना है। परि+आवरण अर्थात् हमारे चारों और का वातावरण, जिसके सभी संजीव व निर्जीव पदार्थ अंग है। *मैकाइवर के अनुसार,* ''पृथ्वी का धरातल और उसकी समस्त प्राकृतिक दशाएं, प्राकृतिक संसाधन, भूमि, जल, पर्वत, मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे, पशु तथा सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियाँ जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती है, पर्यावरण कहलाती है''। *सी.सी. पार्क के अनुसार,* ''मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय में जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है। इस प्रकार पर्यावरण से तात्पर्य व्यक्ति के चारों तरफ के वातावरण की आबोहवा तथा

सामाजिक-सांस्कृतिक घटकों के मिश्रण से है जो व्यक्ति या जीवों को प्रभावित भी करता है और उससे प्रभावित भी होता है''।[3]

विकास का तात्पर्य है सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक सरंचना, संस्थाओं, सेवाओं की बढ़ती क्षमता जो संसाधनों का उपयोग इस प्रकार से कर सके ताकि जीवन स्तर में अनुकूल परिवर्हन आये। *संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार,* विकास की प्रक्रिया जटिल होती है क्योंकि विकास आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक आदि तत्वों के समन्वय का परिणाम है। *रॉय एंड रॉबिन्स के अनुसार,* ''किसी भी देश के लोगों के भौतिक, सामाजिक व राजनैतिक स्तर पर सकारात्मक बदलाव विकास है''। *जे.के. क्लार्क शब्दों में,* ''विकास बदलाव की एक ऐसी प्रक्रिया है जो लोगों को इस योग्य बनाती है कि वे अपने भाग्य विधाता स्वंय बन सके तथा अपने अन्तनिर्हित समस्त सम्भावनाओं को पहचान सके।[4] जहाँ तक पर्यावरण विकास के अर्थ का प्रश्न है इस का अभिप्राय है पर्यावरण का विकास अर्थात् पर्यावरण को बेहतर बनाने हेतु वे सभी आवश्यक कदम उठाना जो इसका क्षरण रोकते है ओर इसका संरक्षण एवं संवर्द्धन करते हो। इससे तात्पर्य है कि प्रकृति के आवश्यक घटकों का संरक्षण एवं संतुलन तथा उनके काम करने के तरीक्के को मानव, मशीनरी तथा अन्य अजैविक अपशिष्ठों से कम-से-कम प्रभावित तथा विचलित करना ताकि उनकी प्राकृतिक स्थिति यथावत बनी रहे और भोजन की कड़ी निर्बाध रूप से चलती रहे।

विकास–पर्यावरण संबंध

अर्थशास्त्री कुजनेट्स ने विभिन्न देशों के आंकड़ों को प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय से जोड़ते हुये वक्रो की सहायता से यह निष्कर्ष निकाला है कि विकास के आरम्भिक दौरा पर्यावरण प्रदूषण होना अपरिहार्य है और एक निश्चित आय स्तर प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही पर्यावरण संरक्षण और सुधार सम्भव है। देश में आय स्तर बढ़ने के साथ-साथ पेयजल और रहन-सहन की स्वच्छता निरन्तर बढ़ती जा रही है पर सल्फर-डाई ऑक्साइड (SO_2) एवं कार्बन डाई-ऑक्साइड (CO_2) की मात्रा वातावरण में आय स्तर बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों की प्रति व्यक्ति नगरीय अपशिष्ट की मात्रा बहुत अधिक है। इस प्रकार आर्थिक विकास बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा है। यदि विकास है तो पर्यावरण प्रदूषण भी है और यदि पर्यावरण संरक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है तो विकास प्रभावित होता है। आर्थिक विकास पर्यावरण संरक्षण से अधिक गम्भीर समस्या है। इन देशों में समेकित रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा व चिकित्सा आदि उपलब्ध करा पाना भी मुश्किल है। अतः पर्यावरण एवं विकास एक सिक्के के दो पहलु हैं दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जैसे–जैसे भारत में विकास हुआ है वैसे-वैसे हमारे पर्यावरण को काफी नुक्सान हुआ है नौबत यहां तक आ चुकी है कि

सांस लेना भी मुश्किल हो गया। बढ़ते वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण ग्लोबल वार्मिंग आदि ने विकास और पर्यावरण सब को दूषित किया है।[5] जिससे विकास के फायदों की अपेक्षा इसके दुष्परिणाम अधिक देखने को मिल रहे हैं और पर्यावरण विकास की जरूरत।

पर्यावरण के घटक

सम्पूर्ण ब्रह्मांड में पृथ्वी ही एक मात्र ऐसा ग्रह है जहां जीवन सम्भव है। पृथ्वी पर दिखाई देने वाले विस्तार के बावजूद जीवन इस की पतली परत में ही मौजूद है जिसे जीवमण्डल कहा जाता है। जीवमण्डल के अन्दर ही विभिन्न जीव सूर्य से ऊर्जा ग्रहण करते हैं तथा एक दूसरे से लगातार परस्पर क्रिया करते हैं। यही परिवेश उसका प्राकृतिक पर्यावरण कहलाता है। इस प्रकार पर्यावरण जैसे और अजैव घटकों और किसी जीव के आस-पास के प्रभावों और घटनाओं का कुल योग है। वही जीवन श्रृंखला का आधार भी है। प्राचीन काल में मनुष्य प्रकृति से तालमेल बनाकर रहता था, लेकिन जैसे-जैसे विकसित होता गया उसी प्रकार पर्यावरण भी विकसित करता गया। यह मानव निर्मित पर्यावरण है। पर्यावरण लगातार बदल रहा है और यह बदलाव कई प्रकार के पर्यावरणों को जन्म दे रहा है, जिनमें दो प्रमुख प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण एवं मानव निर्मित पर्यावरण।

प्राकृतिक पर्यावरण

प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक कारक है सुविधा के लिए उन्हे दो भागों में बांटा गया है।

1. जैविक घटक 2. अजैविक घटक

- *जैविक घटक :* इसमें पर्यावरण के जीवित तत्व आते हैं जिसमें सभी जीवित प्राणी पेड़-पौधे और सूक्ष्म जीव सम्मिलित हैं। जीवन पृथ्वी की सतह के कुछ मीटर नीचे तथा कुछ किलोमीटर ऊपर की परत पर है। जिसे जीवमण्डल कहा जाता है। जीव मण्डल में प्रत्येक जीव एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। जिससे उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटित करने वाले जीव सम्मिलित है।

(i) *उत्पादकः* ये हरी पत्ती वाले पेड़-पौधे होते हैं जो सूर्य के प्रकाश में वृद्धि प्राप्त करते हैं और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से अजैव अपना आहार स्वंय बनाते हैं। इन्हें प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है।

(ii) *उपभोक्ता :* इसमें मनुष्य सहित परपोषित उत्पादक जीव जन्तु आते हैं ये स्वपोषित उत्पादक पौधो के उत्पादों को खाकर जीवित रहते हैं।

(iii) *अपघटक :* इससे मृत जन्तुओं और पौधों को गला.सड़ा कर विघटित करने वाले जीवाणु और कारक जैसे सूक्ष्मजीव अपघटक कहलाते हैं। अपघटक की प्रक्रिया के दौरान ये सूक्ष्मजीव अपना भोजन ग्रहण करने के साथ ही जैविक तत्वों की पुनर्व्यवस्था भी करते हैं।

- *अजैविक घटक :* पारिस्थितिक तन्त्र के भौतिक एवं रासायनिक घटक अजैविक संरचना का निर्माण करते हैं।

क (i) *भौतिक कारक :* सौर प्रकाश एवं छाया, सूर्य की अवधि, तापमान वार्षिक वर्णन, वायु, अक्षांश व देशान्तर की स्थिति, मृदा के प्रकार जल आदि घटक पारिस्थितिक तन्त्र के भौतिक कारकों के प्रमुख है।

(ii) *रासायनिक कारक :* प्रमुख पोषक तत्व जैसे कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, ऑक्सीजन, सल्फर, लवण व अन्य जैविक पदार्थ पारिस्थितिक तन्त्र के कार्य को प्रभावित करते है। ये या तो यौगिक रूप में भूमि के पानी में घुले होते हैं या स्वतन्त्र अवस्था में रहते हैं। जलवायु कारक जैसे प्रकाश, तापमान, नमी, पवन, वर्षा जल तथा वायुमण्डलीय गैसों में भी अजैविक घटकों का ही भाग है। इसके अतिरिक्त भूमि तथा खनिज भी अजैविक घटकों के अन्तर्गत आते हैं।

2- Ekkuo fufeZr lk;koj.k % प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य प्रकृति के साथ रहता था। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने आस-पास के वातावरण से प्रकृति को बिना क्षति पहुंचाएं कर लेता था। परन्तु जैसे-जैसे वह विकसित होता गया वैसे-वैसे उसने एक नए पर्यावरण को विकसित किया, जिसे मानव निर्मित पर्यावरण कहा गया। पर्यावरण के अनेक घटकों का निर्माण औद्योगिक स्थान आते है ये ऐसे स्थल हैं जिनकों मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृत्रिम रूप में बनाया है।[6]

भारत में पर्यावरण संबंधी समस्याऐं

विश्व के अन्य देशों की तरह भारत भी पर्यावरण से संबंधित अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है। विकसित देशों की पर्यावरण समस्या उनके संसाधनों के दुरुपयोग एवं जीवनशैली की देन है। भारत में पर्यावरण की निम्नलिखित समस्याऐं है जो इस प्रकार हैः–

1. *जनसंख्या और गरीबी* – भारत में जनसंख्या की वृद्धि अपने आप में एक महत्वपूर्ण तथ्य है। आज हमारी जनसंख्या 125 करोड़ को पार कर चुकी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण गरीबी बढ़ रही है। औद्योगीकरण एवं गरीबी ही पर्यावरण क्षरण का प्रमुख कारण है। भारत में लगभग 40 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं और 67 प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं जिनका

प्रमुख व्यवसाय कृषि है। जो विभिन्न रासायनिक दवाओं का उपयोग करते हैं जिससे मृदा प्रदूषण, वायु-जल प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ रहा है और अन्धाधुन्ध पेड़ों की कटाई के कारण तापमान वृद्धि, सूखा, बाढ़ तथा पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। लेकिन लोकतान्त्रिक व्यवस्था तथा वोट बैंक की राजनीति के चलते इस पर कोई नकेल नहीं लग पा रही है। इस प्रकार भारत में जनसंख्या और गरीबी पर्यावरण विकास हेतु एक प्रमुख समस्या है।

2. *प्रदूषण :* वायु, जल, भूमि, खनिज आदि वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। यह कहना गलत न होगा की आज भारत में विभिन्न क्षेत्रों में विशेषकर महानगरों में हर प्रकार का प्रदूषण व्याप्त हो चुका है। वायु वाहनों, उद्योगों तथा पावर स्टेशनों के धुएं से प्रदूषित है। उद्योग में विशेषकर रासायनिक उद्योग, सीमेन्ट, ईंट, ताप, बिजली घर आदि, फसलों के अवशेष को जलाने तथा त्यौहारों पर अंधाधुंध पटाखे फूंकना जैसे हानिकारक तत्वों से वायु इस कदर प्रदूषित हो गई है कि मानव को सांस लेना भी मुश्किल होता जा रहा है। इसका केवल मनुष्य पर नहीं बल्कि अन्य जीवों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। आज जल के स्त्रोत समाप्त होते जा रहे हैं और जल पीने योग्य भी बचा नहीं। औद्योगीकरण और नगरीकरण के कारण जल-प्रदूषण बढ़ता जा रहा है और कृषि क्षेत्रों में *पेस्टिसाईड* व *फर्टिलाइजर्स* के अत्यधिक इस्तेमाल से भी वायु, जल और मृदा प्रदूषण बढ़ रहा है। जिससे अब औज़ोन परत पर भी खतरा मण्डारने लगा है। सूर्य से आने वाली हानिकारक किरणों से शहरों का पर्यावरण कृत्रिम हो गया है। आमतौर पर शहर का वायुमण्डल ग्रामीण की अपेक्षा अधिक प्रदूषित होता है। फैक्ट्रियाँ, परिवहन के साधन, ए.सी., रेफ्रिजरेटर और बिजली घर वायुमण्डल को प्रदूषित करने में काफी योगदान दे रहे हैं। मानव निर्मित पर्यावरण के कारण ऊर्जा की पेट्रोलियम तथा लकड़ी आधारित ऊर्जा की अत्यधिक खपत होती है।

3. *आवास समस्या* – मानव के आश्रम स्थल के रूप में मकान या घर उसकी भौतिक आवश्यकता है। पर्यावरण एवं मानव क्रियाओं में सामजंस्य मानव बस्तियों में देखा जा सकता है। शहरीकरण की अंधी दौड़ ने पर्यावरण को अत्यधिक नुकसान पहुंचाया है और हर तरह के प्रदूषण को बढ़ाया है। जिसका सबसे सीधा और बुरा असर पेड़ों पर पड़ा है। चाहे मामला आवास से संबंधी हो या ढांचागत सुविधाओं के विकास से। महानगरों की तस्वीर का सही-सही अंदाजा इस दृष्टान्त से लगाया जा सकता है कि अकेले दिल्ली में आबादी के हिसाब से नौ लाख पेड़ कम हैं। पिछले छह वर्षों में 52000 पेड़ों की कटाई कालोनियां बसाने के लिए तथा सड़कों को चौड़ा

करने हेतु दिल्ली में की गई है और अभी साऊथ दिल्ली में छह कालोनियों की डेवलेपमेंट हेतु 1600 पेड़ और काटे जाने है हालांकि फिलहाल एन.जी. टी. ने 4.7.2018 तक इनकी कटाई पर बैन लगा दिया है।[7] भारत में लगभग 67 प्रतिशत लोग आज भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत लोगों की समस्याओं में आवास की समस्या काफी बड़ी है। यहां तक की शहरों में समाज का एक बड़ा भाग मलिन बस्तियों में रहने पर विवश है जिसकी कुल आबादी दुनिया के आधे से अधिक देशों से ज्यादा है। दूसरी तरफ देश में 10 लाख से अधिक मकान खाली पड़े हैं यानि उनमें कोई रह नहीं रहा है। आवास की समस्या, जल पूर्ति का अभाव, बिजली का अभाव, सफाई प्रबंध का अभाव, संचार का अभाव आदि भारत की मुख्य समस्या है।

4. *बढ़ता औद्योगीकरणः* विकासशील देशों के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु औद्योगीकरण महत्व रखता है लेकिन आज इस बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण का तेजी से ह्रास होने लगा है मशीनों के उपयोग से प्रकृति एवं पर्यावरण प्रकृति जहां एक और वरदान है वहीं दूसरी ओर अभिशाप भी। इसलिए आवश्यक है कि इसे सुरक्षित रखा जाये। मानव अपनी सुविधा के लिए अनेक विकास कार्य कर रहा है। आज भारत में सुई से लेकर हवाई जहाज बनाने के उद्योग कार्य कर रहे हैं। भारत में विभिन्न प्रकार की दवाईयां, ससाधनों, कपड़ों, इस्पात आदि प्रमुख उद्योग कार्य कर रहे है। इन उद्योगों के कारण पर्यावरण दूषित होता जा रहा है और मानव अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार रहा है। इन उद्योगों से निकलने वाला धुंआ, वायु प्रदूषण, गन्दा जल, जल प्रदूषण कर रहा है जो वातावरण का सन्तुलन बिगाड़ रहा है।

5. *पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता का अभावः* आज सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, चेतना एवं जागरूकता का अभाव देखने को मिल रहा है। सभी जानते हैं कि व्यक्ति इस धरातल पर खुले में श्वास लेता है, सूर्य से शक्ति प्राप्त करता है और मिट्टी से भोजन। इस प्रकार हम सभी इस धरातल का एक प्रमुख अंग मात्र है। लेकिन मानव स्वंय सम्पूर्ण सृष्टि का मालिक एवं निर्धारक बनता जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पर्यावरण के क्षेत्र में अनेकों चुनौतियां पैदा कर दी है और कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि हम विकास कम और विनाश अधिक कर रहे हैं। चाहे मामला खनन का हो या पेड़ों की कटाई का, भू-जल के दोहन का हो या नदियों-पोखरों के जल के प्रदूषण का, रसायन एवं उर्वरकों के उपयोग का या वायु प्रदूषण को। अतः हमको ही

अपनी धरती अर्थात् प्रकृति जो जननी है की रक्षा करनी है। इस प्रकार प्रकृति के जीवन दायिनी तथ्यों को सही दिशा देकर मानव अपना विकास कर सकता है। पर्यावरण की समस्या का निर्धारण करना है इनसे निपटने के उपायों का अध्ययन भी आवश्यक है। इसके अलावा पर्यावरण चेतना का होना सबसे ज्यादा जरूरी है। भारत में वैसे ही शिक्षा का अभाव है और शिक्षा प्राप्त लोगों में भी पर्यावरण चेतना कम ही है। इस सन्दर्भ में यह कहना युक्तिसंगत होगा कि भारत में पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता को विकसित करना अत्यन्त आवश्यक है।[8]

6. *पर्यावरण संरक्षण हेतु लचर व्यवस्थाः* भारत में पर्यावरण क्षरण को रोकने एवं इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु व्यापक संवैधानिक तथा विधिकीय प्रावधान मौजूद है। अनगिनत एक्ट एवं कानून बने हुए है किन्तु इनको लागू करने तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु बनी हुई व्यवस्था स्थिर एवं लचर है। जिसके चलते इतने कानूनों के होते हुए भी पर्यावरण का क्षरण तथा नुक्सान करने वाले लोग बेखौफ ऐसा कर रहे हैं। भू-माफिया, खनन-माफिया, लकड़ी (विशेषकर चन्दन) तस्कर, वन्य जीवों को पकड़ने तथा मारने वाले अनेकों बार राज्य के संगठित प्रयासों पर भी भारी पड़ते रहे हैं। भले ही मामला यमुना नदी की रेती उठाने का हो, या कर्नाटक में चन्दन की लकड़ी की तस्करी का, रेड कोरिडोर में जमें माओवादियों का हो या अरावली पर्वत के खनन का।

पर्यावरण विकास संबंधी प्रावधान एवं प्रयासः पर्यावरण से संबंधित किसी भी कानून अधिकार के प्रवर्तन तथा व्यक्तियों एवं संपत्ति के नुकसान के लिए सहायता और क्षतिपूर्ति देने या उससे जुड़े मामलों सहित, पर्यावरण सरंक्षण एवं वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के सरंक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और शीघ्रगामी निपटारे के लिए राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम 2010 के अन्तर्गत 18 अक्टूबर 2010 को राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) की स्थापना की गई यह एक विशिष्ट निकाय है जो बहु अनुशासनात्मक समस्याओं वाले पर्यावरणीय विवादों को संभालने के लिए आवश्यक है। पर्यावरणीय संबंधी मामलों में अधिकरण का समर्पित क्षेत्राधिकार तीव्र पर्यावरणीय न्याय प्रदान करेगा तथा उच्च न्यायालयों में मुकदमें बाजी के भार को कम करेगा। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल द्वारा ही यह सुनिश्चित किया गया था कि 10 वर्ष से पुराने सभी डीजल गाड़ियों के दिल्ली एन.सी.आर.में चलने पर रोक लगा दी गई।[9] प्रकृति के स्त्रोतों का पहले से ही आवश्यकता से अधिक उपयोग और शोषण हो चुका है। अगर भविष्य में प्रकृति स्त्रोतों का शोषण ना रोका गया तो वह दिन दूर नही जब मनुष्य का इस धरती पर सांस लेना भी दूर्भर हो जाएगा। इसलिए स्त्रोतों को शोषण से बचाने के लिए पर्यावरण सुरक्षा एक बड़ी आवश्यकता हो गई है। आज

भौतिक मानव सभ्यता के विकास के नाम पर इतनी अधिक और बड़ी त्रुटियां कर चुका है जिनको सुधारने में अनेकों वर्ष लग जायेंगे। मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति और स्वार्थ प्रियता के कारण इतने वृक्ष काट दिये है जिनको पुनः लगाने और फल फूलने में बहुत वर्ष बीत जायेंगे। इसे देखते हुए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वातावरण सुरक्षा की प्रतिबद्धता की आवश्यकता महसूस की गई है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएं एवं संगठन आगे आये हैं। इन्होंने सरकार की प्रति बद्धता को प्रस्तुत किया जो इस प्रकार हैः–

अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर वचनबद्धता

1. *संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवीय वातावरण से संबंधित सम्मेलनः–* सन् 1972 में 5 जून से 6 जून तक स्टॉक में संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवीय वातावरण से संबंधित एक सम्मेलन हुआ। तभी से 5 जून को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया गया है। इस सम्मेलन में 119 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रत्येक मनुष्य को अधिक गुणवता वाले वातावरण में रहने का अधिकार है और इसे बचाने एवं सुधारने का उत्तरदायित्व भी प्रत्येक मनुष्य का है। वातावरण लोगों के रहन-सहन और आर्थिक विकास को प्रभावित करता है।
2. *नेरौबी सम्मेलन :* 1982 स्टॉकहोम सम्मेलन में तैयार घोषणा पत्र की 1982 मे नेरोबी अफ्रीका में समीक्षा की गई। इसमें भारत सहित 105 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में नवीन घोषणा-पत्र का निर्माण किया गया और पर्यावरण सरंक्षण के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए।
3. *रियो सम्मेलन 1992* **&** संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1992 में ब्राजील के रियो-डी जिनेरो नामक शहर में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में 170 देशों के राष्ट्रीय अध्यक्षों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में प्रदूषण, ओज़ोन परत क्षरण, ग्रीन हाऊस प्रभाव, जनसंख्या समस्या, निर्वनीकरण की समस्या इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई।
4. *क्योटो प्रोटोकाल 1997* ⅋ संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1947 में जापान के क्योटो नामक शहर में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें भी ग्लोबल वार्मिंग, हरित गैसों के उत्सर्जन के लिए उतरदायी गैसे एवं पर्यावरणीय असन्तुलन इत्यादि समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया था।
5. *जोहन्सबर्ग सम्मेलन 2002* ⅋ में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक अन्य अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में 172 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें पर्यावरण संबंधित कार्यक्रमों के विषय पर विचार किया गया।

6. *हैलीडोडम सम्मेलन 2007* : जर्मन में एक पाँच दिवसीय सममेलन का आयोजन किया गया। जिसमें विश्व के तापमान में हो रही वृद्धि के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय संकट पर चर्चा की गई। इस सम्मेलन में 2050 तक ग्रीन हाऊस गैसों की 50 प्रतिशत कटौती का निर्णय लिया गया[10]।

7. *सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन* : संयुक्त संघ के सतत् विकास सम्मेलन को रियो, 2012 के नाम से भी जाना जाता है। रियो + 20 पृथ्वी सम्मेलन 2012 विश्व समुदाय के पर्यावरण तथा आर्थिक उद्देश्यों संबंधित सतत् विकास पर तीसरा सम्मेलन ब्राजील के रियो डिजेनेरियो शहर में 13 से 22 जून 2012 को सम्पन्न हुआ। रियो + 20 पिछले 20 वर्षों में 1992 के पृथ्वी सम्मेलन के बाद हुई प्रगति को याद करने का सम्मेलन था जो 20 वर्ष बाद उसी शहर में हुआ।

8. *यू.एन. का जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन, 2015 :* इस सम्मेलन का उद्देश्य राज्यों तथा गैर-सरकारी संगठनों के संयुक्त प्रयास से सतत् विकास की संभावनाओं को सुनिश्चित करना तथा विकास और पर्यावरण संरक्षण के मध्य संतुलन बैठाना था। पर्यावरण विकास की दिशा में वैश्विक स्तर पर यह अब तक का सबसे बड़ा कदम कहा जा सकता है। इस सम्मेलन की प्रमुख उपलब्धि जलवायु परिवर्तन सम्मेलन पर सहमति तथा क्योटो प्रोटोकोल और पेरिस सहमति का आयोजन था।[11] इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक आयोजन एवं प्रयास महाद्वीपीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर भी सम्पन्न हुए है। जिनका उद्देश्य पर्यावरणीय संरक्षण एवं विकास रहा है। भारत तकरीबन सभी क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सक्रिय भूमिका निभाता रहा है। इस सम्मेलन में यू.एन.ओ. के सभी सदस्यों के साथ 197 पक्षों ने भाग लिया। सत्त विकास पर उच्च स्तरीय राजनीतिक मंच सत्त विकास हेतु एजेन्डा 2030 के क्रियान्वयन का यू.एन. का केन्द्रीय प्लेटफोर्म है, जो लोगों, ग्रह तथा सम्यलता हेतु एक एक्शन प्लान है[12]।

भारत सरकार की वचनबद्धता

1985 में पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय की स्थापना की गई। जिस का मुख्य दायित्व देश की झीलों और नदियों, जैव विविधता, वनों ओर वन्यजीवों सहित इसके प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पशु कल्याण और प्रदूषण का निवारण एवं उपशमन भी सुनिश्चित करने से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों को लागू करना है। इन नीतियों एवं कार्यक्रमों के लागू करने से सतत् विकास और जन कल्याण को बढ़ावा देने के सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित है। यह मन्त्रालय देश में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्याप्त

केन्द्र और पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के पालन के लिए नोडल ऐजेंसी की तरह कार्य करता है।[13]

भारतीय संविधान में पर्यावरण सुरक्षा हेतु पहले से व्यवस्था कर दी गई थी और अब तक 200 से भी अधिक कानून भारत में बनायें जा चुके हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48-ए के अनुसार पर्यावरण, वन जीवन, वनों की सुरक्षा सुनिश्चित करना राज्य सरकारों का कर्तव्य है और अनुच्छेद 51-ए के अुनसार पर्यावरण सुरक्षा हर भारतीय नागरिको के संविधान में दिये गये 10 मूल कर्तव्य में से एक है। एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (एफआईआर) 2001 एससी 1948 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि वाहनों के कारण दिल्ली में अत्यधिक वायु प्रदूषण होता है। जिससे मनुष्य के जीवन के अधिकार का हनन होता है। इसलिए निर्देश दिये गये है कि दिल्ली में सार्वजनिक वाहनों के सीएनजी से चलाए। चर्च ऑफ गार्ड इन *इण्डिया बनाम के.के. आर* मजेस्टिक को लेनी वेलफेयर एसो (एफआईआर 2000 एससी) 2773 याचिका में प्रदूषण पर न्यायालय ने सख्ती दिखाई और कहा कि ध्वनि प्रदूषण के कारण अनुच्छेद 21 में दिये गये अधिकार का उल्लघंन होता है।[14] भारत सरकार द्वारा इस दिशा में निम्नलिखित प्रावधान किए बनाये गये हैः–

1. *पानी बचाव और प्रदूषण नियन्त्रित अधिनियम 1974 (संशोधन 1988)* – जब से औद्योगीकरण और नगरीकरण का प्रचलन बढ़ा हैं। तब से पानी भी गति के साथ प्रदूषित होने लगा है। यह परिवर्तन का रूझान बहुत खतरनाक साबित हो रहा है। इस और भी प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रयास किये गये है। जो निम्न है– ओडिशा दरिया-प्रदूषण बचाव अधिनियम 1953, दरियाई बोर्ड अधिनियम 1956, महाराष्ट्र पानी प्रदूषण बचाव अधिनियम, मर्चेण्ट जहाज रानी अधिनियम 1970, संविधान की धारा 252 (1) के अधीन पानी अधिनियम लागू किया गया इसके अधीन-पानी में प्रदूषकों की मिलावट पानी की बनावट रासायनिक या जीव वैज्ञानिक गुणों में परिवर्तन। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सीवरेज, औद्योगिक विकास या कोई पानी की अन्य किसी भी प्रकार की मिलावट। किसी भी प्रकार का विकास जो पानी को सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये नुकसान देह बनाता है की और ध्यान दिलाया गया।
2. *केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (1988)*: – इस बोर्ड की नियुक्तियाँ करने में केन्द्रीय सरकार सक्षम होती है। इसका पूरे समय के लिए चैयरमैन वातावरण सुरक्षा विशेषज्ञ का अनुपालक होता है। इसमें पांच केन्द्र सरकार के अधिकारी होते हैं और पांच की राज्य सरकार के अधिकारी होते हैं। इसमें तीन सदस्य कृषि व्यापार, मछली पालन और उद्योग से सम्बन्धित दो प्रतिनिधि केन्द्र के अधीन चलती कम्पनियों का कार्पोरेशन में होते हैं। और एक पूरे समय के लिये सदस्य होता है। 1988 के संशोधन के अनुसार

इनका नाम केन्द्रीय नियन्त्रण बोर्ड रखा गया। केन्द्र के साथ-साथ सभी राज्यों में भी प्रदूषण नियन्त्रण बोर्डों का गठन किया गया है।

3. *वन जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972 (संशोधन 1991)* **&** वन जीवन प्रकृति जीवन अन्तर्गत आता है। जिसे मनुष्य ने निर्मित नहीं किया है। इसमें वन और वन जीवों को सम्मिलित किया जाता है। भू-वैज्ञानिक संतुलन के लिये भूमि क्षति रोकने के लिये आर्थिक विकास, नस्ल सुधार, चारे, दवाइयों हेतु वन जीवन आवश्यक है। वन जीवन की सुरक्षा हेतु प्रारम्भ से ही बहुत प्रयत्न किये गये जिनका विवरण निम्न है। 1873 में मद्रास वन में हाथी संभाल अधिनियम। सर्व भारतीय हाथी संभाल अधिनियम (1879)। वन पक्षी और पशु सुरक्षा अधिनियम (1912) बंगाल का गैण्डा संभाल अधिनियम (1932)। आसाम गैस संभाल अधिनियम 1954 के अधीन 1954 प्रबन्धन ढांचे में परिवर्तन करने के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। बाद में चलकर विभाग वातावरण और वन मंत्रालय में परिवर्तित हो गया।

4. *फैक्टरी अधिनियम (संशोधन 1987)* **&** भारतीय संविधान सैक्शन 12 के अन्तर्गत उद्योगपतियों को यह निर्देश दिए गए हैं कि वे फालतू बचत के निपटाने के लिए सार्थक एवं सशक्त प्रबन्ध करें। ऐसे उद्योग को यह सुनिश्चित करने के भी निर्देश दिये गये है कि ऐसे उद्योग आवास स्थान से पर्याप्त रूप से दूर हो। इसमें निकासी पदार्थों की सीमा बहुत सीमित हो जिससे प्रदूषण न हो सके। इस एक्ट में यह भी नियंत्रण जांच हो इस अधिनियम से उद्योगों की फालतू बचत से प्रदूषण में भी कमी आई।

5. *वन सुरक्षा अधिनियम 1980 (संशोधन 1988)* **&** 1894 में एक वन नीति बनाई गई जिसकों 1952 में, फिर से 1988 में संशोधित किया गया। भारतीय वन दिवस, 1927 को लागू हुआ जिसे 1930, 1933 और 1948 में संशोधित किया गया। यह संशोधन वही आगे चलकर सुरक्षा अधिनियम में परिवर्तित हुआ। वन धरती को गैर-वन मनोरथ में जिसमें रबड़ वृक्षों की खेती, बांस, दवाई, युक्त पौधे, मसाले, चाय, कॉफी आ जाते हैं। जिन्हें केन्द्र सरकार की मंजूरी के बिना नहीं बदला जा सकता।

6. *हवा बचाव और प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड अधिनियम 1981 (संशोधन 1987)* – *बंगाल समोक न्यूएसैंस एक्ट 1905, बॉम्बे स्मोक न्यूएसैंस एक्ट 1912* और *गुजरात स्मोक न्यूएसैंस एक्ट 1963* के कारण यह अधिनियम लागू हुआ। संविधान की धारा 253 के अन्तर्गत हवा प्रदूषण रोकने और बढ़ाने के लिये एक्ट लागू हुआ।

7. *वातावरण बचाओं अधिनियम (1986)* – यह अधिनियम वातावरण और वातावरण के सुधार से संबंधित है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पानी, हवा,

भूमि और इनसे संबंधित सभी मामले आते हैं, जो धरती पर बसने वाले जीवों के प्रसंग में महत्व रखते हैं। इस अधिनियम में प्रदूषण को ऐसे परिभाषित किया गया हैं कि वातावरण में गैस, तरल अथवा ठोस का मिश्रण बढ़ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, बचाने व कम करने के लिए योजना बनाना और फिर उसे लागू करना। इसके अन्तर्गत विभिन्न अधिकारियों के मध्य तालमेल पैदा करना है। पर्यावरण को बचाने, प्रदूषण को रोकने और कम करने के लिए आवश्यक नियम बनाना आदि है।[15]

8. *जैव -विविधता संरक्षण अधिनियम (2002)* **&** भारत विश्व में जैव विविधता के स्तर पर 12वें स्थान पर आता है। अकेले भारत में लगभग 45000 पेड़ पौधे व 981000 जानवरों की प्रजातियां पाई जाती है। जो विश्व की लगभग 7.1 प्रतिशत वनस्पतियों तथा 6.5 प्रतिशत जानवरों की प्रजातियों में से है। जैव-विविधता संरक्षण कानून 2002 में एक राष्ट्रीय जैव विविधता सरंक्षण क्रियान्वन योजना से शुरू किया गया जिसमें गैर सरकारी संगठन, विज्ञानिकों, पर्यावारण तथा आम जनता को भी शामिल किया गया। इसमें जैविक विविधता की रक्षा की व्यवस्था की जाये। इस अधिनियम में राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधिता प्राधिकरण बनाने का प्रावधान है राज्य जैव विविधता बोर्ड स्थापित करने तथा स्थानीय स्तरों पर समितियाँ बनाने का भी प्रावधान है ताकि इस कानून को सही तरीके से लागू किया जा सके।

9. *राष्ट्रीय जल नीति (2002)* – 21वीं सदी में जल के महत्व को स्वीकारते हुए जल संसाधनों, विकास और प्रावधान के साथ ही इसके सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करते हुए जल संसाधन परिषद ने 1 अप्रैल 2002 को राष्ट्रीय जल नीति पारित की।

10. *राष्ट्रीय पर्यावरण नीति (2004)* **&** पर्यावरण तथा वन मन्त्रालय ने दिसम्बर 2004 में राष्ट्रीय नीति 2004 का ड्राफ्ट जारी किया है इसमें वर्तमान पर्यावरणीय नियमों तथा कानूनों को वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में संसाधनों की आवश्यकता को भी दर्शाया गया है।

11. *वन अधिकार अधिनियम (2006)* **&** वन संबंधी नियमों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो 18 दिसम्बर 2006 को पास हुआ यह कानून जगलों में रह रहे लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुटा हुआ है। इसके उद्देश्य वन सरंक्षण है वहीं दूसरी ओर जंगल में रहने वाले लोगों और उनके साथ हुए अन्याय की भरपाई का भी है।[16]

ऊपर दिये गये प्रावधानों के एलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण नीतियां भी बनाई गईं। 2007 में नेशनल पॉलिसी फॉर फॉरमर्स का उल्लेख करना भी जरूरी है। जिसके

तहत जलवायु परिवर्तन के अनुसार खेती करना एवं भूमि एवं जल के प्रयोग तथा सूखे एवं बाढ़ से निपटने की रणनीतियों को प्राथमिकता दी गई। वह 2008 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में भारत सरकार द्वारा 30 जून 2008 को जारी आठ सूत्री ऐक्शन प्लान है जिसमें 2017 तक मिशन स्तर पर लक्ष्यों की प्राप्ति का संकल्प किया गया। *नेशनल सोलर एनर्जी, नेशनल मिशन फॉर एन्हांस्ड एनर्जी एफिसियेसी, नेशनल मिशन ऑन सस्टेनेबले हैबिटैट, नेशनल वाटर मिशन, ससटेनिंग हिमालय इको सिस्टम, नेशनल मिशन फार ग्रीन इण्डिया और नेशनल मिशन फॉर संस्टेनेबल एग्रीकल्चर, आदि नीतियां बनाई गई*[17] और भारत यूरोपीय संघ पर्यावरण फोरम आठवां नई दिल्ली में 30 जून 2017 को आयोजित किया गया अब तक भारत में जैव विविधत से संबंधित बॉन, जर्मनी में 6 से 10 मार्च, 2017, दि नाग में 4 जुलाई 2017, अल्माटी, काजिस्तान में से 25-27, अप्रैल 2017, यूरेशिया पैसिफिक के लिए तृतीय बायोफिन क्षेत्रीय कार्यशाला व 6 जुलाई 2017 सियोला मे आयोजित नागोया प्रोटोकोल संगोष्ठी आदि सम्मेलनों में भारत शामिल हुआ और भारत विश्व पर्यावरण दिवस 2018 के आयोजन के लिये वैश्विक आयोजक है। विश्व पर्यावरण 2018 के लिये थीम प्लास्टिक प्रदूषण था और विश्व प्रदूषण दिवस पर्यावरण संबंधी मुद्दों को मानवीय चेहरा प्रदान करना इस का प्रमुख उद्देश्य है।[18]

निष्कर्ष एवं सुझाव

अन्तः निःसन्देह पर्यावरण विकास एवं नियामकीय संस्थाओं की भूमिका काफी हद तक एक दूसरे को प्रभावित करती है और भारत भी इसका अपवाद नही है। नियामकीय संस्थाओं का प्रमुख दायित्व पर्यावरण संरक्षण एवं विकास रहता है। हमें विकास के विभिन्न प्रकारों में सबसे अच्छे का चयन करना होगा ताकि पर्यावरण में गुणवत्ता आ सके। आर्थिक सहयोग भी इस दिशा में आवश्यक हैं। सभी राष्ट्र मिलकर अच्छा साफ पर्यावरण प्रबन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास करे ताकि पर्यावरण को बचाया जा सके। पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण हेतु जनसहभागिता एक आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता है। इसके लिए पर्यावरण चेतना कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए। किसी भी क्षेत्र में पर्यावरण विकास के निर्णयों की परिकल्पना आवश्यक होती है। आज पर्यावरण संरक्षण एवं नियन्त्रण हेतु पर्यावरण कानून एवं नियमों का निर्माण किया जा रहा है। किन्तु बहुत से नियम या इनके पालन की रीतियां एवं नीतियां निहित है स्वार्थों के कारण ये अपनाई नहीं जाती। जैसे पराली या फसलों के अवशेषों आदि को जलाना मना हैं फिर भी लोग इस नियम का पालन नहीं करते। हरियाणा, पंजाब व उत्तर प्रदेश इन राज्यों के गेहूँ, धान व अन्य फसलों के अवशेष (फान्नो) प्रबन्ध के लिए केन्द्र सरकार ने 1100 करोड़ रुपये देने की घोषणा की है और इसके लिए 20 से 25 लाख रुपये लागत से कस्टम हांयरिग सेंटर

स्थापित भी किया जाऐगा।[19] हरियाणा में पर्यावरण अदालतों (कुरूक्षेत्र व फरीदाबाद) ने पिछले एक वर्ष में (जनवरी, 2017 से फरवरी, 2018) 210 मामलों की सुनवाई करते हुए दोषियों से जुर्माना एवं सजा के अतिरिक्त 50,000 पौधे भी लगवाएं है। हालांकि कानून में इस तरह का कोई प्रावधान नही है फिर भी श्री अनिल कौशिक, विशेष जज, पर्यावरण कोर्ट, कुरूक्षेत्र ने इसे अपना मिशन बना लिया है और हर मामले में जमानत देने के लिए 51 पौधे लगाने व उनकी छह माह तक देखभाल की शर्त रहती है। इस प्रकार पर्यावरण अदालत की अनूठी पहल प्रदेश के पर्यावरण विकास हेतु एक प्रभावी सकारात्मक कदम कहा जा सकता है। पौधे लगाने वाले को प्लांटेशन रिपोर्ट देनी होती है जिसकी फ्रॉस चेकिंग जज साहिब वन विभाग से करवाते हैं।[20] ऐसे प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर करने होंगे। घरों को धुंए और केरोसिन से मुक्त करने हेतु केन्द्र सरकार की प्रधानमन्त्री उज्जवला योजना (01.05.2015 से) के तहत हरियाणा प्रदेश में चार लाख गैस के कनैक्शन सस्ती दरों पर कमजोर परिवारों को दिए गए हैं जिनमें से 2.50 उपभोक्ता ही रिफिल को रूटीन में भरवा रहे हैं। 31 मार्च 2017 तक इस योजना के तहत उपभोक्ताओं की संख्या 2,78,751 हो गई जो 30 मई 2018 को 4, 04, 052 हो गई। देश भर में 23 मार्च 2018 तक ऐसे गरीब परिवारों की महिलाओं को 3.51 करोड़ नए गैसे (रसोई) कनैक्शन दिए। इनमें से क्रमशः 30.5 प्रतिशत एवं 13.3 प्रतिशत एस.सी. एवं एस.टी. महिलाओं को दिए हैं। सरकार चाहती है कि अगले चार वर्षों (2016-20) में ऐसे आठ करोड़ गैस कनैक्शन बांटे जायें और इस हेतु 1,28,000 करोड़ रूपये के बजट का भी प्रावधान किया गया है।[21] इससे न केवल प्रदूषण समाप्त होगा बल्कि वनों की अंधाधुंध कटाई भी रूकेगी। जो लोग इन नियमों का पालन नहीं करते, वह भी पर्यावरण के लिये बड़ी चुनौती है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली के हजारों कारखानों को उनके मालिकों के विरोध के बावजूद दिल्ली से बाहर स्थानांतरित करवाया है। जिसका मुख्य कारण विकास और पर्यावरण में साम्य बैठाना है। पर्यावरण और विकास के संबंध में नीति बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पर्यावरण की समस्याएं मूलतः स्थानीय है। अतः नियम कानून निचले स्तर पर निर्मित किये जाने चाहिए। इसी प्रकार सिरसा एवं हिसार जैसे शहरों में भी औद्योगीकरण के चलते साल भर में 300 से 400 पेड़ों की कटाई हो रही है और बदले में शायद ही कोई नया पौधा लग रहा है। नेशनल हाईवे न. 9 के विस्तारीकरण में ही रोहतक से डबवाली तक 40 हजार बड़े पेड़ काटे गये।[22]

देश के अन्य भाग इसका आपवाद नहीं हैं। सड़कों के विस्तारीकरण के दौरान दोनों तरफ के बड़े-बड़े पेड़ काट दिए जाते हैं जबकि प्रयास दोनों और के पेड़ों को बचाने का रहना चाहिए और ऐसा प्रचलित सड़क के साथ एक दूसरी नई सड़क बना कर किया जा सकता है। प्रदूषण नियन्त्रण हेतु चरणबद्ध दीर्घकालिक कार्यक्रम तैयार

किए जाने चाहिए। सबसे पहले जो उद्योग धंधे एवं प्रतिष्ठान ज्यादा प्रदूषण फैलाते हैं उन पर कार्यवाही की जानी चाहिए और पर्यावरण संबंधी जानकारी निरन्तर मीडिया के माध्यम से प्रचारित की जानी चाहिए ताकि लोगों को जागरूक किया जा सके। इसके साथ प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र में प्रदूषण स्तर का निरन्तर माप होना भी अति आवश्यक है न्यूनतम पर्यावरण क्षति के साथ अधिकतम विकास के तत्व की नीति का निर्माण किया जाना चाहिए और पर्यावरण को भी उत्पादन का एक साधन माना जाना चाहिए। अतः हम सब का कर्तव्य बनता है कि हम पर्यावरण को साफ सुथरा रखे ताकि हमारा आने वाला कल खुशियों भरा हो। सतत् विकास के मॉडल को अपनाने की आवश्यकता है। तीन आर. यानी रिडूस, रिचार्ज एवं रिसाईकल के सिद्वान्तों पर कार्य करने की जरूरत है। पर्यावरण को बचाने के लिए अधिक-से-अधिक पेड़-पौधे लगाएं और कम-से-कम रासायनिक दवाओं का इस्तेमाल करना चाहिए ताकि हमारा पर्यावरण साफ रह सके। नियामकीय संस्थाओं की सक्रिय भूमिका से ही पर्यावरण विकास संभव हो सकता है, इसमें कोई दोराय नहीं है।

सन्दर्भ सूची

1. दैनिक ट्रिब्यून, हिसार 08 जून 2018, पृ.1
2. www.environment.com 2018.
3. जय दयाल कालड़ा, सरोज सोबती और बलजीत सिंह, पर्यावरण शिक्षा, 215 सेंचुरी पब्लिकेशन्स, पटियाला, 2008, पृ. 3
4. www.development.com
5. www.environment/wikipedia.com
6. के.सी. जैन एण्ड साहिल जैन, पर्यावरण शिक्षा, विजय पब्लिशिंग, लुधियाना, 2016, पृ. 112–114
7. दैनिक भास्कर, हिसार, 16 जून 2018, पृ.1
8. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर.बी.एस.ए., पब्लिशिंग, जयपुर, 2007, पृ.198–202
9. www.ngt.wikipedia.com
10. न.3, पृ.28–29
11. 'world conferences introduction', www.un.org, 28 April 2018
12. 'UN Conference on Environment Development: Agenda 21', habitat.igc.org http google 29 June 2018
13. www.env.for.nic.com
14. www.env.com
15. न.6, पृ.114–137
16. www.env.com

17. रविन्द्र कुमार वर्मा, ''पर्यावरणीय राजनीति : भारत के संदर्भ में एक अध्ययन'', भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, वर्ष 8, अंक 1, जनवरी-जून, नई दिल्ली, 2016, पृ. 53-59
18. पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मन्त्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, 2017-18, भारत सरकार, नई दिल्ली
19. दैनिक जागरण, हिसार, 18 मई, 2018, पृ.2
20. दैनिक भास्कर, हिसार, 25 जून, 2018, पृ.1
21. दैनिक भास्कर, हिसार, 25 जून, 2018, पृ.4
22. दैनिक जागरण, हिसार, 22 मई, 2018, पृ.13

पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिका

नूर फातिमा अंसारी

Ikjk'k विकास से आशय है सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र को अत्यधिक विस्तृत एवं बेहतर बनाने की, विकसित होने या करने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में जीवन के हर पहलू को उन्नत या विकसित करने से है। परन्तु औद्योगीकरण एवं तीव्र विकास की प्रतियोगिता ने इस आशय को केवल आर्थिक पक्षों को अपने अन्दर समाहित किया। औद्योगीकरण एवं तीव्र विकास की अंधी दौड़ में पर्यावरण को हमेशा बिन सोचे-समझे बेरहमी से शोषण किया। धीरे-धीरे मानव जाति इन भयंकर परिणामों का सामना कर रही है। इसके दुष्परिणाम के रूप में बढ़ता तापमान, बढ़ता समुद्र जल स्तर, असामयिक मौसम परिवर्तन, खाद्य असुरक्षा, जलाभाव, ओज़ोन परत का क्षरण, बाढ़ तथा सूखे की समस्या, भू-स्खलन, चक्रवात की बढ़ती कठोरता, ग्लेशियरों का पिघलना इत्यादि है। सतत् विकास विश्व की प्राकृतिक संसाधनों की सीमा के भीतर रहकर संपोषणीयता पर सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकीय प्रगति और क्षमता पर ध्यान केन्द्रित करने तथा इन तत्वों को अन्तर्सम्बन्धित करने की मांग करता है। पृथ्वी के तापमान में वृद्धि से होने वाले दुष्प्रभावों में मौसम चक्र में परिवर्तन होने, जल के तापीय प्रसार और हिमखण्डों के पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ने, अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आने, सूखा पड़ने और रेगिस्तानीकरण की प्रक्रिया तेज होने आदि को गिनाया जाता रहा है। लेकिन वैज्ञानिकों के अनुसार इससे जलवायु में पूरी तरह बदलाव का खतरा भी पैदा हो रहा है, जो धरती के जीवों और वनस्पतियों के जीवन में भी परिवर्तन ला देगा। इस कारण बहुत सी प्रजातियों के लुप्त होने का भी अनुमान है। निष्कर्षतः अब समय आ गया है, जबकि हम आगे होने वाली क्षति को न केवल रोके, बल्कि उसमें निरन्तर कमी करते चले जाएं। हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे यहाँ पर्यावरण सन्तुलन की व्यवस्था न के बराबर हैं। वस्तुस्थिति यह है कि उदारवादी नीतियों ने संकट को और भी गम्भीर बनाया है। पर्यावरण संरक्षण का दायित्व केवल सरकार अथवा कानून व्यवस्था पर ही नहीं है बल्कि हम सब पर भी है।

''प्रकृति में सभी व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने की पूरी ताकत है, लेकिन इसमें एक व्यक्ति के भी लालच के लिए कोई स्थान नहीं है''।

– महात्मा गांधी

प्रस्तावना

जिस समय हम 21वीं सदी में जाने की धूमधाम से तैयारी कर रहे थे तो दुर्भाग्यवश हम शायद एक अस्वस्थ सदी की अगवानी करने को भी मजबूर थे। विकास को गलत परिभाषित करना ही आज पर्यावरण संकट का कारण बन गया है, जिस कारण वर्तमान में मानव सभ्यता के सम्मुख पर्यावरण प्रदषण का गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है। जल, जमीन, जंगल, वायु, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया है जहाँ प्रदूषण का खतरा महसूस नहीं किया जा रहा है।

'परि' और 'आवरण' शब्दों की संधि करने पर 'पर्यावरण' शब्द बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ है – जो परितः (चारों ओर) आवृत (ढके हुए) है। अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसे आवृत किए हुए है इसका उत्तर है – समस्त जीवधारियों को अजैविक या भौतिक पदार्थ घेरे हुए हैं। अर्थात् हम जीवधारियों तथा वनस्पतियों के चारों ओर जो आवरण है, उसे पर्यावरण कहते हैं।

भारतीय संविधान और पर्यावरण

भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान हैं। भारतीय संविधान की उद्देशिका में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के बारे में कुछ नहीं किया गया है तथापि जिस समाजवादी राज्य की परिकल्पना की गई है, वह तभी सम्भव है जब सभी का जीवन स्तर ऊँचा हो। यह सत्य है कि सभी का जीवन स्तर केवल स्वच्छ पर्यावरण अर्थात् प्रदूषण रहित पर्यावरण में ही सम्भव है। अनुच्छेद 51-क खण्ड (छ) स्पष्ट रूप से पर्यावरण संरक्षण का उपबन्ध करता है। इसके अनुसार – ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखें''।

पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ होता है– मात्र मनुष्य के कार्यों द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास। पर्यावरण को जो एक शब्द सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचा रहा है वह है 'विकास'। अपने आपमें यह निगरानी करने लायक शब्द है। हिन्दी के पुराने ग्रन्थों को देखें तो शायद ही कहीं यह शब्द मिल पाये। गांधी के समूचे वाङ्मय को देखें तो कहीं 'विकास' शब्द का इस्तेमाल नहीं दिखेगा और अगर

कहीं यह शब्द मिल भी जाए तो वहाँ यह अपने वर्तमान अर्थों में नहीं होगा।

पर्यावरण की चिन्ता भारतीय समाज में तथ्यात्मक है। हम औद्योगीकरण भी जारी रखना चाहते हैं और पर्यावरण भी सही रखना चाहते हैं। क्या ये दोनों बातें एक साथ सम्भव हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। पर्यावरण लगातार बिगड़ रहा है। जनसामान्य की परम्परागत सोच अभी तक जितनी बदलनी चाहिए थी उतनी बदली नहीं है। आज की स्थिति यह है कि प्रदूषण पृथ्वी पर पर्यावरण के विनाश का कारण बनकर उभर रहा है, जिसे भौतिकतावादी विकास की अंधी दौड़ के साथ-साथ आधुनिक राजनीतिक स्वार्थ और इस स्वार्थ में उपजी सौदेबाजी भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। फिर इसे रोकने की चिन्ता क्यों बढ़ रही है? इस आकस्मिक प्रश्न पर आज सामान्यतः सम्पूर्ण मानवता को मिल-बैठकर विचार करना चाहिए क्योंकि पर्यावरण की समस्या समूचे विश्व की समस्या है।

प्रदूषण के प्रकार

प्रदूषण अनेक कारणों से होता है और इस आधार पर पर्यावरण प्रदूषण को अधोलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1- **ok;q-inw"k.k** – वायुमण्डल पृथ्वी का कवच है तथा भूतल की समस्त प्राकृतिक एवं मानवीय घटनाओं का कारण है। हमारे वायुमण्डल में विभिन्न गैसें एक निश्चित अनुपात में पायी जाती हैं, जैसे नाइट्रोजन (78.09ः), ऑक्सीजन (20.95ः) आर्गन (0.93ः) तथा कार्बन डाईऑक्साइड (0.03ः) आदि प्रमुख गैसें उपस्थित हैं। इसके अलावा जल.वाष्प, हाइड्रोजन, हीलियम, ओजोन, क्रिप्टॉन, नियॉन तथा जेनॉन आदि निष्क्रिय गैसें पायी जाती हैं। जब मानवीय अथवा प्राकृतिक कारणों से गैसों की निश्चित मात्रा एवं अनुपात में अवांछनीय परिवर्तन हो जाता है या वायु में इन गैसों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषाक्त गैसें या कणिकीय पदार्थ मिल जाते हैं तो उसे वायु प्रदूषण कहते हैं। वायु प्रदूषण के दो स्रोत हैं – प्राकृतिक तथा मानवजनित। अन्यान्य प्राकृतिक घटनाएं, ज्वालामुखी विस्फोट, वनाग्नि, वनस्पतियों की दैहिक क्रियाओं, महासागरीय जीव.जन्तुओं आदि से विभिन्न प्रकार की गैसें निर्मित होती हैं। यह वायु प्रदूषण का प्राकृतिक स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थों को जलाने से उत्पन्न धुआं, वाहनों से उत्सर्जित धुआँ वायु प्रदूषण के मानवजनित कारक हैं।

2- **ty-inw"k.k** – जल जीव मण्डल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यौगिक है, क्योंकि एक तरफ तो यह सभी प्रकार के जीवों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक पदार्थ है, तो दूसरी तरफ यह जीव मण्डल में पोषक तत्वों के संचरण तथा चक्रण में सहायता करता है। विभिन्न स्रोतों एवं भण्डारों के

जल के भौतिक, रासायनिक तथा जीवीय विशेषताओं में प्राकृतिक तथा मानव.जनित प्रक्रियाओं एवं कारणों से उस सीमा तक अवनयन या गिरावट को जल प्रदूषण कहते हैं कि इस तरह प्रदूषित जल मनुष्य समुदाय, जन्तु एवं पादप समुदायों के लिए अनुपयुक्त तथा हानिकारक हो जाता है। औद्योगिक अपशिष्ट जल, रासायनिक प्रदूषक, जैसे – क्लोराइड, सल्फाइड, कार्बोनेट, अमोनिकल नाइट्रोजन, नाइट्राइट्स, नाइट्रेट्रास आदि। भारी धात्विक पदार्थ, जैसे – पारा, सीसा, जस्ता, तांबा, कार्बनिक रासायनिक यौगिक, रेडियोएक्टिव अपशिष्ट आदि जल प्रदूषण के मुख्य कारक हैं।

3- enk- in"k.k – प्राकृतिक स्रोतों या मानवजनित स्रोतों अथवा दोनों स्रोतों से मृदा की गुणवत्ता में ह्रास को मृदा प्रदूषण कहते हैं। जल वर्षा की तीव्रता एवं परिमाण, तापान्तर की विविधता, हवा की दिशा की अनिश्चितता, रौल संरचना, वानस्पतिक आवरण की विषमता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मिट्टी को प्रभावित करते हैं। ज्वालामुखियों, कारखानों की चिमनियों, तापशक्ति संयंत्रों तथा घरेलू स्रोतों से वायुमण्डल में प्रदूषकों का उत्सर्जन होता है। इन प्रदूषकों का बाद में धरातलीय सतह पर अवपात होता है तथा ये विषाक्त प्रदूषक मिट्टी में पहुँचकर उसे प्रदूषित कर देते हैं। अम्ल वर्षा के कारण मिट्टी में अम्लता की अधिकता हो जाती है मिट्टी में अम्लता की अधिक मात्रा का सान्द्रण फसलों के लिए हानिकारक होता है।

4- /ofu- in"k.k – किसी भी वस्तु से जनित सामान्य आवाज को ध्वनि कहते हैं। जब ध्वनि की तीव्रता अधिक हो जाती है उसे शोर कहते हैं। इस प्रकार उच्च तीव्रता वाली ध्वनि अर्थात् अवांछित शोर के कारण मानव वर्ग में उत्पन्न अशान्ति एवं बेचैनी की दशा को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। मनुष्य के कान 20 हर्ट्ज से 20,000 हर्ट्ज तक की तरंगों को सुन सकते हैं। इसे मनुष्य का श्रव्य परास कहते हैं। श्रव्य परास से अधिक आवृत्ति की तरंगों को पराश्रव्य तरंगे कहते हैं। वाहनों से उत्पन्न तेज ध्वनि, विशेषतः हॉर्न की आवाज, बाज़ार, सिनेमा गृह, उत्सवों में बजने वाला तेज संगीत व आतिशबाजी, दूरदर्शन, ज्वालामुखी विस्फोट, परमाणु परीक्षण, युद्ध के समय बम विस्फोट, डायनामाइट से चट्टानों को उड़ाने की क्रियाएँ ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करती हैं। लाउडस्पीकर तथा यातायात का शोर भारतीय नगरों में सबसे अधिक ध्वनि-प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

5- jfM;ks/keh- in"k.k– रेडियो एक्टिव पदार्थों के विकिरण से जनित प्रदूषण 'रेडियोधर्मी प्रदूषण' कहलाता है। इन पदार्थों से स्वतः रेडियोधर्मी विकिरण निकलता रहता है जैसे– थोरियम, प्लूटोनियम, यूरेनियम आदि। ज्ञातव्य है

कि रेडियोधर्मी प्रदूषण मापन की इकाई 'रोन्टजन' है इसे 'रैम' भी कहा जाता है। 20 मिली रैम तक का विकिरण जीवधारियों को कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचाता है, किन्तु इससे अधिक का विकिरण जीवधारियों के लिए घातक होता है। इस प्रकार का प्रदूषण मुख्यतः परमाणु रिएक्टरों से होने वाले रिसाव, नाभिकीय प्रयोग, औषधि विज्ञान, रेडियोधर्मी पदार्थों के उत्खनन, रेडियोधर्मी व्यर्थ पदार्थों के निस्तारण तथा परमाणु बम के विस्फोट द्वारा होता है।

पर्यावरण असन्तुलन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन और मौसम के बिगड़ते मिजाज़ को लेकर विश्व भर के पर्यावरणविद् अपनी चिन्ता प्रकट कर रहे हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि इन परिवर्तनों में वास्तविक धरातल पर कोई बड़ा बदलाव न दिखाई देने के कारण यह चिन्ता और भी गहराती जा रही है। पर्यावरण में हो रहे इन परिवर्तनों के कारण एक ओर जहाँ सभी देशों की आर्थिक समृद्धि प्रभावित हो रही है, वहीं अन्न-जल का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। हम जैसे-जैसे आधुनिकता की गिरफ्त में आते जा रहे हैं, वैसे-वैसे दुनिया भर में लोगों का भोजन और उसे प्राप्त करने की परम्पराएँ बदल रही हैं। हालात यदि यही रहेंगे और दुनिया पर्यावरण संरक्षण को लेकर सार्वजनिक व निजी स्तर पर सचेत नहीं होगी, तो आने वाले समय में 30-40 फीसदी प्राकृतिक सम्पदा का चेहरा बदल जाएगा या ये चीज़ें दुनिया से लुप्त हो जाएंगी।

भारत द्वारा किए गए प्रयास

पर्यावरण असंतुलन से निपटने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक सरकारी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं –

1- **gfj;kyh ifj;kstuk** – केन्द्र सरकार की दो हजार करोड़ रुपये की लागत वाली जल संग्रहण से सम्बन्धित विकास योजनाओं की महत्वाकांक्षी बहुआयामी हरियाली परियोजनाओं का शुभारम्भ 27 जनवरी 2003 को किया गया था। ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन इस परियोजना को देश की 2.32 लाख पंचायतों के जरिए चलाया जा रहा है। जल संरक्षण के अतिरिक्त और भी अनेक कार्यक्रम इस परियोजना के तहत सम्पन्न किए जा रहे हैं। परियोजना के तहत् ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। सौ वृक्ष लगाने वाले व्यक्ति को वनरक्षक के रूप में नियुक्त कर पंचायत के माध्यम से सौ रूपये प्रतिमाह का पारितोषिक उसे प्रदान किया जाएगा।

हरियाली परियोजना के उद्देश्य निम्न हैं –

- जल संग्रहण योजनाओं का क्रियान्वयन
- वर्षा का जल संचयन

- पेयजल समस्या का निवारण
- सिंचाई हेतु जल की व्यवस्था
- वृक्षारोपण तथा मत्स्यपालन को प्रोत्साहन

हरियाली परियोजना से अब गाँव अधिक आत्मनिर्भर होंगे। गाँवों का आर्थिक विकास होगा। ग्रामवासियों को गाँव में रोजगार की प्राप्ति होगी।

2- l[kk vk'kfdr {k= dk;Øe – सूखे की संभावना वाले चुनिन्दा क्षेत्रों में यह राष्ट्रीय कार्यक्रम 1973 में प्रारम्भ किया गया था। कार्यक्रम का उद्देश्य इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम विकास करके पर्यावरण सन्तुलन को बहाल करना है।

1 अप्रैल, 1995 से यह कार्यक्रम जलसंभर विकास के लिए तय किए गए साझा दिशा-निर्देशों के तहत क्रियान्वित किया जा रहा है। कार्यक्रम हेतु वित्त की व्यवस्था केन्द्र व सम्बन्धित राज्य द्वारा 1 अप्रैल, 1999 से 75:25 के अनुपात में की जाती है। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मन्त्रालय द्वारा चलाया जा रहा है।

3- e:Hkfe fodkl dk;Øe – मरूभूमि को बढ़ने से रोकने, मरुभूमि में सूखे के प्रभावों को समाप्त करने, प्रभावित क्षेत्रों में पारिस्थितिकीय सन्तुलन बहाल करने व इन क्षेत्रों में भूमि की उत्पादकता तथा जल संसाधनों को बढ़ाने के उद्देश्य से मरूस्थल विकास कार्यक्रम चुने हुए क्षेत्रों में 1977-78 में प्रारम्भ किया गया था। यह कार्यक्रम शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर कार्यान्वित किया जा रहा है। तथापि गर्म शुष्क क्षेत्रों में निधियों का विभाजन केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 75:25 के आधार पर किया जाता है। यह कार्यक्रम अब देश के 7 राज्यों के 4.58 लाख वर्ग किमी. क्षेत्रफल व 40 जिलों के 235 ब्लॉकों में चलाया जा रहा है।

4- tyok;q ifjorZu ij jk"Vªh; dk;Z ;kstuk – तत्कालीन प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 30 जून, 2008 को नई दिल्ली में जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना में निर्वाह योग्य विकास के भारत के दृष्टिकोण और उन कदमों को शामिल किया गया है जो इसे प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिए उठाना चाहिए।

5- E;qfufliy Bksl vif'k"V ls fo|qr mRiknu dk;Øe – यह कार्यक्रम नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मन्त्रालय द्वारा जनवरी, 2008 से शुरू किया गया है। इसके मुख्य तत्व अधोलिखित हैं। यथा –

- म्युनिसिपल ठोस अपशिष्ट से समेकित पद्धति द्वारा विद्युत उत्पादन।

- प्रारम्भिक चरण में कुल 5 परियोजनाएँ ली जानी हैं।
- परियोजनाएँ सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पी.पी.पी.) पद्धति में आरम्भ की जा रही हैं।
- वित्तीय सहायता दो करोड़ प्रति मेगावाट की दर पर अथवा परियोजना लागत का 20: जो भी कम हो, पर अधिकतम 10 करोड़ रूपये तक प्रति परियोजना देय है।
- परियोजना विकास सहायता अधिकतम 10 लाख रूपये प्रति परियोजना का परियोजना लागत की 50: राशि, जो भी कम हो, देय होता है।

6- ch0,l0&4 ekud – देश के चार महानगरों सहित 13 शहरों में 1 अप्रैल, 2010 से उच्च पर्यावरण मानकों वाले बी.एस.-4 (यूरो-4) पेट्रोलियम ईंधन का उपयोग अनिवार्य बना दिया गया। ये शहर थे – दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, बेंगलुरू, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, सूरत, कानपुर, आगरा, लखनऊ और शोलापुर। इन तेरह शहरों में प्रदूषण नियन्त्रण उपाय के तहत 1 अप्रैल 2010 से भारत मानक-3 (बी.एस.-3) के स्थान पर भारत मानक-4 (बी.एस.-4) श्रेणी का कम सल्फर वाला वाहन ईंधन बिक रहा है। विदेशों में इसे यूरो-4 नाम दिया गया है। देश के 13 शहरों को छोड़कर बाकी सभी शहरों में बी.एस.-3 मानक वाले ईंधन का इस्तेमाल हो रहा है। बी.एस.-4 ईंधन के इस्तेमाल से वाहन से कार्बन उत्सर्जन पर्यावरण के लिहाज से स्वीकार्य सीमा में रहता है।

of'od Lrj ij i;kl – पिछले चार दशकों के दौरान यू.एन. के नेतृत्व में बहुत सारी वैश्विक समस्याओं में पर्यावरण और सतत् विकास प्रमुख वैश्विक समस्या रहा है, जिसके लिए प्रत्येक दशक के अन्तराल पर प्रमुख रूप से चार प्रयास किये गये हैं –

1. *यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेस ऑन ह्यूमन इन्वायरनमेण्ट (स्टॉक होम–1972)* – इसमें निर्णय की मुख्य तीन सूचियों को उत्पन्न किया गया – *पहला*, स्टॉक होम घोषणा पत्र, *दूसरा*, योजना। इसने सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिए पर्यावरण विनाश के विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय मानक तथा 109 मानदण्डों की सिफारिश की और *तीसरा* पाँच प्रस्ताव न्यूक्लियर हथियारों के परीक्षण पर प्रतिबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय डाटा बैंक का निर्माण, विकास और पर्यावरण को सम्बन्धित करने के लिए कदम उठाने का आह्वान, पर्यावरण पर एक कोष, वैश्विक पर्यावरणीय सहयोग के लिए केन्द्रीय सहमति के रूप में यूनाइटेड नेशनल इन्वायरमेण्ट प्रोग्राम की स्थापना का आह्वान किया।

स्टॉक होम में उपस्थित बहुत बड़ी संख्या में नये स्वतंत्र हुए विकासशील देशों

की तरफ से जो औपनिवेशक युग के दौरान अपने प्राकृतिक संसाधनों के व्यापक शोषण के साक्षी थे, एक सुर से सशक्त प्रतिरोध को व्यक्त कर रहे थे। स्टॉक होम सम्मेलन पर हालांकि एक आम स्वीकृति थी कि पर्यावरणीय सरोकारों को विकास में बाधक नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे प्रक्रिया का हिस्सा होना चाहिए।

2. *रियो पृथ्वी सम्मेलन 1992* – इस सम्मेलन में राज्य और सर रियो पृथ्वी सम्मेलन 1992.कारों के सर्वप्रमुख 178 देशों के प्रतिनिधि और 17 हजार से अधिक भागीदार उपस्थित हुए थे। रियो घोषणा.पत्र में एजेण्डा.21 प्रमुख रूप से केन्द्रीय बिन्दु रहा। एजेण्डा–21 के लिए आवश्यक हो गया कि कमीशन ऑन सस्टनेबल डेवलपमेन्ट (CSD) को यू.एन. इकोनॉमिक एण्ड सोशल काउंसिल को सक्रिय कमीशन के रूप में निर्मित किया जाए व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को समृद्ध किया जाए। एजेण्डा–21 के क्रियान्वयन का स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरीक्षण किया जाए।

   कनाडा के पर्यावरण मंत्री ने रियो के प्रतिनिधियों को यह याद दिलाया कि अतीत के 30 सालों में उत्तर और दक्षिण के बीच आयु की विषमता बढ़कर 20 से 60 गुनी तक हो गयी है और यह स्वीकार किया गया कि यह प्रचलन सम्पोषणीय विकास का प्रचलन नहीं हैं। भारत की पूर्व पर्यावरण मंत्री मेनका गांधी ने रियो में यह रेखांकित किया कि एक पश्चिमी बच्चा पूर्व के 125 बच्चों जितना उपभोग करता है। उन्होंने यह निष्कर्ष दिया कि पूर्व में सभी पर्यावरणीय संकट पश्चिम के उपभोग के कारण रहे हैं।

   अगर रियो कान्फ्रेंस ऑन इन्वायरमेण्ट और डेवलपमेंट का उद्देश्य गरीब और अमीर देशों के बीच नयी वैश्विक साझेदारी बनाना था और अपने ग्रह की रक्षा के लिए, जो गम्भीर त्रासदी की ओर बढ़ रहा है, पर्यावरण एवं विकास का एक नया कानून विकसित करना था तो इसने कुछ भी नहीं प्राप्त किया है।

3. *वर्ल्ड सम्मिट ऑन सस्टनेबल डेवलपमेंट, जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका (2002)* – इस सम्मेलन का लक्ष्य तथा UNCED के 10 वर्षों के सम्मेलन स्तर पर समीक्षा की जाए कि सतत् विकास के लिए वैश्विक प्रतिबद्धता में फिर से जान डाली जा सके। इस सम्मेलन में 191 सरकारें, अन्तर्सरकारी और गैर-सरकारी संगठन नागरिक समाज आदि के 21 हजार लोगों ने भागीदारी की। इसमें मुख्य दो दस्तावेजों पर ध्यान दिया गया। जोहांसबर्ग प्लान ऑफ इम्प्लीमेंटेशन और जोहांसबर्ग डिक्लेरेशन ऑन सस्टेबल डेवलपमेंट – इस सम्मेलन ने विकासशील देशों के विकास के प्रति सरोकार को स्टॉकहोम और रियो सम्मेलन की तुलना में अधिक स्पष्ट रूप से आगे बढ़ाया, परन्तु विकसित एवं विकासशील के अन्तर को पाटने में ठोस रूप से प्रगति नहीं कर सका।

4. *यूनाइटेड नेंशस कान्फ्रेंस ऑफ सस्टनेबल डेवलपमेंट (रियो +20) ब्राजील 2012* – इस सम्मेलन का शीर्षक था '*द फ्यूचर वी वान्ट*'। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों से 191 प्रतिनिधि और पर्यवेक्षक भाग लिये। रियो +20 के भागीदारी को सम्मेलन के लक्ष्य को लागू करने के लिए स्वैच्छिक प्रतिबद्धता के लिए उत्साहित किया गया, साथ में सरकार, निजी क्षेत्र, नागरिक समाज और अन्य समूहों को वित्तीय प्रतिबद्धता देने के लिए तैयार किया गया। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि उन्हीं मुद्दों को उठाया गया जो इसमें 40 वर्ष पहले स्टॉकहोम कान्फ्रेंस में उठाया गया।

5. *क्योटो प्रोटोकॉल* – संयुक्त राष्ट्र की पहल पर ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए 1992 में 'यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज' (UNFCCC) अस्तित्व में आया। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में अनियंत्रित वृद्धि के मद्देनजर यह महसूस किया गया कि विकसित देशों की ओर से उत्सर्जन में कटौती की बाध्यकारी वचनबद्धता के बिना जलवायु परिवर्तन के खतरों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप UNFCCC ने इस मसले पर एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का मसौदा तैयार करने के लिए बातचीत शुरू की। लम्बे विचार विमर्श के बाद जापान के क्योटो शहर में 11 दिसम्बर, 1997 को हुए (UNFCCC) के तीसरे सम्मेलन अर्थात् 'कोप' (Cop) के तीसरे सत्र में क्योटो प्रोटोकॉल को स्वीकार किया। यह एक कानूनी बाध्यकारी समझौता है।

इसके अन्तर्गत विकसित देशों के लिए उत्सर्जन की कटौती की सीमा तय की गई है। क्योटो प्रोटोकॉल का अन्तिम उद्देश्य ऐसी हर मानवीय गतिविधियों पर रोक लगाना है जिससे पर्यावरण के लिए खतरा पैदा होता है। प्रोटोकॉल के अनुसार विकसित देशों को छह ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाई ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर हेक्साफ्लोराइड, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन व परफ्लूरोकार्बन) के उत्सर्जन से कम से कम पाँच प्रतिशत की कमी करनी होगी। हर राष्ट्र को उत्सर्जन कटौती का लक्ष्य 2008-12 के मध्य हासिल करना था। कार्बन उत्सर्जन के लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में कार्बन ट्रेडिंग की चर्चा की गई है। संयुक्त उपक्रम की प्रक्रिया के अन्तर्गत ये देश अन्य देशों में खास परियोजनाओं में वित्तीय सहयोग कर एमिशन रिडक्शन पांइट्स अर्जित कर सकते हैं। इसके अलावा विकासशील देशों में ग्रीन टेक्नोलॉजी को बढ़ावा देकर स्वच्छ विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हुए भी अपनी जिम्मेदारी निभा सकते हैं।

क्योटो सन्धि के अनुसार उन सभी देशों को जो एनेक्स-I में शामिल हैं, इस सन्धि की पुष्टि करती है जो वायुमण्डल में 55 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड

उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं। एनेक्स में 37 विकसित देश व यूरोपीय संघ शामिल हैं। उन्हें यह मात्रा 2008 से 2012 के बीच कम करके 5.2 प्रतिशत तक लानी थी। हस्ताक्षरकर्ता प्रत्येक राष्ट्र अपने निजी लक्ष्यों को भी हासिल करेगा, जैसे यूरोपीय संघ के देश मौजूदा मात्रा में आठ प्रतिशत और जापान पांच प्रतिशत कमी लाने पर सहमत हुआ। 1997 में अनुमोदित क्योटो संधि का 2002 में संशोधन कर अन्तिम रूप दिया गया और रूस द्वारा स्वीकृति के बाद 'फरवरी 2005' को क्योटो प्रोटोकॉल लागू किया गया। 2008 में भारत समेत 183 देशों ने इस सन्धि को अपनी मंजूरी दे दी थी। सन्धि के अन्तर्गत जहां विकासशील देशों के लिए कोई कानूनी बाध्यता नहीं है वहीं विकसित देशों को 2012 तक 5.2 के औसत से ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को 1990 की उत्सर्जन दरों से नीचे लाने की बाध्यता थी।

6. *कोप–20 (पेरू)* – जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का 20वाँ सम्मेलन (CoP-20 - Conference of Parties to UN Framework Convention to Climate Change) o CMP-10 (Conference of the Parties Serving as the Meeting of Parties to Kyoto Protocol) का आयोजन पेरू की राजधानी लीमा में 1-14 दिसम्बर, 2014 को हुआ। भारत सहित 190 देशों ने धनी व निर्धन देशों के बीच गतिरोध को समाप्त करते हुए वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कटौती करने के लिए एक राष्ट्रीय संकल्प के प्रारूप को इस सम्मेलन में स्वीकार किया है। इससे आगामी कॉप-21 सम्मेलन में बाध्यकारी समझौते पर हस्ताक्षर के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ है।

i;koj.kh; lqj{kk e U;k; ikfydk dh Hkwfedk – भारत में न्यायपालिका ने पर्यावरण सम्बन्धी जनजागृति लाने में अत्यन्त महती भूमिका का निर्वहन किया है। इस भूमिका के कारण ही समाचार माध्यमों ने पर्यावरण सम्बन्धी मामलों की सुनवाई के लिए जजों की विशेष बेंच को 'हरित बेंच' की उपमा तथा माननीय न्यायाधीश कुलदीप सिंह को पर्यावरण सम्बन्धी मामलों में अपने प्रसिद्ध फैसलों के कारण 'हरित जज' की संज्ञा से विभूषित किया। समय-समय पर उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से अधोलिखित महत्वपूर्ण निर्देश जारी कियेः–

1. सभी सिनेमा हाल, चल सिनेमा तथा वीडियो पार्लर अनिवार्य रूप से कम-से-कम दो पर्यावरण सम्बन्धी फिल्म या संदेश अनिवार्य रूप से प्रत्येक शो में निःशुल्क दिखाएंगे। यह उनके लिए लाइसेन्स जारी करते समय पूर्व शर्त होगी।
2. सिनेमाहालों द्वारा लघु अवधि की पर्यावरण तथा प्रदूषण सम्बन्धी सूचनाप्रद फिल्म दिखाना।

3. पर्यावरण तथा प्रदूषण सम्बन्धी रुचिकर कार्यक्रम का प्रसारण प्रतिदिन पाँच से सात मिनट अवधि के लिए तथा सप्ताह में एक बार लम्बी अवधि के लिए दूरदर्शन तथा रेडियो द्वारा प्रसारित किया जाना।
4. छात्रों में सामान्य जागृति लाने के लिए पर्यावरण को विद्यालयों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में एक अनिवार्य विषय बनाया जाना।

पर्यावरण के सम्बन्ध में न्यायिक सक्रियता का सबसे उज्ज्वल उदाहरण *एम.सी. मेहता विरुद्ध भारतीय संघ* केस है। इसमें कानपुर से होकर बहते गंगा के जल व तालाबों में बहता चमड़ा कारखाने से औद्योगिक बहिस्राव से दूषित होकर विषैला तथा स्वास्थ्य के लिए घातक होने का मामला था। उच्चतम न्यायालय ने अवजल अपशिष्ट प्रवाह को रोकने तथा उपचार संयन्त्र स्थापित करने के लिए प्रशासन को समयबद्ध निर्देश जारी किये।

देश की पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य में न्यायपालिका द्वारा प्रदर्शित रूचि बने रहने की आवश्यकता है। यह अकेला निकाय है जो पर्यावरण सम्बन्धी मसलों को प्रभावित कर सकता है।

निष्कर्ष

सम्पोषणीय विकास अब पूरी दुनिया का मुख्य सरोकार है। इसके बावजूद तथ्य यह है कि इसका शिलान्यास अब से 25 वर्ष पूर्व हुआ, लेकिन ठोस सफलता नहीं मिली है और बहुत सारे देश अब भी सम्पोषणीयता की निर्दोष अवस्था को पाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठा पा रहे हैं।

सम्पोषणीय विकास पर वैश्विक राजनीति यह प्रदर्शित करती है कि सम्मेलन केवल विचार-विमर्श तक ही सीमित रह गया है। विकसित देश, विकासशील देश को पर्यावरण क्षरण के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं, जबकि वास्तविक स्थिति यह है कि विकसित देश प्रारम्भ से ही प्राकृतिक संसाधनों का सर्वाधिक दोहन करते आ रहे हैं।

विकासशील देश औपनिवेशक युग की विरासत से निकले हैं। विकसित और विकासशील देश में एक महान अन्तर है, जिसे महबूब अल हक के शब्दों में – ''तुम्हारे विश्व में आज जीवन की गुणवत्ता के बारे में एक चिन्ता जताई जा रही है, हमारे विश्व में स्वयं जीवन के प्रति जो भूख और कुपोषण द्वारा त्रस्त हैं, चिन्ताएँ मौजूद हैं''।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि वैश्विक राजनीति के द्वारा विचार-विमर्श तक ही न सीमित रहकर उन देशों को आत्म-मन्थन करने की जरूरत है जो सम्पोषणीय विकास की प्राप्ति में बाधा पहुँचाते हैं। गाँधी जी के शब्दों में– ''हम जिस ढंग से चाहे प्रकृति के उपहारों का प्रयोग कर सकते हैं; परन्तु प्रकृति के बही खाते में लेन-देन सदैव समान रहता है''।

सन्दर्भ

1. गोस्वामी कुमार अरविन्द; पर्यावरण और सतत् विकास।
2. धींगरा आई.सी.; भारत का आर्थिक विकास।
3. सुखीर यादव; पर्यावरण एवं ऊर्जा के संसाधन, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–01।
4. डॉ. विजय कुमार तिवारी; पर्यावरण प्रदूषण, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, वर्ष–1998
5. द हिन्दू, नई दिल्ली, 19 अप्रैल, 2013
6. इकोनॉमी सर्वे ऑफ इण्डिया, 2012–13
7. योजना मार्च, 2013
8. वर्ल्ड फोकस, फरवरी, 2014
9. भारत 2010, पृष्ठ–897
10. रमेश सिंह, भारतीय अर्थव्यवस्था, मैग्रा हिल एजूकेशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ–13.13

भारत में विकास तथा पर्यावरण संरक्षण

(पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की भूमिका)

हरीश दत्त

lkjk'k *भारत में बहुत अधिक गरीबी और विकास की जरूरतों के मद्देनज़र, पर्यावरण और उसके संरक्षण का मुद्दा वर्ष 1970 तक कहीं भी प्राथमिकता पर नहीं था, लेकिन वर्ष 1972 में हुई मानव विकास पर स्टॉकहोल्म कॉन्फ्रेंस ने भारत का रुख पर्यावरणीय मुद्दों की ओर परिवर्तित कर दिया। यह सम्मलेन एक टर्निंग पॉइंट के रूप में भारत के पर्यावरण को लेकर विचारों को परिवर्तित करता दिखा और इसने पर्यावरण योजना और समन्वय पर राष्ट्रीय समिति (एनसीईपीसी) का वर्ष 1972 में गठन किया। एनसीईपीसी ने पर्यावरणीय नीतियों और कानूनों के लिए नए प्रावधान पेश किए, इसने पर्यावरणीय कानूनों के नियंत्रण और संरक्षण के लिए केंद्र सरकार के शीर्ष निकाय के रूप में वर्ष 1980 में पर्यावरण विभाग, और फिर वर्ष 1985 में पर्यावरण एव वन मंत्रालय तथा वर्ष 2014 में जलवायु परिवर्तन की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का गठन किया। तब से, मंत्रालय, केन्द्र सरकार का राष्ट्रीय निकाय है, जिसे भारत की पर्यावरणीय, वन और जलवायु परिवर्तन से सम्बंधित योजनाएं बनाने एवम् नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त है।*

i;koj.kh; pkd

पर्यावरण और मानव के परस्पर संबंधों को समझने के विज्ञान की शुरुआत, 19वीं सदी में हुई और जिसे 1866 में जर्मनी के जीव विज्ञानी हेकल ने पारिस्थितिकी का नाम दिया था। ऐसा माना गया था कि मानवता का स्थान, और कहीं नहीं बल्कि पर्यावरण के ही भीतर मौजूद है। अमेरिकी न्यायविद् जॉर्ज पार्किन्स मार्स की *'मैन एण्ड नेचर'* (1964) को पारिस्थितिकी पर लिखी गई पहली पुस्तक माना जाता है, जिसमें दिखाया गया है कि मानव गतिविधियां पर्यावरण को नुकसान पहुंचा सकती हैं[1]। मार्स ने अपने अनुभवजन्य अनुसंधान की बड़ी खूबसूरती से समीक्षा की और पाया की 'मनुष्य हर जगह गड़बड़ी पैदा करने वाला एजेंट है। वह जहां कहीं भी पैर

रखते हैं, वहीं पर्यावरण की लयबद्धता बिगड़ जाती है'।

1873 में, लंदन पर खूनी कोहरे (कोयला जलने से वायु प्रदूषण) की पहली श्रृंखला ने धावा बोल दिया था, जिसमें 1,150 लोग मारे गए थे[2]। 4-8 दिसंबर, 1952 को लंदन में हुए ग्रेट स्मॉग को इंग्लैंड के इतिहास में अब तक का सबसे खतरनाक वायु प्रदूषण माना जाता है, जिसमें लगभग 4,000 लोगों की मृत्यु होने का अकेले लंदन में और 30,000 लोगों की मृत्यु होने का अनुमान पूरे इंग्लैंड में लगाया जाता है[3]। इन घटनाओं ने मनुष्य की विकास गतिविधियों से पर्यावरण पर पड़े प्रतिकूल प्रभाव को स्पष्ट कर दिया था।

fodkl-i;koj.k ifjpk

विकास मानवीय प्रगति का हिस्सा है और यह आंशिक है। यह एक विकासवादी अवधारणा है। एक भौतिक विषय के रूप में, विकास के अध्ययन की उत्पत्ति, अभी हाल ही में हुई है। इसे मुख्य रूप से आर्थिक विकास के साथ पहचाना जाता है। हालांकि, बाद में ऐसा महसूस किया गया कि आर्थिक विकास के साथ पर्यावरणीय विकास होना भी अति आवश्यक है।

विकास एक प्रगतिशील धारणा है, इसको रोकने का विचार किसी के लिए भी उपयुक्त नहीं है, यदि आवश्यकता है, तो सिर्फ इस बात की कि कैसे पर्यावरण और विकास के बीच तालमेल को स्थिर बनाए रखने वाले निकायों को और ज्यादा सशक्त किया जाए। क्योंकि, पर्यावरण और विकास को स्थिर बनाने का मुख्य उत्तरदायित्व इन्हीं पर स्थिर होता है।

Hkkjr esa i;koj.k ,o fodkl

दरअसल हाल के दशकों में आर्थिक विकास की गति में आई तेजी, अभूतपूर्व पर्यावरण में हुई लूट के साथ हुई है। अपनी अलग-अलग विचार धाराओं के अनुसार स्वतंत्र भारत में नेहरू ने औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया, जबकि गांधी ने इसका विरोध किया क्योंकि उन्होंने महसूस किया कि यंत्रीकरण मानव जीवन को शोषण, बेरोजगारी और पतन की दिशा में धकेल देगा।

भारतीय पर्यावरणवाद, मुख्य रूप से भारत द्वारा स्वतंत्रता के बाद से अपनाए गए विकास के मॉडल का ही परिणाम है, जिसका हम स्वतन्त्रा प्राप्ति से पीछा करते हुए आ रहे है। यह विकास का मॉडल मुख्यतः तीन चीज़ों पर आधारित है –

(1) शहरीकरण

(2) औद्योगीकरण

(3) केन्द्रीकरण

उपरोक्त विकास के मॉडल से एक ही परिणाम निकला और वह है प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और भारी मात्रा में पर्यावरणीय प्रदूषण ।

हाल ही वर्ष 2016 में विश्व स्वस्थ्य संगठन द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार दुनिया भर के बाकि देशों के मुकाबले भारत में पर्यावरणीय समस्या कई ज्यादा गंभीर और चिंताजनक है। दुनिया के सबसे ज्यादा प्रदूषित 15 शहरों में भारत के ही 14 शहर शामिल हैं।[4] यह बहुत बड़ी चिंता का विषय है, भारत सरकार को अब बिना समय गंवाये हुए कई असरदार कदम उठाने की बहुत आवश्यकता है। इसके लिए भारत के पर्यावरणीय संरक्षण निकायों पर अब पुनः विचार करने की आवश्यकता है।

Hkkjr e i;koj.k d enn rFkk pukfr;k

यह स्पष्ट है कि हमारा विकास अस्थाई हो गया है जिसके परिणामस्वरूप कई पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो रही हैं। आज भारत में पर्यावरण की प्रमुख समस्याएं हैंः औद्योगिक विकास से वायु प्रदूषण, घरेलू और औद्योगिक अपशिष्टों के प्रवाह से जल प्रदूषण, वनों की कटाई, जैव विविधता की हानि, ठोस अपशिष्ट, ध्वनि प्रदूषण और शहरों की बढ़ती संख्या के वाहनों से होने वाले प्रदूषण। इन सबके परिणामस्वरूप हमें पर्यावरणीय समस्याएं और बड़े स्वरूप में घेर रही हैं। अतः पर्यावरण और विकास के बीच संतुलन बनाना हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बढ़ती विकास की ओर प्राथमिकता से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गई। पर्यावरण की गुणवत्ता की इस कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिपेक्ष्य में सरकार ने समय-समय पर नियामकीय संस्थाओं का गठन किया। इनमें से अधिकांश का मुख्य आधार प्रदूषण नियंत्रण व निवारण था।

भारत में पर्यावरणीय मंत्रालय का उद्भव

वर्ष 1972 से पहले; सीवेज़ का निपटान, सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसी पर्यावरणीय समस्याओं को विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा निपटाया जाता रहा, जिनमें प्रत्येक उद्देश्यों को अलग-अलग तरीकों से, बिना परस्पर सामंजस्य की उचित व्यवस्था के, अपने-अपने हिसाब से निपटाया जाता था। इस बात का अहसास किया गया कि एक ऐसे राष्ट्रीय निकाय की आवश्यकता है, जो पर्यावरण की योजनाओं और कार्यक्रमों में समानता और सामंजस्य ला सके और पर्यावरण की समस्याओं को राष्ट्रीय नियोजन प्रक्रिया के साथ एकीकृत कर सके। इसलिए, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में, वर्ष 1972 में पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार से संबंधित सभी मामलों के लिए, एक शीर्ष सलाहकार निकाय के रूप में, पर्यावरण योजना और समन्वय पर राष्ट्रीय समिति (एनसीईपीसी) की स्थापना हुई[5]। जल्दी ही इसका पता लग गया कि एनसीईपीसी भी पर्याप्त नहीं है। इसलिए जनवरी, 1980 में केन्द्र

सरकार ने पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, वैधानिक उपायों तथा प्रशासनिक मशीनरी की सिफारिश करते हुए, योजना आयोग के तहत तिवारी कमेटी नियुक्त की। तिवारी कमेटी की सिफारिशों का प्रत्यक्ष परिणाम, 1 नवंबर, 1980 को, पर्यावरण विभाग के जन्म के रूप में उभरकर आया।

Hkkjr e i;koj.k] ou rFkk tyok;q ifjorZu e=ky; dk xBu

पर्यावरण विभाग के अंर्तगत वर्ष 1985 में, पर्यावरण तथा वन मंत्रालय का गठन किया गया। तब से, पर्यावरण तथा वन मंत्रालय, केन्द्र सरकार का शीर्ष निकाय है, जिसे भारत की पर्यावरणीय और वन योजनाओं व कार्यक्रमों में; कार्यान्वयन की योजना, पदोन्नति, समन्वय तथा निगरानी कार्य की जिम्मेदारी दी गई है। जलवायु परिवर्तन के मुद्दे में बदलाव की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए, वर्ष 2014 में मंत्रालय का नाम बदलकर पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय कर दिया गया। योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन मंत्रालय की प्रमुख चिन्ताएं हैं, जो देश की प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में; झीलों व नदियों, जैव-विविधता, वन व वन्य-जीवन, पशु-कल्याण की सुनिश्चितता, तथा प्रदूषण की रोकथाम व उसमें कमी लाने से संबंधित हैं। जब इन योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने की बात आती है तो इसके लिए मंत्रालय, चिरस्थाई पर्यावरणीय विकास तथा मानव कल्याण के सिद्धान्त को अपनाएगा और यही उसका मार्गदर्शक भी होगा।

मंत्रालय; संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी), दक्षिण एशिया पर्यावरण कार्यक्रम (एसएसीईपी), अंर्तराष्ट्रीय पर्वतीय एकीकृत विकास केन्द्र (आईसीआईएमओडी) तथा पर्यावरण व विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन् (यूएनसीईडी) से संपर्क बनाए रखने में; नोडल ऐजेंसी का काम भी करता है। मंत्रालय को बहुउद्देश्यीय निकायों के मुद्दे भी सौंपे गए हैं, जिनमें; चिरस्थाई विकास पर आयोग (सीएसडी), वैश्विक पर्यावरण सुविधा (जीईएफ), और क्षेत्रीय निकायों जैसे; एशिया व प्रशांत का आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ईएससीएपी), और दक्षिण एशियाई सहयोग संघ (एसएएआरसी) के; पर्यावरण से संबंधित मामले हैं।

मंत्रालय के व्यापक उद्देश्य निम्नवत हैं:

- वनस्पतियों, वन्य जीवों, वनों और वन्य जीवन का संरक्षण तथा सर्वेक्षण;
- प्रदूषण की रोकथाम तथा नियंत्रण;
- वनीकरण, अवक्रमित क्षेत्रों का सुधार;
- पशुओं के कल्याण की सुनिश्चितता;

मंत्रालय के आधीन प्रमुख कार्यों की सूची निम्नवत हैं:

- पर्यावरण अनुसन्धान तथा विकास, शिक्षा, प्रशिक्षण, सूचना और जागरूकता;

- पर्यावरण प्रभाव मूल्याकंन;
- संरक्षण, प्रबंधन एव वनीकरण के लिए वन विकास एजेंसी तथा संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम;
- प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर वनों, वनस्पतियों, प्राणियों, परिप्रणालियों आदि का सर्वेक्षण और अन्वेषण;
- नदियों का संरक्षण, विकास, प्रबंधन तथा प्रदूषण उपशमन, जिसमें गंगा नदी और इसकी सहायक नदियाँ शामिल नहीं हैं;
- बाघ परियोजना तथा हाथी परियोजना सहित वन्यजीव संरक्षण, परिरक्षण, सुरक्षा आयोजन, अनुसंधान, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा जागरूकता;
- पर्यावरण, वानिकी तथा वन्यजीवों से सम्बंधित मुद्दों पर अंतराष्ट्रीय सहयोग;
- संघ राज्य क्षेत्रों में वन एवं वन प्रशासन से सम्बंधित सभी विषय;
- वन्यजीव परिरक्षण तथा वन्य पक्षियों और जीव जन्तुओं का संरक्षण;
- केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड;
- जलवायु परिवर्तन और उससे सम्बंधित सभी अन्य विषय;
- राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम 1995;
- जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974;
- भारतीय वन अधिनियम, 1980;
- वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981;
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986;

fVIi.kh मंत्रालय अनुसूचित जनजाति के वन वासियों के वन भूमि पर अधिकार से सम्बंधित विधायन सहित सभी मामलों को छोड़कर, वनों के सम्बन्ध में समग्र नीति के लिए जिम्मेदार होगा[6]।

उपरोक्त उद्देश्यों एवं कार्यों को बचाव, संरक्षण तथा सुरक्षा का लक्ष्य लेकर, वैधानिक तथा नियामक प्रावधानों द्वारा भी सशक्त किया गया हैं, जो की निम्नलिखित हैं :

वैधानिक प्रावधान

संविधान में पर्यावरण की सुरक्षा और विकास को लेकर भारत में पहली कानूनी पहल 42 वें (संविधान संशोधन) अधिनियम के द्वारा हुई। इस अधिनियम के द्वारा दोमुंहि व्यवस्था संविधान में रखी गयी। एक तरफ यह पर्यावरण की सुरक्षा के लिए राज्य के नीति-निर्देशक तत्व के अनुच्छेद 48 (ए) के तहत राज्य को पर्यावरण की

सुरक्षा एवं विकास को बनाये रखने का आदेश देता है और दूसरी ओर अनुच्छेद 51 ए (जी) के अंतर्गत पर्यावरण की सुरक्षा के लिए नागरिकों के कुछ कर्तव्यों को भी निर्धारित करता है। इसके अलावा राज्य के नीति-निर्देशक तत्व के अनुच्छेद 47 में साफ-साफ इस बात पर जोर डाला है, की यह राज्य का कर्तव्य है की वह अपने राज्य के नागरिकों के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखे।

परन्तु अभी तक ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं है जो की पर्यावरणीय संरक्षण से सम्बंधित हो एवं सीधा-सीधा नागरिकों के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता हो। लेकिन अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन जीने का अधिकार इसको भी कुछ हद तक सुनिश्चित करता है। धीरे-धीरे वायु में जहरीली हवा का घुलना प्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद 21 के उल्लंघन को दर्शाता है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अनुच्छेद 3(3) के तहत मंत्रालय को भारत में नियामकीय संस्थाओं की स्थापना का भी अधिकार प्राप्त है[7]।

पर्यावरण एव विकास को नियंत्रित करने में मंत्रालय की भूमिका

मंत्रालय नियामक संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए शीर्ष प्रशासनिक निकाय और इसके लिए कानूनी और नियामक ढांचे को प्रस्तुत करता है। इसके लिए उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य साधनों में; सर्वेक्षण, प्रभाव आकलन, प्रदूषण नियंत्रण, पुनरोत्पादन कार्यक्रम, संगठनों को सहारा देना, अनुसंधान के जरिए समाधान देना व प्रशिक्षण देकर अपेक्षित मानव शक्ति को बढ़ाना, पर्यावरण की जानकारी का संग्रह व प्रसार, और देश की आबादी के सभी क्षेत्रों में पर्यावरण जागरूकता पैदा करना है।

मंत्रालय के द्वारा किये गए प्रमुख कार्यक्रमों की सूची निम्नलिखित हैः

भारत का प्राणी विज्ञानीय सर्वेक्षण

यह मंत्रालय का एक अधीनस्थ संगठन है। इसकी स्थापना वर्ष 1916 में की गयी थी, ताकि पशुवर्ग संबंधी असाधारण विविधता के धनी भारतीय उपमहाद्वीप के प्राणियों के बारे में हमारा ज्ञानभण्डार बढ़ सके। सबसे पहले वर्ष 1875 मे इसका मुख्यालय कोलकाता में स्थापित किया गया और इसके 16 क्षेत्रीय स्टेशन देश के विभिन्न भौगोलिक स्थानों में स्थित है।

दिसम्बर 2017, तक मंत्रालय द्वारा कुल 60 प्राणी विज्ञानीय सर्वेक्षण किये गए, जिसमे 24,127 पशुओं के विभिन्न समूहों को संग्रह किया गया। सूक्ष्मजीव से लेकर अत्यधिक विकसित जीवों तक कुल 1773 प्रजातियों की पहचान की गई एवम् भारत में पहली बार वर्ष 2017 में कुल 41 प्रजातियों का आकलन किया गया है[8]।

भारत वन सर्वेक्षण

जून 1981 में भारत वन सर्वेक्षण का गठन (एफएसआई) उत्तराखंड के देहरादून में वन सर्वेक्षण, अध्ययन और अनुसंधान आयोजित करने और बदलती स्थिति की निगरानी करने के लिए मंत्रालय द्वारा किया गया। यह मंत्रालय के अधीन एक संस्थान है। इसका प्रमुख उद्देश्य, देश में वन सर्वेक्षण करना एवं वन संसाधनों का आकलन करना है। यह वन संसाधन और सामाजिक संरक्षण परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय नियोजन, संरक्षण और टिकाऊ प्रबंधन के आंकड़ें प्रस्तुत करता है।

इसके द्वारा किये गए कार्य निम्नलिखित हैः –

ई-हरित निगरानी (ई.ग्रीन वहृच) और निर्णय समर्थन प्रणाली

ई-ग्रीन वॉच और निर्णय समर्थन प्रणाली (डीएसएस) भारत के वन सर्वेक्षण की हालिया पहल हैं।

यह वानिकी कार्यों की निगरानी और मूल्यांकन के लिए एक एकीकृत ई-गवर्नेंस पोर्टल है।

ई-ग्रीन वॉच एक एकीकृत और ऑनलाइन भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) है, जो वनस्पति के पुनर्जनन की निगरानी करेगा और वन भूमि की क्षतिपूर्ति के तरीके के रूप में वनीकरण को बढ़ावा देगा जो मुआवजा वनीकरण फंड प्रबंधन और योजना प्राधिकरण अधिनियम (सीएएमपी) के तहत गैर-वन उपयोगों में परिवर्तित हो जाएगी। यह वास्तविक समय में आंकड़ें पेश करेगा और सभी हितधारकों और जनता के लिए बड़े पैमाने पर पहुंच योग्य होगा।

वर्तमान में वर्ष 2017 में 27 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को ई-ग्रीन वॉच पोर्टल से जोड़ा गया है[9]।

निर्णय समर्थन प्रणाली (डीएसएस)

मंत्रालय ने भारत के वन सर्वेक्षण (एफएसआई), देहरादून के समन्वय से 20 अक्टूबर, 2014 से एक जीआईएस आधारित निर्णय समर्थन प्रणाली (डीएसएस) विकसित करी है, जो पूरी तरह से परिचालित होगी।

ग्रीन क्लीयरेंस प्रक्रियाओं को सुगम बनाने के लिए डीएसएस तीसरा उच्च तकनीक मंच होगा। पारंपरिक रूप से उद्योगों को पहले वन मंजूरी के बाद पर्यावरण मंजूरी मिलनी पड़ती थी, लेकिन अब इन प्रणालियों का उद्देश्य एक दिन में पर्यावरण और वन निकासी दोनों उद्योगों को एक साथ पर्यावरण मंजूरी देना है। "इन उपायों का मुख्य उद्देश्य नियामक मंजूरी देने में अधिक पारदर्शिता, दक्षता और उत्तरदायित्व लाने के लिए किया गया था।"

वन मंजूरी के लिए सभी प्रस्ताव 15 अगस्त, 2017 से प्रभावी ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से स्वीकार किए जा रहे हैं। मंत्रालय का दावा है कि वन मंजूरी प्रस्ताव (OSMFCP) के ऑनलाइन सबमिशन और निगरानी ने ग्रीन मंत्रालय के अधिकारियों और निकासी आवेदकों के बीच की दूरी की आवश्यकता को काफी कम कर दिया है[10]।

राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (एनबीए) की अह्नलाइन आवेदन प्रक्रिया की शुरुआत

भारत में जैव विविधता अधिनियम, 2002 को लागू करने के लिए वर्ष 2003 में केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (NBA) की स्थापना की थी। एनबीए एक वैधानिक निकाय है और यह भारत सरकार के लिए संरक्षण, जैविक संसाधनों के सतत् उपयोग और जैविक संसाधनों के उपयोग से उत्पन्न लाभों के निष्पक्ष और न्यायसंगत साझाकरण के मुद्दों पर सुविधाजनक, नियामक और सलाहकार कार्य करता है ।

एनबीए में किसी भी आवेदन को दाखिल करने से पहले पता लगाने वाला प्राथमिक कारक यह जानना है कि आवेदक जीवविज्ञान विविधता अधिनियम द्वारा परिभाषित जैविक संसाधन से निपट रहा है या नहीं। प्राधिकरण अनुमोदन देने का फैसला करने से पहले विभिन्न स्तरों पर आवेदन की जांच की जाती है। आज तक 1,600 से अधिक आवेदन प्राप्त हुए हैं और 980 आवेदनों को मंजूरी दे दी गई है। आवेदकों के साथ एनबीए द्वारा कुल 440 समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं, जिन्हें मंजूरी के रूप में माना जाता है।

पर्यावरण मंत्री ने 30 मार्च, 2017 को इसके लिए ई-आवेदन की प्रक्रिया की औपचारिक रूप से शुरुआत की है। इससे आवेदकों द्वारा आवेदन दर्ज करने की प्रक्रिया में अत्यधिक सुविधा तथा आवेदनों की प्रोसेसिंग अवधि में भी कमी आने की आशा है[11]। पर्यावरण मंत्री ने आशा व्यक्त की कि निकट भविष्य में ई-शासन 100 प्रतिशत परिचालन किया जाएगा और मंत्रालय की सभी प्रक्रियाओं को पूरी तरह से पारदर्शी बनाया जाएगा।

राष्ट्रीय वन नीति

भारत ने वर्ष 1988 में राष्ट्रीय वन नीति शुरू की। इसका मुख्य उद्देश्य जंगल का संरक्षण करना होता है। इसके लिए इसमें विशेष रूप से जंगल की सुरक्षा के लिए लोगों की ज़िम्मेदारियाँ भी तय की गई। वन नीति समाज के लिए बनायीं गई नीति होती है, न की वन प्रशासन के लिए बनायीं गयी नीति। यह सरकार द्वारा एकतरफा रूप से लागू किया गया कोई प्रावधान नहीं है। आदर्श रूप में, यह उन

निकायों के बीच एक समझौता है जो विभिन्न वन हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और औपचारिक रूप से सरकार द्वारा अपनाये जाते हैं।

एक महत्वपूर्ण पहल में, पेड़ कि परिभाषा से बांस शब्द का विलोपन करने के लिए दिनांक 5 जनवरी 2018 को भारतीय वन (संशोधन) अधिनियम, 2017 बनाया गया है। इस संशोधन में गैर वन क्षेत्रों में उगाये गए बांस को इसके आर्थिक उपयोग के लिए गिराए जाने के पारगमन परमिट से छूट दे दी गयी है[12]।

हाथी परियोजना

मंत्रालय द्वारा हाथी परियोजना को वर्ष 1992 में जंगली हाथियों की स्वतंत्र आबादी के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए लॉन्च किया गया था। इस परियोजना का उद्देश्य हाथी, उनके आवास और प्रवासन गलियारे की रक्षा करके हाथियों के संरक्षण एव अस्तित्व को सुनिश्चित करना है।

पहली बार भारत में वर्ष 2017 में अखिल भारतीय हाथी जनगणना की गई। हाथी की जनसंख्या की वास्तविक गणना से एक वर्ष पूर्व मंत्रालय ने प्रक्रिया शुरू की तथा दो क्षेत्रीय कार्यशालाएं तथा परवर्ती प्रशिक्षण शुरू किये। विश्व हाथी दिवस 12 अगस्त, 2017 को मंत्रालय द्वारा प्राथमिक गणना की रिपोर्ट भी जारी की गई है। जिसके अनुसार विशेष रूप से रहने वाले हाथियों के लिए, अन्य 34 हाथी रिज़र्व की स्थापना भारत सरकार द्वारा की गई है[13]।

राष्ट्रीय टाइगर संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए)

भारत सरकार ने वर्ष 1973 में 'परियोजना टाइगर' लॉन्च करके अपने राष्ट्रीय पशु टाइगर को संरक्षित करने के लिए एक अग्रणी पहल की है। नौ प्रतिशत टाइगर रिज़र्व अपने प्रारंभिक वर्षों से, वर्तमान में 47 प्रतिशत हो गया है, और बाघ रेंज राज्यों में यह 18 प्रतिशत है। यह हमारे देश के भौगोलिक क्षेत्र के 2.08 प्रतिशत के बराबर है। मुख्य क्षेत्रों में राष्ट्रीय उद्यान या अभयारण्य की कानूनी स्थिति होती है। परियोजना टाइगर पर्यावरण और वन मंत्रालय की एक सतत् केंद्र प्रायोजित योजना है, जो टाइगर राज्यों को नामित टाइगर भंडार में टाइगर संरक्षण के लिए केंद्रीय सहायता प्रदान करता है। एनटीसीए, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में प्रदान किए गए कार्यों के रूप में एक अत्यधिक पर्यवेक्षी/समन्वय भूमिका के साथ मंत्रालय का एक सांविधिक निकाय है। एनटीसीए के क्षेत्रीय कार्यालयों को हाल ही में बेंगलुरु, गुवाहाटी और नागपुर में स्थापित किया गया है। बारहवीं योजना के दौरान परियोजना टाइगर के लिए आवंटन 1245 करोड़ रुपये है। वर्ष 2012-13 और वर्ष 2013-14 के दौरान व्यय क्रमशः 163.87 करोड़ रुपये और 169.48 करोड़ रुपये हुआ है[14]।

अखिल भारतीय टाइगर अनुमान वर्ष २०१८ का प्रारम्भ एंव नई विशेषता

राष्ट्रीय टाइगर अनुमानों के लिए वर्ष 2018 में उक्त प्लेटफार्म का प्रयोग किया जा रहा है एंव इसके लिए कंप्यूटर तकनीशियनों के प्रयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण सितम्बर 2017 के अंतिम सप्ताह में भारत वन्य जीव संस्थान, देहरादून में संपन्न किया जा चुका है।

विकास परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय स्वीकृति/पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए)

पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए) सतत् विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उत्तम उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रबंधन साधन है। पर्यावरण प्रबंधन एक परियोजना के अनपेक्षित परिणामों का अध्ययन है। इसका उद्देश्य पर्यावरण पर एक प्रस्तावित परियोजना के संभावित प्रभावों की पहचान, परीक्षण, आकलन और मूल्यांकन करना है, और इस प्रकार पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए उपचारात्मक कार्य योजनाओं को आवंटित करना है। मंत्रालय ने पर्यावरणीय प्रभाव आकलन अधिसूचना, 2006 जारी की है, जिसमे वह अपनी सूचीबद्ध विकास से जुड़ी परियोजनाओं के लिए पर्यावरण मंजूरी को अनिवार्य बनाता है।

वर्ष 2017-18 में आंकड़ों के अनुसार विकास परियोजनाओं के लिए 428 परियोजनाओं को पर्यावरणीय स्वीकृति दी गयी हैं[15]।

वायु प्रदूषण के उपशमन से सम्बंधित पहलें

व्यापक वायु की जाँच के लिए वर्ष 2017-18 में 32 सामान्य मानकों को अधिसूचित किये जाने के अलावा 12 प्रदूषकों पर विचार करते हुए मंत्रालय ने पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत राष्ट्रीय व्यापक वायु गुणवत्ता मानक तथा उद्योगों के 104 भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए 115 उत्सर्जन मानक अधिसूचित किए हैं[16]।

एप्प ''समीर'' (राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक)

शहर एंव स्थानीय स्तर पर एयर क्वालिटी इंडेक्स बुलेटन को प्रदर्शित करने के लिए एक मोबाइल आधारित एप्प "समीर" वर्ष 2016 में शुरू किया गया है, यह ऐप एंड्राइड एवं आई.ओ.एस. मोबाइल डिवाइसों के लिए उपलब्ध है। इस ऐप पर एक सार्वजनिक फोरम है, जो शिकायत के समर्थन में फोटों के साथ वायु प्रदूषण के मुद्दों से सम्बंधित सुझाव या चित्रों के साथ शिकायतें प्रस्तुत करने में आम जनता की मदद करता है। इस ऐप द्वारा राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) प्रति घंटा अपडेट होता रहता है ।

प्रदूषण का आकलन

वर्ष 2017-18 में 29 राज्यों तथा छह संघ राज्य क्षेत्रों के 303 शहरों को शामिल करते हुए 691 मेनुअल व्यापक वायु गुणवत्ता निगरानी स्टेशनों का प्रचालन एव अनुरक्षण किया गया है।

मंत्रालय के केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने वर्ष 2015 के शुरू में छह राज्यों में फैले 10 शहरों के 27 स्टेशनों से आंकड़ों को जोड़ा है तथा 11 राज्यों के 22 शहरों में स्थित कुल 40 स्टेशनों के विस्तार को बढ़ाया है।

जल की गुणवत्ता के लिए टाइम सीरीज़ डाटा का विश्लेषण किया गया तथा नदियों के 302 प्रदूषित स्ट्रेच में मल निस्तारण के मुद्दे की पहचान की गई है[17]।

राष्ट्रीय हरित कॉर्प्स कार्यक्रम (एनजीसी)

राष्ट्रीय हरित कॉर्प्स 2001-02 में पर्यावरण जागरूकता फैलाने के लिए मंत्रालय की एक प्रमुख पहल है, जिसका उद्देश्य पर्यावरणीय संरक्षण और टिकाऊ विकास के लिए काम कर रहे युवा कार्यकर्ताओं का निर्माण करना है। एनजीसी ने असाधारण प्रतिक्रिया प्राप्त की है और 14 वर्षों में देश भर के एक लाख से अधिक इको क्लबों को अपना नेटवर्क बना लिया है, जिससे इसे अभी तक का सबसे बड़ा संरक्षण नेटवर्क माना गया है। इसकी जमीनी स्तर पर पर्यावरण जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही समर्पित गैर सरकारी संगठनों एव मंत्रालय के बीच अद्वितीय साझेदारी ने कार्यक्रम की सफलता में अभूतपूर्व योगदान दिया है। एनजीसी के सदस्यों के रूप में पंजीकृत स्कूलों में स्थापित इको-क्लबों के माध्यम से यह संचालित होता है, यह कार्यक्रम स्कूल के बच्चों को गहन क्षेत्र के अनुभवों के बारे में बताता है, और अपने विचारों को रचनात्मक कार्रवाई में बदलने के अवसर प्रदान करता है।

वर्ष 2017-18 के दौरान 3,499 विद्यालयों के लगभग 30,000 छात्रों ने "प्रकृति – खोज" नामक ऑनलाइन पर्यावरण क्विज में पंजीकरण करवाया[18] तथा 26 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के 11,000 छात्रों ने इसमें भाग लिया है।

मंत्रालय द्वारा दिनांक 15 अक्टूबर 2017 को इंडिया गेट, नई दिल्ली में किये गए मिनी मैराथन *"रन फॉर क्लीन एयर"* स्वच्छ एंव स्वस्थ भारत के लिए दिल्ली के एक क्लब के लगभग 15,000 छात्रों ने भाग लिया है[19]।

स्वच्छता ही सेवा अभियान

राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने 15 सितंबर से 2 अक्टूबर, 2017 को कानपुर जिले के ईश्वरगंज गाँव से 'स्वच्छता ही सेवा' अभियान का शुभांरभ किया। इसके तहत राष्ट्र ने एक स्वच्छता, स्वस्थ और नए भारत के निर्माण का संकल्प लिया।

उपस्थित जन समुदाय को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति ने कहा, 'भारत स्वच्छता और आरोग्य के लिए निर्णायक लड़ाई लड़ रहा है। स्वच्छता केवल सफाई कर्मियों और सरकारी विभागों की जिम्मेदारी नहीं है यह एक ऐसा राष्ट्रीय आंदोलन है जिसमें बहुपक्षीय हित जुड़े हुए हैं।

वर्ष 2017-18 में एस.एस.बी. प्रकोष्ठ के विभिन्न क्षेत्रिय कार्यकलापों, अधीनस्थ/स्वायत्त निकायों के माध्यम से जनसमूह में स्वच्छता के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए पूरे देश में स्वच्छता अभियान चलाया गया[20]।

स्वच्छता पखवाड़ा का आयोजन

मंत्रालय ने, भारत सरकार के स्वच्छता भारत मिशन के अंतर्गत पिछले 1-15 जून, 2017 के दौरान स्वच्छता पखवाड़ा मनाया है, और इस प्रयास को "क्लीन इंडिया-ग्रीन इंडिया" के दौरान स्वच्छता पखवाड़ा के आयोजन के रूप में दिल्ली के नेहरू पार्क, लोधी गार्डन और आई.एन.ए. मार्किट क्षेत्र में पौधारोपण करके मनाया है।

इसके अंतर्गत यह अपील की गई की बीमारियों और घटनाओं से बचने के लिए सभी अपने कार्यालय और कॉलोनी परिसर को साफ रखेंगे। डिस्पेंसरी, स्कूल, कॉलोनी, ऑफिस और लैब्स इत्यादि में यह शुरू किया गया था। यह सब स्वच्छता के महत्व को फैलाने के लिए अति आवश्यक हो चला है।

''प्रकृति पर्यावरण और हम" पहल

माननीय पर्यावरण मंत्री ने राष्ट्रीय प्राणी विज्ञान उद्यान में दिनांक 15 जून, 2017 को स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत "प्रकृति पर्यावरण और हम" एक प्रमुख पहल शुरू की है। यह पहल पर्यावरणीय गतिविधियों के कार्यान्वयन को तेज करने का इरादा रखती है[21]।

पर्यावरण सूचना

मंत्रालय ने देश में युवकों को कौशल प्रदान करने के लिए विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून, 2017 के अवसर पर जीएसडीपी पाठ्यक्रम का शुभारम्भ किया और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम मॉडल भी जारी किया है।

जी.एस.डी.पी. पाठ्यक्रम के अंतर्गत, 94 प्रशिक्षुओं ने मूल पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक वर्ष 2017-18 में पूरा किया और कुशल जैव विविधता संरक्षणविदों के रूप में अहर्ता प्राप्त की है तथा 154 छात्रों को पैरा-टेक्सोनोमी पर एडवांस पाठ्यक्रम के लिए नामांकित किया गया, जो मार्च, 2018 में समाप्त हो चुका है[22]।

गैर सरकारी संगठन प्रकोष्ठ

एनजीओ को बढ़ावा देने के लिए मंत्रालय ने एक सेल का निर्माण मई, 1992 में

गठित किया ताकि देश में पर्यावरणीय आंदोलन को और मजबूत किया जा सके और विशेष रूप से जमीनी स्तर पर कार्य कर रहे लोगों का समर्थन प्राप्त किया जा सके। यह मंत्रालय विभिन्न विभागों द्वारा सम्मिलित सभी गैर-सरकारी संगठनों से संबंधित गतिविधियों के लिए मंत्रालय की एक खिड़की के रूप में कार्य भी करता है। यह पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे गैर-सरकारी संगठनों से संबंधित विभिन्न मामलों को भी संभालता है।

गैर सरकारी संगठनों के लिए अनुदान जारी करने के लिए आवेदनों पर कार्यवाही करने के लिए एक आई टी सॉफ्टवेयर का वर्ष 2017-18 में निर्माण किया गया है। यह इस मंत्रालय की विभिन्न स्कीमों के अंतर्गत अनुदान आदि प्राप्त करने हेतु ऑनलाइन आवेदन करने के लिए गैर-सरकार संगठनों को सुविधा प्रदान करेगा। गैर-सरकारी संगठनों में पारदर्शिता लाने के उद्देश्य से इसे नीति आयोग के एन.जी.ओ. - दर्पण पोर्टल के साथ भी जोड़ा गया है[23]।

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी)

अप्रैल, 2018 में मंत्रालय ने राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में हो रहे वायु प्रदूषण को लेकर "राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी)" लॉन्च किया, इसे पर्यावरण के लिए संवेदनशील और एजेंसियों को इसे लागू करने के लिए किया गया था। यह उल्लेखनीय है कि हर साल दिल्ली की सड़कों पर करीब एक मिलियन वाहन बढ़ते जा रहें हैं और बढ़ती निर्माण गतिविधियों और वाहन चलने से दिल्ली में वायु गुणवत्ता हर वर्ष और ख़राब होती जा रही है[24]।

प्रकाशन

मंत्रालय ने पर्यावरणीय विकास एव प्रदूषण से संबंधित वैज्ञानिक, तकनीकी और सांख्यिकीय रिपोर्टों को एकत्रित और प्रकाशित करना जारी रखा। वर्ष 2017-18 में मंत्रालय द्वारा एक पशु खोज पुस्तक, भारत में जल जंतु विविधता की वर्तमान स्थति के बारे में एक पुस्तक तथा सुंदरबन जैव मंडल रिज़र्व के जंतु के बारे में एक पुस्तक प्रकाशित की है।

वर्ष 2017-18 में मंत्रालय ने भारतीय प्राणी विज्ञान सर्वेक्षण के रिकॉर्डों के दो खंड, सात प्रासंगिक पत्र, एक स्मारिका, तीन संरक्षण क्षेत्र श्रृंखलायें, समुंदरी जलीय मछलियों के लिए एक गाइड, एक बायोग्राफी और बीबलियोग्राफी भी प्रकाशित की है। इसमें अलावा 10 प्रकाशन अभी प्रेस की प्रकाशित श्रृंखला में संलग्न है[25]।

मंत्रालय की भूमिका का आकलन

मंत्रालय का गठन सरकार की जरूरतों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया थी, जो तेजी से बढ़ते प्रदूषण और विकास की गतिविधियों के लिए एक आवश्यक पूरक

था। उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पर्यावरण को गिरावट और प्रदूषण से बचाने के लिए मंत्रालय ने बड़ी संख्या में कदम उठाए हैं। उन प्रयासों के बावजूद, दुनिया भर में प्रदूषण से संबंधित मौतों में वर्ष 2015 में 2.51 मिलियन भारतीयों ने प्रदूषण संबंधी कारणों से अपना जीवन खो दिया है[26]। अतः मंत्रालय द्वारा किए गए कई प्रयासों के बावजूद, पर्यावरण प्रदूषण और गिरावट की समस्या को उस सीमा तक नियंत्रित नहीं किया जा सका है, जिस तरह होना चाहिए था।

उपर्युक्त आंकड़ें यह स्पष्ट करतें हैं कि मंत्रालय द्वारा सिर्फ एक ही वर्ष (2017-18) में 428 परियोजनाओं को तीव्र गति से मंजूरी दी जा चुकी है[27] और 140 से अधिक लंबित परियोजनाओं को भी मंजूरी दी जा चुकी है, जो की पर्यावरण के लिए बहुत खतरनाक है।

समस्या यह है कि विकास परियोजनाओं को लागू करने की प्रक्रिया में कोई भी वैज्ञानिक मापदंड निर्धारित नहीं किया गया है और न ही इस प्रक्रिया में कोई पारदर्शिता है। जबकि मंत्रालय अब ऑन लाइन आवेदन का हवाला देते हुए और अधिक-से-अधिक पारदर्शिता का दावा करते हैं, जबकि यह मंजूरी पारदर्शिता के लिए अपनाए गए मानदंडों के साथ मेल नहीं खाती है। जबकि पहले अनुमोदन की बैठकों के विस्तृत मिनट को प्रकाशित किया जाता था, और अब मंत्रालय की वेबसाइट निर्णय लेने की प्रक्रिया को स्पष्ट किये बिना ही केवल दी गयी मंजूरी को सूचीबद्ध करती है।

बढ़ती विकास की आवश्यकता के आगे पर्यावरण को बड़ी हानि पहुंचाते हुए रेणुका जैसे बड़े बांध परियोजना को विवादों से घिरी होने के बावजूद भी मंजूरी दे दी गयी है, इसमें जंगल की 900 हेक्टेयर से अधिक भूमि को बर्बाद किया गया है और कई गांवों को विस्थापित किया गया है। सरकार की इस परियोजना में जल्दबाजी सिर्फ इसी बात से पता चल जाती है कि पर्यावरणीय मंजूरी प्राप्त हुए बिना ही केंद्रीय बजट में इसके लिए 50 करोड़ रूपये का प्रस्ताव पास कर दिया था[28]। यह सीधे सीधे विकास परियोजनाओं का पर्यावरण पर पड़ते बुरे प्रभाव को खुलकर दर्शाता है।

विकास के नाम पर उत्तराखंड में चल रहे पंचेश्वर बांध को भी काफी विरोध होने के बावजूद स्वीकृति मिल चुकी है, जबकि इस प्रोजेक्ट से लगभग 29,000 परिवार और 122 गांवों का अस्तित्व खतरे में है[29]।

नदियों को जोड़ने और अन्य बड़ी विकास परियोजनाओं से चाहे फिर पर्यावरण को जितना भी नुकसान हो, सरकार की नजरअंदाजी बड़ी है। उसका साक्ष्य है, केन-बेतवा नदी जुड़ाव परियोजना जिसके तहत मध्य प्रदेश के पन्ना टाइगर रिज़र्व की 6000 हेक्टेयर भूमि को भी इसमें शामिल किया गया है। पन्ना में टाईगर की छोटी सी संख्या को अन्य जगहों से लाकर यहाँ बसाया गया है, ताकि टाइगर के अनिश्चित अस्तित्व को बनाए रखा जाए। इस परियोजना से 1600 से ज्यादा घर

विस्थापित हो जायेगें, जिनमें पन्ना रिज़र्व के अंदर ही 800 से ज्यादा घर हैं[30]।

ये अन्य मंजूरियाँ, जांच और विचार प्रक्रियाओं को संशोधित करके की जाती है, और अक्सर कार्यालय ज्ञापन और परिपत्रों के माध्यम से की जाती हैं। इनमें से ज्यादातर को मौजूदा कानून और नियमों की धज्जियाँ उड़ाकर स्वीकृत किया जाता है और कानूनी नियमों को दर-किनार कर दिया जाता है।

इनसे यह सब पता चलता है की पर्यावरण नियमन के लिए संस्थागत ढाँचे को जानबूझकर और व्यवस्थित ढंग से ध्वस्त किया जा रहा है। परियोजनाओं की जांच करने के लिए और मंजूरी देने के लिए विभिन्न समितियों का जो गठन किया जाता है, उनमें वही लोग होते हैं जो सरकार के विचार से सहमत होते हैं और जल्दी मंजूरी देने को ही विकल्प के रूप में मानते हैं। जहां आवश्यक हो, इन समितियों के गठन के संबंध में नियम भी नजरअंदाज किये जा रहे हैं या उन्हें संशोधित करके बदला जा रहा है। ठीक से वैधानिक वन्यजीव बोर्ड के गठन के बिना वन्यजीव मंजूरी के लिए मंत्रालय ने कथित रूप से शिकायत की स्थायी समिति का गठन किया था। यह समिति और इसके द्वारा हाल ही में वन्यजीवन से सम्बंधित दी गई मंजूरी को सुप्रीम कोर्ट द्वारा निरस्त कर दिया गया और उसने कहा कि वन्यजीव कानून के तहत वन्यजीव अधिनियम बोर्ड का पुनर्गठन किया जाए जिसमें बाहरी विशेषज्ञों के अलावा गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधित्व भी होने चाहिए। पर्यावरण मंत्री के मार्गदर्शन के तहत मंत्रालय ने बोर्ड के पुनर्गठन का फैसला किया है और उसमें अपने ही लोगों को रखा है जो निर्णयों को लागू कर पायेंगें, यह सब कानून और सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों की धज्जियाँ उड़ाने के लिए काफी है।

पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) से उत्पन्न बाधा को केंद्र से राज्यों को ईआईए प्रक्रिया स्थानांतरण के द्वारा दूर किया जाने का प्रस्ताव है। यह भी जाना जाता है कि लालच और निवेश की भूख सबको एक-दूसरे के साथ प्रतियोगिता में लाकर खड़ा कर देगी, और ताकतवर केंद्र सरकार बनने की चाह ज्यादा कॉर्पोरेट सेक्टर को ताकतवर बना देगी। ईआईए का राज्यों को अधिकार दे देना एक सुविधाजनक रास्ता है, जो पर्यावरणीय विकास के संस्थागत ढांचे को ठेस पहुँचायेगा और पूरी तरह से गिरा देगा।

निष्कर्ष

38 वर्षों के अस्तित्व के बावजूद मंत्रालय की कार्यप्रणाली प्रगतिशील होते हुए भी संतोषजनक नहीं है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि एक शीर्ष निकाय के रूप में, भारत में पर्यावरण संरक्षण में मंत्रालय की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है, परन्तु फिर भी उसकी प्रभावशीलता में कुछ कमी है। हालांकि, मंत्रालय को दी गई शक्तियां अपर्याप्त और अधिक सलाहकार या जांच प्रकृति की हैं। अधिक सुव्यवस्थित और

सार्वजनिक उन्मुख मंत्रालय के लिए आवश्यकता है की वह विकास और पर्यावरण मानकों को सुरक्षित करने के लिए एक सक्रिय दृष्टिकोण ले, न की सिर्फ अदालतों या केंद्र सरकार के निर्देशों का पालन करें। हमारे देश के प्रदूषण नियंत्रण तंत्र का सार्वजनिक रूप से सामना करने वाली शीर्ष भुजा के रूप में, मंत्रालय के लिए स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार होना अति महत्वपूर्ण है, जो वर्तमान में असमर्थ है। दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दिया जाता है कि मंत्रालय को पुनर्गठित करने और नई पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए इसे एक प्रभावी निकाय बनाने के लिए अन्य प्रभावी अधिकार देने चाहिए एवं इसमें राजनीति के हस्तक्षेप को कम करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. The George Wright Forum, GWS Journal of Parks, Protected Areas & Cultural Sites, vol. 32. no. 3, 2015, Page No. 227-337.
2. Jerome C. Greyson, Carbon, Nitrogen, and Sulfur Pollutants and Their Determination in Air and Water, Taylor & Francis, 2001, Page No.7, Page No. 7
3. https://www.history.com/news/the-killer-fog-that-blanketed-london-60-years-ago
4. नवभारत टाइम्स, 17 मई, 2018, पेज न.14
5. जीओआई 2017:7
6. पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्टः 2017–18, पेज न. 8–10
7. http://envis.mse.ac.in/regulatorybodys.asp
8. पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, वार्षिक रिर्पोटः 2017–18, पेज न. 12–18
9. वही
10. वही
11. वही
12. वही
13. http://worldelephantday.org/news/2017/08/4582
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही
18. www-pkeq-nic-in
19. वही
20. वही

21. वही
22. वही
23. वही
24. वही
25. वही
26. द हिंदू 2017
27. वही
28. इंडिया टुडे, जुलाई 10, 2014, यूनियन बजट इंडिया
29. सिंह, नमिता, पंचेश्वर डैम, फर्स्ट पोस्ट, 20 जुलाई, 2017
30. नेशनल वॉटर डेवलपमेंट एजेंसी, EIA & EMP रिपोर्ट, जीओआईः मई, 2015

पर्यावरणीय समस्यायें एवं समाधान

सच्चिदानन्द मिश्र

Ikjk'k *पर्यावरण प्रदूषण विकास की प्रतिबद्धता बनता जा रहा है। मानव जीवन का क्रमबद्ध विकास स्वच्छ एवं सन्तुलित पर्यावरण का ही प्रतिफल है। अतः इसकी सुरक्षा मानव जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। भारत में जो विकास हुआ वह पर्यावरण प्रदूषण पर आधारित रहा। बाढ़, सूखा, भूमि कटाव, भू-क्षरण, तपती धरती, ग्रीन हाउस प्रभाव, सूनामी लहरें, भूकम्प आदि पर्यावरण प्रदूषण की ही प्राकृतिक प्रतिक्रिया है। वैश्विक स्तर पर 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन 1992 में रियो डिजेनेरो में सम्पन्न भूमि सम्मेलन, 1997 में क्योटो सम्मेलन, 2002 में जोहान्सबर्ग सम्मेलन, 2005 में ग्लैंका सम्मेलन इस बात पर केन्द्रित रहा कि पर्यावरण की सुरक्षा कैसे सुनिश्चित की जाये।*

प्रस्तावना

पर्यावरण एवं मनुष्य एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बन्धित हैं। पर्यावरण पर मानव विकास निर्भर करता है। मानव जीवन का क्रमबद्ध विकास स्वच्छ एवं संतुलित पर्यावरण का ही प्रतिफल है। अतः पर्यावरण की सुरक्षा मानव की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। गाँधी जी ने कहा था कि जब व्यक्ति वृक्ष विनाश, जल सतह की समाप्ति अथवा जीवनमण्डल को दूषित करता है तो वह जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन के विनाशक रूप को आमंत्रित करता है। गाँधी जी ने यह भी कहा था कि धरती हमारे पुरुषों को विरासत के रूप में नहीं दी है। हमारे बच्चों के लिए उधार है जिसको उन्हें सुरक्षित लौटाना हमारी जिम्मेदारी है।

स्वतंत्र भारत में जो भी विकास हुआ वह पर्यावरण प्रदूषण पर आधारित रहा। तीव्र औद्योगिक विकास, शहरीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के चलते वन वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई होती रही। वनों को काटकर जहाँ एक ओर आबादी बसायी गयी वहीं दूसरी ओर बड़ी संख्या में उद्योगों की स्थापना, सड़क निर्माण, रेल यातायात का विस्तार, हवाई अड्डों का निर्माण एवं विस्तार होता रहा। औद्योगीकरण के इस भोगवादी दौड़ में हम विकास के नाम पर जिस प्रकार बारूदी सुरंगों, ड्रीलिंग मशीन एवं डाइनामाइट के विस्फोटों द्वारा पहाड़ियों को चिरते-तोड़ते हुए सड़के एवं टिहरी

जैसे बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण कर रहे हैं। उससे पर्यावरण विनाश तो हो ही रहा है। साथ-साथ प्रकृति की अनमोल धरोहरों का भी विनाश हो रहा है।

हमारी इन क्रियाओं से जहाँ वनों का क्षेत्रफल कम हुआ वहीं वृक्षों की संख्या अपर्याप्त होती गयी। आँकड़े इस बात के साक्षी हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में लगभग 40 प्रतिशत भूभाग पर जंगल था। वहीं आज मात्र 20 प्रतिशत भूभाग पर जंगल है। सदियों से चली आ रही प्रकृति और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध क्षीण होता जा रहा है, जो मानव जीवन के लिए खतरे का संकेत है।

बाढ़, सूखा, भूमिकटाव, भूक्षरण, परिस्थितिकीय असन्तुलन, तपती धरती, ग्रीन हाउस प्रभाव सूनामी कहर, भूकम्प एवं महामारी आदि इन्हीं क्रियाओं की प्राकृतिक प्रतिक्रिया है। विकास और पर्यावरण प्रदूषण साथ-साथ चल रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण विकास की प्रतिबद्धता बनती जा रही है, जो मानवहित में नहीं है। अतः आज की प्रमुख समस्या पर्यावरण प्रदूषण रहित विकास कैसे किया जाये। विकास की नीतियाँ एवं विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन कैसे किया जाये कि पर्यावरण पूर्णतः सुरक्षित रहे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रम के अन्तर्गत 100 वैज्ञानिकों के एक दल ने अपने शोध के आधार पर प्रकाशित पुस्तक (सस्टीनेबुल लाइफ) में स्पष्ट किया है कि वैश्विक तापमान से दुनिया में जीवों की 5000 प्रजातियाँ सकंट में है। भारत में वनस्पतियों एवं जीव जन्तुओं की 25 प्रतिशत प्रजातियाँ 2030 तक समाप्त हो जायेंगी।

मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेकों कल-कारखानें लगायें हैं, जिससे निकलने वाला धुआँ और गैस वायुमण्डल को प्रदूषित करता है। औद्योगिक विकास तापघरों, चिमनियों, भट्टियों आदि की अप्रत्याशित वृद्धि से पृथ्वी गैस का चेम्बर बनती जा रही है।

बढ़ी हुई जनसंख्या के पालन-पोषण, आवास आदि के लिए जहाँ वनों की बेतहाशा कटाई की जा रही है। वहीं खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए खेतों में उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, खरपतवार को समाप्त करने हेतु व्यापक मात्रा में ऐसे रसायन का प्रयोग किया जा रहा है, जो मिट्टी की उर्वराशक्ति को क्षीण कर देते हैं। जिसके चलते भूक्षरण हो रहा है और प्रदूषित मिट्टी हवा में उड़कर वायुमण्डल में अम्लीय वर्षा की सम्भावना बढ़ा रही हैं। जो कृषि उत्पादन हरे-भरे पेड़ और चारागाह के लिए अशुभ संकेत हैं।

पर्यावरण विशेषज्ञ स्मिथ का कहना है कि जल दुनिया का सबसे मूल्यवान संसाधन है। पृथ्वी का लगभग 70 प्रतिशत भाग जल से परिपूर्ण है। किन्तु इसका तीन प्रतिशत भूभाग का जल ही हम पीने के लिए प्रयोग कर पाते हैं। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार पीने वाले जल का 70 प्रतिशत भाग दूषित हो चुका है। दुनिया

के लिए अगले 50 वर्ष में शुद्ध जल की आपूर्ति बहुत बड़ी चुनौती होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने खतरे की घण्टी का संकेत देते हुए चुनौती दी है कि यदि विश्व में जल प्रबन्धन नहीं हुआ तो जल के लिए भीषण संघर्ष होगा। अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में अगले 20 वर्षों में जल की माँग 50 प्रतिशत बढ़ जायेगी जिसकी आपूर्ति बहुत ही कठिन समस्या होगी।[1]

भूमिगत जल की अन्धाधुन्ध निकासी के कारण जल स्तर काफी नीचे चला गया है। कुएं सूख गए हैं। हैण्डपाइप और नलकूप ने पानी की कमी के कारण काम करना बन्द कर दिया हैं। गंगा जो पवित्र जल प्रदान करती थी, उसमें गिरने वाले जहरीले पानी से जलजीव मर रहे हैं तथा इंसानों को पीलिया, दमा, खुजली जैसे रोग हो रहे हैं। संभावली शराब मिल से एक नहर के बराबर मिथेन मिला जहरीला पानी निकलता है, जो वहीं 30 कि0मी0 दूर पूढ़ गाँव में नदी में गिरता है। कानपुर में कम-से-कम 5000 लेड क्रोम निकलता है जो जहरीला होता है और गंगा नदी में गिरता है। मिर्जापुर में कालीन का काम होता है। वहाँ लगभग 50000 लीटर केमिकल का पानी रोज नदी में गिरता है। आज हालात यहाँ तक पहुंच गये हैं कि 100 करोड़ लीटर गंदा पानी गंगा नदी में रोज गिरता है।[2]

गंगा प्रदूषण का परिणाम है कि उत्तराखण्ड की तमाम नदियों पर आज संघर्ष ही है। चाई गाँव धंस गया है। थिरांग गाँव में दरारें पड़ गई हैं। जोशी मठ का पानी खजाना विस्फोट में बहकर चला गया है। बद्रीआश्रम के धंसने के खतरे से शंकराचार्य परेशान हैं। धारी देवी का मन्दिर डूबने का शिकार हो रहा है। ऋषिकेश के ऊपर गंगा में रेत दिखाई देने लगी है। झरने गायब होने लगे हैं।[3]

यमुना की कुल लम्बाई 1375 कि0मी0 है। दिल्ली क्षेत्र में यमुना 48 कि0मी0 है, किन्तु दिल्ली की गन्दगी का 90 प्रतिशत योगदान यमुना में है। दिल्ली के मलमूत्र साफ करने में करोड़ों रूपये खर्च हो चुके हैं। किन्तु यमुना अभी तक साफ नहीं हो पायी है।

वास्तव में यमुना नदी नहीं नहर है। एक पर्यावरण प्रणाली है, नदियाँ अपने बहाव के साथ जीवों की एक विशाल दुनिया भी साथ लेकर चलती हैं, जो नदी के जलवायु के साथ विकसित हुई हैं। जिसमें खुद जिन्दगी धड़कती है। नदियों को तन्दुरूस्त रखने के लिए पर्याप्त प्रवाह, बाढ़ से बना मैदान, पेड़ पौधों और वन्य जीवों के रूप में आवश्यक विविधता की जरूरत पड़ती है, जो नदी में वैविध्यता प्रदान करती है तथा जीवन्त बने रहने में मदद करती है। प्रवाह बनाये बिना नदी जीवन्त नहीं रह सकती। नदियों में पानी नहीं पूरी जिन्दगी बसती है। आज आवश्यकता है नदी मुक्ति की विश्वव्यापी चेतना जगाने की। नदियां हर प्रकार के बन्धन से मुक्त हों ताकि वह हमारा पोषण कर सकें, हमें आनन्द दे सकें, रचनाकारों के लिये निर्बाध प्रेरणा का स्रोत बने, साधकों को अपने पवित्र वायुमण्डल से आनन्द की अनुभूति करा सके।

हमारी आत्म साधना को लक्ष्य तक ले जाये। कुल मिलाकर प्रकृति के अनुरूप सभ्यता सतत् विकास करे।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण हेतु 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन, 1992 में रियो डिजेनरो सम्मेलन, 1997 में क्योटो सम्मेलन, 2002 में जोहान्सबर्ग सम्मेलन, 2005 में ग्लेन्को सम्मेलन सम्पन्न हुये। इन सभी सम्मेलनों में इस बात पर विचार हुआ कि पर्यावरण संरक्षण कैसे सुनिश्चित किया जाये।

1972 में आयोजित स्टॉकहोम सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि पहली बार विश्व के प्रमुख देशों की राजनीति में पर्यावरण संरक्षण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन में मारिस स्ट्रांग ने कहा कि जब तक जंगल जैसे प्रकृति के संसाधनों का विनाश बन्द नहीं होगा। तब तक मौसम में आ रहे अनिश्चित परिवर्तन को थामा नहीं जा सकता। इस सम्मेलन में केवल नीति सिद्धान्त ही निश्चित नहीं किये गये अपितु कार्यक्रम योजना का सुझाव भी दिया गया। इस सम्मेलन में घोषणा की गयी कि :–

1– स्वच्छ पर्यावरण में ही व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता एवं जीवन की आवश्यक शर्तों का उपयोग संभव है।

2– वर्तमान एवं भविष्य के पीढ़ियों के लिये पर्यावरण को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी मनुष्य की ही है।

स्टॉकहोम सम्मेलन में यह भी सुनिश्चित किया गया कि सभी देश 5 जून को पर्यावरण दिवस मनायेंगे।

स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कदम उठाये गये। जल-प्रदूषण, निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1981 आदि अधिनियम पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न आयामों को ध्यान में रखकर पारित किये गये। इसके अतिरिक्त संसद ने 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित किया। इसकी उदेशिका में कहा गया कि यह अधिनियम संयुक्त राष्ट्र की मानव पर्यावरण संरक्षण सम्मेलन 1972 जिसमें भारत ने भी भाग लिया था, की पृष्ठभूमि में पर्यावरण संरक्षण एवं उसकी उन्नति के लिये बनाया जा रहा है। इस अधिनियम के द्वारा प्रदूषण से बचाने के लिये और पर्यावरण की गुणवत्ता को स्थापित करने के लिये केन्द्र सरकार को आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार दिया गया। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की धारा 3 के अनुसार केन्द्र सरकार को इस सम्बन्ध में आवश्यक विधि बनाने का भी अधिकार दिया गया। उस पर यह जिम्मेदारी सौंपी गयी कि वह पर्यावरण प्रदूषण की भी प्रकृति निर्धारण के लिये प्रयोगशाला बनायें। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह उठाया गया कि तिवारी समिति का गठन किया गया तथा तिवारी समिति के संस्तुति के आधार पर भारत में अलग से पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का गठन किया गया।

भारत में पर्यावरण संरक्षण को इतना अधिक महत्व दिया गया कि उसे संविधान में भी समावेशित किया। भारतीय संसद अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय सिद्धान्तों को भारतीय विधि में बिना किसी अवरोध के समावेशित करने के लिये संविधान में 42वां संशोधन अधिनियम 1976 पारित किया। इसके द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु कानून बनाने के लिये संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 48(क) जोड़ा गया। तथा एक नया अध्याय मौलिक कर्तव्य के लिये बनाया गया। उसमें एक अनुच्छेद 51(क) जोड़ा गया। अनुच्छेद 48(क) के अनुसार यह निर्देशित किया गया है कि राज्य देश में पर्यावरण संरक्षण तथा उसमें सुधार करने वन्य तथा अन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 51(क) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा वह प्राकृतिक पर्यावरण का जिसके अन्तर्गत झील तथा वन्य जीव हैं, की रक्षा करे तथा सम्वर्द्धन करे और प्राणी मात्र के प्रति दयावान रहे। उक्त दोनों अनुच्छेद पर्यावरण संरक्षण को मौलिक कर्तव्य बनाकर निश्चय ही लोगों को पर्यावरण के प्रति सजग एवं दायित्वपूर्ण बनाने का संकल्प व्यक्त करता है। साथ ही सरकार पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी कार्यों में लोगों के सहयोग की अपेक्षा करती है। इसके अलावा पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी एक प्रावधान संविधान में भी है। जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया द्वारा वंचित नहीं किया जा सकता। *सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य मामले* में प्रदूषण मुक्त जल एवं वायु के उपयोग का अधिकार अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार के अन्तर्गत सम्मिलित माना है।[4]

इतने अधिनियमों के पारित होने के बावजूद भी 90 के दशक में भूमण्डलीकरण के युग में भारत के प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने मुद्रा संकट से मुक्ति पाने हेतु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को निवेश हेतु पूरी छूट दे दी। बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के आधार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बड़े-बड़े प्लान्ट लगाने के लिये सरकार से अनुमति प्राप्त कर जल, जंगल और भूमि पर कब्जा कर लिया जिसके चलते पर्यावरण प्रदूषण को काफी बढ़ावा मिला। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के युग में सरकार का चरित्र भी बाजार जैसा हो गया। सरकार ने गरीबों को गरीब बनाये रखने की एक अनकही नीति निर्धारित कर ली। कानूनी और विधायी मकड़जाल बुनकर उनकी भूमि जंगल और जलाशय छीन लेने की सक्रियता प्रारम्भ कर दी। इन योजनाओं के द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश के जंगल जमीन पर कब्जा कर पर्यावरण प्रदूषण तो फैलाया ही, स्थानीय परम्पराओं एवं रोज़गार के अवसर को भी समाप्त कर बड़े पैमाने पर विस्थापन उत्पन्न कर दिया, जो आम जनता के हितों के विरूद्ध था। विस्थापन का अर्थ केवल कुछ लोगों का उजड़ना ही नहीं है, सैकड़ों साल की सम्पत्ति उजड़ जाती है, समाज टूट जाता है, परिवार टूट जाता है और हजारों साल की बसाहट छिन्न-भिन्न हो जाती है।

देश के अधिसंख्य क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बड़े-बड़े ताप, बिजली घर दानवाकार संयंत्र (कल-कारखाने) न्यूक्लीयर रियेक्टर और व्यावसायिक कम्प्लेक्स खड़े कर दिये। जिनके लिये भारी मात्रा में पानी की अनवरत आपूर्ति आवश्यक हो गयी। उनकी प्यास बुझाने के लिये बड़े बाँध जलाशयों, नदियों, नहरों आदि का पानी उनकी तरफ मोड़ दिया गया। जो पानी लोगों के प्यास बुझाने के लिये था, जिससे खेतों में फसलों की सिंचाई होती थी, यानि जो पानी आवाम की जीवनरेखा हुआ करती थी। वह कॉरपोरेट परियोजना को दिया जाने लगा। देश में पर्यावरण की स्थिति और बिगड़ गयी। कॉरपोरेट निर्मित सूखे के हालात बनते गये। खेती किसानी बर्बाद होती गयी। लोग पानी के लिये तरसने लगें।

श्री बनवारी लाल ने लिखा है कि जगतसिंहपुर क्षेत्र के आदिवासी किसान पोस्को प्लांट का विरोध करते रहें। इसमें पुलिस की गोली से दो लोग मारे भी गये। इतने विरोध के बाद भी पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 3100 एकड़ भूमि कम्पनी को देने की मंजूरी दे दी। गाँव के आदिवासी नहीं चाहते, पर्यावरण विशेषज्ञ नहीं चाहते, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भी नहीं चाहता, फिर भी कंपनी को हरी झण्डी मिल गयी। प्लांट लगाने में ऐसा क्यों हुआ? इसलिये कि देश में कॉरपोरेट कम्पनी का राज है।[5]

वास्तव में जिस प्रकार अंग्रेजों के राज्य उपनिवेशवाद के दौरान नीतिगत फैसले लंदन में होते थें और उसे लागू करने के लिये, यहाँ वायसराय एवं उनकी कॉउन्सिल बैठी थी। उसी तर्ज पर भारत में नीतिगत फैसले देशी-विदेशी कॉरपोरेट घराने लेते थें और उनका अनुपालन केन्द्र और राज्य सरकारें करती थीं।[6]

सबसे बड़ी चिन्ता की बात यह हुई कि चीनी, दाल की तरह पानी का भी निजीकरण हो गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की मदद से वर्ल्डवाटर फोरम, वर्ल्डवाटर कॉउन्सिल जैसे संगठन बनवाकर तथा उनका वार्षिक सम्मेलन कराकर पानी का निजीकरण कर दिया गया और पानी बोतलबन्द होकर बाजार में बिकने लगा।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक सार्थक कदम 1992 में रियोडिजेनेरो में सम्पन्न पृथ्वी सम्मेलन में उठाया गया। इस सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण के लिये सदस्य राष्ट्रों से हस्ताक्षर करावाये गये। इसमें 182 देशों ने भाग लिया। इसमें राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत 27 सिद्धान्तों की घोषणा की गयी। इसमें यह सहमति बनी कि किसी विशेष राष्ट्र में पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधन उस देश की निजी सम्पत्ति मानी जायेगी। यदि वह राष्ट्र वाणिज्यिक दोहन के लिये उसका प्रयोग करता है तो उस राष्ट्र को क्षतिपूर्ति देनी होगी। इस सन्धि के अन्तर्गत 1994 तथा 1995 में सदस्य राष्ट्रों ने एक प्रोटोकॉल तैयार किया, जिसे 29 जनवरी 2000 में पेरिस में 86 देशों का अनुमोदन प्राप्त हुआ। और यह 29 जनवरी 2000 से प्रभावी हुआ। यह समझौता उप-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर लगाम लगाता है, जो उत्पाद अन्य देशों को बिना किसी सुरक्षा जांच के बेचता है। प्रोटोकॉल के अनुसार यदि कोई राष्ट्र

नही समझता है कि किसी उत्पाद से पर्यावरणीय क्षति नही होती है तो वह इसके आयात पर रोक लगा सकता है। वैश्विक स्तर पर वनों के प्रबन्धन एवं विकास के लिये वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र वन मंच का गठन किया गया इसका प्रथम सम्मेलन वर्ष 2001 में न्यूयार्क में हुआ। प्रथम सम्मेलन में डब्लू0डब्लू0एफ0 द्वारा बड़े स्तनपायी जीव (बाघ, हाथी आदि) के संरक्षण के लिये वैली ऑफ प्रोजेक्ट की परिकल्पना की गयी। 1968 में गठित आई0यू0सी0एन0 विलुप्त प्रजातियाँ असुरक्षित एवं दुर्लभ प्रजातियों की एक सूची तैयार करती है, जिसे रेड डाटा बुक के नाम से जाना जाता है।

भारत में औद्योगिक प्रदूषण कम करने के लिये जनहित याचिकाओं के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने भी ऐतिहासिक फैसलें दिये हैं। देश में प्रदूषण फैलाने वाले 10000 से ज्यादा औद्योगिक इकाईयों पर सन् 1995 में न्यायपालिका का चाबुक पड़ा। सर्वोच्च न्यायालय और गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले के बाद वर्ष 1995-96 में दस हजार से ज्यादा उद्योगों को या तो बन्द कर दिया गया, या उन्हें चेतावनी दी गयी, या अन्यत्र जाने को कहा गया, या फिर प्रदूषण नियंत्रित करने को कहा गया।

1995 में प्रसिद्ध वकील एम0सी0 मेहता के अपील पर न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि जूता और ढलाई उद्योग से आगरा का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। अतः वहां पर्यावरण को बहाल करने के लिये इन उद्यागों को स्थानान्तरित किया जाये। फरवरी 1995 में कोलकाता के 30 बड़े उद्योगों को प्रदूषण कम करने के लिये तीन माह की मोहलत दी गयी। हावड़ा की 350 आयरन फाउन्ड्रियों को चेतावनी दी गयी और 538 चमड़ा इकाईयों को कोलकाता से बाहर जाने का आदेश दिया गया।

इस प्रकार भारत के न्यायपालिका ने भी पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में न्यायिक सक्रियता के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

1973 में जन जागरूकता के चलते पर्यावरण प्रदूषण को रोकने हेतु सुन्दरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में चिपको आन्दोलन चलाया गया, जिसमें गांव की महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस अन्दोलन में महिलायें पेड़ से चिपक कर पेड़ को काटने से रक्षा करती थीं। यह आन्दोलन भारत का सबसे लोकप्रिय एवं चर्चित पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन रहा। यह आन्दोलन देश के विभिन्न भागों में फैल गया। मुख्य रूप से कर्नाटक, महाराष्ट्र , हिमाचल प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों में यह आन्दोलन विभिन्न समयों में चलाया गया। यह आन्दोलन लोगों के सहयोग एवं सहभागिता से पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहा।[7]

संयुक्त राष्ट्र संघीय पर्यावरण के पूर्व महासचिव मुस्तफा कमाल तोहवा का कहना है कि वातावरण संरक्षण के बिना विकास नहीं हो सकता और बिना विकास के वतावरण संरक्षण नहीं हो सकता। अतः विकास ऐसे हों जो न केवल मानव समाज

की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करे, प्रत्युत स्थायी तौर पर भविष्य के लिये निर्बाध विकास का आधार तैयार करे। इसका उद्देश्य है कि मानव समाज की विद्यमान आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढ़ी की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति क्षमता को किसी प्रकार क्षति पहुंचाये बिना सुनिश्चित करना।

विकास तथा पर्यावरण दोनों अनिवार्य हैं। दोनों के पोषण में ही मानव कल्याणार्थ विकास की अवधारणा संरक्षित होती है। विनाश की कीमत पर विकास का कोई औचित्य नहीं। औद्योगिक संयत्रों की स्थापना हमारी आवश्यकता है। अतः ऐसी परियोजनायें और औद्योगिक संयत्र लगाते समय ऐसी तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिये जो प्रदूषणरोधी हो तथा पर्यावरण को हानि न पहुंचाये। इस संयत्रों में सभी प्रकार की प्रदूषणरोधी विधियाँ लगायी जाये तथा समय-समय पर उनके पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन के लिए निगरानी की जाये।

पर्यावरण के नाम पर विकास को तिलांजलि नहीं दी जा सकती। पर्यावरण के प्रति जागरूक रहते हुये विकास करना चाहिये। सूर्य ऊर्जा का स्रोत है। सौर ऊर्जा के उपयोग के प्रति सामान्य जनता को प्रेरित किया जाना चाहिये।

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा पर्यावरणीय चेतना और सामंजस्य का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति प्राकृतिक तत्वों (पादप जल स्रोत एवं जीव जन्तु) को कोई न कोई देवता या वाहन से सम्बन्धित कर उनकी पूजा के माध्यम से उनके संरक्षण की बात जन-जन में समाहित करती है। प्राचीन भारत में प्रकृति दैवीय सत्ता थी। पेड़, पौधे, नदी, समुन्द्र, वन, पर्वत, सूर्य, चन्द्रमा आदि हमारे देवता थें। प्रकृति, वन हमारे पूजनीय थे क्योंकि अन्न, जल, वायु, औषधियाँ आदि प्रकृत्ति से ही प्राप्त होती थीं। पीपल और तुलसी जैसे पेड़-पौधे इसीलिए देवता थें क्योंकि इनसे हमें सदैव प्राण वायु मिलती थी। अथर्ववेद किसी भी अध्यात्मिक परम्परा का प्रथम उदाहरण है, जहाँ पृथ्वी के प्रति सम्मान की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। पृथ्वी के लौकिक स्वरूप पर आधारित अथर्ववेद की प्रार्थना में कहा गया है– पृथ्वी हमें ऐसा पर्यावरण देती है जहाँ हम जीवित रह सकें, जब हम त्रुटि करते हैं तो प्राकृतिक आपदा के रूप में दण्ड देती है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार हमें अपने जननी के प्रति अनुदार एवं अकृतज्ञ नहीं होना चाहिये, उसका शोषण नहीं करना चाहिये, उस पर अत्याचार नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार पृथ्वी के प्रति भी हमें अपनी दृष्टि रखनी चाहिये। तैत्तिराण्यक में जोर देकर कहा गया है कि जल में न तो शौच करना चाहिए, न ही मूत्र त्याग, उसमें न तो थूकना चाहिये, न ही बिना वस्त्र के स्नान करना चाहिये।[8]

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति पर आधारित उपर्युक्त दृष्टि ही पर्यावरण हेतु नवीन सार्वभौमिक चेतना के रूप में स्वीकृत होनी चाहिये। तभी हमारी धरती पर

निवास कर रहे जीव, जन्तुओं एवं वनस्पतियों की रक्षा हो सकती है और पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति मिल सकती है।

संदर्भ

[1] कुरूक्षेत्र, 7 मई 2007, पृ0 7

[2] शुक्रवार, 14-20 अगस्त, 2010, पृ0 44

[3] राष्ट्रीय सहारा हस्तक्षेप, 31 मार्च 2012, पृ0 2

[4] ए0आई0आर0, 1991, सुप्रीम कोर्ट, पृ0 420

[5] नई आजादी, जून 2011

[6] नई आजादी, मई 2011, पृ0 11

[7] देखें कुरूक्षेत्र, मई 2007, पृ0 25-26

[8] 9-1.28.5.7

पर्यावरण-संरक्षण

मदन गोपाल सिन्हा

lkjk'k *पर्यावरण का अस्वास्थ्यकर हो जाना ही पर्यावरण-प्रदूषण है। पर्यावरण-सरंक्षण आज सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। पर्यावरण का स्वच्छ होना जीव-जन्तु, जड़-चेतन, सबके लिए आवश्यक है। इसका प्रदूषित होना सबके लिए हानिकारक है। जनसंख्या-वृद्धि एवं विलासितापूर्ण जीवन-शैली के चलते पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है। जल, वायु, ध्वनि, मृदा, समुद्र इत्यादि सभी खतरनाक स्थिति तक प्रदूषित हो चुके हैं। उष्मा-प्रदूषण, नाभिकीय-प्रदूषण, वैचारिक-प्रदूषण इत्यादि भी चरम सीमा पर है। जैव-विविधता नष्ट हो रही है। 'ग्लोबल वार्मिंग' और तेजाबी बरसात से समस्या और भी भयावह हो गयी है। विकास के लिए बनाए गए बड़े-बड़े बाँध भी पर्यावरण-प्रदूषण को बढ़ा रहे हैं। ओज़ोन परत क्षयग्रस्त है। भूमिगत जल भी प्रदूषित हो रहा है। वन कटते जा रहे हैं। रेगिस्तान बढ़ते जा रहे हैं। पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग में तीव्र वृद्धि जारी है। पहाड़ कम होते जा रहे हैं। 'वर्षा जल संरक्षण' उपेक्षित है।' 'ठोस अपशिष्ट प्रबंधन व्यवस्था' लचर है। नदियाँ, नालों में तब्दील हो गयी हैं। ग्लेशियर पिघलते जा रहे हैं एवं नैतिकता का ह्रासमान है। ऐसी स्थिति में सबको चिन्तित होना चाहिए। जनसंख्या को सीमित करना और 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' के सिद्धांत को अपनाना पर्यावरण-सरंक्षण के लिए निर्विकल्प है। इसमें नियामकीय संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण साबित होगी।*

प्रस्तावना

आज पर्यावरण-प्रदूषण सोचनीय स्थिति तक पहुँच गया है। पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को अंगरेजी में *इकोलॉजी एण्ड एनवयारनमेण्ट* कहा जाता है। ऑक्सफोर्ड इंगलिश शब्दकोश के अनुसार, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, मनुष्यों तथा इनके निवास स्थानों का पारस्परिक सम्बन्ध या इनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन इकोलॉजी है और वनस्पतियों, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों के निवास स्थानों तथा स्थितियों-परिस्थितियों को *एनवायरनमेण्ट* की संज्ञा दी जाती है। वैसे, व्यापक अर्थ में *इकोलॉजी* और *एनवायरनमेण्ट* शब्दों का समान अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है। पारिस्थितिकी वह

विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत सभी जीवों तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य अन्तरसम्बन्धों तथा विभिन्न जीवों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

पर्यावरण चतुर्दिक घेरे हुए उन तत्वों का योग है, जो किसी जीवधारी को प्रभावित करते हैं। मनुष्य प्रकृति की गोद में जन्म लेता है और प्रकृति के अनेक तत्वों के साहचर्य से जीवन्त रहता है। हमारे चारों ओर प्रकृति के व्याप्त तत्व पर्यावरण का सृजन करते हैं। इन प्राकृतिक तत्वों का उपयोग कर मानव सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण करता है। मानव को उत्प्रेरक मूलभूत तत्व प्राकृतिक पर्यावरण से ही प्राप्त होते हैं। पर्यावरण के दो भाग हो जाते हैं– प्राकृतिक-पर्यावरण और मानव-निर्मित पर्यावरण। मानव, प्राकृतिक पर्यावरण में रहते हुए अनेकानेक अनुक्रियायें करता है। ये अनुक्रियायें ही सांस्कृतिक पर्यावरण को जन्म देती हैं। प्राकृतिक पर्यावरण में मानव-निर्मित पर्यावरण की अभिकल्पना समन्वित हो जाती है और 'पर्यावरण' शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक हो जाता है। मनुष्य और प्रकृति, दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण में यद्यपि अनेक तत्व शामिल हैं लेकिन उनमें दो प्रमुख हैं– जल और वायु। इन्हें ही सामूहिक रूप से जलवायु कहा जाता है। जलवायु का महत्व इतना अधिक है कि सामान्यतया जलवायु को प्राकृतिक पर्यावरण का समरूप एवं समानार्थक मान लिया गया है। जल और वायु सृष्टि के आधार हैं। जल और वायु के अभाव में जीवन संभव नहीं है। ये सभी जीवधारियों के जन्म और विकास के लिए अनिवार्य हैं। जिस ग्रह, उपग्रह पर जल और वायु नही हैं, वहाँ जीवन भी नहीं हैं। अभी तक हमें जितने ग्रहों-उपग्रहों की जानकारी है, उनमें सिर्फ पृथ्वी पर ही जीवन है।

जलवायु का सन्तुलित और स्वास्थ्यकर होना आवश्यक है। प्रकृति अपने ढंग से सन्तुलन कायम करने का प्रयास करती रहती है, लेकिन मनुष्यों के अविवेकपूर्ण निर्णयों के चलते असन्तुलन बढ़ता जाता है, जो अनेक समस्याओं को जन्म देता है।

इस प्राकृतिक असन्तुलन का ही दूसरा नाम प्रदूषण है। मानवीय हस्तक्षेप से जब प्रकृति के किसी एक घटक की मात्रा निश्चित मानकों से कम या अधिक हो जाती है, तो प्रकृति में असन्तुलन पैदा होता है, जिसे प्रदूषण कहा जाता है। प्रदूषण, वायु, जल एवं स्थल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं का वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य और उसके लिये लाभदायक दूसरे जन्तुओं, पौधों, औद्योगिक संस्थानों तथा दूसरे कच्चे माल इत्यादि को किसी भी रूप में हानि पहुँचाता है। पृथ्वी पर प्रदूषण कब, क्यों और कैसे प्रारंभ हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचार एक समान नहीं है। फिर भी, सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि इसके प्रमुख कारण जनसंख्या-वृद्धि, जीवन-शैली में परिवर्तन और मनुष्य के लोभ का बढ़ते जाना है। इन कारणों से जंगल कटते गए, नगर बसते गए, औद्योगिकीकरण बढ़ता गया और परिणामस्वरूप प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक परिवर्तन हुए। आर्थिक समृद्धि एवं रहन-सहन के साथ छीजनों की वृद्धि होती गयी। ऊर्जा के उपयोग से जैव ईंधनों का दहन प्रारंभ हो गया। औद्योगिक एवं नगरीय मल-जल नदियों में विसर्जित होने लगे। फलतः जल एवं वायु में अवांछित पदार्थ मिलने लगे, जिससे शुद्ध जल एवं प्राण-वायु का अभाव होने लगा। विविध कृषि एवं औद्योगिक क्रियाकलापों के कारण मृदा में भी अवांछित तत्व पाये जाने लगे हैं, जो मानव एवं जैव-जगत के लिए हानिकारक हैं। प्रदूषण एक अवांछनीय स्थिति है, जिसमें रासायनिक, भौतिक एवं जैविक परिवर्तनों से जल, वायु, मिट्टी इत्यादि के स्वाभाविक गुण समाप्त होने लगते हैं तथा जैव एवं वनस्पति जगत पर उसका हानिकारक प्रभाव दृष्टिगत् होने लगता है। वस्तुतः प्रदूषण एक असामान्य वातावरणीय स्थिति है।

प्रकृति में प्रदूषण को नियंत्रित करने की प्रक्रिया भी चलती रहती है लेकिन इसकी एक सीमा है। प्रकृति के विभिन्न घटकों में एक-दूसरे में होने वाले परिवर्तनों को समायोजित कर लेने की क्षमता होती है। किन्तु अत्यन्त बड़े परिवर्तन पारिस्थितिकी-तंत्र का सन्तुलन बिगाड़ देते हैं। इससे विभिन्न घटकों का एक-दूसरे पर नियंत्रण व अवरोध समाप्त हो जाता है। फलतः प्रदूषण की स्थिति सामने आती है।

जल, स्थल और वायु के भौतिक, रासायनिक अथवा जैव लक्षणों में अनिच्छित तथा अवांछित परिवर्तन, प्रदूषण है। प्रदूषण, जीवधारियों के साथ ही निर्वाह की दशाओं, पर्यावरण, कच्चे पदार्थ इत्यादि को भी अत्यधिक हानि पहुँचाता है।

पर्यावरण-प्रदूषण को पहले राष्ट्र स्तर पर ही देखा जाता था लेकिन पिछले कई दशकों से इसका स्वरूप विश्वव्यापी हो गया है। परम्परागत अन्तरराष्ट्रीय कानून में पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या पर ज्यादा चिन्तन नहीं किया गया था। फिर भी यह माना जाता था कि किसी राज्य के कार्यकलापों से अन्य राज्यों को कोई क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। इस क्षति में पर्यावरण-प्रदूषण भी शामिल है। तात्पर्य यह कि अन्तराष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य - क्षेत्र में कोई वैसा कार्य न करे, जिससे सीमा के बाहर पर्यावरण की क्षति हो।

प्रदूषण-मुक्त, जल-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, नाभिकीय-प्रदूषण, प्रकाश-प्रदूषण इत्यादि की स्थिति भयावह है। बढ़ते ई-वेस्ट एवं अन्य ठोस-अपशिष्ट समस्या को और दुरूह कर रहे हैं।

वायु के दूषित होने की प्रक्रिया वायु-प्रदूषण कहलाती है। वायुमण्डल में विभिन्न गैसें एक निश्चित मात्रा एवं अनुपात में उपस्थित रहती हैं। जब किसी कारणवश वायु के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो इसका मौलिक सन्तुलन बिगड़ जाता है, जो सबके लिए हानिकर है। इस तरह, किसी कारणवश वायु की भौतिक-रासायनिक संरचना में गड़बड़ी आ जाए तो पारिभाषिक दृष्टि से कहा जाएगा

कि वायु प्रदूषित हो गयी है। वायुमण्डल में अवांछित एवं हानिकरक गैसों की मात्रा और अनुपात में वृद्धि और प्राणवायु की मात्रा और अनुपात में कमी वायु-प्रदूषण है। एच. पार्किन्स के अनुसार ''वायु-प्रदूषण का तात्पर्य उसमें सीमा से अधिक धूल, गैस, धुआँ, कोहरा एवं वाष्प की उपस्थिति है, जो जैव-जगत के लिए हानिकारक साबित हो तथा उससे जीवन की प्रसन्नता एवं सम्पत्ति की क्षति हो''। वायु-प्रदूषण वातावरण में अतिरिक्त पदार्थ या गैसों की उपस्थिति के कारण होता है। बढ़ती जनसंख्या, ईंधन का बढ़ता उपयोग, जेनरेटर, कल कारखाने, कीटनाशकों का प्रयोग, शवदाह, मोटर गाड़ियों का बढ़ता प्रयोग, धूम्रपान, हवन इत्यादि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

वायु प्रदूषण से साँस सम्बन्धी बीमारियाँ बढ़ेगी, रक्त में हीमोग्लोबिन की की होगी, आँखों में जलन की समस्या उत्पन्न होगी, चर्म रोग, तेजाबी बारिश, ओज़ोन परत की क्षति, इमारतों का क्षय, वैश्विक तापन इत्यादि समस्याएँ बढ़ेगी।

इसी तरह सम्पूर्ण विश्व में जल के अभाव के साथ ही, उपलब्ध जल के प्रदूषित होने की भी समस्या है। कम या अधिक, जल के लगभग सभी स्रोत प्रदूषित हो चुके हैं। नदियों, महासागर, धरती के भीतर का जल, वर्षा का जल, सभी प्रदूषित हैं और प्रदूषण का स्तर चिन्ताजनक हैं

जल में कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ अथवा जैव पदार्थ के बढ़ने से जल के भौतिक लक्षण और रासायनिक गुण बदल जाते हैं। जैविक तत्वों में सूक्ष्म बैक्टीरिया एवं विषाणु बढ़ जाते हैं। भौतिक प्रदूषण में धूल तथा गन्दगी के कारण जल के रंग, स्वाद एवं गंध में परिवर्तन हो जाता है। रासायनिक अपद्रव्यों के कारण भी जल प्रदूषित हो जाता है। प्रदूषित जल गुणात्मक दृष्टि से कम उपयोगी होता है। प्रदूषित जल पीने योग्य नहीं रह जाता है। अधिक प्रदूषित होने पर जल स्नान करने योग्य और सिंचाई करने योग्य भी नहीं रह जाता है। प्रदूषित जल स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है। जल-प्रदूषण के लिए भी मानवीय गतिविधियाँ ही जिम्मेदार हैं। जल-प्रदूषण की समस्या पहले बहुत कम थी लेकिन वर्तमान समय में प्रदूषण का स्तर काफी अधिक है और अभी भी बढ़ता जा रहा है।

नालियों के पानी का नदियों में मिलना, डिटरजेण्ट पाऊडर एवं साबुन का बढ़ता प्रयोग, नदियों में शव बहाना, रासायनिक खाद एवं कीटनाशक, मलमूत्र, तेजाबी बारिश इत्यादि जल-प्रदूषण के कारण हैं। जल-प्रदूषण से जलीय जीवों को क्षति पहुँचती है, मतस्य उत्पादन में कमी आती है, पेयजल की कमी होती है तथा प्रदूषित जलजनित बीमारियाँ बढ़ती है। जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण, एक-दूसरे को बढ़ाते हैं।

इसी तरह, ध्वनि भी प्रदूषित होती जा रही है। ध्वनि, ऊर्जा का एक रूप है। ध्वनि मधुर हो तो कर्णप्रिय और सुखकर होगी। लेकिन तीखी ध्वनि या आवाज, जिसे शोर कहा जाता है, कर्ण कटु और मन की एकाग्रता भंग करने वाली होती है। ध्वनि-

प्रदूषण शहरों में अधिक है। इसके अलावा, ध्वनि-प्रदूषण की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है, लेकिन कुल मिलाकर यह निरन्तर बढ़ रही है। ध्वनि-प्रदूषण अवांछनीय है। ध्वनि-प्रदूषण, शोर अर्थात् अवांछनीय ध्वनियों का परिणाम है। यह आधुनिक नगरीय सभ्यता को आक्रांत करने के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रहा है। शोर की तीव्रता मापने के लिए डेसीबेल इकाई का प्रयोग किया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सुरक्षा की दृष्टि से दिन में 55 और रात में 45 डेसीबेल मानक निर्धारित किया है। हमारे महानगरों में ध्वनि का दाब इस मानक से बहुत अधिक है। कारखानों की मशीनें, तेज गति से चलने वाले वाहन, हॉर्न, हवाई जहाज, ध्वनि विस्तारक यंत्र, पॉप म्यूजिक इत्यादि ध्वनि-प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। चौराहों, बाजारों, रेलवे स्टेशनों, मण्डियों, शेयर बाजारों, मछली बाजारों इत्यादि में ध्वनि-प्रदूषण सर्वाधिक होता है। ध्वनि-प्रदूषण से मन की एकाग्रता और सुनने की क्षमता का ह्रास होता है तथा मनुष्य अनिद्रा, थकान और उच्च रक्तचाप का शिकार होने लगता है। अध्येताओं का कहना है कि महानगरों में ध्वनि-प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। यदि ध्वनि-प्रदूषण को नियंत्रित नहीं किया जाता है तो आने वाले वर्षों में बहरे लोगों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी। साइलेंसरों का प्रयोग, जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण, ध्वनि विस्तारक यंत्रों का सीमित प्रयोग, स्पष्ट एवं प्रभावी कानून, जनजागरूकता इत्यादि ध्वनि-प्रदूषण को सीमित करने में सहायक हो सकते हैं।

मृदा-प्रदूषण की स्थिति भी गम्भीर होती जा रही है। मृदा-प्रदूषण भी मानव के क्रियाकलापों का ही प्रतिफल है। मृदा-प्रदूषण का अर्थ है मिट्टी की गुणवत्ता का ह्रास। इसके अनेक कारण है। जैसे-जैसे धरती पर जनसंख्या बढ़ती जा रही है, पृथ्वी उसके बोझ से दबती जा रही है। बस्तियाँ बसाने, सड़कें बनाने, उद्योग लगाने और खेती का विस्तार करने के लिए जंगल काटे जा रहे हैं। पहाड़ वीरान होने लगे हैं, वृक्षों की शीतल छाया धीरे-धीरे सिमटने लगी है तथा स्थान-स्थान पर कटाव और जल भराव की स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं। बढ़ती आबादी के पोषण हेतु खाद्यान्न-उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से हरित क्रान्ति हुई। परम्परागत खाद के स्थान पर रासायनिक खादों का प्रयोग बढ़ता गया। इससे उपज तो बढ़ी लेकिन मिट्टी की स्वाभाविक शक्ति को हानि पहुँची और उपजाऊ शक्ति कम हुई। इसके अलावा, कीटनाशकों के प्रयोग के कारण पौधों तथा अन्न की तो रक्षा हुई लेकिन इस जहर से मिट्टी और अन्न की गुणवत्ता भी प्रभावित हुई। इस तरह, विकास और विनाश साथ-साथ हुए। रासायनिक खादों तथा रोगनाशक एवं कीटनाशक दवाओं के बढ़ते प्रयोग ने भूमि-प्रदूषण को जन्म दिया। यही कारण है कि अनेक राष्ट्रों में डी.डी.टी. जैसे पदार्थों का उपयोग बन्द कर दिया गया है। इसके अलावा नगरीय कूड़ा-करकट, औद्योगिक अपशिष्ट, खनिज उत्खनन आदि के कारण भी मिट्टी की गुणवत्ता में ह्रास हुआ है। तेजाबी बारिश से मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है। तेज बारिश से मिट्टी की

ऊपरी सतह का क्षरण होता है, जिससे मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में कमी आती है। वास्तव में, मिट्टी की ऊपरी सतह ही उपजाऊ होती है। परिणामस्वरूप रासायनिक खादों का प्रयोग और बढ़ाना पड़ता है।

मृदा में मिले रसायन खाद्य-श्रृंखला के माध्यम से मानव-जीवन का प्रभावित करते हैं। मृदा-प्रदूषण से फसलों की वृद्धि कम होती है। पेड़ों के कटने से भी मृदा-प्रदूषण बढ़ता है।

यूरेनियम, थोरियम के खनन के समय नाभिकीय प्रदूषण होता है। परमाणु संयत्र में प्रयुक्त रेडियोधर्मी छड़ों के विघटन से प्रदूषण उत्पन्न होता है। नाभिकीय शस्त्र-अस्त्र के कारण नाभिकीय प्रदूषण का संकट उपस्थित होता है। विद्युत ऊर्जा के उत्पादन के लिए निर्मित नाभिकीय संयंत्र भी समस्यामूलक हैं। इनमें विस्फोट एवं दुर्घटना की सम्भावना बनी रहती है। दुर्घटनाओं के कारण विकिरण प्रभाव से पर्यावरण एवं जीवन जगत पर निश्चित ही कुप्रभाव पड़ेगा। विश्व में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं। ये घटनाएँ कैंसर को बढ़ावा देती हैं।

अभी तक परमाणु अपशिष्ट के निस्तारण की उपयुक्त प्रविधि विकसित नहीं की जा सकी है। यह भी प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। यदि किन्हीं कारणों से ये वातावरण को प्रभावित कर पाए तो अपार क्षति होगी। यदि भूमि के अन्दर रिसाव हो गया तो भूमिगत जल विषाक्त हो जाएगा।

नगरीकरण एवं औद्योगिकीकरण तथा जनसंख्या-वृद्धि के फलस्वरूप ठोस अपशिष्ट पदार्थ बड़ी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। ये पर्यावरण के लिए हानिकारक तथा मानव एवं जीव जगत के लिए भी समस्यामूलक होते हैं। हमारे देश में 400 ग्राम ठोस अपशिष्ट प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उत्पन्न होता है। इसमें बालू, मिट्टी, कागज, दफ्ती, चीनी मिट्टी की गुणवत्ता को कम करते हैं। ये दुर्गंध उत्पन्न करते हैं, भू-जल रिसाव में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा खाद्य-श्रृंखला के माध्यम से शरीर में पहुँचकर अनेक रोग उत्पन्न करते हैं।

ठोस अपशिष्ट, जैसे– कागज, रबर, प्लास्टिक, टिन, शीशा इत्यादि अपघटित नहीं होते हैं और न ही इनका प्राकृतिक पुनरचक्रण होता है। कूड़े के रूप में निकले ये पदार्थ समस्या-मूलक एवं प्रदूषण फैलानेवाले होते हैं।

ई-वेस्ट, यानि इलेक्ट्रानिक कूड़ा-कबाड़ से आज पूरी दुनिया में एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई है। साइबर क्रांति की देन ई-वेस्ट पर्यावरण के लिए गंदे पानी, रसायन इत्यादि से ज्यादा खतरनाक है। विकसित देश अपने ई-जंक को विकासशील एवं गरीब देशों में खपा रहे हैं, इससे वहाँ के वातावरण के लिए खतरा पैदा हो गया है। साइबर क्रांति की इस दौड़ में हम भी काफी तेजी से दौड़ रहे हैं, लेकिन अब जरूरत है इस खतरे की तरफ ध्यान देने की यानि इलेक्ट्रानिक प्रदूषण से बचाव

की। आई.टी. के क्षेत्र में हो रही दिन दूनी-रात चौगुनी तरक्की यों तो कल्याणकारी है परंतु इसने एक तकनीकी और व्यावहारिक समस्या भी खड़ी कर दी है। यह परेशानी है पुराने कम्प्यूटरों के बढ़ते अंबार की। दरअसल बाजार में हर रोज नई-नई खूबियों और ज्यादा से ज्यादा मैमोरी वाले कम्प्यूटर के आ धमकने से ज्यादा पुराने कम्प्यूटरों को लोग यों त्याग रहे हैं जैसे पुराने कपड़े। मजे की बात यह है कि लाख ढूंढ़ने पर भी इन पुराने कम्प्यूटरों के खरीदार नहीं मिलते, इसलिए पश्चिमी देशों में लोग मजबूर होकर इन्हें कूड़े-कचरे के ढेर के हवाले कर देते हैं या फिर फूँकने के लिए आधुनिक संयंत्रों को सौंप देते हैं। परंतु पुराने कम्प्यूटरों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कई धातुएं मौजूद होती हैं, जैसे– लैड या सीसा, कैडमियम, मरकरी या पारा आदि। अमेरिका की पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी ने कम्प्यूटरों के कबाड़ को एक तेजी से उभरता हुआ पर्यावरणीय खतरा बताया है। विशेषज्ञों के अनुसार यदि हर साल रिटायर होने वाले कम्प्यूटरों को ढेर की शक्ल में खड़ा किया जाए तो शायद इसकी ऊँचाई एवरेस्ट पर्वत को चुनौती देने लगे।

प्रकाश-प्रदूषण भी एक समस्या है का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है। प्रकाश बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन उसके साथ ही रात भी महत्वपूर्ण है। रात को नींद से गहरा सम्बन्ध है। बिजली का उत्पादन बढ़ रहा है, यह आवश्यक भी है। लेकिन यह महत्वपूर्ण राष्ट्र में या सम्पूर्ण विश्व में असन्तुलित रूप में हो रहा है। इसमें सन्तुलन आवश्यक है। इसके अलावा बहुत से वैसे भी स्थान हैं, जहाँ चौबीस घंटे कृत्रिम रोशनी की व्यवस्था है। एक ऐसा समय भी आएगा, जब बिजली का उत्पादन, प्रकाश की उपलब्धता अत्यधिक हो जाएगी। इससे प्राकृतिक व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी। वैज्ञानिक प्रगति से अब यह भी सम्भव हो रहा है कि सूर्य की किरणों को परावर्तित करके उन क्षेत्रों को प्रकाशित किया जाए, जहाँ उस समय रात हो। एक समय ऐसा भी आएगा जब रात का अस्तित्व ही समाप्त होने लगेगा। इससे वैश्विक तापमान की समस्या तो बढ़ेगी ही, लोग अनिद्रा के भी शिकार होंगे। एक ऐसा भी समय आएगा कि हम भूल जाएंगे कि यह सोने का समय है या जगे रहने का। हमारी पूरी दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाएगी। सब कुछ अनियिमित हो जाएगा। हम दिन, महीने, वर्ष इत्यादि भूलने लगेंगे।

इस अति को रोकना होगा। एक निश्चित सीमा के बाद बिजली का उत्पादन रोकना होगा। हमें प्रकृति को परास्त नहीं करना है, बल्कि उसके साथ चलना है। हमें अनियोजित विकास से बचना होगा सुनियोजित विकास ही उपयोगी होता है।

पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या से लगभग सभी राष्ट्र कम या अधिक प्रभावित हैं। इसके लिए अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलन हुए, समझौते हुए लेकिन कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इस दिशा में ठोस कार्यक्रम बनाकर प्रयास करने की आवश्यकता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 48 (क) में उल्लेख है कि ''राज्य देश के पर्यावरण-संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा वनों एवं वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा''। संविधान के अनुच्छेद 51 (छ) में यह उल्लेख है कि ''प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है, रक्षा करे और उसका संवर्द्धन करे तथा सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखें''।

भारत सहित विश्व के अधिकांश राष्ट्र पिछड़े हुए ही हैं। इन्हें तीव्र आर्थिक विकास भी करना है और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखना है। सबकी आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने तथा लोगों का जीवन-स्तर सुधारने के लिए औद्योगिकीकरण तथा मशीनीकरण आवश्यक है। कृषि में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के प्रयोग से आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी है, लेकिन साथ ही पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या भी उत्पन्न हुई है। कल-कारखानों तथा वाहनों से निकलने वाली गैसों से वायु-प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। उद्योगों, अस्पतालों, बस्तियों इत्यादि का गन्दा पानी नदियों में बहा देने से जल-प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो रही है। वाहनों, उद्योगों और ध्वनि विस्तारक यंत्रों के बढ़ते प्रयोग के चलते ध्वनि-प्रदूषण की समस्या पैदा हो रही है। इसी तरह, रेडियोधर्मी पदार्थों की क्रियाशीलता रेडियोएक्टिव-प्रदूषण फैला रही है।

उपर्युक्त प्रदूषण सभी जीवधारियों के लिए हानिकारक हैं। पर्यावरण-प्रदूषण को तीव्र आर्थिक विकास का साइड इफेक्ट कहा जा सकता है। यदि हमें तीव्र आर्थिक विकास चाहिये तो उसके साइड इफेक्ट को झेलने के लिए भी तैयार रहना होगा। लेकिन पर्यावरण-प्रदूषण को कम करने को लिए प्रयास अवश्य किया जा सकता है। आर्थिक विकास की गाड़ी को पीछे मोड़ना न तो सम्भव है और न उचित ही। अतः प्रदूषण कम करने के उपायों पर ही विचार किया जाना चाहिए।

लगभग सभी विकसित और विकासशील राष्ट्रों में पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास हो रहे हैं और इसके लिए अनेक नियामकीय संस्थाएँ भी बनाई गई हैं। भारत में भी अनेक नियामकीय संगठन कार्यरत् हैं, इनमें 'केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' विशेष उल्लेखनीय है।

नियामकीय संस्थाएँ सरकारी संरचना द्वारा कायम की गई संस्थाएँ हैं, जिन्हें विधायन, क्रियान्वयन एवं न्यायिक अधिकार भी प्राप्त हैं। नियामकीय संस्थाएँ मुख्य रूप से दो कार्य करती हैं– नियम बनाना और उस नियम को प्रभावी तरीके से लागू करना। पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी नियामकीय संस्थाएँ पर्यावरण की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य की रक्षा में अहम भूमिका निभाती हैं। यह प्राकृतिक स्रोतों के गलत उपयोग तथा हाशिए के समुदायों की रक्षा करती हैं। इनके कुछ प्रमुख कार्य हैं– औद्योगिक परियोजना को स्वीकृति प्रदान करना, उसका पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है, इसका

मूल्यांकन करना इत्यादि। नियामकीय संस्थाएँ केन्द्र सरकार भी गठित कर सकती है और राज्य सरकारें भी।

पर्यावरण-संरक्षण के लिए निम्नलिखित कार्य युद्ध-स्तर पर किए जाने चाहिए–

- जनसंख्या को बढ़ने से रोकने के साथ ही, जिन राष्ट्रों में जनसंख्या बहुत अधिक है, वहाँ जनसंख्या-वृद्धि को ऋणात्मक करना है। इसके लिए उन राष्ट्रों में 'एक दम्पती-एक बच्चा' का सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए।
- बहुत से अत्यन्त पिछड़े राष्ट्र हैं, जहाँ जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। विकसित राष्ट्रों का यह कर्तव्य है कि वे उन राष्ट्रों में आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ और बदले में उन राष्ट्रों को जनसंख्या को बढ़ने से रोकने के लिए प्रेरित करें।
- वैज्ञानिक प्रगति के चलते अब कम जमीन में खेती करके भी अधिक अनाज उत्पन्न किया जा सकता है, अतः वन-क्षेत्र का विस्तार किया जाए और रासायनिक खाद एवं कीटनाशक के स्थान पर कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद तथा प्राकृतिक कीटनाशकों का प्रयोग किया जाए।
- हमें विलासितापूर्ण जीवन-शैली का परित्याग करना होगा। फ्रीज, एयर कण्डीशनर एवं मोटरगाड़ियों का अनावश्यक प्रयोग रोकना होगा।
- शव-दाह के लिए विद्युत-संयंत्रों की व्यापक स्तर पर व्यवस्था की जाए ताकि लकड़ी का प्रयोग कम हो और पेड़ों का कटना रुके।
- जलाशयों में बहाए जाने वाले गन्दे पानी को पहले ही शोधित कर लिया जाए और इससे प्राप्त कचरे का प्रयोग विभिन्न उत्पादक कार्यों के लिए किया जाए।
- वर्षा जल-संरक्षण की व्यापक व्यवस्था हो ताकि बाढ़ भी रोकी जा सके और भूजल-स्तर को भी और गिरने से रोककर ऊपर लाया जा सके।
- मोबाइल फोन का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही किया जाए। हमें इसका आदती होने से बचना होगा। इसकी लत अत्यन्त बुरी और घातक है। हमें उसे अपने वश में रखना है, उसके वश में नहीं होना है।
- जलाशयों में जमी गाद और कचरे को निकाल कर उसका विभिन्न उत्पादक कार्यों में उपयोग किया जाए।
- खेती की नई तकनीकों के इस्तेमाल से कृषि कार्य में जल की खपत कम करने पर विशेष बल दिया जाए।
- सौर ऊर्जा का तीव्र विस्तार और विकास हो ताकि थर्मल पावर, जल विद्युत एवं पेट्रोलियम पदार्थों पर निर्भरता कम की जा सके।

- समुद्र के जल को पीने योग्य बनाने का कार्य व्यापक स्तर पर किया जाए। इससे समुद्र के जल के स्तर पर बढ़ना रुकेगा, धरती के नीचे के जल के स्तर पर नीचे गिरना भी रुकेगा और नमक के उत्पादन के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भूमि भी बचायी जा सकेगी और उसकी गुणवत्ता में सुधार किया जा सकेगा।
- परमाणु-अस्त्रों को एक योजनाबद्ध कार्यक्रम के तहत निष्क्रिय कर दिया जाए और भविष्य में इन अस्त्रों का परीक्षण-निर्माण न हो।
- धूम्रपान को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
- हमें यह समझना चाहिए कि पूजा करने का सम्बन्ध हमारे अन्तःकरण से है, अतः उस अवसर पर हवन, अगरबत्ती जलाने इत्यादि को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
- विभिन्न कार्यों के लिए नई तकनीकों का विकास तीव्र गति से किया जाना चाहिए, इससे ऊर्जा की खपत घटेगी और जलवायु की गुणवत्ता में सुधार होगा।
- जानवरों को जलाशयों में प्रवेश कराकर स्नान न कराकर बाहर खड़ा करके स्नान कराना चाहिए। नदियों में बिना जले या अधजले शवों का प्रवाह रोक दिया जाना चाहिए।
- खटारा गाड़ियों का सड़कों पर चलना रोक दिया जाना चाहिए। लाउडस्पीकर के अनावश्यक प्रयोग को रोकना भी आवश्यक है। रेडियो, टेलिविजन, म्यूजिक इत्यादि की ध्वनि के स्तर को न्यूनतम रखा जाना चाहिए।
- समुद्र के रास्ते पेट्रोलियम पदार्थों की ढुलाई व्यापक स्तर पर होती है। इसमें तेल का धीमा बहाव होता रहता है। तकनीकी विकास से तेल के बहाव-रिसाव को कम करके तेल की बचत भी की जा सकती है और समुद्र के प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।
- महिलाओं की शिक्षा एवं सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इससे समाज प्रगतिशील बनेगा और जनसंख्या का बढ़ना भी रुकेगा।
- हमें सम्पूर्ण विश्व में और विशेष रूप से अपने देश में बढ़ती आर्थिक असमानता को न्यूनतम स्तर पर लाने के प्रयास युद्ध-स्तर पर करने होंगे। भारत में लगभग पाँच करोड़ नवयुवक-नवयुवतियाँ ठीक से पढ़ी-लिखी होकर भी बेरोजगार हैं, हमें इन्हें स्थाई रूप से सरकारी सेवा में लेने का प्रयास करना होगा। एक सफाई कर्मचारी का वेतन प्रतिमाह पन्द्रह हजार रुपये और राष्ट्रपति का वेतन एक लाख रुपये प्रतिमाह करके और अन्य श्रेणियों के कर्मचारियों/अधिकारियों को इनके बीच में रखकर ऐसा करना

सम्भव है। अवकाश प्राप्त करने की अधिकतम आयु को भी कम किया जा सकता है।

- इसी तरह सभी प्रकार की सब्सिडीज़ का समाप्त कर दिया जाए, दो लाख रुपये प्रति वर्ष से कम आय वाले सभी परिवारों को प्रति माह न्यूनतम दो हजार, प्रत्येक विकलांग को प्रति माह न्यूनतम एक हजार रुपये, विशेष विकलांग को प्रति माह दो हजार रुपये, वैसे वरिष्ठ नागरिकों को जिन्हें सरकार से सम्मानजनक पेंशन नहीं मिलती है, प्रति माह न्यूनतम एक हजार रुपये और अति वृद्ध नागरिकों को न्यूनतम दो हजार रुपये प्रति माह 'गुजारा भत्ता' के रूप में दिया जाए। इससे आर्थिक असमानता भी कम होगी और भ्रष्टाचार में भी कमी आएगी।
- बहुत-सी वाहन निर्माता कम्पनियाँ मूल्य कम रखने के लिए ऐसे वाहनों का निर्माण करती हैं, जो पर्यावरण-मानकों पर खरा नहीं उतरते हैं। इसे रोका जाना चाहिए।
- सड़कों की स्थिति में सुधार करके जाम की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। सड़क जाम के चलते लगभग एक प्रतिशत पेट्रोलियम पदार्थ बर्बाद होता है और प्रदूषण भी बढ़ता है।
- महात्मा गांधी के आर्थिक चिन्तन पर अमल करना भी पर्यावरण संरक्षण में सहायक होगा। गांधीजी चाहते थे कि अपनी आवश्यकताओं को अनावश्यक रूप से न बढ़ाएँ। प्रकृति सबकी प्रमुख आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है लेकिन वह एक व्यक्ति के भी लोभ को पूरा करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि लोभ की कोई सीमा नहीं होती है।
- पाकड़-पीपल-वट, वे वृक्ष हैं, जो तेजी से बढ़ते हैं और प्रदूषण दूर करने में सबसे अधिक सहायक हो सकते हैं। जमीन की कमी के चलते पर्यावरणविद्, लोगों को सुझाव देते हैं कि लोग गमलों में ये पौधे लगाकर अपनी छतों पर रखें। इसमें जमीन की कमी की समस्या सामने नहीं आएगी। पीपल-पाकड़-वट की छोटी प्रजातियाँ तैयार होंगी और उन्हें गमलों में लगाया जाएगा। इन वृक्षों की जड़ें जमीन में अधिक गहराई तक नहीं जाती हैं, बल्कि कुछ ही नीचे जाकर आस-पास फैलने लगती हैं। गमलों में पीपल-पाकड़-वट के पौधे लगाकर गमले छतों पर रखे जाएंगे। जैसे ही गमलों में इनकी जड़ें मिट्टी के बाहर दिखाई देंगी, उन्हें काट दिया जाएगा। इससे पौधे बहुत अधिक नहीं बढ़ेंगे। लोग ऐसे पौधों को अपनी बाल्कनियों में भी रख सकते हैं और वायु-प्रदूषण को भी नियंत्रित कर सकते हैं। यह अनावृष्टि और असन्तुलित वर्षा को भी रोकेगा। लोग, सब्जी वाले पौधे एवं लताएँ गमलों में लगाकर उन्हें अपनी छतों पर एवं बाल्कनियों में रख सकते हैं। इससे सब्जी की

उपलब्धता भी बढ़ेगी और पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त रखने में भी सहायता मिलेगी।

- साईकिल की सवारी प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकती है। साइकिलें हर तरह से लाभकर हैं। थोड़ी दूर जाना हो तो हम पैदल जाएँ, कुछ अधिक दूर जाना हो तो साइकिल से जाएँ और बहुत दूर जाना हो तो सार्वजनिक परिहवन का प्रयोग करें। इससे कई लाभ प्राप्त होंगे। पेट्रोलियम पदार्थों की खपत बहुत कम हो जाएगी और पूरे विश्व में जो पेट्रोलियम पदार्थ है, वह अधिक समय तक चलेगा। इससे भारत सहित वे सभी देश लाभान्वित होंगे, जो कच्चे तेल का अधिक आयात करते हैं। इससे कच्चे तेल का अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मूल्य कम होगा एवं पेट्रोलियम पदार्थों का निर्यात करने वाले राष्ट्रों के कुछ लोगों की शाहखर्ची की कम होगी।

पेट्रोलियम पदार्थों की खपत कम होगी तो वायु-प्रदूषण प्रत्यक्ष रूप से घटेगा। इससे ओज़ोन परत का क्षय कम करने में भी सहायता मिलेगी। वायु.प्रदूषण कम होने पर जल.प्रदूषण और मृदा.प्रदूषण में भी कमी आयेगी। वायु-प्रदूषण अधिक होने पर तेजाबी बारिश होती है, जो जलस्रोतों को प्रदूषित करती है। इससे भूमि और भवन भी क्षतिग्रस्त होते हैं। मोटर साईकिलों और निजी कारों का इस्तेमाल कम करके और साईकिलों का उत्पादन और प्रयोग बढ़ाकर जलवायु के प्रदूषण को एक हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इससे वैश्विक तापन की समस्या भी कम होगी और अधिक मात्रा में बर्फ पिघलने के समुद्र के जल का स्तर बढ़ने और छोटे- छोटे टापुओं के समुद्रों में विलीन होने की आशंका भी नहीं रहेगी। साईकिलों का अधिक प्रयोग सड़क जाम की समस्या से भी छुटकारा दिलाएगा।

लोग मोटर साईकिलें, कारें इत्यादि रखें, लेकिन उनका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होने पर ही करें। सम्पन्न लोग मोटर साईकिलों और कारों के साथ ही साइकिलें भी रखें। इससे साइकिल की मांग बढ़ेगी, उसका उत्पादन बढ़ेगा और लोगों को रोजगार मिलेगा तथा उनकी गरीबी दूर होगी। कुछ विद्वान यह भी सुझाव देते हैं कि मोटर साईकिलों, कारों तथा पेट्रोल पर टैक्स बढ़ाया जाए ताकि मोटरसाईकिल, कार इत्यादि का प्रयोग कम हो और उनका उत्पादन और तेज गति से न बढ़े।

साईकिल की कीमत पहले से ही तुलनात्मक रूप से कम है। अतः इसे खरीदना सबके लिए संभव है। आवश्यक होने पर सरकार द्वारा साईकिलें निर्धन परिवारों में मुफ्त वितरित की जा सकती हैं। साइकिलों का प्रयोग बढ़ने पर स्टेटस सिम्बल बनी मोटरसाइकिलों और निजी कारों का प्रयोग कम होने पर सड़क दुर्घटनाएँ भी कम होंगी।

साईकिल चलाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। यह एक तरीके से व्यायाम करने जैसा है। धनी परिवारों के लोग हजारों रुपये खर्च करके व्यायाम के साधन खरीदते

हैं। बहुत से परिवारों के सदस्य जिमखाने में जाते हैं और फीस के रूप में एक बड़ी रकम अदा करते हैं। साईकिल चलाने से यह खर्च बचेगा और उस पैसे का उपयोग किसी और अधिक अच्छे कार्य के लिए होगा।

साईकिल में ऊर्जा के लिए अलग से कुछ भी नहीं लगाना होता है। साईकिलें हमारी शारीरिक ऊर्जा से चलती हैं। इस तरह, साईकिल चलाना एक तरह से ऊर्जा पैदा करने के समान है। उस अर्थ में यह समाज और राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा होगी। ध्वनि-प्रदूषण रोकने के लिए भी साईकिलों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

साईकिलों का प्रयोग में विस्तार, सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय स्थापित करने में भी सहायक होगा। साइकिल का प्रयोग बढ़ने पर आर्थिक असमानता कुछ कम होगी और दबे-कुचले लोग भी अपने को सम्मानित और गौरवान्वित महसूस करेंगे। इससे लोकतंत्र का सही अर्थों में विस्तार होगा और हमारा समाज, नागरिक समाज से आगे बढ़कर सभ्य समाज बन सकेगा। 1920 के दशा के गांधीजी ने सार्वजनिक जीवन के सात दोषों की चर्चा की। वे हैं– सिद्धान्त विहीन राजनीति, बिना परिश्रम किए धन प्राप्त करना, सदाचार रहित सुख, चरित्र विहीन ज्ञान, नैतिकता विहीन वाणिज्य, मानवता के विमुख विज्ञान और त्याग रहित पूजा। गांधीजी की यह शिक्षा आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

उत्थान और पतन, प्रकृति की व्यवस्था है। फिर भी मानव-सभ्यता के इतिहास को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का उत्तरार्द्ध सुनहरा हो सकता है। 21 वीं शताब्दी के मध्य तक विश्व की जनसंख्या बढ़कर लगभग नौ सौ करोड़ तक पहुँचेगी और फिर घटने लगेगी। उस समय तक लोकतंत्र का पूर्ण विस्तार हो चुका होगा और शत प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य भी प्राप्त हो चुका होगा। उस समय तक सौर ऊर्जा का पर्याप्त विस्तार हो चुका होगा और विश्व पेट्रोलियम पदार्थों पर निर्भरता से बहुत हद तक मुक्त हो चुका होगा। इससे पर्यावरण-प्रदूषण कम होने लगेगा। तकनीकी विकास से यह भी सम्भव हो सकेगा कि वायुमण्डल में जमा कार्बन डाईऑक्साइड का अवशोषण करके उससे कार्बन से बनने वाले विभिन्न पदार्थ बनाए जा सकें। क्षतिग्रस्त ओज़ोन परत भी दुरुस्त हो जाएगी और जलवायु और मौसम सम्बन्धी अनियमितता समाप्त हो जाएगी और इसमें नियमितता के दर्शन होने लगेंगे। वैश्विक तापन की समस्या से भी छुटकारा मिलेगा। तकनीकी विकास से कम भूमि में ही अधिक अन्न पैदा होगा, जिससे जंगल क्षेत्र बढ़ेगा।

तकनीकी विकास से समुद्र के जल को सस्ती दर पर पीने योग्य और सिंचाई योग्य बनाया जा सकेगा। ग्लेशियरों का पिघलना रुकेगा और छोटे-छोटे टापू समुद्र में विलीन होने से बच जाएंगे। बड़े-बड़े बांध अप्रासंगिक हो जाएंगे और नदियाँ अपने प्राकृतिक रूप में प्रवाहमान होंगी। हम बाढ़ और सूखे की समस्याओं से भी मुक्त हो

जाएंगे। पृथ्वी के विभिन्न भागों के लोग सांस्कृतिक एकता-समानता महसूस करेंगे। लोगों की स्वतंत्रता बढ़ेगी, शासन-प्रशासन की निरंकुशता घटते-घटते समाप्त हो जाएगी और लोगों का जीवन अधिक सुखमय होगा। हमारा कर्तव्य है कि हम उपर्युक्त स्थिति को शीघ्र हकीकत बनाने के लिए प्रयास तेज कर दें।

इस क्रम में पर्यावरण-नैतिकता ध्यातव्य है। इसका अर्थ है लोगों में पर्यावरण-संरक्षण के प्रति भावनात्मक लगाव पैदा करना, ताकि लोग पर्यावरण-संरक्षण को अपना नैतिक कर्तव्य और पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कार्यों को अनैतिक समझें। दूसरे शब्दों में, लोगों के दिल में पर्यावरण के प्रति प्रेम व सम्मान का भाव पैदा होना ही पर्यावरणीय समास्याओं का समाधान है। इसके लिए मन की शुचिता आवश्यक है। मन की शुचिता मनुष्य को नैतिक, संयमी और कृतज्ञ बनाती है। इससे मनुष्य मर्यादित जीवन जीने के लिए प्रेरित होता है, जिससे किसी भी तत्त्व का शोषण एवं संहार न हो और सन्तुलन बना रहे। पर्यावरणीय नैतिकता में निम्नलिखित बातें शामिल की जा सकती हैं– उपभोक्तावाद के विरुद्ध जागरूकता, अनव्यकरणीय ऊर्जा स्रोतों का सरंक्षण, त्यागपूर्वक भोग की प्रवृत्ति, चरित्र एवं दायित्व बोध के प्रति जागरूक रहना, युद्ध की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आर्थिक एवं पर्यावरणीय तत्त्वों का तर्कसंगत उपयोग इत्यादि।

इसी तरह पर्यावरण-शिक्षा भी आवश्यक है। इसका अर्थ है लोगों में पर्यावरण-सरंक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करना। इसके लिए लोगों को प्राकृतिक संसाधनों का महत्त्व समझना होगा। लोगों को यह बताना होगा कि जनसंख्या-वृद्धि, निर्वनीकरण और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन न वर्तमान पीढ़ी के लिए अच्छा है और न भावी पीढ़ी के लिए। लोगों को यह सीखना होगा कि वनों का संरक्षण-संवर्द्धन, जनसंख्या नियंत्रण, जलस्रोतों को प्रदूषण से बचाना, ऊर्जा को स्रोतों का संरक्षण इत्यादि मानव-जीवन के लिए अनिवार्य हैं। लोगों को यह भी बताना होगा कि पर्यावरण-प्रदूषण की स्थिति विकट है और इसका शीघ्र समाधान आवश्यक है। लोगों को सभी संचार-माध्यमों से पर्यावरण-संरक्षण के उपायों की जानकारी दी जानी चाहिए। पर्यावरण शिक्षा लोगों को आर्थिक विकास और पर्यावरण-संरक्षण में संतुलन स्थापित करने के लिए प्रेरित करेगी।

कुल मिलाकर, आवश्यकता है शासकों-प्रशासकों में पर्यावरण-संरक्षण के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति की और लोगों में जागरूकता पैदा करने की। इसके लिए बड़ी संख्या में वैसे लोगों को एकजुट करना होगा, जो अध्ययनशील हों, आत्म-निर्भर हों और जिन्हें शासन-प्रशासन-औद्योगिक घरानों से कोई पद-पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा नहीं हो। ऐसे लोग शासन, प्रशासन और आमजन, सबका मार्गदर्शन करेंगे।

संदर्भ

- एच. पार्किन्स
- ऑक्सफोर्ड इंगलिश शब्दकोश।
- पर्यावरण अध्ययन, ले. डॉ. मंगला सिंह, प्रकाशक- मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी।
- पर्यावरणीय अध्ययन, ले.- प्रो. हीरालाल यादव, प्रकाशक- नील कमल प्रकाशन गोरखपुर।
- पर्यावरण सहचर, प्र.-स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स, पटना।
- विज्ञान प्रगति, जून, 2008 में प्रकाशित डॉ. जगदीप सक्सेना का निबंध, 'ग्लोबल वार्मिंगः मुकाबला सायकिल से'।
- योजना, जून, 2004 में प्रकाशित श्री राजेन्द्र कुमार राय का निबंध, 'प्रदूषण का नया खतरा है- ई वेस्ट'।
- लोक प्रशासन, द्वारा– बी.एल. फड़िया, प्रकाशक- साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- संसाधन एवं पर्यावरण, ले.- डॉ. चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ. एम.एस. सिसौदिया, प्र. साहित्यभवन पब्लिशर्स, आगरा।
- पर्यावरण शिक्षा, ले.- डॉ.एम.के गोयल, प्रकाशक- विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- भारत के संविधान का अनुच्छेद 48 (क)।
- भारत के संविधान का अनुच्छेद 51 (छ)।

पर्यावरण संरक्षण नियामक संस्था : राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण एक विश्लेषण

jf'e pkgku

Ikjk'k *इस शोध कार्य में हम उस ज्वलंत विषय को उठा रहे हैं जोकि वर्तमान समय में जनता, सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी के लिए सिर दर्द है। पर्यावरण प्रदूषण समस्या विश्व के सभी सरकारों के लिए चुनौती है और अब हाल ही में पेरिस सम्मेलन में पर्यावरण को विश्व के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया गया है क्योंकि यह समस्या भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अनेक तरीके से उठ रही हैं जैसे कि कहीं अचानक भूकंप, ज्वालामुखी फटना, जंगलों में आग फैलना, समुद्र का जल स्तर बढ़ना अथवा आण्विक परीक्षणों से प्रदूषण, आकाश में सैटेलाईट का कूड़ा और पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषण चिंताजनक स्थिति में है राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों की अवहेलना राज्य सरकार द्वारा पर्यावरण पर भारी पड़ रही हैं। और जनता द्वारा पर्यावरण की उपेक्षा जल की महत्ता ना समझ पाना तथा स्वच्छता के प्रति उपेक्षा भारी पड़ रही हैं। इन सभी दृष्टि से हम इस अध्ययन के माध्यम से यह बताना चाहेंगे कि राज्य सरकारों और जनता को सर्वोच्च न्यायालय में अपीले ना करके प्राधिकरण की पालना करनी चाहिए। इस दृष्टि से हम इस प्राधिकरण और सरकार के दृष्टिकोणों के समीक्षा करेंगे।*

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ अनेक परिवर्तनों, दुविधाओं एवं द्वन्द्वों से प्रारंभ हुआ। 20वीं शताब्दी में जो सैद्वांतिक मान्यताएं थीं उनका खंडन किया गया और उनसे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को नए रूप में प्रस्तुत भी किया। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने विभिन्न स्तरों पर सुधारने के लिए प्रेरित भी किया जैसे कि ल्यूसियन पाई, राबर्ट डहाल, हण्टिग्टन, जान ग्रिल ब्रेथ इत्यादि ने यह माना था कि राजनीतिक स्थिरता आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है और यह भी माना कि भारत जैसे विकासशील देश इसलिए धीमी गति से प्रगति कर रहे हैं वे राजनीतिक अस्थिरता

के दौर से गुजर रहे हैं परन्तु 21वीं शताब्दी में ये अवधारणा आनुभाविक रूप से सत्य साबित नहीं हुई। ऐसे अनेक देश हैं जोकि राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद आर्थिक रूप से समृद्ध हुए और उनके विकास की गति विकसित देशों से ज्यादा भी देखी गई जैसे कि भारत, मैक्सिको, चीन कुछ अरेबियन देश। भारत में संविद सरकार होते हुए भी डॉ.मनमोहन सिंह के नेतृत्व में दस साल तक आर्थिक विकास विभिन्न दृष्टियों से हुआ और अनेक रूप से अर्थव्यवस्था उदारवादी एवं निजीकरण की ओर अग्रसर हुई तथा ऐसी अर्थव्यवस्था की नींव डॉ मनमोहन सिंह के कार्यकाल में स्थापित की गई जोकि वर्तमान समय में आर्थिक विकास का कारक बनी जैसे कि आयात व्यवस्था को उदारवादी बनाया गया और निजी क्षेत्र को विभिन्न तरीके से अर्थव्यवस्था को सुविधायें प्रदान की गईं। भारत में इस आर्थिक विकास से अनेक प्रकार के विभिन्न विवादों को जन्म मिला जैसे कि विकास के कारण प्राकृतिक संपदाओं के उपयोग पर प्रश्न उठाए। आर्थिक विकास ने अनेक प्रकार से प्रकृति को भी प्रभावित किया तथा प्रकृति बचाओं अभियानों को जन्म दिया जैसे–गंगा बचाओ, चिपको आंदोलन पहाड़ बचाओ तथा नदी बचाओ, वृक्षारोपण, प्रकृति के संग जीने की कला जैसे अनेक आंदोलनों को गति मिली और इनके कारण अनेक विवाद उठ खड़े हुए जैसे कि गंगा में अस्थि विसर्जन, औद्योगिक वेस्ट (West) तथा दूषित पानी का कृषि में प्रयोग ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने अनेक विवादों को जन्म दे दिया और सरकारों के समक्ष विभिन्न विवाद खड़े कर दिये जिनमें संस्कारों के समक्ष यह दुविधाएँ आ गईं कि आर्थिक विकास आवश्यक है या प्राकृतिक संसाधनों का बचाव आवश्यक है तथा यह भी प्रश्न उठा दिया कि विकास के लिए विकासशील देश प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त क्या विकल्प रखते हैं और उन विकल्पों और मांग के मध्य सामंजस्य है? विकासशील देशों की विडम्बना यह है कि वे अभी तक हजारों साल पुरानी तकनीकों के आधार पर ही विकास को गति देते रहे और उनके विकल्पों की और प्रयास नहीं किये। अब जबकि विकल्पों की आवश्यकता महसूस हुई है तो ना सरकार के पास संसाधन हैं ओर ना ही तकनीकी और निजी क्षेत्र को भी इन चीजों से लगभग वंचित रखा गया है। इससे विकास प्रभावित हो रहा है, बेरोज़गारी बढ़ रही है, अराजकता बढ़ गई तथा समाज में अपराध बढ़ रहे हैं तथा सरकारों को विकास के क्षेत्र में जगह-जगह न्यायालयों में हार का मुंह देखना पड़ रहा है अनेक क्षेत्रों में न्यायालयों द्वारा रोक लगाई जा रही है और विकास की गति को काफी नियंत्रित किया गया है परिणामतः ऐसी समस्याओं का समाधान ना तो सरकार के पास है और न ही न्यायालयों के पास।

इसी तरीके से राजनीतिक विज्ञान में यह भी प्रश्न उठाया जा रहा है कि क्या विकास सरकार का अंतिम उद्देश्य है या मानव मूल्य का संरक्षण बढ़ा है? गत् शताब्दी तक औद्योगिक विकास को ही विकास मान लिया गया था परन्तु अब वही

अर्धविकसित देश मानव मूल्यों के लिए महत्वपूर्ण हो गए। इन विरोधाभासी स्थितियों में सबसे ज्यादा नुकसान भारत जैसे विकासशील देशों को हुआ क्योंकि एक तरफ तो औद्योगीकरण में पिछड़ गए और दूसरी तरफ प्राकृतिक संसाधानों का अनावश्यक दोहन। इस तरीके से विकासशील देश दोहरे अपराधी हो गए और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रतिबंध भारत पर आरोपित कर दिए गए और इससे भारत के उद्योगों को धक्का लगा और निर्यात घटा तथा जो विदेशी निवेशक उत्पादन कर रहे हैं वो भारतीय मानकों पर खरे नहीं उतर रहे हैं क्योंकि बाजार उनसे भी ज्यादातर खराब मानकों से भरे हुए हैं तथा इन पर रोक की कोई विस्तृत व्यवस्था भी नही है और ना ही सरकार में इन पर कोई रोक लगाने का नजर आता है और ना ही उपभोक्ता सजग हैं ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था भी इन सबका हिस्सा बन गई तथा कई सत्ताधारी दल के लोग इन सब कार्यो में शामिल हो गये। ऐसी स्थिति में यह अपेक्षा करना NGT जैसे संस्थान कोई चमत्कार करके जनता को शुद्व पर्यावरण उपलब्ध करवा देंगे संभव नहीं। जहां तक आर्थिक विकास का प्रश्न है उसमें गुणवत्ता या संख्या के मध्य कोई भेद नहीं है और सरकारें जो भी आयें मांग की मात्रा तो बढ़ेगी परन्तु उसके नुकसान और भविष्य की समस्याओं पर कोई भी बोलने को तैयार नही है। केवल मात्र न्यायालय अथवा न्यायिक प्राधिकरण ही हस्तक्षेप कर पाते हैं और उनका भी भारी विरोध होता है और वे मूकदर्शक बनकर रह जाते हैं। विकासशील देशों में एक अजीबोगरीब समस्या यह भी है कि लोगों के विश्वास, श्रद्धा और धार्मिक कट्टरता को किस प्रकार से रोका जाये क्योंकि जैसे ही ट्रिब्यूनल या न्यायालय रोक लगाते हैं वैसे ही धार्मिक उन्माद शुरू हो जाते हैं और धार्मिक उन्माद के कारण कानून की व्यवस्था बिगड़ती है तो सरकार भी कोई कार्यवाही नही करती है परिणामतः न्यायिक निर्णयों की पालना रोक दी जाती है और इन निर्णयों की पालना में सरकार कोई सहयोग नही करती है और सरकार भी इसमे कोई रूचि भी नहीं दिखाती है क्योंकि सरकार को वोट बैंक बिगड़ने की आशंका रहती है। इसमें सभी राजनीतिक दल एक ही दृष्टिकोण रखते हैं और कोई भी इस मधुमक्खी के छत्ते में हाथ नहीं डालना चाहता। समस्या यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि समस्या में गंभीरता आ जाती है जबकि राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार न्यायिक निर्णयों को जनहित के नाम पर टालने का प्रयास करती हैं या अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों का उदाहरण देती हैं और इन न्यायिक निर्णयों को बदलने का प्रयास करती है क्योंकि न्यायालय भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के कारण अपने निर्णयों में ढील दे देते हैं और सरकारें फिर उसका मनमर्जी से प्रयोग करती हैं। इन सबमें इस तरीके के प्राधिकरण देखकर भी इनका सबका अनदेखी करते हैं और समस्यायें जहां की तहां बनी रहती हैं और न्यायाधीकरण इन सबमें अपनी महत्वता खो देते हैं क्योंकि ये सभी सक्रिय होते हैं। जबकि इनके पास कोई पीड़ित पक्ष जाकर कोई शिकायत दर्ज कराये तथा अपनी शिकायत का सबूत सही प्रस्तुत करे और इन सबमें पीड़ित पक्ष बहुत सशक्त होना

चाहिए अन्यथा सरकारें और पीड़ित पक्ष इस पर अपना दबाव बनाते हैं जैसे कि गंगा–स्वच्छ अभियान, पहाड़ों में पेड़ों की अवैध कटाई, या नदियों के बहाव में बाधाऐं स्थापित करना या नदियों में से मिट्टी निकालकर सुखा देना या जंगलों में आग लगाने की घटनाऐं इत्यादि। उसके अतिरिक्त राज्यों में अनेक तरीके के जो विकास कार्य होते हैं जिनसे कि हरित क्षेत्र प्रभावित होता है उनमें भी न्यायाधिकरणों के निर्णय की अवहेलना की जाती है जिस कारण इन न्यायाधिकरणों का महत्व कम हो जाता है जैसे कि आवास विकास योजनाऐं, विभिन्न प्रकार की औद्योगिक इकाईयों की स्थापना या विभिन्न विदेशी संस्थाओं को लाइसेंस देना या निवेश के लिए स्पेशल इकोनोमिक जोंन बनाना ऐसे मुद्दे है जोकि बेहद विवादास्पद है। इस कारण NGT जैसे कई न्यायाधिकरण दुविधाओं में रहते हैं और निर्णयों को टालते रहते हैं। यदि हम NGT को विशेष रूप से देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि NGT एक तीन सदस्यीय प्राधिकरण है तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से गठित है जिसमें कि अवकाश प्राप्त न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते है जोकि अपने आप में ही एक विडम्बना है क्योंकि अवकाश प्राप्त न्यायाधीश ऐसे गंभीर मुद्दों पर संदेह के घेरे में आ सकते हैं यद्यपि अभी तक ऐसा कोई मामला नहीं आया परन्तु इसके समक्ष इतने बड़े गंभीर मामले सुनवाई में आते हैं कि मानवीय भूलें हो सकती हैं इसलिए इस प्राधिकरण के निर्णयों के विरूद्व सर्वोच्च न्यायालयों में अपीलें होती रही हैं और इसके निर्णयों पर प्रश्न उठते रहते हैं। यह स्थिति इसलिए है कि इन संस्थाओं के निर्णयों की समीक्षा न्यायिक सर्वोच्चता के अन्तर्गत की जाती है और मामलों को रोक दिया जाता है। इससे उसकी न्यायिक सक्षमता पर सवाल उठतें है तथा इसके प्रभाव को कमजोर करते हैं। इसके साथ-साथ इस प्राधिकरण की जो performance है वह भी विचारणीय है क्योंकि इस प्राधिकरण ने जितना आगे बढ़कर अच्छे निर्णय दिए उतने ही इसके निर्णयों की उपेक्षा हुई और इसकी वैचारिक क्षमताओं पर सवाल उठाए गए।

भारत विकास की ऐसी स्थितियों से गुजर रहा है जोकि पहले नहीं थीं। इसमें मुख्यतः तीन स्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं *प्रथम* अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नवीन व्यवस्था, *दूसरा* विश्व के आर्थिक क्षेत्रों में नवीन समीकरणों का उदय *तीसरा* भारत में विपक्ष का अभाव। इन तीन परिस्थितियों के कारण आर्थिक विकास को नई गति मिली। जिसमें सरकार का कम योगदान और परिस्थितियाँ अधिक जिम्मेदार है जैसे कि अमेरिका और चीन के मध्य ट्रेडवार, जापान को एशिया के नये बाजारों की तलाश, जिसमें भारत प्राथमिक स्तर पर है पाकिस्तान की आर्थिक स्थिति खराब होना और चीन का भारत में नए बाजार की तलाश, और भारत में संचार साधनों की तेजी से प्रगति जिसमें कि विदेशी कम्पनियों ने बाजार पर कब्जा कर लिया जैसे Samsung, Airtel और Vodafone इत्यादि। डॉ. मनमोहन सिंह के द्वारा प्रारंभ की गई उदारवादी

व्यवस्थाओं से विदेशी कम्पनियों को भरपूर अवसर प्रदान किए तथा देश में विदेशी कम्पनियों का विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ इस कारण अनियोजित तरीके से कम्पनियों की स्थापना हो गई जिससे कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचा तथा प्राकृतिक संसाधनों का मनमाना दोहन हुआ परिणामतः पर्यावरण में असंतुलन बहुत तीव्र गति से आने लगा और ऐसे उद्योगों को बंद करने की मांग उठने लगी जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहे थे जैसे कि मोबाईल टावर्स या कैमिकल्स खुले मे छोड़ना, अस्पतालों का वेस्ट अथवा उत्पादन में विभिन्न प्रकार के तत्वों का प्रयोग करना हैं जिससे कि पर्यावरण में निरंतर गिरावट आ रही है। विदेशी कम्पनी ऐसे तरीके बता रही है जिससे कि कम लागत में उत्पादन बढ़ाया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य के लिए बेहद हानिकारक है इसके अतिरिक्त विदेशी कम्पनियों के लिए भारत एक प्रयोगशाला है जिसमें अनेक प्रकार की दवाईयों का प्रयोग भारत में विदेशी कम्पनियां करती है जिससे कि सम्पूर्ण देश मे डर का माहौल बनता है इसी के साथ-साथ बेरोज़गारी, श्रम का मूल्य घट रहा है।

शिक्षा का मूल्य घट रहा है और फर्जी संस्थानों की डिग्रियां बांटी जा रही हैं जिससे कि देश मे अयोग्य ऊंचे पदों पर आसीन हो रहे हैं और इसमें राजनीति भी सहयोग कर रही है जिससे कि अयोग्य संस्थाओं के कारण सम्पूर्ण व्यवस्था बिगड़ रही है और देश में अराजकता का माहौल बन रहा है और राजनीति और प्रशासन की मिलीभगत से पर्यावरण की जबरदस्त अवहेलना हो रही है, उपेक्षा हो रही है क्योंकि ये दोनों ही सत्ताधारी पक्ष इन सबमें व्यक्तिगत लाभ ले रहे हैं और पर्यावरण की उपेक्षा कर रहे हैं और इन सबके सामने NGT भी बेबस है और इसमें पुलिस प्रशासन भी साथ दे रहा है। अतएव प्रश्न यह उठता है कि इन सबको रोकेगा कौन और कौन सी संस्था NGT के निर्णयों को क्रियान्वित करवायेगी। इसीलिए यह स्पष्ट होता है कि ये विकासशील देशों में पर्यावरण कोई बड़ी महत्वपूर्ण संस्था नहीं मानी जाती क्योंकि ये सभी वर्ग पर्यावरण को तबाह करने में व्यस्त है और NGT को खुलेआम चुनौती दे रहे हैं जिसका सबसे बड़ा उदाहरण राजस्थान में बजरी खनन पर रोक है जिसमें सरकार ने स्वयं बजरी पर से रोक हटाने के लिए याचिका दायर की जोकि सरकार की दृष्टि से बिल्कुल गलत है इसके साथ-साथ सरकार भी अपने वोट बैंक और पार्टी फंड के लिए पैसा जुटाने की होड़ में पर्यावरण की बलि दे रहे हैं और NGT के निर्णयों की अवहेलना कर रहीं हैं और पर्यावरण को निरंतर नुकसान पहुंचाया गया है ।

भारत के समाज में एक लम्बे समय तक परतंत्रता के कारण अनुशासनहीनता, स्वार्थीपन और बेईमानी, चालाकी और कुटिलता बेहद मौजूद है जिसके परिणामस्वरूप जनता पर भी नियंत्रण संभव नही हो पाता और निरंतर पर्यावरण की अवहेलना हो रही है। न तो सरकार और न ही जनता वृक्षारोपण कार्य में रूचि रखते हैं। सरकार

के द्वारा इन सब चीजों के लिए एक ढोंग रचे जाते हैं, कभी वृक्षारोपण दिवस, कभी योगा दिवस और कभी मैराथन दौड़ दिवस। इन सब तरीके से ढोंग रचे जाते हैं और अनाप-शनाप खर्चे करके पैसों की बर्बादी की जाती है हासिल कुछ नहीं होता क्योंकि ऐसे दिवस उपहास का पात्र बनते हैं और आम जनता की निगाह मे नाटक माने जाते हैं इसलिए जो पर्यावरण-पर्यावरण बचाओ का संदेश दिया जा रहा है उसमें ठोस कार्यवाही का अभाव है। आम जनता का सहयोग पर्यावरण संरक्षण में अपेक्षा से बहुत कम है और पर्यावरण के नाम पर आम जनता इसे व्यर्थ का खर्चा मानती है और पर्यावरण सुधार के लिए धन खर्च करने में झिझकती है जैसे कि कार कम्पनियां भारत IInd और IIIrd की गाड़िया सस्ते में बेच रही है और इनकी बिक्री बहुत तेजी से हो रही है परन्तु इनसे जो पर्यावरण को नुकसान होगा उस पर किसी का ध्यान नही है और आने वाले समय में यातायात से जितना पर्यावरण दूषित होगा इस पर किसी को परवाह नहीं। ये समस्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है और सभी मैट्रो व बड़े शहर पर्यावरण प्रदूषण में उच्चतम स्तर तक पहुंच गए हैं और इस प्रदूषण को रोकने के लिए कोई साधन नही है। केवल एक मात्र NGT ही इन सब पर अपने निर्णय दे रही है। कुल मिलाकर पर्यावरण के मामलों में स्थिति निराशाजनक है और इस समय पर्यावरण को बचाने के लिए एक मात्र संस्था NGT को ही जिम्मेदारी मिली हुई है और सरकार के अन्य सभी विभाग पर्यावरण सुधारने मे कोई रूचि नही रखते इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस संस्था को अधिक से अधिक आम जनता के समक्ष इसकी क्षमतायें लायी जानी चाहिए जिससे कि यह अधिक सुविधा से पर्यावरण संरक्षित किया जा सके और आम जनता की पहुंच इस संस्था तक हो सके। इस शोध कार्य में हमारा यही प्रयास होगा कि इस संस्था के कार्यो को अधिक से अधिक जनता के समक्ष लाया जा सके और जनता को पर्यावरण के लिए जागरूक बनाया जा सके।

भारत में संस्थायीकरण बहुत तेजी से किया जा रहा है परन्तु उनको जनता को सांतवना के लिए बनाया गया परन्तु उनके निर्णयों और कार्यों की अपेक्षा की जाती है तथा सरकार या कार्यपालिका ऐसा महसूस करती है जैसे कि वो सरकार पर भार है या वो सरकार के उद्देश्यों में अवरोधक है। इसलिए सरकार संस्थायें तो बना देती है परन्तु उनको संसाधनों के निर्णयों के क्रियान्वनयन के लिए मशीनरी और सुविधायें उपलब्ध नहीं करवाती और जब ये इन सबकी मांग करते हैं तो सरकार अपनी विवशताओं का हवाला देती है कभी वित्तीय कमी, कभी मानव संसाधन की कमी और कभी संस्थाओं में नियुक्तियां न करके इनको पंगु बना देती है। फिर ये अपनी हर आवश्यकता के लिए सरकार का मुंह ताकते हैं और सरकार इनकी उपेक्षा करती है और विभिन्न बहाने बनाकर इनके कार्यों में बाधाएँ उत्पन्न करती है जिससे कि यह संस्थाऐं काम न कर पायें और सरकार अपनी मनमानी कर सके। और दूसरी

तरफ इन संस्थाओं पर अकार्यकुशलता का आरोप लगाकर बंद कर सके या इनको निजी हाथों में बेच सके। तो प्रश्न उठता है इनको सरकार बनाती क्यों है, इनको रोकती क्यों है, बेचती क्यों है और यह सब परिस्थितियाँ देखने से लगता है कि सरकार का यह सब एक ढोंग है, प्रपंच है और जनता को बेवकूफ बनाने के साधन है इसलिए इन संस्थाओं पर जनता का भरोसा लगभग टूटा हुआ है और जनता भी इस खेल को खूब अच्छी तरीके से समझती है। परन्तु जनता की मजबूरी यह है कि वो कर कुछ नहीं सकती केवल मात्र आशा में संस्थाओं के चक्कर लगाती है और अपेक्षा करती रहती है कि इन संस्थाओं से इनकी कठिनाईयां दूर हो जायेंगी और कुछ की दूर हो जाती है और कुछ तो जिन्दगी भर चक्कर काटते रहते हैं।

भारत में ऐसी संस्थायें केवल मामूली सी राहत देने का काम करती हैं इनसे कोई बड़ी अपेक्षा नहीं कर सकते तथा ये संस्थाऐं भी इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि उनकी अपनी विवशताऐं और सीमाऐं है वे पीड़ित पक्ष की स्थिति को समझते है परन्तु उसको राहत देने में असहाय महसूस करते हैं। NGT जैसी संस्थाओं की विडम्बना यह है कि वे सब कुछ जानकर भी अनजान हैं और सरकार के ही अतिरिक्त अंग के रूप में मौजूद है इसलिए बहुत ज्यादा सक्रियता से भी बचते है और सरकार के कामों में कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहते हैं परन्तु जब पीड़ित पक्ष अपील करता है तो उन्हें न केवल अपील सुननी पड़ती है बल्कि निर्णय भी देना पड़ता है। ऐसे संगठनों के समक्ष निर्णयों में दो दुविधायें रहती हैं एक तो न्याय का पालन और दूसरी तरफ सरकार और प्रशासन की कठिनाई जिनमें विवशतायें ज्यादा शामिल हैं। ऐसी दुविधाओं के कारण प्रशासनिक न्यायाधिकरण अपने निर्णयों में पारदर्शिता और स्पष्टता कम कर देते हैं।

अंत में यह भी देखा जा सकता है कि भारत में प्रशासनिक न्यायाधीकरण एक अधिनियम के अन्तर्गत गठित होते हैं और उनका क्षेत्राधिकार भी सीमित होता हैं अंतः अनेक मामलों में वह अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर निर्णय नहीं दे सकते। जबकि सामान्य उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय असीमित क्षेत्राधिकार रखते है और न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त होती है जोकि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को नहीं मिलती इसलिए प्रशासनिक न्यायाधीकरण आधे अधूरे न्यायिक संस्थाऐं है इन संस्थाओं को सीमित बजट उपलब्ध कराया जाता है एवं सीमित ही संसाधन दिए जाते है जिससे ये सीमित भूमिका ही अदा कर पाते है इसलिए हम इस शोध में NGT जैसी संस्था की सीमायें, विवशताऐं, निर्णय एवं कार्यकलापों की समीक्षा करेंगे। और उन क्षेत्रों को इंगित करेंगे जोकि इस संस्था की क्षमताओं, दक्षताओं एवं कार्यकलापों को जाने अनजाने में प्रभावित करते है। इसके निर्णयों से हम यह ज्ञात करेंगे कि इसका क्षेत्राधिकार कहां तक है और इसका प्रभाव कहां तक है तथा यह कहां तक अपने कार्यकलापों को क्रियान्वित करवा पाते हैं।

lkfgR; lehk{kk– भारत में नियामकीय संस्थाऐं ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में एक नई अवधारणा समझी गई जोकि प्रशासन से अलग होकर भी प्रशासन में है और नियामक शक्तियों के साथ प्रशासन के अनेक क्षेत्रों को नियंत्रित करती है। चूंकि ये संस्थाऐं नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत स्थापित की गई तथा इनको उदारवादी और निजी क्षेत्रों के साथ सामंजस्य बैठाने का उत्तरदायित्व दिया गया जोकि ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में संभव नही था। सन् 1999 की नवीन आर्थिक नीति के अंतर्गत अनेक नियामकीय संस्थाऐं स्थापित की जैसे कि सेबी, CERC, IRDA, TRAI इत्यादि। इसी श्रृंखला में NGT भी स्थापित किया गया जोकि भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों को राहत देने के लिए किया गया। यूँ तो भारत में पर्यावरण के लिए नागरिकों को कोई अधिकार नही दिए गए परन्तु संविधान के 42वें संशोधन के साथ अनु.48(ए) तथा अनु(51) G में यह कहा गया कि भारत के सभी नागरिकों को स्वच्छ वायु सेवन का अधिकार है जोकि स्वच्छ पानी से भी जुड़ा है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह कहा कि राज्य की यह कठोरतम से कठोरतम जिम्मेदारी है कि वह नागरिकों को स्वच्छ वायु एवं जल उपलब्ध करवाये। यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह वायु, जल और जंगल को संरक्षित करे और सरकार स्वयं को एक ट्रस्टी के रूप में कार्य करे।

नियामकीय संस्थाओं पर बहुत कम शोध कार्य हुए हैं और इस NGT संगठन पर बहुत कम ही लेख एवं पुस्तकें नजर आती हैं जिनका उल्लेख संदर्भ सूची में किया गया है और इनमें मुख्यतः द्विवेदी, सतीश शास्त्री, राघव शर्मा तथा गीतांजली गिल प्रमुख है इन्होंने मुख्य रूप से तीन बातों पर जोर दिया *1.* पर्यावरणीय न्याय *2.* पर्यावरण सम्बन्धी सरकारी प्रयास और उनकी कमियां, *3.* औद्योगीकरण और पर्यावरण संरक्षण पर अनेक विचार व्यक्त किए और यह इंगित करने का प्रयास किया कि भारत में पर्यावरण पर जागरूकता का अभाव है। सरकार की भी रूचि नहीं है और जन सहयोग का अभाव है इसके अतिरिक्त न्यायिक निर्णयों का भी सरकार सम्मान करने से भी बचती है।

कुल मिलाकर भारत में पर्यावरण संरक्षण अभी अपनी बाल्यावस्था में है।

संदर्भ

1 Agarwal Sunil Kumar (2011). Establishment of National Green Tribunal in India : End of Road for Public Interest Litigation.

2. Bodansky, D, (2011). A Tale of Two Architectures : The Once and Future U.N. Climate Change Regime, Arizona State University.

3. Dwivedi, Suneet Kumar and Kashyap, Pradip Kumar (2013), Environmental Protection Law and Policy in India.

4. Gill, Gitanjali Nain (2013). Access to Environmental Justice in India

with Special Reference to National Green Tribunal. A step in the Right Direction.

5 Jagannadha, M. (2003). 186th report of law commission.

6 Khandare, Jayashree P. (2015). Role of National Green Tribunal in Protection Environment. Indian Journal of Research, Volume 4.

7 Khandare, Jayashree P. (2015). Role of National Green Tribunal in Protection Environment. Indian Journal of Research, Volume Issue 12.

8 Krishna Kumari, Areti (2007). Evolution of Environmental Legislation.

9 Nambiar, Sridip (2010). Paradigm of Green Adjudication : Developing Principles for Indian Environmental Decision Making in Disputes Involving Scientific Uncertainty.

10 Sharma, Raghav (2008), Green Courts in India: Strengthening Environmental Governance? (January 30, 2008). Law, Environment and Development Journal, Vol. 4 No. 1 P. 424.

11 Sindhuri, Pulugurtha Srayya and Singh, Narmdeshwar (2013). Access to Justice in Environmental Matters (February 2, 2014). OIDA International Journal of Sustainable Development, Vol. 06, No. 10 PP. 55-62.

Ritwick Datta, "India New Environmental Courts" : The National Green Tribunal" Shastri Nagar, Fourth Edition, Eastern Book Company, Lucknow Page 170A Pollution Control Board. M.V. Nayadu, 1999 (2) SCC 718 in M.C. Mehta V. Union of India, AIR 1987 SC 965-96

In Indian Council for Enviro-Legal Action Vs. Union of India, 1996.

A.P. Pollution Control Board M.V. Nayadu, 2001

"National Green Tribunal: A step towards Environmental Justice Carrier Journals ISSN: 2319-8338.

"Environmental Law" S.C. Tripathi & Vibha Arora, Fifth Edition 2013 Central Law Publication, Allahabad.

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय नियामकों की भूमिका : एक अध्ययन

कमलेश नारायण मिश्र एवं सुधीर कुमार शुक्ल

Ikjk'k *पर्यावरण की रक्षा हमारे सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं का ही अंग है। भारत में पर्यावरण संरक्षण की रीति नीति रही है। हमारा पर्यावरण संरक्षण का इतिहास बहुत पुराना है। भारतीय संविधान जिसे 1950 में लागू किया गया था परंतु सीधे तौर पर पर्यावरण सरंक्षण से नहीं जुड़ा था। भारत में पर्यावरण के मुख्य नियामक के रूप में वन पर्यावरण एवं जलवायु मंत्रालय 1980 से कार्यरत् है। भारत में शीर्ष नियामक केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड काम करता है। यह राज्य स्तरीय और स्थानीय नियामकों से सहयोग, समन्वय स्थापित करते हुए पर्यावरण के सभी पहलुओं पर कार्यान्वयन और नियमन का कार्य करता है। जहाँ तक पर्यावरण की अद्यतन स्थिति का प्रश्न है, वह चिंताजनक है। प्रस्तुत आलेख में भारत की पर्यावरण नियम नीति, नियामक और न्यायपालिका की सक्रियता की समीक्षा का एक प्रयास है। हमारा यह अध्ययन वर्तमान परिस्थितियों में नीति नियामकों का पुर्न प्रस्तुतीकरण, पुनरूद्धार एवं इन संस्थाओं की सीमा, सामर्थ्य एवं स्वतंत्रता बढ़ाने की आवश्यकता महसूस करता है। इसके साथ-ही-साथ सामाजिक चेतना, युवाओं की भागेदारी, नागरिक समाज की हिस्सेदारी और संबंधित विशेषज्ञों की अधिकतम भागेदारी की आवश्यकता है।*

प्रस्तावना

पर्यावरण की रक्षा हमारे सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं का ही अंग है। भारत में पर्यावरण संरक्षण की रीति नीति रही है। अथर्ववेद में कहा गया है कि मनुष्य का स्वर्ग यहीं पृथ्वी पर है। हमारा पर्यावरण संरक्षण का इतिहास बहुत पुराना है। हड़प्पा संस्कृति पर्यावरण से ओत-प्रोत थी तो वैदिक संस्कृति पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्याय बनी रही। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या सभी प्राकृतिक नियामकों को देवता स्वरूप माना। पृथ्वी के लिए हमारा भाव *''माता भूमिः पुत्रो हम पृथ्वयाः''* का रहा है। उर्जा के स्रोत सूर्य को *''सूर्यदेवो भवः''* कहकर पुकारा। जल को भी देवता

माना, सरिताओं को जीवन दायिनी कहा। हमारी सभ्यता हजारों वर्षों से सारे प्राकृतिक तत्वों के साथ सह अस्तित्व रख कर धरती पर जीवन को टिकाऊ बनाने में विश्वास करती रही है। पर्यावरण संरक्षण द्वारा इस अति प्राचीन परम्परा को आधुनिकता की आग ने भारी नुकसान पहुंचाया है। दोहन एवं शोषण, वैभव एवं विलास की रीति द्वारा नीति ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। फलतः जीवन भी संकटग्रस्त है। सब ओर विपन्नता एवं प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर ताण्डव है। वैज्ञानिक समाज एवं नेता सभी प्रकृति के क्रोधावेश से डरे सहमे हैं।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत ने अपनी पर्यावरण संरक्षण हेतु अपनी स्पष्ट नीति, नियामक एवं न्यायाधीकरण विकसित किये हैं। भारतीय संविधान जिसे 1950 में लागू किया गया था। परंतु सीधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन में भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खींचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर दो महत्वपूर्ण अनुच्छेद 48 (A) एवं 51 (G) जोड़े। अनुच्छेद 48 (A) राज्य सरकार को निर्देश देता है कि ''वह पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करे, देश के वन तथा वन्य जीव की रक्षा करें। अनुच्छेद 51 (G) नागरिकों को कर्त्तव्य प्रदान करता है कि वे प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें, संवर्धन करें और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहें।

भारत में पर्यावरण के संरक्षण के लिये पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 पास किया। इस अधिनियम में पर्यावरण के समस्त विषयों का समावेश है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घातक रसायनों की अधिकता को नियंत्रित करना एवं परिस्थिति की तंत्र प्रदूषण मुक्त रखने का प्रयत्न करना है। इस अधिनियम में 26 धारायें हैं जिन्हें चार अध्यायों में बांटा गया है। यह कानून पूरे देश में 19 नवंबर 1986 से लागू किया गया।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में दिसंबर 2004 में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति का ड्राफ्ट तैयार किया गया। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि समस्याओं को देखते हुए एक व्यापक पर्यावरण नीति की आवश्यकता है। साथ ही वर्तमान पर्यावरणीय नियमों एवं कानूनों को तत्कालीन वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में संशोधन की आवश्यकता को भी दर्शाया गया है। इस नीति के मुख्य उद्देश्य रखे गये–

1. संकटग्रस्त पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना।
2. पर्यावरणीय संसाधनों पर सभी के विशेषकर गरीबों के समान अधिकारों को सुनिश्चित करना।
3. संसाधनों का न्यायोचित उपयोग सुनिश्चित करना ताकि वे वर्तमान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें।
4. आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के निर्माण में पर्यावरणीय संदर्भों को ध्यान में रखना।

5. संसाधनों के प्रबंधन में खुलेपन उत्तरदायित्व तथा भागीदारिता के मूल्यों को ध्यान में रखना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न संसाधनों द्वारा राष्ट्रीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर विभिन्न तकनीकों को अपनाने का प्रावधान किया गया है। इस राष्ट्रीय नीति में मार्गदर्शक सिद्धांत भी दिये गये।

भारत संसार के उन गिने चुने देशों में से एक है जिनके संविधान में पर्यावरणीयता का विशेष उल्लेख है। पर्यावरण संबंधी नीतियाँ सचमुच में पर्यावरण सरंक्षण हेतु भारत की पहल दर्शाती है। 18 दिसम्बर 2006 में ''वन अधिकार अधिनियम 2006' जिसको एक महत्वपूर्ण दस्तावेज का दर्जा दिया गया उसे पास किया गया। यह कानून जंगल में रह रहे लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुड़ा है जिसमें औपनिवेशिक काल से ही इन्हें वंचित किया हुआ था। इसका उद्देश्य एक ओर वन संरक्षण है और दूसरी ओर जंगल के रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरभाई का भी प्रयास है। भारत में पर्यावरणीय कानूनों का व्यापक निर्माण हुआ है।

बेहतर पर्यावरणीय शासन के लिये भारत में सुप्रीम कोर्ट के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने केन्द्र सरकार को स्वतंत्र नियामक संस्थाओं को बनाने एवं पूर्व से कार्यरत् संस्थानों के पुर्नगठन पर जोर दिया है। वर्तमान में वन एवं पर्यावरण मंत्रालय एवं केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड शीर्ष नियामकीय संस्थायें पर्यावरण नीतियों के निर्माण एवं उनके कार्यान्वयन हेतु कार्य कर रही हैं। इसके अलावा केन्द्रीय स्तर पर जल संसाधन मंत्रालय, गैर-पारम्परिक ऊर्जा मंत्रालय सतत् विकास नेटवर्किंग कार्यक्रम एवं राज्य स्तर पर बिहार राज्य प्रदूषण बोर्ड, दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति, गुजरात राज्य प्रदूषण नियंत्रण समिति जैसे अनेक नियामकीय संस्थान अपना योगदान दे रहे हैं।

भारत में मुख्य पर्यावरण नियामक की भूमिका में 1980 से भारत सरकार का एक मंत्रालय कार्य कर रहा है। यह मंत्रालय पर्यावरण, वन, जल, वायु जुड़े मामलों के कार्यक्रम तैयार करने, प्रोत्साहित करने में मुख्य नियामक भूमिका अदा करता है। यह मंत्रालय वन, वन्य जीव संरक्षण, पुनर्नवीनीकरण, प्रदूषण नियंत्रण एवं राष्ट्रीय अभ्यारणों जैसी संस्थाओं का प्रशासन भी करता है। यह मंत्रालय भारतीय वन सेवा जैसी संस्थाओं का भी नियामक है। केन्द्रीय वन्य जीव प्राधिकरण, नई दिल्ली। राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण चेन्नई, राष्ट्रीय टाइगर संरक्षण प्राधिकरण, नई दिल्ली इसके अधिकृत प्राधिकरण हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, वन शिक्षा निदेशालय देहरादून भारतीय वन संरक्षण संस्थान, भारतीय वन्य जीव संरक्षण संस्थान चेन्नई, नेशनल ज़्योलोजिकल पार्क नई दिल्ली जैसे अनेकों संस्थान पर्यावरण

मंत्रालय के अनुगामी संगठन हैं। पर्यावरण समस्याओं का आकलन एवं संबंधित शोध एवं विभिन्न पर्यावरणीय अधिनियमों में राष्ट्रीय स्तर के मानकों का पालन करना एवं राज्य स्तरीय सरकारों के बीच संबंधित विषयों में समन्वय बनाये रखने का कार्य भी इसी बोर्ड का है। औद्योगिक इकाईयों का पर्यावरणीय संरक्षण की दृष्टि से नियमन एवं ऊर्जा संरक्षण से जुड़ी समस्याओं पर भी केन्द्र सरकार को सलाह देने का कार्य भी यही संस्था करती है। इस तरह से पर्यावरण से जुड़े नियमों, विनियमों के कार्यान्वयन एवं नियामक का कार्य यही बोर्ड करता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड राष्ट्रीय स्तर पर वायु गुणवत्ता नियंत्रण कार्यक्रम चला रहा है। इस कार्यक्रम के 621 आपरेटिंग सिस्टम पूरे देश में चलाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता नियंत्रण कार्यक्रम के चार मुख्य वायु प्रदूषकों सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2), नाइट्रोजन के ऑक्साइड (NO_2) संस्पेंडेंड पर्टिकुलर मैटर (SPM) और Respirable Suspended Particlate Matter (RSPM/PMIO) का नियंत्रित मॉनिटरिंग भिन्न-भिन्न ऑपरेटिंग सिस्टम पर की जा रही है। इन्हीं आपरेटिंग सिस्टम पर जलवायु परिवर्तन से जुड़े हुए भिन्न-भिन्न मानकों तथा तापमान, आर्द्रता, वायुगति दिशा, वर्षा, मानसून आदि का मॉनिटरिंग एवं इनसे जुड़ी सूचना अद्यतन की जाती है।

जल की गुणवत्ता एवं नियंत्रण के लिये CPCB लगभग 1019 स्टेशनों के द्वारा मुख्य नदियों (200), तालाबों, बाँधों, नहरों, भूगर्भ जल की गुणवत्ता एवं अद्यतन स्थितियों से जुड़ी हुई समस्याओं तथा बाढ़ की विभिषिका से जुड़ी हुई अद्यतन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन एवं नियमन करता है। CPCB नगरपालिका स्तर पर उत्पन्न होने वाले ठोस अवशिष्ट के निस्तारण से जुड़े मामलों की सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं तकनीकी सहयोग प्रदान करता है। CPCB ध्वनि प्रदूषण से जुड़े मुद्दों जैसे औद्योगिक इकाईयों से होने वाले शोर, लाउडस्पीकर, वाहन जनित शो इसे मानव पर पड़ने वाले घातक शोर-शराबों से निपटने की जिम्मेदारी एवं इनका नियामकीय कार्य भी करता है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु भारतीय न्यायपालिका की सक्रियता को नकारा नहीं जा सकता है। पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका ने भी महत्वपूर्ण सराहनीय भूमिका निभाई है। इसके प्रयासों से स्वच्छ पर्यावरण मौलिक अधिकार का अंग बन गया है। दिल्ली में प्रदूषित इकाईयों की बेवी स्थानान्तरण, सी.एन.जी. का प्रयोग। ताजमहल को प्रदूषण से बचाना, पर्यावरण को शैक्षणिक पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना तथा संचार माध्यमों द्वारा पर्यावरण के महत्त्व का प्रचार-प्रसार आदि न्यायपालिका के सराहनीय प्रयासों के झलक हैं। जनहित याचिकाओं ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में गैर सरकारी संगठनों, नागरिक समाज तथा आम आदमी की भागीदारी को प्रोत्साहित किया है। भारत में पर्यावरणीय संरक्षण हेतु 18 अक्टूबर 2010 को नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (NGT) की स्थापना राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम 2010 के

द्वारा की गयी है। यह संवैधानिक संस्था पर्यावरण विशेष मामलों की सुनवाई एवं त्वरित न्याय प्रदान करने के लिये भोपाल गैस त्रासदी 1984 के बाद उठी बहस एवं इसकी आवश्यकता पर की गयी है। (NGT) की परिधि में पर्यावरणीय न्याय शास्त्र से जुड़े नियम, परिनियम, जल-प्रदूषण अधिनियम 1974 से अद्यतन तक आते हैं। यह संस्था नागरिक संहिताओं के स्थान पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पर विश्वास करती है। इस न्यायालय की अवमानना की स्थिति में यह अधिकतम सजा एवं दस (10 करोड़) का जुर्माना कर सकती है। NGT पीड़ितों को मुआवजा एवं प्रदूषकों को अर्थदण्ड का प्रावधान करती है। Yamuna Floodplan Case में मार्च 2015 में *''आर्ट ऑफ लिविंग''* संस्था को पर्यावरण प्रभावित करने का दोषी पाया और पाँच करोड़ का जुर्माना लगाया। छत्तीसगढ़ में केन्द्र सरकार द्वारा आवंटित कोल ब्लॉकों का पर्यावरण हित में बाधा डालने का दोषी मानते हुए (NGT) ने आबंटन नष्ट कर दिया। दिल्ली एवं (NCR) में PM 2.5 Paritcles के उत्सर्जन को कम करने के लिए 10 साल से ज्यादा पुराने वाहनों पर रोक लगा दी गयी है। भारत में सर्वोच्च नियामक उच्चतम न्यायालय 1 अप्रैल 2017 से (BSIII) की प्रदूषण स्तर के वाहनों के संचालन एवं पंजीकरण पर पूर्ण प्रतिबंध लगाकर पर्यावरण संरक्षण हेतु न्यायिक सक्रियता का ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

पर्यावरण संरक्षण की अपनी परम्परा रीति एवं समुचित नीति, संविधान में उपलब्ध नियम केन्द्रीय स्तर पर सक्रिय नियामकों, न्यायाधीकरणों एवं सर्वोच्च संवैधानिक नियामक संस्था के बाद भी यह हम सबके लिये चिंता का विषय होना चाहिये। 2018 में पर्यावरण के मामलों में भारत की वैश्विक रैंकिंग 180 देशों में 177वीं रही जबकि 2016 में 141वीं थी। येल और कोलम्बिया विश्वविद्यालयों की आर्थिक मंच के साथ तैयार की गयी वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार ठोस ईंधन कोयला और वाहनों से निकले धुंए ने लाखों भारतीयों के लिये हवा की गुणवत्ता बहुत गिरा दी है। निश्चित ही समावेशी विकास एवं आर्थिक सुदृढ़ता की कोशिश एवं कोशिश के इस जंग में नियामकों के अधिकार स्वतंत्रता बढ़ाने की जरूरत है। भारत में सर्वोच्च नियामक मंत्रालय जो खुद ही सरकार का एक अंग है। उसके सामने परिस्थितिकीय सरोकारों को उच्च आर्थिक विकास के साथ संतुलित करना एक चुनौती है और कई मामलों में विवादपूर्ण भी हुआ क्योंकि इससे संबंधित विकल्प दुखदायी थे।

एक तरफ पर्यावरणीय सुरक्षा और संरक्षण की और दूसरी तरफ आर्थिक उन्नति की आवश्यकता के बीच वाद-विवाद अपरिहार्य है। ऐसे में वर्तमान नियामकों की व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिये सर्तकतापूर्ण संतुलन बनाये रखना जरूरी हो जाता है। स्वंच्छद विकास का रास्ता पर्यावरणीय विनाश की ओर ही जाता है। निश्चित ही हम गरीबी दूर करने की व्यवस्थायें प्रदूषणकारी साबित होती दिखाई दे

रही हैं। इसे दूर करने के लिये वर्तमान पर्यावरणीय नियामकों को पूर्ण, स्वतंत्रता की दरकार है। नियामकों को अत्यधिक शक्ति, साधन वं साहस संपन्न बनाने की आवश्यकता है। एक तरफ विकसित होती अर्थव्यवस्था की आवश्यकतायें जिसमें उद्योग जगत, प्राकृतिक संसाधनों तक आसान पहुँच रखता है और सरकार अत्यधिक रोजगार पैदा करना चाहती है ताकि अधिक-से-अधिक लोग विकास में हिस्सेदारी निभा सकें।

ऐसा विश्वास करना गलत होगा कि आर्थिक उन्नति और विकास के साथ कोई पर्यावरणीय क्षति अपरिहार्य नहीं होगी। इसके साथ ही यह सोचना भी भ्रमात्मक है कि पर्यावरण संरक्षण आर्थिक उन्नति में अवरोध है लेकिन ऐसी आर्थिक उन्नति सुनिश्चित करने के लिये टिकाऊ और पर्यावरण के लिहाज से ठीक हो, सभी से त्याग करने की अपेक्षा होगी। लेकिन यह त्याग व्यक्तिगत लाभ के लिये न हो, न ही कुछ लोगों के लिये लाभकारी हो। दुर्भाग्य से विकास बनाम पर्यावरण विवाद का समाधान करने का कोई रामबाण इलाज नहीं है। पल-पल बदलती दुनिया के दबावों खिचावों ने एक चीज स्पष्ट कर दी है कि पर्यावरणीय सरोकार अधिक दिनों तक हमारे उच्च विकास दर की अनवरत तलाश के समानान्तर नहीं चल सकते। पर्यावरणीय सरोकारों को न केवल दीर्घकालीय नीतियों को केन्द्र में रखना होगा बल्कि कभी-कभी मुख्य संचालक शक्ति भी बनाना होगा।

कभी-कभी संतुलन का प्रश्न केवल पर्यावरणीय संरक्षण और उन्नति के बीच नहीं रह जाता है। यह केवल वर्तमान उन्नति के अपेक्षाओं और भविष्य में उन्नति की संभावनाओं को सुनिश्चित करने के बीच संतुलित बिठाना हो जाता है।

पर्यावरणीय मसलों का समाधान करने और गरीबी न्यूनीकरण के बीच मजबूत और असंदिग्ध संबंध है। पर्यावरणीय मसलें जैसे– वायु और जल प्रदूषण का स्पष्ट प्रभाव जन स्वास्थ्य पर होता है और इसके साथ उत्पादनशीलता के मसले जुड़े होते हैं। भारत के लिये निहितार्थों पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि वह उच्च विकास की दौड़ में देर से शामिल हुआ है। लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकालने की जरूरत का मतलब टिकाऊ उच्च विकास दर सुनिश्चित करना है।

नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में न केवल विशेषज्ञों के राय को शामिल करने की आवश्यकता है बल्कि सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, पर्यावरणविद्ों, संरक्षणवादियों, अकादमिक लोगों, प्रशासकों और युवाओं को भी शामिल किया जाये।

वर्तमान परिस्थितियों में नीतियों, नियमों, नियामकों का पुनर प्रस्तुतीकरण एवं पुररूद्धार की सघन आवश्यकता प्रतीत होती है। इस हेतु भारत में पेशवर, स्वतंत्र पर्यावरणीय नियामक; के साथ-साथ जन-जागृति, जन-जिम्मेदारी, जन-भागीदारी, जन-कार्यवाही, सामाजिक दायित्व एवं सामाजिक संकल्प को लेकर आगे बढ़ने की जरूरत है।

संदर्भ

1. Environmental Compliance and Enforment in India. Rapid Assesment " Organisation for Economic Co-opration and Pevelopment.
2. Evaluation of Central Pollution Control Board (CPCB) Indian Institute of Management, Lucknow Retrieved Feb- 2010.
3. Hazardous waste Management Division - CPCB Retribed 31 May 20013.
4. Contract us/ Ministry of Envionrment, Forest & Climate Change. Govt. of India- Moef.gov.in
5. Dams and Development, New York, Cornell University Press- ISBN 978-0-8014-8907-5
6. National Green Tribunal पर्यावरण मंत्रालय भारत सरकार www.greentribunal.gov.in
7. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986– Indiawater portal hindi, Indiawaterportal.org
8. समाजसेवी विकास व अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण का द्वन्दः जसराम रमेश– Green Singnals. 2015
9. भारत की पर्यावरण नीतियाँ और कानून @ Hindi.waterportal.org

भारत में पर्यावरण संरक्षण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

शीला कुमारी

lkjk'k% पर्यावरण प्रदूषण ने वैश्विक स्तर पर भूमि, जल और वायु को प्रभावित कर मानवता के लिए बड़ी चुनौती उत्पन्न कर दी है। बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण भारत के लिए चिंता का कारण इसलिए भी है कि 2018 में पर्यावरण के मामले में भारत की रैंकिंग विश्व के 180 देशों में 177 है। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम के चलते पृथ्वी के घने जंगल रेगिस्तान बनते जा रहे हैं। एक तरफ नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं तो दूसरी तरफ जल दोहन से पूरे देश में जल संकट गहराता जा रहा है। भूजल का स्तर काफी नीचे जाने से भारत के कई भागों में जल के लिए समस्या उत्पन्न हो गई है। पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक प्रयास के आलोक में भारत में अनेक अधिनियम निर्मित होने के बावजूद पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। ऐसी भयावह स्थिति में पर्यावरण संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेवारी हो गई है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में xkscj-xSl la;a=k का अधिक उपयोग किया जाए तो इससे पर्यावरण संरक्षण में काफी सहयोग हो सकता है। इसी प्रकार lkSj ÅtkZ का प्रयोग खाना पकाने तथा घरेलू, वाणिज्यिक और औद्योगिक प्रयोग में लिए जाने से ÅtkZ ladV से निपटा जा सकता है। बड़े पैमाने पर बढ़ रहे पर्यावरण प्रदूषण के आलोक में देश में iapk;rksa को पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्य सौंपने से बड़ा बदलाव किया जा सकता है। LFkkuh; laLFkkvksa के माध्यम से पर्यावरण की प्रक्रिया को तेज कर स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। स्थानीय ग्रामीण या अर्द्धनगरीय क्षेत्रों में विभिन्न तरह के उद्योगों से बाहर निकलने वाले अपशिष्टों के निराकरण के लिए iapk;rh jkt laLFkkvksa की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। /kkrqxr Fkk में वर्णित तथ्यों के आलोक में धरती और व्यक्ति के अटूट संबंधों की दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण हमारी जिम्मेवारी हो गई है। ऐसी गंभीर स्थिति में संरक्षण के लिए पंचायती राज तथा स्थानीय स्वशासन से संबंधित विभिन्न संस्थाओं की भूमिका काफी कारगर हो सकती है। अतः पंचायतों को पर्यावरण विकास संबंधी कार्यों का अधिकार देना पर्यावरण संरक्षण के दिशा

में क्रांतिकारी कदम है। यही कारण है कि भारतीय संविधान के ***73oa l a'kks/ku vf/kfu;e*** *द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को न सिर्फ संवैधानिक दर्जा दिया गया, वरन् अनेक अधिकार भी सौंपे गए हैं। संविधान की* ***11oh vuqlwph*** *में पंचायती राज संस्थाओं को जो* ***29*** *कार्य सौंपे गए हैं, उनमें* ***uk*** *कार्यों का सीधा संबंध पर्यावरण संरक्षण से है।*

प्रस्तावना

पर्यावरण प्रदूषण ने वैश्विक स्तर पर भूमि, वायु और जल को प्रभावित कर आज मानवता के लिए बड़ी चुनौती उत्पन्न कर दी है। 19वीं सदी में धरती का औसत तापमान लगभग 0.1 डिग्री तथा 20वीं सदी में लगभग 0.7 डिग्री से और अधिक बढ़ता जा रहा है और ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही है कि वर्ष 2100 तक धरती के औसत तापमान में लगभग दो से छः डिग्री तक वृद्धि हो सकती है। भारत के लिए चिंताजनक तथ्य यह है कि हमारे हिस्से की धरती का तापमान 0.57 डिग्री प्रति सदी बढ़ा है और 2050 तक यह दो-तीन डिग्री तक बढ़ सकता है। ऐसी स्थिति में निम्न आय वाले देशों में जलवायु परिवर्तन के चलते फसलों की क्षति, डायरिया, बाढ़ आदि से करीब 1.5 लाख मौतें प्रतिवर्ष होंगी जिनमें 85 प्रतिशत सिर्फ युवा आबादी होगी। जलवायु परिवर्तन से समुद्र का जलस्तर बढ़ने, चक्रवातों, भूमि के कटाव तथा जलस्रोतों के नष्ट होने से स्वास्थ्य के खतरे में वृद्धि होगी। आज विकास के नाम पर जिस ढंग से प्राकृतिक संपदाओं का दोहन हो रहा है, वह एक गंभीर समस्या है जिसका निदान खोजना हमारी प्रथम जिम्मेवारी बन गई है। प्रकृति ने हमें विभिन्न प्रकार की संपदाएँ उपलब्ध कराई हैं जिनका संतुलित उपयोग कर हम समृद्धि की ओर बढ़ सकते हैं, लेकिन औद्योगिक उन्नयन तथा आर्थिक विकास के चलते इनका संतुलित दोहन प्रारंभ हुआ है जिनका स्पष्ट प्रभाव पर्यावरण पर पड़ा है। बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण विशेष रूप से भारत के लिए चिंता का कारण इसलिए है कि 2018 में पर्यावरण के मामले में भारत की रैंकिंग विश्व के 180 देशों में 177 है, जबकि 2016 में यह रैंकिंग 141 थी।[1] विश्व स्तर पर पर्यावरण के संबंध में भारत का यह गिरता स्तर हम सबके लिए चिंता का सबसे बड़ा कारण है। **i;koj.k ,oa in"k.k dk vFk&** पृथ्वी के चारों ओर जैव सक्रियता का वह पतला आवरण जिसे जीवमंडल ;इपवेचीमतमद्ध कहते हैं, पर्यावरण कहलाता है। मनुष्य, जल, स्थल, वन, फसल, मार्ग एवं उद्योग ये सभी जटिल पारिस्थितिकी के अंग हैं। प्रायः पर्यावरण को पारिस्थितिकी का पर्याय माना जाने लगा है। इसी तरह जब मानव की विकासात्मक क्रियाओं के चलते प्रकृति की स्वच्छता और संतुलन भंग हो जाते हैं तब इससे प्रदूषण होता है। संक्षेप में, प्रदूषण जल, वायु या भूमि के भौतिक रासायनिक और जैविक गुणों में होने वाला कोई भी अवांछनीय परिर्वतन है, जिससे मनुष्य जीवों तथा प्राकृतिक संसाधनों की हानि की संभावना हो।

iFoh gekjh ftEeokjh

अस्तित्व में पृथ्वी बहुत पहले आ गई थी, लेकिन जीवन के अनुकूल होने के लिए उसे कई भौतिक, रासायनिक एवं जैविक अभिक्रियाओं से गुजरना पड़ा। एक कोशिकीय से बहुकोशिकीय जीवन के विविध रूपों के निर्माण की लंबी श्रृंखला चली, जिसका वर्तमान रूप आज हमारे सामने है। इस क्रम में कई प्रजातियाँ जन्मीं और समय के साथ विलुप्त हो गईं। जलचर, थलचर, नभचर, पादप आदि प्रजातियाँ आज भी पृथ्वी की गोद में आश्रय पा रही हैं। मनुष्य इनमें से एक है। होश संभालते ही मनुष्य ने खुद को पृथ्वी की गोद में पाया। विकासयात्रा के हर पड़ाव में वह पृथ्वी पर आश्रित रहा और पृथ्वी ने एक **ek** की तरह उसकी सारी जरूरतें खुले दिल से पूरी कीं। स्पष्ट है कि मनुष्य और पृथ्वी के बीच अनूठा रिश्ता विकसित हुआ। मनुष्य ने पृथ्वी से अपने संबंध को स्वीकार कर उसे अभिव्यक्त किया और आज भी धरती के उपकार से वह आह्लादित है।

/keZxzFkksa esa eu"; vkj iFoh dk fj'rk

अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूत्र' में मंत्र है– 'माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्या', यानी यह पृथ्वी हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। यजुर्वेद के दसवें अध्याय में भी मातृभूमि की वंदना करते हुए कहा गया है, ''पृथ्वी मातर्मा हिंसीर्मा अहं त्वाम्'' अर्थात् हे मातृभूमि! न तू हमारी हिंसा कर और न हम तेरी हिंसा करें। सिर्फ वेदों में ही नहीं, वरन् सभी धर्मग्रथों– बाइबिल, कुरान, रामचरितमानस महाभारत तथा पुराणों आदि में भी मनुष्य के बुद्धिमान होने के कारण उसे पृथ्वी के प्रति जिम्मेवारी निभाने के लिए प्रेरित किया गया है।

विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान है– कण, प्रतिकण और विकिरण। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि ''त्रयः कृण्वति भुनस्य रेतः'' अर्थात प्रकृति में मूल तीन वर्ग विद्यमान हैं– वरुण, मित्र और अर्यमा।[2] इसकी संयुक्त सत्ता को 'अदिति' कहा जाता है जो अनादि और अखंड सत्ता है जिसे आदित्य (सूर्य) कहा गया है।[3] स्पष्ट है कि सूर्य ही प्रकृति के मूल तत्व है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में लिखा है कि यह सृष्टि और समस्त प्राणियों का शरीर पाँच भौतिक तत्वों– पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु के संतुलित संयोग से बना है।[4] प्रकृति के घटक में इन पाँच भौतिक तत्वों में अदभुत समन्वय है। प्रकृति के जिस विधान से सृष्टि संचालित हो रही है, उसे वैदिक भाषा में 'ऋत' कहा जाता है। ऋत को धारण करना ही धर्म है। 'अग्नि' प्रकृति की बहुत बड़ी शक्ति है जो ऋत को प्रकाशित करती है। ब्रह्मांड में स्थित सूर्य का ही पार्थिव रूप अग्नि है। सूर्य को 'धर्मणा' कहा गया है। समस्त प्राणियों के लिए उपकारक सूर्यदेव एवं प्रकृति के अन्य घटक जब मनुष्यों द्वारा प्राकृतिक नियत (ऋत) का अतिशय उल्लंघन देखते हैं तो वे कुपित हो विनाशकारी

रूप धारण कर लेते हैं। चूँकि सूर्यदेव प्रकृति के मूल तत्वों में प्रमुख हैं, अतः इनका कोप सर्वाधिक घातक व विनाशकारी हो जाता है।[5] सृष्टि की उपकारक प्राकृतिक शक्तियाँ जब प्रतिकूल आचरण करने लगती हैं तब सृष्टि के अस्तित्व पर संकट छा जाता है। निश्चित रूप से मनुष्य प्रकृति के नियमों में कम से कम हस्तक्षेप करे। पर्यावरण को अपने अतिशय भोग की लालसा में प्रदूषित न करे। यदि वह ऐसा करेगा, तो प्रकृति भी अपना संतुलन स्वयं बना लेती है।[6]

बढ़ते प्रदूषण के चलते तापमान में अत्यधिक वृद्धि से सूर्य आदि ग्रह क्रूर हो जाते हैं। सूर्य की किरणें उग्र होकर स्थावर, जंगम जीव, नदी, पर्वत, वनस्पति आदि को जलाने लगती हैं। *egkHkkjr* के *Hkh"e io* तथा *ok;q iqjk.k* में इसका स्पष्ट विवरण है। *eRL; iqjk.k* में भी कहा गया है कि प्रचंड सूर्य की किरणें समुद्र को शोषित कर नदी, कूप और पर्वतों के झरनों के जल को भी सुखा देती हैं। अंत में वह अपनी प्रलयकारी किरणों से पृथ्वी का भेदन करते हुए पाताल के जल को भी खींच लेती हैं।[7] परिणामस्वरूप, भूगर्भीय जल का स्तर नीचे गिरने लगता है। आज देशांतर्गत जल का नीचे गिरते स्तर से पुराण में कही गईं बातें सच दिख रही हैं। आज कुएँ और नलकूप सूख रहे हैं। मतस्य पुरान में इसे 'संवर्तक अग्नि' के नाम से विनाशकारी रूप में वर्णित किया गया है। इसी तरह, महाभारत के 'शल्य पर्व' में विस्तृत वर्णन है कि सूर्य देव के अतिशय कोप से भयानक आँधियाँ चलने लगती हैं और प्रकुपित वायु के प्रकोप से विनाशकारी मेघ, सूर्य, अग्नि का विनाशकारी रूप प्रकट होता है।[8] अधिक ताप के कारण वर्षा नहीं होती है और इस प्रकार अनावृष्टि से चारों ओर हाहाकार मच जाता है। ब्रह्म पुराण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[9] इस बढ़े हुए ताप को ही कालाग्नि कहा जाता है। इस अग्नि से तप्त और दग्ध भूमि का भयावह वर्णन महाभारत के 'शांति पर्व' में मिलता है। कहा गया है कि इससे समस्त प्राणियों के नष्ट हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। अधिक ताप एवं आँधियों के बाद घने मेघ से घनघोर वर्षा होती है जिस कारण विश्व के जलप्लावित होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।[10] हमारे शास्त्र और ऋषियों ने जो बातें कहीं हैं, उस पर बल देकर अमल करने की आज हमारी नैतिक और पहली जिम्मेवारी है। आज बदलते जलवायु को पृथ्वी पर वृक्ष लगाकर नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि मतस्य पुराण में कहा गया है–

''दशकूप समावापी, दशवापी समोह्रदः।
जश ह्रदः समः पुत्रः दश पुत्रो समोद्रुमः।।

अर्थात दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।[11]

मनुष्य और पृथ्वी के बीच का बिगड़ता रिश्ता

धर्मग्रथों में वर्णित सलाहों और सीखों के बावजूद दुर्भाग्यवश जैसे-जैसे मनुष्य विकसित होता गया वैसे-वैसे वह पृथ्वी और इसके संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करने

लगा। इसके चलते पर्यावरण में बदलाव हुए और बदलते जलवायु के दुष्परिणाम सामने आने लगे और पृथ्वी के घने जंगल रेगिस्तान बनते गए। समुद्री जल स्तर की वृद्धि से बड़े-बड़े शहर पानी में डूब गए। अनेक नदियों ने अपना रास्ता बदल लिया और कुछ नदियाँ तो हमेशा के लिए अस्तित्व विहीन होकर नालों में तब्दील हो गईं। जलवायु परिवर्तन के चलते विश्व की सभ्यताएँ बिखर गईं। मानसून और बारिश का समय बदल गया, झील-तालाबों की स्थिति सूखे कूड़ा पात्रों जैसी हो गईं। इस दौरान विश्व के पर्यावरणविद्ों और वैज्ञानिकों ने आम लोगों को अपना बहुमूल्य सुझाव देना भी जारी रखा कि पृथ्वी का सम्मान करना आवश्यक है। उनकी पेड़ न काटने की सलाह तथा हरियाली को नष्ट न करने की सीख धार्मिक रीति-रिवाजों और लोक परंपराओं में सम्मिलित हुए। इसके बावजूद, अँधी दौड़ ने धरती के पर्यावरण को छलनी किया। यही कारण है कि आज पृथ्वी और पर्यावरण के संरक्षण की बात महज उपदेश नहीं है, वरन् एक अनिवार्य जरूरत है। आज विश्व में हो रहे युद्ध, आणविक हथियार, परमाणवीय/रासायनिक दुर्घटनाएँ और औद्योगीकरण की अँधी लहर ने पृथ्वी को विनाश के खतरनाक मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है।[12] अतः जिस तरह धरती ने हमारे जीवन के लिए किया, हमारा भी कर्तव्य है कि उससे अपना रिश्ता पहचानें और बेहतर कदम उठाएँ।[13] अतः आवश्यक है कि जलवायु परिवर्तन के चलते बढ़ रहे प्रदूषण को हर हालत में हम नियंत्रित करें, क्योंकि इसी में हमारा अस्तित्व छिपा है।

प्रदूषण के प्रकार

प्रदूषण से वायु, जल, भूमि तथा अंतरिक्ष आज इतने अधिक प्रभावित हैं कि मनुष्य का जीवन संकट में पड़ता दिखाई दे रहा है।

ok;q inw"k.k& वायु में जब अवांछित तत्त्व प्रवेश कर जाते हैं तब उसका मौलिक संतुलन बिगड़ जाता है और वायु प्रदूषित हो जाती है। गैसें, खनिज तत्त्वों के कण तथा कार्बन के कण एवं धुआँ वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेवार हैं। वायु प्रदूषण के चलते मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और श्वसन-संबंधी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वायु प्रदूषण के चलते आज पूरा विश्व भयंकर रूप से प्रभावित है। भारत के मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, कानपुर एवं पटना जैसे अनेक शहरों को वायु प्रदूषण ने अपने प्रभाव में लिया है। पर्यावरण पर *'स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर–2017'*[14] के आंकड़ें खतरनाक हद तक चौंकाने वाले हैं। भारत इस मामले में चीन से आगे निकल गया है और जिस हवा में हम साँस ले रहे हैं, वह दिनोंदिन इतनी जहरीली होती जा रही है कि हर दिन अनेक मौतें वायु प्रदूषण से हो रही हैं।[15] विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मई 2018 में जारी 2016 के रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की सबसे ज्यादा प्रदूषित 15 शहरों में 14 भारत में हैं।[16] वर्ष 2016 के लिए इंस्टीट्यूट फॉर हेल्थ मेट्रिक्स एंड इवाल्यूएशन द्वारा जारी आँकड़ें के अनुसार वायु प्रदूषण से होनेवाली मौतों में भारत पहले स्थान पर है।[17]

क्र.सं.	देश	वायु प्रदूषण से होनेवाली मौतें
1	भारत	16,14,620
2	चीन	15,76,593
3	इंडोनेशिया	1,32,436
4	अमेरिका	1,05,083
5	मिस्र	68,520
6	ब्राजील	59,467
7	यूक्रेन	58,364
8	जपान	47,703
9	जर्मनी	39,536
10	मेक्सिको	31,141

उल्लेखनीय है कि वायु प्रदूषण से होने वाली मौतों के मामले में शीर्ष 10 देशों में छह देश बड़ी आबादी वाले हैं। प्रदूषण के चलते विषैली हवाओं और धुंध की चादर में लिपटी राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत पूरे उत्तर भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए आपात जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। पीएम–2.5 समेत विभिन्न अतिसूक्ष्म कणों और जहरीली गैसों से बने स्मॉग से लोगों को साँस लेने में तकलीफें हो रही हैं।[18]

ty in"k.k& प्रदूषित जल कई मामलों में मानव जाति के लिए खतरा उत्पन्न करता है। जल में एक सीमा से अधिक अघुलनशील ठोस पदार्थों के मिलने से अधिक रासायनिक पदार्थ जैसे– फ्लोराइड, क्लोराइड, कार्बोनेट्स, नाइट्रेटस आदि की मौजूदगी तथा बैक्टीरिया, वायरस, हेलमेन्थिस, कीड़े आदि के पाए जाने से जल प्रदूषित होता है। प्रदूषित जल से विविध तरह की बीमारियाँ होती हैं। भारत की गंगा, यमुना, गोमती और सोन नदी बड़े पैमाने पर प्रदूषित हैं। जल प्रदूषण का प्रभाव जलीय जीवन एवं मनुष्यों दोनों पर पड़ता है। नदियों में प्रदूषित जल के चलते मछलियाँ मर रही हैं। गंगा नदी में जल प्रदूषण वाराणसी, हरिद्वार, इलाहाबाद एवं कानपुर में कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों के गिरने से हो रहा है। इसी से आगरा, मथुरा एवं दिल्ली में यमुना नदी में जल प्रदूषण हो रहा है। कागज, मिल एवं अन्य कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों के गिरने से लखनऊ में गोमती नदी और मिर्जापुर में सोन नदी का प्रदूषण हो रहा है।

ty lhdV& एक तरफ नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं तो दूसरी तरफ जल दोहन से जल संकट भी भयावह रूप लेता जा रहा है। भारत में जल भंडार वाले इलाकों समेत कुछ राज्यों में भूजल का स्तर काफी नीचे पहुँच चुका है। एक अन्य रिपोर्ट के मुताबिक देश के 16 फीसदी से ज्यादा भूजल संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन

किया गया है। विशेष रूप से उत्तर पश्चिमी, पश्चिमी और प्रायद्वीपीय इलाकों में यह स्थिति ज्यादा भयावह है। दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान समेत भूजल का सर्वाधिक दोहन होने से पूरी अर्थव्यवस्था काफी प्रभावित हुई है।[19] देश में बढ़ते पानी संकट को देखते हुए भारत के उपराष्ट्रपति एम. वेकैंया नायडू ने 21 मार्च 2018 को अपने **vkyksd** में जल संरक्षण और पानी के विवेकपूर्ण इस्तेमाल पर बल दिया है।[20]

Hkwfe iznw"k.k& विविध कारणों से भारत की भूमि हर रोज प्रदूषित हो रही है। कीटनाशक एवं विषैली दवाएँ भूमि की उर्वरा-शक्ति को कम कर रही हैं और मानव शरीर में पहुँचकर अनेक रोग उत्पन्न कर रही हैं।

[kuu iznw"k.k& खनन से हवा, पानी और मिट्टी तीनों प्रदूषित हो रहे हैं, जिनका मनुष्य, पक्षी, पेड़–पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। खनन से वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। झरिया, धनबाद और देश के अन्य कोयला खानों में खनन कार्यों के चलते पेड़–पोधौं एवं फसलों को क्षति पहुँच रही है।

vU; iznw"k.k& वायु, जल, भूमि और खनन प्रदूषण के साथ–साथ भारत में बाँधों एवं जलाशयों के निर्माण के चलते हजारों लोग विस्थापित हो रहे हैं जिससे कृषि भूमि के ह्रास के साथ-साथ लोगों में अनेक तरह की बीमारियाँ बढ़ रही हैं। औद्योगिक संयंत्रों के साथ-साथ अंतरिक्ष में चलाए जा रहे खोज अभियानों, रॉकेटों तथा उपग्रहों के अंधाधुंध प्रक्षेपण से अंतरिक्ष में मलवा जमा हो रहा है।

i;koj.k lqj{kk e Hkkjr dh ftEesokjh

कृषि प्रधान भारत में दो-तिहाई से अधिक लोग गाँवों में निवास करते हैं। भारत में किसी भी पर्यावरण संबंधी समस्या का निदान ग्रामवासियों के सक्रिय सहयोग के बिना संभव नहीं है। **Mk- LokehukFku** का कहना है कि विशाल भारत में दूर-दूर तक फैले गाँवों को इस संबंध में समुचित वैज्ञानिक जानकारी देने की आवश्यकता है।[21] भारत सरकार के **i;koj.k ,oa ou e=ky;** के तत्वावधान में केंद्र सरकार द्वारा अनेक संस्थाएँ गठित की गई हैं–

1- Hkkjrh; okfudh vuqla/kku ,oa f'k{kk ifj"kn (ICFRE) nsgjknwu] mrjk[kaM& यह पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का एक स्वायत्त संगठन है, जो वानिकी के क्षेत्र में अनुसंधान एवं शिक्षा आयोजन के निर्देशन तथा व्यवस्था/प्रबंध करता है। यह राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान संस्थान, नीति निर्माण करने एवं वानिकी शोध के निष्कर्षों का प्रचार-प्रसार, प्रयोक्ताओं अर्थात राज्य वन विभागों, राज्यों के वन विकास निगमों, गैर-सरकारी संगठनों, काष्ठ आधारित उद्योगों, कृषि विश्वविद्यालयों एवं ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के बीच समन्वय करने के लिए उत्तरदायी है। इसके अंतर्गत देश के विभिन्न भागों में निम्नलिखित अनुसंधान संस्थान हैं–

(i) 'k"d ou vuqla/kku lLFkku (AFRI) tks/kiqj] jkt LFkku& यह जोधपुर में 1988 में स्थापित किया गया जिसका उद्देश्य रेगिस्तान को बढ़ने से रोकने एवं

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के लिए अनुसंधान एवं विकास करना है। इसका प्रभावित क्षेत्र राजस्थान, गुजरात एवं दादरा नगर हवेली है।

(ii) ou vuqla/kku laLFkku (FRI) nsgjknu] mÙkjk[kaM& 1906 में स्थापित इस संस्थान का उद्देश्य पंजाब, चंडीगढ़, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं हिमालयी भागों तथा गंगा के मैदान भागों में वानिकी शोध का प्रचार-प्रसार करना है।

(iii) dk"B foKku ,oa ikS|kfxdh laLFkku (IWST) cxyq:] dukVd& इस संस्थान की स्थापना 1988 में हुई। इसके अंतर्गत टीक एंव अन्य काष्ठ के उपयोग संग्रहण एवं प्रोसेसिंग संबंधी अनुसंधान कार्य किए जाते हैं। इसके प्रभाव क्षेत्र में कर्नाटक सहित गोवा, दमन एवं दीव के क्षेत्र भी आते हैं।

(iv) ou vkuqoa'kdh ,oa o{k ikS/k tuu laLFkku (IFGTB) dk;cVj] rfeyukMq& इस संस्थान की स्थापना 1988 में वृक्षों की आनुवंशिकी के संबंध में अनुसंधान करने, मैंग्रोव वन तथा उष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्रों से आनुवंशिकी पदार्थ बीज इत्यादि इकट्ठा करने के उद्देश्य से की गई है। इसके प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत तमिलनाडु, केरल, लक्षद्वीप तथा पुड्डुचेरी के कुछ हिस्से सम्मिलित हैं।

(v) m".k dfVcU/kh; ou vuqla/kku laLFkku (TFRI) tcyiqj] e/; izn'k& 1973 में स्थापित यह संस्थान देश में अकाष्ठ वनों पर शोध के लिए प्रसिद्ध है।

(vi) o"kkZ ou vuqla/kku laLFkku (RFRI) tksjgkV] vle& 1988 में स्थापित इस संस्थान का उद्देश्य पूर्वी भारत एवं सिक्किम राज्य में अन्य चीजों के साथ 'झूम खेती' (shifting cultivation) का संरक्षण करना है।

(vii) fgeky; ou vuqla/kku laLFkku (HFRI) f'keyk] fgekpy izn'k& 1988 में स्थापित यह संस्थान पहाड़ी राज्यों के ठंडे रेगिस्तान में वृक्षारोपण आदि करता है। उल्लेखनीय है कि 1977 में स्थापित इसका पूर्व नाम शीतोष्ण वन अनुसंधान संस्थान था जिसे 1998 में हिमालय वन अनुसंधान संस्थान नाम दिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि वन अनुसंधान संस्थानों के अतिरिक्त भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के अंतर्गत ही स्थानीय स्तर पर अनेक केंद्र कार्यरत् हैं जैसे– **1.** वन उत्पादकता संस्थान (IFP) राँची, बिहार (1993) **2-** सामाजिक वानिकी तथा पारिबहाली केंद (CSFER) इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (1992) **3-** वानिकी अनुसंधान तथा मानव संसाधन विकास केंद्र (CFRHRD) छिंदवाडा, मध्य प्रदेश (1995) तथा **4-** वन अनुसंधान केंद्र (FRC) हैदराबाद, आंध्र प्रदेश (1997)। इनके अतिरिक्त, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के संस्थान एवं केंद्र विभिन्न स्थानीय आवश्यकताओं के आलोक में क्षेत्रीय स्टेशन/प्रतियोगिक क्षेत्र भी स्थापित करते हैं।

2- xkfoan oYyHk izr fgeky; ikfjLFkfrdh ,oa fodkl laLFkku (GBPIHED) vYekMk] mÙkjk[kaM& इस संस्थान की स्थापना अगस्त 1988 के उत्तराखंड के अल्मोड़ा में की गई। यह हिमालय के कृषि प्रणालियों एवं पारिस्थिति की अंचलों का अध्ययन करता है।

3- lyhe vyh i{kh foKku rFkk ikdfrd bfrgkl dsUnz (SACON) dk;ZcVj– प्रसिद्ध पक्षी विज्ञानी सलीम अली के नाम पर इस केंद्र की स्थापना जून 1990 में की गई। इसका उद्देश्य जैव विविधता के संरक्षण से जुड़े मसलों एवं पक्षी विज्ञान तथा जीवों के अन्य रूपों के प्राकृतिक विज्ञान के सभी पक्षों से संबंधित अनुसंधान करना है।

4- lh-ih-vkj- i;kZoj.k; f'k{kk dsUnz (CPREEC) pUub] rfeyukMq– इसकी स्थापना पर्यावरण के संबंध में चेतना और ज्ञान में वृद्धि तथा देश की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से 1988 में गई। यह केंद्र सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर फाउण्डेशन, चेन्नई से संबद्ध है।

5- ou f'k{kk funs'kky; (DEF) ngjknu& यह निदेशालय देश में राज्य वन सेवा के अधिकारियों के नियमित प्रशिक्षण, समन्वय एवं प्रबंधन के लिए उत्तरदायी है। इसके नियंत्रण में **pkj** महाविद्यालय हैं– 1. राज्य वन सेवा कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड 2. राज्य वन सेवा कॉलेज कोयंबटूर, तमिलनाडु 3. राज्य वन सेवा कॉलेज, बर्नीहाट, असम तथा 4. पूर्वी वन रेन्जर्स कॉलेज, कुर्सियोंग, पश्चिम बंगाल।

6- bfnjk xk/kh jk"Vªh; ou vdknseh (IGNFA) ngjknu] mÙkjk[kaM& 1987 में भारतीय वन महाविद्यालय का स्तर बढ़ाकर राष्ट्रीय वन अकादमी के नाम से इसका गठन किया गया। भारतीय वन सेवा के पर्यवेक्षकों को सेवाकालीन व्यावसायिक प्रशिक्षण देना इसका काम है।

7- Hkkjrh; ou izca/k laLFkku (IIFM) Hkksiky] e/; izn'ks– पर्यावरण मंत्रालय का यह एक स्वायत्तशासी निकाय है जिसकी स्थापना वानिकी प्रबंध में व्यावसायिकता लाने के ध्येय से 1982 में की गई।

8- i;kZoj.k f'k{kk dsUnz (CEE) vgenkckn] xqtjkr– 'नेहरू विकास फाउण्डेशन' अहमदाबाद से संबंधित इस केंद्र की स्थापना 1984 में राष्ट्रव्यापी पर्यावरणीय शिक्षा कार्यक्रमों और गतिविधियों के निर्माण एवं संचालन के लिए की गई।

9- mR[kuu i;kZoj.k dsUnz (CME) ?kuckn] >kj[kaM– 1987 खनन पर्यावरण के क्षेत्र में अनुसंधान एवं प्रशिक्षण के उद्देश्य से **[kku fo|ky;** धनबाद में इस पर्यावरण केंद्र की स्थापना की गई। 1994 में **fo'o fo|ky; vuqnku vk;ksx** द्वारा इसे अपने हाथ में लिए जाने के बाद इस केंद्र में अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों का खर्च **dsUnh; i;kZoj.k ,oa ou e=ky;** वहन करता है।

10- jk"Vªh; ikdfrd bfrgkl laxgky; (NMNH) ubZ fnYyh– 1972 में स्थापित इस संग्रहालय का मुख्य कार्य विभाग में और विभाग के बाहर विविध गतिविधियों के द्वारा पर्यावरणीय शिक्षा का संवर्द्धन एवं लोगों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है।

11- Hkkjrh; oU; tho laLFkku (WLII) ngjknu– इस संस्थान के अनुसंधान कार्य में भारत में वन्य जीवन संरक्षण की पारिस्थितिकीय तथा सामाजिक-आर्थिक एवं

प्रबंध पक्षों के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यह वैज्ञानिक जानकारी को एकत्र कर अधिकारियों को प्रशिक्षण एवं विभिन्न संस्थाओं को परामर्श देता है। इनके अतिरिक्त, राज्यों में वन अनुसंधान संस्थान तथा राज्य वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर एवं अन्य विभिन्न योजनाओं के तहत पर्यावरण संरक्षण में कार्यरत् होकर भारत को एक प्रदूषण रहित राष्ट्र बनाने के लिए कृतसंकल्प है।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र अंतर सरकारी पैनल (IPCCC) की रिपोर्ट और भारत

जलवायु परिवर्तन पर I;Dr jk"V' के अंतर सरकारी पैनल (IPCCC) ने 2014 में जारी अपने रिपोर्ट में बताया है कि जलवायु परिवर्तन व्यापक रूप ले चुका है और इसके परिणाम दिखने लगे हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए संयुक्त राष्ट्र की चेतावनी काफी गंभीर है, क्योंकि भारतीय कृषि पहले ही मानसून के अनिश्चित मिजाज का शिकार बन चुकी है। भारत के संबंध में यह रिपोर्ट चिंताजनक इसलिए भी है क्योंकि इस रिपोर्ट में भारत को सबसे ज्यादा जोखिम वाले देशों में रखा गया है।[22] देश की राजधानी दिल्ली को आज भी टोक्यो और शंघाई के बाद विश्व के तीसरे बड़े प्रदूषित शहर के रूप में गिना जाता है। विश्व भर में चक्रवातों से होने वाली मौतों में से 86 प्रतिशत भारत और बांग्लादेश में हो रही हैं।[23] भारत में किए गए संयुक्त राष्ट्र सर्वेक्षण के मुताबिक पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में इसके चलते भूगर्भीय जलस्रोतों में कमी आने के संकेत हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि मौसमी बदलावों से गंगा के मैदानी इलाकों में सबसे बड़ा असर गेहूँ और धान की फसलों पर पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन का ही यह परिणाम है कि आज जहाँ एक ओर भारत में चेरापूँजी जैसी दुनिया की सबसे ज्यादा बारिश वाली जगह भी अब सूखे की शिकार हो रही है तो दूसरी ओर जैसलमेर जैसे रेगिस्तानी शहर में जल निकासी के इंतजामों की जरूरत महसूस की जा रही है,[24] क्योंकि वहाँ बारिश में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। जलवायु परिवर्तन के चलते ही भारत के कई हिस्सों में आज भारी वर्षा और ओला वृष्टि हो रही है।[25]

भारत में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

यदि मनुष्य को दीर्घायु और स्वस्थ रहना है तो प्रकृति और पर्यावरण की गोद में ही वह स्वस्थ और सुरक्षित रह सकता है।[26] जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के अंतर सरकारी पैनल की उपर्युक्त वर्णित रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत की स्थिति जलवायु परिवर्तन के चलते काफी भयावह हो चुकी है। भारत में पर्यावरण संरक्षण संबंधी अधिनियम बनाने का कार्य स्वतंत्रता के पूर्व ही प्रारंभ हो गया था। स्वतंत्रतापूर्व सर्वप्रथम 1877 में वन अधिनियम पारित किया गया जिसके तहत पर्यावरण संरक्षण की बात उठाई गई थी। उसके बाद भी कई अधिनियमों में पर्यावरण संरक्षण पर बल दिया

गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ तब भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न उपबंधों को सम्मिलित किया गया। पर्यावरण से संबंधित उपबंधों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों एवं मूल कर्तव्यों में देखा जा सकता है।

1- lfo/kku dh mÌf'kdk e i;koj.k lqj{k.k lacU/kh iko/kku& वैसे तो भारतीय संविधान की प्रस्तावना में प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है, लेकिन इसके अंतर्गत जिस समाजवादी राज्य की स्थापना की बात स्वीकार की गई है, वह तभी संभव है जब आम नागरिक का जीवन स्तर ऊँचा हो। आम नागरिक का जीवन स्तर ऊँचा तभी हो सकता है जब उसे स्वच्छ एवं प्रदूषणरहित पर्यावरण मिल सके।

2- lfo/kku dk eyy vf/kdkjksa e i;koj.k lqj{k.k& भारतीय संविधान के **Hkkx iii** में वर्णित **eyy vf/kdkjksa** में भी पर्यावरण संरक्षण के संबंध में प्रत्यक्ष रूप से किसी तथ्य पर प्रकाश नहीं डाला गया है, लेकिन अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता के अधिकार में जो प्रतिबंध लगाया गया है, उनका सीधा संबंध पर्यावरण संरक्षण से है। इसी तरह, संविधान के अनुच्छेद 21 में उल्लिखित प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के तहत न्यायिक निर्णयों में धूम्रपान से सुरक्षा को भी सम्मिलित किया गया है। अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि प्रत्येक को उन गतिविधियों को बचाया जाना चाहिए, जो उसके जीवन, स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहुँचाती हों। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 252 और 253 को काफी महत्त्वपूर्ण इसलिए माना गया है क्योंकि वे पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने के लिए अधिकृत करते हैं।

3- jkT; dh uhfr funs'kd rÙoksa e i;koj.k lqj{k.k– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 एवं अनुच्छेद 48 (A) सीधे रूप से पर्यावरण संरक्षण से संबंधित हैं। जहाँ अनुच्छेद 47 राज्य को मादक पेयों और हानिकारक औषधियों के उपयोग को कुछ अपवादों के साथ रोकने का निर्देश देता है,[27] वहाँ अनुच्छेद 48 (A) पर्यावरण संरक्षण, उसके संवर्द्धन एवं वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने के प्रयास से संबंधित है।

4- lfo/kku dh eyy drZO;ksa e i;koj.k lqj{k.k vkj cu vf/kfu;e& भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (G) में उल्लिखित तथ्यों के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे, उसका संवर्द्धन करे एवं जीव तथा प्राणियों पर दया करे। यहाँ प्राकृतिक वातावरण के अंतर्गत प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों तरह के वातावरण को शामिल किया गया है। अनुच्छेद 51 (G) में वर्णित कर्तव्य की पूर्ति भी संभव है जब पर्यावरण सुरक्षित रहे और वह किसी भी तरह से प्रदूषित न हो। यही कारण है कि भारतीय संसद द्वारा पर्यावरण से जुड़े इन कर्तव्यों का पालन करते हुए पर्यावरण संरक्षण के लिए उपयुक्त विधायन की व्यवस्था की जाती है। इसी के तहत 1972 में 'राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन एवं समन्वय समिति' की

स्थापना की गई। इसके बाद पर्यावरण संरक्षण से संबंधित अनेक अधिनियम बनाए गए जैसे– वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, जल उपकर (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1977, वन (संरक्षण) अधिनियम 1980, वायु (प्रदूषण निवारण नियंत्रण) अधिनियम 1981, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986, जैव–विविधता संरक्षण अधिनियम 2002, राष्ट्रीय जल नीति 2002, राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004, वन अधिकार अधिनियम 2006, राष्ट्रीय जलनीति 2012 आदि। उल्लेखनीय है कि पर्यावरण संरक्षण संबंधी भारत में बने कानूनों की समीक्षा के लिए पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने 29 अगस्त 2014 को पूर्व कैबिनेट टी. एस. आर. सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति गठित की। इस समिति ने नवंबर 2014 में अपनी रिपोर्ट दी जिसमें पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित अनेक सुझाव और सिफारिशें की गईं हैं।

पर्यावरण संरक्षण में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

पर्यावरण असंतुलन आज विश्व की एक गंभीर समस्या है। औद्योगिकीकरण से उपजी भौतिकवादी संस्कृति ने मानव समाज को पथभ्रष्ट कर मानव सहित वन्य जीवों के लिए भी संकट उत्पन्न कर दिया है। पारिस्थितिकीय असंतुलन से उत्पन्न भय ने आज वैश्विक मानव समाज को आंदोलन के लिए उत्प्रेरित किया है। तकनीकी विकास के चलते ऊर्जा संसाधनों के अत्यधिक उपभोग के परिणामस्वरूप पेट्रोल, कोयला तथा गैस इत्यादि समाप्त होने के कगार पर हैं। अतः स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि तथा भौतिक सुख-समृद्धि की लालसा के कारण सीमित संसाधनों पर असीमित जनसंख्या का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में पर्यावरण संरक्षण हम सबों की अपने लिए एक नैतिक जिम्मेवारी है। इसके लिए आज वैश्विक स्तर पर गंभीर चर्चा की जा रही हैं और इसे नियंत्रित करने के लिए प्रयास भी किए गए हैं। वैश्विक प्रयास के आलोक में ही राष्ट्रीय स्तर पर भारत में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक अधिनियम निर्मित हुए हैं। इन अधिनियमों को लागू करने के लिए अनेक सलाहकार संस्थाएँ एवं समितियाँ बनाई गई हैं जिनके द्वारा भारत को प्रदूषणरहित राष्ट्र बनाने के लिए अनवरत प्रयास जारी है। इसके बावजूद, जलवायु परिवर्तन के चलते देश की राजधानी दिल्ली सहित सभी बड़े शहर बुरी तरह प्रदूषित हैं। जलवायु परिवर्तन के आलोक में 13 नवंबर 2017 को सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली–एनसीआर में प्रदूषण को लेकर केंद्र सरकार के साथ दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा सरकारों को नोटिस जारी किया।[28] इसी प्रकार, ध्वनि और वायु प्रदूषण से प्रभावित दिल्ली सहित देश के प्रायः सभी बड़े शहरो की स्थिति काफी चिंताजनक है। पटना तथा बिहार के कई शहर ध्वनि और वायु प्रदूषण की वजह से निवास करने योग्य नहीं रह गए हैं। इस संदर्भ में पटना उच्च न्यायालय ने प्रदूषण की खतरनाक स्थिति पर राज्य सरकार और बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से नाराजगी जताई है और सरकार से चार सप्ताहों में ध्वनि प्रदूषण रिपोर्ट

देने को कहा है कि सरकार ने इस संबंध में नियंत्रण करने के लिए क्या कारवाई की है?[29]

पर्यावरण प्रदूषण के उपर्युक्त संदर्भ में पर्यावरण संरक्षण में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अत्यधिक आबादी वाला यह देश कृषि प्रधान है, जहाँ दो-तिहाई से अधिक लोग गाँवों में निवास करते हैं। डॉ. स्वामीनाथन का यह कहना सही है कि पर्यावरण संबधी समस्या का निदान ग्रामवासियों के सक्रिय सहयोग के बिना संभव नहीं है।[30]

भारतीय संविधान का 73 वाँ संशोधन अधिनियम

भारतीय संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा ipk;rh jkt lLFkkvk को न सिर्फ संवैधानिक दर्जा दिया गया, वरन उन्हें अनेक अधिकार भी सौंपे गए हैं।[31] संविधान की 11वीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं को जो 29 कार्य सौंपें गए हैं, उनमें निम्नलिखित नौ कार्यों का सीधा संबंध पर्यावरण संरक्षण से है–

1. कृषि प्रसार
2. भूमि प्रोन्नयन, भूमि-सुधार, चकबंदी तथा मृदा संरक्षण
3. अल्प सिंचाई, जल प्रबंधन एवं वाटरशैड प्रबंधन
4. पशुपालन, डेयरी एवं कुक्कुट पालन
5. मतस्य पालन
6. सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी
7. पेय जल
8. ईंधन एवं चारा
9. सामुदायिक अस्तियों का प्रबंधन

पारिस्थितिकीय असंतुलन की समाप्ति में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका

स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखंड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद स्थानीय स्वशासन से संबंधित पंचायती राज की तीन संस्थाएँ हैं। भारत के शहरी क्षेत्र के अंतर्गत भी अनेक तरह के स्थानीय स्वशासन की इकाईयाँ कार्यरत् हैं। 74 वें संवैधानिक संशोधन में शहरी या नगरीय क्षेत्र की स्वशासन की इकाईयों में एकरूपता लाने के लिए तीन प्रकार की इकाईयाँ गठित करने की बात कही गई है। इसके अंतर्गत प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की शहरी संस्थाएँ होंगी, जैसे– 1. जो क्षेत्र ग्रामीण से शहरी में परिवर्तित हो रहे हैं, वहाँ नगर पंचायत 2. छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए नगर परिषद और 3. बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम। संविधान में वर्णित ये सभी ग्रामीण एवं नगरीय स्थानीय संस्थाएँ पर्यावरण संरक्षण में निम्नलिखित विविध कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं–

ty lj{k.k& जल संकट से आज पूरा विश्व प्रभावित है। जनसंख्या में

अनियंत्रित वृद्धि और द्रूतगति से हो रहे औद्योगिकीकरण से एक तरफ जल खपत में वृद्धि हुई है तो दूसरी तरफ वर्षा जल की कमी या भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के चलते सीमित जल का विवेकपूर्ण उपयोग आज आवश्यक हो गया है। जल संरक्षण किए बिना हम आगामी पीढ़ी को सुरक्षित नहीं रख सकते। पर्यावरणविद् हिमांशु ठक्कर का कहना है कि यह एक कड़वी सच्चाई है कि भूमिगत जल का दोहन करने के मामले में भारत दुनिया में पहले स्थान पर है जिसके लिए देश में इस वक्त तीन करोड़ से ज्यादा ट्यूबवेल और बोरवेल हैं। यही कारण है कि जमीन के अंदर पानी गहरे तक सिमटता जा रहा है। हमारी सरकारों के पास कोई ऐसी नीति नहीं है, जिससे कि जल संरक्षण को बड़ा आयाम देकर भविष्य में आनेवाले सूखे जैसे किसी भी संकट से निपटा जा सके।[32] घटते जल के आलोक में आज तालाब, पोखर तथा झील आदि को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। मैग्सेसे पुरस्कार विजेता, जलपुरुष राजेंद्र सिंह का कहना है, ''सरकार को बारिश से पहले ही तालाब पुनर्जीवन प्राधिकरण गठित कर देना चाहिए। यह प्राधिकरण ग्राम सभा को सक्षम बनाकर तालाबों को मिटना-सिमटना रोकने में सक्षम होगा''।[33] उन्होंने यह भी कहा है कि तालाबों का संकट सरकारी गलतियों से शुरु हुआ है, इसलिए इसका सामाधान भी अब सरकार को सबसे पहले प्राथमिकता बनाकर करना होगा।[34] ऐसी ही मान्यता साइंटिस्ट भरत शर्मा की भी है जिन्होंने कहा है, ''तालाबों का संरक्षण और प्रबंध राष्ट्रीय मसला है। ग्रामीण क्षेत्र के विकास का यह अभिन्न अंग है। लिहाजा इसे भी आर्थिक विकास की तरह उच्च प्राथमिकता देने की जरूरत ह''।[35] 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट' की एक रिपोर्ट के अनुसार भी यदि देश की औसत वर्षा के जल का आधा भी प्रत्येक गाँव की 1.12 हेक्टयर भूमि में एकत्रित कर लिया जाए तो देश के किसी भी गाँव में पीने के पानी का संकट नहीं रह जाएगा।[36] बरसाती जल सभी खेतों में भरकर सिंचाई का कार्य लिया जा सकता है। वर्षा से पहले मकानों की छतों को साफ कर वर्षा का पानी पाइपों द्वारा भंडारण टैंक में एकत्रित करके पूरे वर्ष भर पीने के लिए प्रयोग में लिया जा सकता है। जिन तलाबों या नदियों में वर्षा काल में जल की आवक होती है, उनमें से मिट्टी निकालकर उसे गहरा बनाकर अधिक मात्रा में जल एकत्रित किया जा सकता है। इस कार्य के लिए गाँव के लोगों से श्रमदान करवा कर उन्हें रोजगार भी उपलब्ध कराया जा सकता है। इसके साथ ही, परिष्कृत सिंचाई प्रणाली, शुष्क खेती, उचित जल वितरण व संचय, जल के दुरुपयोग की रोकथाम, जल प्रदूषण पर रोक तथा वनों की कटाई आदि पर प्रतिबंध लगाने के लिए ग्रामवासियों में जागरूकता लाना आवश्यक है। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम योजना में जल संरक्षण पर अधिक बल दिया गया है। जल संभरण एवं संरक्षण में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका आज बढ़ गई है। ग्राम पंचायतें जल के सामूहिक स्रोतों जैसे– तालाबों, झीलों, नदियों के जल के उपयोग को नियंत्रित कर उन्हें प्रदूषण से बचा सकती हैं। उल्लेखनीय है कि आज इजरायल ऐसा देश है जहाँ जल के नितांत कमी के बावजूद कम पानी से खेती करने की तकनीक का विकास हुआ है।

ou lj{k.k ,oa lkekftd okfudh& पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण के चलते वन संरक्षण की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। वन वायु को शुद्ध रखने, मरुस्थलीकरण रोकने तथा बाढ़ नियंत्रण में सहायक है। इसे ध्यान में रखकर ही भारत सरकार द्वारा वन क्षेत्रों की रक्षा के साथ-साथ विस्तृत रूप में वृक्षारोपण कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर चलाए जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि छठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत नए बीस सूत्री कार्यक्रम के सूत्र संख्या 12 के तहत सामाजिक वानिकी कार्यक्रम अपनाया गया। इसके अंतर्गत बंजर भूमि में बाग लगाना, विनष्ट वनों में पुनः वृक्षारोपण तथा सुरक्षा पेटियों के विकास की प्रमुखता दी गई। वन संरक्षण और वृक्षारोपण परियोजनाओं के विकास से सूखा, अकाल और बाढ़ जैसी समस्याओं को कम किया जा सकता है।[37] गिरिराज किशोर का मानना है कि बाग-बगीचे लगाकर निरंतर प्रदूषित होते पर्यावरण और जीवन को बचाया जा सकता है। आवश्यकता है कि ग्रामवासियों को गाँव के रिक्त स्थलों और खेतों के चारों ओर वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित किया जाए। वन क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर उनके प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक योजनाएँ चलाई जा सकती हैं। उल्लेखनीय है कि आज **eujxk** के तहत वृक्षारोपण एवं सामाजिक वानिकी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। **Hkkfe fodkl vkj Hkj{k.k&** पंचायती राज से संबंधित स्थानीय संस्थाएँ भूमि विकास और भूरक्षण कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। अनुपयुक्त कृषि पद्धति तथा कृषि कार्य के लिए तेजी से बढ़ते रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से भूमि की उर्वरा क्षमता कम होती जा रही है। ग्रामीण किसान रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं के स्थान पर केंचुए और गोबर की खाद, पेड़ों की सूखी पत्तियों तथा पशुओं के अपशिष्टों को सड़ाकर खाद तैयार कर उपयोग में लें तो भूमि की उर्वरा शक्ति को विकसित किया जा सकता है। ग्राम-पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद तथा नगरीय स्थानीय संस्थाएँ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

i;koj.k f'k{kk rFkk tu tkx:drk dh vko';drk& पर्यावरण संरक्षण के लिए समग्र चिंतन की आवश्यकता है जिसके मूल में व्यक्ति, व्यक्ति-परिवार, समाज, देश तथा विश्व सम्मिलित है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा हरित क्रांति के जनक डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन के विचार में भारत में किसी भी पर्यावरण संबंधी समस्या का निदान ग्रामवासियों के सक्रिय सहयोग के बिना संभव नहीं है। उनके विचार में गाँवों के लोगों को समुचित वैज्ञानिक जानकारी देकर ही मानसूनी वर्षा की कमी से उत्पन्न समस्याओं से निपटा जा सकता है।[38] अतः पर्यावरण संबंधी शिक्षा और लोगों में पर्यावरण के प्रति जागकता बढ़ाकर बड़े पैमाने पर पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि जन आंदोलन व जन चेतना के फलस्वरूप 1763 में जोधपुर के खेजडली ग्राम में बिश्नोई समाज द्वारा एक ग्रामीण साहसी महिला अमृता देवी के नेतृत्व में सर्वप्रथम खेजडी वृक्ष की रक्षा के लिए चिपको आंदोलन चलाया गया था। उनके बलिदान के परिणामस्वरूप पेड़ काटना कानूनन जुर्म घोषित किया गया। अतः पर्यावरण संरक्षण

हेतु प्रत्येक नागरिक को जिज्ञासु, जागरूक व उत्सुक होना पड़ेगा तभी प्रत्येक व्यक्ति अपने आसपास होने वाली वातावरण की क्षति को रोक पाने में सफल होगा। विश्व स्तर पर किसी कार्य को लागू करने से पूर्व उसे स्थानीय स्तर पर लागू करना आवश्यक है। कटते वनों को बचाने के लिए 1973 में उतराखंड के चमोली में चिपको आंदोलन चलाया गया। इसी प्रकार, रैनी ग्राम की महिलाओं द्वारा 'वन बचाओ आंदोलन' तथा दक्षिणी भारत में कर्नाटक के याण्डुरंग के नेतृत्व में 1993 में 'एप्पिको आंदोलन' पर्यावरण संरक्षण के लिए चलाए गए। नदी घाटी परियोजनाओं तथा बाँध परियोजनाओं के निर्माण से आसपास के क्षेत्र को होने वाले नुकसान, जल प्लावन, वनों की कटाई के लिए पर्यावरण को होने वाली क्षति व निवासियों को विस्थापित करने के लिए सुंदरलाल बहुगुणा, मेधा पाटकर, अरूंधती राय जैसे सामाजिक कार्यकत्ताओं के द्वारा प्रयास किए गए।

ck/k fuekZ.k dk izHkko& नदियों का जल वहाँ के लोगों को वर्ष भर उपलब्ध कराने के लिए बाँध बनाए जाते हैं। इससे सिंचाई और विद्युत उत्पादन का कार्य भी होता है, लेकिन बाँध निर्माण से वन क्षेत्र जलमग्न हो जाते हैं। बाँध निर्माण का सबसे अधिक प्रभाव आदिवासियों पर पड़ता है। यही कारण है कि गढ़वाल में टिहरी बाँध परियोजना तथा नर्मदा घाटी की सरदार सरोवर एवं नर्मदा सागर (जिला खंडवा) पर प्रस्तावित बाँध पर राष्ट्रीय स्तर पर विवाद जारी है। इस संदर्भ में बाँध निर्माण जैसी बड़ी सिंचाई परियोजना के बजाय पंचायत स्तर पर लघु सिंचाई परियोजना का विकास करने से किसानों को सिंचाई सुविधा के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण भी हो सकता है। इस संबंध में सरकार को सोचने विचारने की आवश्यकता है।

Åtk LdV& ऊर्जा खपत आज औद्योगिक प्रगति, आर्थिक-सामाजिक उत्थान, जीवन यापन की गुणवता तथा मानव कल्याण का मापदंड बनती जा रही है। ऊर्जा की निरंतर खपत से परंपरागत ऊर्जा स्रोत जैसे कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस का तीव्र गति से दोहन हो रहा है और इनके भंडार शीघ्र समाप्त होने के कगार पर हैं। पर्यावरण प्रदूषण के लिए भी ये जिम्मेवार हैं। अतः ऊर्जा संकट से निपटने के लिए परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का संरक्षण और नवीनीकीण योग्य ऊर्जा स्रोतों का पता लगाकर उनका उपयोग करना आज आवश्यक हैं। स्थानीय पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा ऐसा करने से पर्यावरण संरक्षण में सहूलियत हो सकती है।

सुझाव

ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर का इस्तेमाल उपलाओं (गोंयठा) बनाकर घरेलू ईंधन के रूप में होता है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर-गैस संयंत्रों का अधिक उपयोग किया जाए तो इससे पर्यावरण संरक्षण में काफी सहयोग हो सकता है। इसी प्रकार सौर ऊर्जा का प्रयोग खाना पकाने तथा अन्य घरेलू वाणिज्यिक और औाद्योगिक प्रयोग में लिए जाने से ऊर्जा संकट से निपटा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय गाँवों में सौर

प्रकाश वोल्टीय सैल द्वारा उत्पन्न बिजली से सुदूर गाँवों में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का विकास कर राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, उत्तराखंड आदि राज्यों में सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था की गई है।अतः नवीकरणीय (अक्षय) ऊर्जा संसाधनों जैसे– पवन, जल तथा सौर ऊर्जा के साधनों को आज ग्रामीण स्तर पर तेजी से प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। तमिलनाडु में पवन चक्कियाँ लगाकर स्थानीय उद्योगों की विद्युत आवश्यकताओं की पूर्ति वैकल्पिक स्रोत के रूप में की जा रही है। स्थानीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के सहयोग से पारंपरिक प्रकाश बल्ब के स्थान पर सी. एफ. एल. बल्ब के इस्तेमाल को प्रोत्साहित कर जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित किया जा सकता है। समाज के सर्वांगीण विकास की जिम्मेवारी के तहत नई पंचायती राजव्यवस्था पर्यावरण को स्वच्छ और प्रदूषणरहित तथा हरा-भरा रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही है। पंचायतों को पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्य सौंपने से ग्रामीण क्षेत्रों की पृष्ठभूमि में बदलाव आ सकता है। पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन के लिए स्थानीय संस्थाओं द्वारा वन, जल, वन्यजीव, भूमि संरक्षण के लिए नीति निर्धारित कर इन्हें स्थानीय जनता के सहयोग से ईमानदारी से लागू कर पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर बढ़ रहे पर्यावरण प्रदूषण के आलोक में भारत जैसे देश में पर्यावरण प्रबंधन के विकास में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका का विस्तार करने की आज आवश्यकता है। स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से न सिर्फ पर्यावरण की प्रक्रियाओं को तेज किया जा सकेगा, वरन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निराकरण में भी बड़े पैमाने पर सहायता मिल सकती है। स्थानीय ग्रामीण या अर्द्धनगरीय क्षेत्रों में विभिन्न तरह के उद्योगों से बाहर निकलने वाले अपशिष्टों के निस्तारण के लिए पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित कर, कारखानों में प्रदूषण निरोधक उपकरणों को आवश्यक रूप से लगाकर, वृक्षारोपण तथा सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के तहत वन प्रबंधन को प्रोत्साहित कर पर्यावरण संरक्षण में बड़ी भूमिका निभायी जा सकती है। आज पर्यावरण की सुरक्षा तथा इसे संतुलित रूप प्रदान करने के लिए स्थानीय संस्थाओं की पहल महत्त्वपूर्ण हो सकती है।

निष्कर्ष

धरती और व्यक्ति के अटूट संबंधों के आलोक में पर्यावरण संरक्षण हमारी जिम्मेवारी हो गयी है। भूमि, वायु और जल ही मनुष्य के अस्तित्व के लिए हैं और ये तीनों आज इतना प्रदूषित हो गए हैं कि हमारा जीवन खतरे में पड़ गया है। अपनी भावी पीढ़ी को सुरक्षित पर्यावरण देना हमारा नैतिक कर्तव्य है। पर्यावरण और धरती को बचाने के लिए वैश्विक स्तर पर जो निर्णय विभिन्न सम्मेलनों में लिए गए हैं, उनके आलोक में भारत सरकार ने भी अपने अधिनियमों और संकल्पों द्वारा पर्यावरण को बचाने का संकल्प लिया है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किया गया है। संविधान के मूल कर्तव्यों में पर्यावरण संरक्षण को हमारी

जिम्मेवारी के रूप में व्यक्त किया गया है। इसके बावजूद पर्यावरण संरक्षण की दिशा में हम काफी पिछड़ते जा रहे हैं। यह बताया जा चुका है कि भारत पर्यावरण प्रदूषण के मामले में चीन से आगे निकल गया है। यह भी बताया गया है कि **fo'o LokLF; lxBu** की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की सबसे ज्यादा प्रदूषित 15 शहरो में से 14 भारत में हैं। प्रदूषण के चलते विषैली हवाओं और धुंध की चादर में लिपटी राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत पूरे उत्तर भारत में सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए आपात जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। ऐसी गंभीर स्थिति में पर्यावरण संरक्षण के लिए स्थानीय स्वशासन से संबंधित संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। पंचायतों को पर्यावरण विकास संबंधी कार्यों का अधिकार देना पर्यावरण संरक्षण की दिशा में क्रांतिकारी कदम हो सकता है। पर्यावरण संरक्षण एक जन-आंदोलन है जिसकी सुरक्षा तथा संतुलित रूप प्रदान करने के लिए उचित प्रबंधन के साथ-साथ सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है। प्रकृति और मनुष्य के अंतरसंबंध तथा वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति वृक्षारोपण की जानकारी जन-जन तक पहुँचाना सरकार का प्रमुख दायित्व है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारत के उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू का आलेख 'पर्यावरण कानून सख्ती से लागू करने का वक्त' : संपादकीय *दैनिक भास्कर* (पटना, 24 अप्रैल 2018), पृ. 6
2. ऋग्वेद–7–33–7
3. देखिए डॉ. जितेंद्र कुमार का आलेख 'बढ़ रही गर्मी क्यों कुपित हुए सूर्यदेव'? : *दैनिक भास्कर* (पटना, 27 मई 2016), पृ.11
4. ''क्षिति जल पावक गगन समीरा।
   पंच रचित यह अधम शरीरा।।
   –गोस्वामी तुलसीदास
5. देखिए डॉ. जितेंद्र कुमार का आलेख, *पूर्वोक्त*
6. *उपरोक्त*
7. *मत्स्य पुराण* 165–1–13
8. देखिए महाभारत का *शल्य पर्व*, उद्धृत जितेन्द्र कुमार, पूवोक्त
9. *ब्रह्म पुराण* (231–14)
10. *मतस्य पुराण* 165–15 एवं *ब्रह्म पुराण* 232–14–19
11. *दैनिक भास्कर* (पटना, 27 मई 2016), पृ.11 में उद्घृत
12. अभिषेक कुमार मिश्र का आलेख 'धरती हमारी जिम्मेदारी....': *अहा! जिंदगी, दैनिक भास्कर* (पटना, 22 अप्रैल 2018), पृ.4
13. *उपरोक्त*
14. See the report of State of Global Year, 20 March 2017

15. *हिन्दुस्तान* (पटना, 21 अक्टूबर 2017), पृ.14
16. *प्रभात खबर* (पटना, 6 मई 2018), पृ.10
17. See the report of Institute of Health Metrics and Evaluation, 2016
18. *प्रभात खबर* (पटना, 12 नवंबर 2017), पृ.10
19. See the report of Ground Water Board, June 2015, Ministry of Water Resources, Government of India
20. एम. वेंकैया नायडू का आलेख 'ताकि अगली पीढ़ी को भी पानी मिले' *हिन्दुस्तान* (पटना, 22 मार्च 2018), पृ.10
21. डॉ. दिनेश मणि आईसेक्ट विश्वविद्यालय द्वारा अनुस जित परियोजना के अंतर्गत निर्मित पुस्तक *जलवायु परिवर्तन–2015*
22. See the report of United Nations' Inter Governmental panel on Climate Change, 2014
23. Ibid
24. Ibid
25. उत्तर बिहार में नेपाल सीमा से सटे चंपारण से शुरु हुई बारिश और ओला वृष्टि से आम, लीची, गेहूँ, सरसों, मक्का और तंबाकू की फसलें बड़े पैमाने पर बर्बाद हुईं– देखिए *हिन्दुस्तान* (पटना, 31 मार्च 2018), पृ.14, Cf The *Times of India* (Patna, 31 March 2018), p.1
26. आचार्य सुदर्शन : *प्रभात खबर* (पटना, 17 अक्टूबर 2017), प .8
27. See Article 47 of the Indian Constitution, दुर्गादास बसु : *भारत का संविधान* (प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1997), पृ.141
28. *दैनिक भास्कर* (पटना, 14 नवंबर 2017), पृ.12
29. देखिए संपादकीय *दैनिक जागरण* (पटना, 18 अप्रैल 2018), पृ.10
30. डॉ. दिनेश मणि, *पूर्वोक्त*
31. इस उद्देश्य के लिए संशोधन में नया भाग पग जोड़ा गया जिसे 'पंचायत' नाम दिया गया और नई 11वीं अनुसूची में पंचायत की 29 कार्यात्मक मदें जोड़ी गईं।
32. *प्रभात खबर* (पटना, 10 अप्रैल 2016), पृ.10
33. *दैनिक जागरण* (पटना, 15 मई 2016), पृ.13
34. *उपरोक्त*
35. *उपरोक्त*
36. See The Annual Report of Centre for Science and Environment- 7 January 2009

मनुष्य-प्रकृति संबंध : भारतीय वन कानूनों के नजरिए से

विश्व दीपक त्रिपाठी

Ikjk'k *प्रकृति से परे मानव जीवन की कल्पना असम्भव है। मानव जीवन का उद्‌भव और विकास सदैव पर्यावरण पर निर्भर करता है। जिन लोगों ने इतिहास की व्याख्या लिपि के विकास से की है, तथा इसके पूर्व के काल को प्रागैतिहासिक माना है, उन्होंने मनुष्य के जीवन में पर्यावरण के महत्व को कम करके आँका है। जबकि वास्तव में मनुष्य का अस्तित्व पर्यावरण के साथ कुछ इस प्रकार गुथा हुआ है कि मानव जीवन के किसी भी काल की कल्पना उसे पर्यावरण के साथ जोड़कर ही की जानी चाहिए।*

प्रस्तावना

मनुष्य और पर्यावरण के मध्य एक अन्योन्याश्रित संबंध है, जो आदि काल से चला आ रहा है। भोजन, शिकार तथा कुछ अन्य जरूरतों के लिए मनुष्य प्रारम्भ से ही पर्यावरण पर निर्भर रहा है। मनुष्य द्वारा आग के विकास और प्रयोग के फलस्वरूप इस निर्भरता मे निःसंदेह वृद्धि हुई। कृषि का ज्ञान इस दिशा में अगला चरण था। इस प्रकार प्रारम्भिक निर्भरता से लेकर वर्तमान समय तक मानव के विकास में पर्यावरण एक अति महत्वपूर्ण अवयव रहा है।

मनुष्य और पर्यावरण के संबंध के प्रारम्भिक चरण को समझने के लिए धार्मिक उपागम ही सामान्यतः उपलब्ध स्रोत है। आधुनिकता के पूर्व मनुष्य ने मूल्य और विश्वास का आधार भी धार्मिक मान्यताओं को ही बनाया चाहे वह मूल्य मनुष्य पर्यावरण संबध के विषय में ही क्यों ना हो। अगर प्रारम्भिक धार्मिक मान्यताओं की बात करें तो हम पाते हैं कि सबसे पहला और प्राचीन धार्मिक विचार मनुष्य और पर्यावरण के संबंधों से ही उपजा। पर्यावरण ने प्रारम्भिक मनुष्य को उसकी सीमित शक्ति का एहसास कराया तथा मनुष्य में निर्भर होने की भावना का जन्मदाता भी पर्यावरण ही था।[1]

नवपाषाण काल के मनुष्य का जीवन कृषि के उद्भव और विकास के पदार्थवादी और मनोवैज्ञानिक प्रभावों में गुजरा। कृषि के उद्भव के फलस्वरूप एक तरफ मनुष्य ने समय को रेखीय दृष्टि से देखने के स्थान पर उसे चक्रीय रूप में देखना शुरू कर दिया, वहीं दूसरी ओर इस परिवर्तन ने 'पुर्नउत्पादन' और 'स्त्री' को मानव चिन्तन के केन्द्र में ला दिया। कृषि के विकास के दो और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़े। *पहला* यह कि मनुष्य ने पर्यावरण/प्रकृति की 'वहन क्षमता' को जाना तथा उसके परिस्थितिकीय सोच में बदलाव आया।[2] *दूसरा* प्रभाव यह था कि कृषि के विकास के फलस्वरूप मनुष्य का सामुदायिक जीवन विभाजनों के दौर से गुजरा अर्थात् मानव जनंसख्या में वृद्धि हुई तथा नगरीकरण की दिशा में विकास होना शुरू हुआ।[3]

विभिन्न धार्मिक मतावलंबियों जैसे एकेश्वरवादियों, बहुईश्वरवादियों तथा सर्वेश्वरवादियों के मध्य का अंतर उनके द्वारा प्रकृति को भिन्न-भिन्न नजरिए से देखने से भी प्रकट होता है। कोई प्रकृति को विभिन्न प्रक्रियाओं का समुच्चय मानता है तो कोई उसे अपरिवर्तनशील तथा शाश्वत मानता है। कुछ का मत यह भी है कि प्रकृति निरंतर परितवर्तनशील है तथा एक निश्चित अंतराल पर यह स्वयं को नष्ट और पुर्नजीवित करती है। प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर विश्व के प्रमुख धर्मो को भी दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। यहूदी धर्म, ईसाइयत तथा इस्लाम जैसे धर्मों के केन्द्र में मनुष्य है तथा उसे अपने हित में प्रकृति का प्रयोग किसी भी रूप में करने की पूरी आजादी है जबकि प्राच्य धर्म जैसे हिन्दुधर्म, बौद्ध धर्म तथा तावोवाद ने मनुष्य और पर्यावरण के मध्य अन्योन्याश्रेय संबध माना है तथा इनमें अपने हित में भी मनुष्य को पर्यावरण का दोहन करने का कोई अधिकार नहीं है।

सतारवीं सदी का यूरोपीय पुर्नजागरण मनुष्य पर्यावरण संबधों में एक नए युग का सूत्रपात करता है। निकोलस कापरनिक्स फ्रांसिस बेकन, रेने डेकार्ट, आइजक न्यूटन इत्यादि के नये अविष्कारों और सिद्धान्तों के फलस्वरूप मनुष्य से मनुष्य के संबध तथा मनुष्य और पर्यावरण के संबधों को नये सिरे से परिभाषित किया जाने लगा। बेकन ने प्रकृति के विषय में नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि मनुष्य अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए प्रकृति को नियंत्रण में कर सकता है तथा आगमानात्मक विधि के प्रयोग और समान्यीकरण के द्वारा वह प्रकृति के रहस्यों तथा सत्य को भी जान सकता है। न्यूटन के यांत्रिकी के गति विषयक सिद्धान्तों द्वारा प्रकृति के विभिन्न अवयवों (कणों, ग्रहों, उपग्रहों आदि) की गति की व्याख्या की संभावनाओं ने आशा की नई किरणें पैदा की।

न्यूटन की खोजों और थॉमस हाब्स के विचारों से प्रभावित होकर अंग्रेज विचारक जॉन-लॉक ने कहा कि मानव समाज भी उन्हीं नियमों से संचालित होता है जिनसे भौतिक जगत संचालित होता है। प्रकृति की ही भाँति मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था भी स्वतंत्रता, समानता, और स्वामित्व के अधिकार जैसे मूल्यों से ही संचालित होती हैं।[4]

लैमार्क और डार्विन जैसे जीववैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया कि प्रकृति निरन्तर विकास की प्रक्रिया में है और पूर्व की धार्मिक मान्याताओं, की, प्रकृति निर्माण किसी समय एक ही बार में हुआ था, का कोई मूल्य नहीं है।

19वीं सदी के अंत तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक आंइस्टीन के 'सापेक्षता के सिद्धान्त' तथा 'क्वांटम सिद्धान्त' जैसी खोजों ने पर्यावरण की प्रकृति तथा मनुष्य-पर्यावरण संबधों में नई व्याख्याओं का मार्ग प्रशस्त किया। अब सृष्टि को इसके सारे अवयवों के अन्तः संबंधों के रूप में देखा जाने लगा। 'आणविक जैविकी' 'अनुवांशिक यांत्रिकी' तथा 'जैव प्रौद्योगिकी' के क्षेत्र में बीसवीं सदी के मध्य में हुए विकास ने कृषि इत्यादि को प्रभावित किया। बीसवीं सदी के छठे दशक तक आते-आते विश्व को तीव्र उत्पादन, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा आधुनिक सम्यता के फलस्वरूप प्रकृति तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्परिणामों का ज्ञान होना प्रारम्भ हो गया। विभिन्न 'पृथ्वी सम्मेलनों के द्वारा प्रकृति को हुई क्षति का आकलन तथा उसे ठीक करने की दिशा में प्रयासों की शुरूआत हो चुकी है।

उपर्युक्त वर्णित यात्रा से गुजरते-गुजरते आज हम उत्तर-आधुनिक और उत्तर औद्योगिक युग में प्रवेश कर चुके हैं। कुछ दशक पूर्व के मनुष्य के 'अनवरत और तीव्र विकास' का स्वप्न अब 'सतत् और संतुलित विकास' के स्वप्न ने ले लिया है। प्रकृति और पर्यावरण को पूर्व में हुई और वर्तमान में हो रही क्षति को रोकने के लिए न केवल सरकारी प्रयास हो रहे हैं, वरन् इन प्रयासों में व्यक्तियों और समुदायों की भागीदारी भी व्यापक रूप ले चुकी है। चंद व्यक्तियों को लाभ पहुचाने वाली विकास नामक विविध गतिविधियाँ जो पर्यावरण के दोहन पर आधारित हैं, वे आम जन के विरोध का कारण बन गईं हैं। विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय आन्दोलनों के द्वारा स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के क्षरण को रोकने तथा उसे पुर्नजीवित करने की भरपूर कोशिश हो रही है। इन आन्दोलनों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा कई बार आम जनता प्रत्यक्षतः अपने हाथ में लेती हुई दिख रही है।

Hkkjr esa i;koj.k; vkUnksyu

भारत में भी पर्यावरणीय आन्दोलनों का मुद्दा *विकास बनाम पर्यावरण* के विषय से ही जुड़ा हुआ है। वन्दना शिवा और जे. बन्दोपाध्याय का मानना है कि स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय नीति निर्माताओं और अभिजनों द्वारा शुरू किया गया संसाधनों के दोहन पर केन्द्रित विकास का प्रारूप दो बातों को ध्यान में नही रखता है। *पहला* यह कि प्राकृतिक दोहन की वजह से होने वाले परिस्थितिकीय असंतुलन का आगे क्या दुष्परिणाम होगा तथा *दूसरा* यह कि विकास प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले हानि-लाभ का विभिन्न सामाजिक वर्गों के मध्य वितरण किस निति और व्यवस्था के माध्यम से होगा।[5]

बीसवीं सदी के आखिरी तीन दशकों में तृतीय विश्व के देशों में पर्यावरण के मुद्दे पर राज्य और समाज के मध्य विवाद व्यापक होता हुआ दिखता है। जेफ का मानना है कि ये विवाद अपने व्यापक फलक, में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय की माँग को भी शामिल किए हुए हैं।[6] वस्तुतः इसकी एक मूल वजह यह रही है कि इन अधिकांश नवस्वतंत्र देशों में राज्य ने भी अपनी भूमिका को न्यायसंगत नही रखा। राज्य ने यहाँ पर निष्पक्ष और व्यापक समाज के हित में कार्य करने की बजाय उच्च वर्ग और विशिष्ट वर्गो के हित-साधन को प्रमुखता दी। गिडेन्स जैसे समाज वैज्ञानिक भी इस बात के पक्ष में तर्क देते हुए कहते है कि इन देशों में राज्य और समाज के मध्य होने वाले संघर्षों के मूल में यह धारणा है कि यहां राज्य में गरीबों और वंचितों के पक्ष में कार्य करने की इच्छाशक्ति और क्षमता का अभाव दिखता हैं।[7]

भारतीय संदर्भ में पर्यावरणीय आन्दोलन कोई एक विशिष्ट प्रकार का और किसी एक विशिष्ट उद्देश्य से प्रेरित आन्दोलन नहीं है, बल्कि यह भारत के विभिन्न भागों में जल, जंगल, जमीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के लिए लड़ी जाने वाली सामूहिक लड़ाईयों का समुच्चय है। कई जगहों पर तो इस प्रकार के आन्दोलन संसाधनों पर मालिकाना हक के लिए हैं, तो कई जगहों पर ये आन्दोलन विकास के किसी वैकल्पिक प्रारूप की वकालत करते हैं जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का संयमित और आवश्यक प्रयोग ही जरूरी समझा जाता है। इनका मानना है कि आधुनिक विकास के प्रवाह ने तरह-तरह की आर्थिक, सामाजिक और परिस्थितिकीय समस्याओं को जन्म दिया है। इसलिए कई आन्दोलनकारी संसाधनों के पांरपरिक प्रयोग और दोहन के तरीके को ज्यादा वरीयता देते हैं।

भारतीय पर्यावरणीय आन्दोलनों के फलक की व्यापकता की पड़ताल करने पर हमें इनमें मूलरूप से तीन तरह के विचार धारात्मक समूह दिखाई पड़ते है। *पहला* समूह धार्मिक गाँधीवादियों का है जो धार्मिक तर्क और भावना को जीवन का बेहतर आधार मानते हुए आधुनिक जीवनशैली को निम्न श्रेणी का मानते हैं। इनका मानना है कि आधुनिक और पश्चिमी प्रभावों से पूर्व का ग्राम्य जीवन वास्तव में सामाजिक और पारिस्थितिकीय समरसता और सामंजस्य का जीवंत रूप है और उस ग्राम्य जीवन में वापस लौटकर ही मानव जीवन अपने श्रेष्ठ रूप को पा सकता है।[8]

दूसरे समूह के अन्तर्गत 'उपयुक्त तकनीकी' की वकालत करने वाले लोग आते हैं। ये लोग पश्चिमी समाजवाद की धारा से मिलता-जुलता तर्क रखते हैं। शहर और उद्योग केन्द्रित वर्तमान विकास के प्रारूप में इनकी आंशिक आस्था है। इस प्रारूप को अंशतः स्वीकार करते हुए ये इसके साथ ही पारंपरिक कृषि और पारंपरिक समाज व्यवस्था को भी पर्याप्त महत्व देते हैं। इन्होनें संसाधनों के कम प्रयोग वाली, श्रम आधारित, और सामाजिक विभेदों को अस्वीकार करने वाली तकनीकी के विकास और प्रसार पर जोर दिया है।[9] *तीसरे* प्रकार के समूह में वे लोग शामिल हैं जो परिस्थितिकीय

असंतुलन और पर्यावरणीय क्षति के लिए वर्तमान में विद्यमान पूँजीवादी विकास प्रणाली को जिम्मेदारी मानते हैं। इनके विचारों में केवल मुनाफे और सतत् विस्तार की चिंता से ग्रस्त पूँजीवादी प्रणाली के वाहकों के लिये पर्यावरण सिर्फ उपभोग की वस्तु मात्र है। अपना विकल्प प्रस्तुत करते समय एक तरफ तो ये पारंपरिकता का विरोध करते हैं, वहीं दूसरी ओर संघर्ष का रास्ता अख्तियार करने से भी गुरेज नहीं करते। इन्हें 'परिस्थितिकीय मार्क्सवादियों' की श्रेणी में रखा जाता है।

उपुर्यक्त वर्णित तीनों समूहों की कार्यप्रणाली, उद्देश्य इत्यादि का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि समाजिक विभेदों को मिटा देने की जितनी दृढ़ता मार्क्सवादी तबके के अंदर दिखाई पड़ती है उसका अन्य दोनों में अभाव है। सक्रियता का विश्लेषण करने पर भी स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म और लघु स्तर पर सक्रियता के मामले में मार्क्सवादी तबका अन्य दोनों से अग्रणी है परन्तु निःसंदेह रूप से उपयुक्त तकनीक को मानने वाले भी बहुत बार न केवल स्थानीय स्तर पर कार्य करते हुए दिखते है परन्तु उनकी सोच और विकल्पों में भी स्थानिकता का पुट दिखाई देता है[10] इन तीन समूहों के अलावा दो अन्य समूह भी भारतीय संदर्भ में सक्रिय दिखाई देते हैं इनमें *पहला* समूह वन्य जीव संरक्षक आन्दोलनकारियों का है। *दूसरे* समूह के अतंर्गत 'अति आशावादी' है जो पर्यावरण और विकास को पूर्णतया पृथक करके देखते हैं इनके अनुसार आर्थिक विकास की कोई सीमा नही निर्धारित की जा सकती है।[11]

Hkkjr esa ou dkuu vkj mudk iHkko

दुनिया के अन्य किसी भी हिस्से की तरह भारत में भी मनुष्य का वनों तथा वनजीवों के साथ साहचर्य का संबध दिखाई पड़ता है पहले मनुष्य वनों से उतने ही संसाधन लेता था, जितना उसकी दैनिक और जीवन की अन्य सहज जरूरतों के लिए आवश्यक था, और निःसंदेह उसकी ये आवश्यकताएं सीमित हुआ करती थीं। इसी वजह से मनुष्य के तत्कालीन क्रियाकलापों को वनों के क्षरण के कारण के रूप में नहीं देख सकते हैं। तत्कालीन समय में वनों के संसाधनों पर समान्यतः स्थानीय लोगों का अधिकार था और इसमें किसी केन्द्रीय सत्ता का कोई हस्तक्षेप नही था।

भारत में औपनिवेशिक शासन ने अपनी जरूरतों की वजह से स्थानीय जनता और वनों की सदियों से चली आ रही साहचर्य परंपरा को बदलना शुरू कर दिया। औपनिवेशिक शासक देशों के वन संसाधन उनको अपने लिए कम प्रतीत हो रहे थे। नावो तथा बड़ी जहाजों के निर्माण तथा रेल पटरियों के लिए उन्होंने भारत में वनों के ऊपर केन्द्रीय सत्ता का अधिकार स्थापित करने वाले विधानों का निर्माण किया। भारतीय वन विभाग की स्थापना इसी दिशा में एक प्रयास था।

इस प्रकार के किसी भी प्रयास का विरोध वनों से जुड़ें हुए और उन पर निर्भर स्थानीय समुदायों द्वारा हुआ। वे सरकार के हर उस कदम के खिलाफ थे जो वनों के

ऊपर सरकारी नियंत्रण को बढ़ावा देने वाला हो तथा जिससे केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बल मिल रहा हो। वन क्षेत्रों में बढ़ रही सरकारी दखलअन्दाजी के कम से कम तीन स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ रहे थे– *पहला* यह कि राज्य की शक्ति कुछ मायनों में असीमित विस्तार कर रही थी, तथा प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय निवासियों और इकाईयों का प्रभाव लगातार कम हो रहा था। *दूसरा* प्रभाव यह था कि इस सरकारी हस्तक्षेप ने स्थानीय निवासियों के संसाधनों के प्रयोग के पारंम्परिक तरीकों को बदल दिया और इस परिवर्तन का पारिस्थितिकीय प्रभाव यह रहा कि इसने वनों के व्यवसायिक प्रयोग को बढ़ावा देकर वनों की पूरी पारिस्थितिकीय को ही बदल दिया। उपर्युक्त सभी परिवर्तनों ने स्थानीय निवासियों को भारतीय वन कानून 1894 तथा वनों से सम्बन्धित सरकारी प्रयासो का विरोध करने का पर्याप्त आधार दे दिया और यह विरोध पूरे औपनिवेशिक काल में पुरज़ोर तरीके से चलता रहा है।[12]

सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता था कि औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति उन तमाम स्थानीय समुदायों को उनके पांरपरिक वनाधिकारों को वापस दिलाने में मददगार होगी तथा इससे उन्हें उस शोषण से भी मुक्ति मिलेगी जो उन्हें विदेशी केन्द्रीय सरकार के कानूनी प्रावधानों की वजह से सहना पड़ा। परन्तु सत्ता परिवर्तन ने सरकारी अधिकार क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नही होने दिया तथा 1952 के राष्ट्रीय वन नीति में भी वनों के संरक्षण, उत्पाद तथा प्रबंधन में सरकारी स्वामित्व को बनाए रखने की वकालत की गई।[13] इसकी एक मूल वजह यह थी कि देशी सरकार को भी अपनी आर्थिक वृद्धि की दर को तीव्र रखने के लिए संसाधनों के दोहन पर ही निर्भर होना पड़ा, जिसकी वजह से संसाधनों के दोहन में भी तीव्रता आयी।

निःसन्देह रूप से वनों के दोहन में आयी तीव्रता ने वनों पर अधिकार को लेकर होने वाले संघर्षो में भी तीव्रता को जन्म दिया। परंतु औपनिवेशिक काल में होने वाले संघर्षों और स्वतंत्रोत्तर काल में होने वाले संघर्षों में एक मौलिक भेद था। औपनिवेशिक काल में जनता और सरकार के मध्य संघर्ष की मूल वजह 'प्रयोग मे न आने वाले वन संसाधनों' पर आधिपत्य था, परंतु स्वंतत्र भारत में इन संघर्षों के केन्द्र में 'तेजी से घट रहे वन' आ गए। इस प्रकार से स्वतंत्र भारत में वनों के लिए होने वाले संघर्षों में नए राजनीतिक आर्थिक तथा पर्यावरणीय आयाम जुड़ गए।[14] स्वतंत्र भारत में तीव्र विकास के लिए वन संपदा के तीव्र दोहन से कितना तीव्र विकास हुआ और सामान्य जनता को इस विकास का कितना लाभ मिला, यह समझ पाना तो कठिन है, परंतु यह बात निःसंदेह रूप से कही जा सकती है कि इस तीव्र दोहन ने भ्रष्ट नौकरशाहों, राजनेताओं तथा उघोगपतियों के तीव्र विकास को अवश्य सुनिश्चित किया। तथा गरीब किसानों, आदिवासियों तथा परिधि पर मौजूद अन्य कई सामाजिक वर्गों को वनों पर बढ़ते सरकारी प्रभुत्व के फलस्वरूप अपने अस्तित्व और आजीविका के लिए ज्यादा कठिन दौर से गुजरने के लिए विवश होना पड़ा।

भारत सरकार के द्वारा वनों के प्रबंधन और स्वामित्व पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ाने की दिशा में अगला कदम 1982 का वन बिल का मसौदा था। इस मसौदे में वन विभाग की दण्डात्मक शक्तियों को और ज्यादा अधिकार सम्पन्न और कठोर बनाने की बात थी। परंतु पूरे देश भर के वन संबंधित समूहों, स्वयंसहायता समूहों और पर्यावरणीय आंदोलनकारियों के पुरज़ोर विरोध के फलस्वरूप सरकार को अपने इस प्रस्तावित मसौदे को वापस लेना पड़ा। इसके अलावा वन आंदोलनकारियों के विरोध की वजह से सरकार को कुछ क्षेत्रों में अपनी वन नीति को वापस भी लेना पड़ा। आंदोलनों और जनदबावों के परिणामस्वरूप ही राजीव गाँधी की सरकार ने 1985 में राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास परिषद् की स्थापना की। इसका उद्देश्य एक तरफ तो नीति निर्माण में जनभागीदारी को बढ़ावा देना था, वहीं दूसरी ओर जनभागीदारी के द्वारा वनों की लगातार कटान को रोकना था।

वनों के लिए होने वाले आंदोलनों का और सकारात्मक परिणाम 1988 की भारतीय वन नीति और 1990 के संयुक्त वन प्रबंधन के सर्कुलर में दिखता है। अपनी वन नीति में संशोधन करते हुए भारत सरकार ने 1988 में पहली बार यह घोषणा की कि, वन न केवल व्यावसायिक प्रयोग के लिए हैं, बल्कि इनका महत्व मृदा संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण तथा स्थानीय निवासियों की आजीविका के लिए भी है। इस संशोधित नीति में वनों के संरक्षण और विकास में स्थानीय भागीदारी पर भी जोर दिया गया।[15]

1988 में भारतीय वन नीति में आया यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण कदम है, परंतु इसमें एक खामी यह थी कि वनों के संयुक्त प्रबंधन की घोषणा के बावजूद भी वन क्षेत्रों पर वन विभाग का ही प्रभुत्व बनाए रखा गया। इस प्रकार एक तरफ तो वनों के प्रबंधन में स्थानीय निवासियों की भागीदारी की बात हुई, वहीं दूसरी तरफ वनों तक इनकी पहुँच को सीमित रखा गया।

परिणामस्वरूप 1988 की वन नीति एक कानून रहित सलाहकारी दस्तावेज बनकर रह गयी जिसके पीछे कानून की कोई बाध्यकारी शक्ति नही थी। इस नीति के बाद इसको अमलीजामा पहनाने के लिए आवश्यक कानूनी प्रावधानों के निर्मित न होने का तात्पर्य यह होता है कि वनों के मामलों में मूलतः 1927 का भारतीय वन एक्ट ही प्रभावी रहा। और चूकि 1927 के एक्ट पर 1878 के वन अधिनियम का सीधा प्रभाव था, अतः यह कहने में गुरेज नही होनी चाहिए कि 1988 में बनी वन नीति में अंशतः जन भागीदारी की बात होने के बावजूद भी वास्तव में वनों के मामलों में कानूनी रूप से औपनिवेशिक दृष्टिकोण ही प्रभावी रहा।

सदियों से चले आ रहे शोषण और भेदभाव को देखते हुए 2006 में भारत सरकार ने 'वन अधिकार एक्ट 2006' पास किया। यद्यपि कि इस ऐतिहासिक दस्तावेज को लेकर वन संरक्षक कार्यकर्ताओं और जनजाति अधिकार समूहों में विवाद था, परन्तु भारत सरकार ने इस एक्ट को पास किया और 31 दिसम्बर 2007 को इसने कानूनी

शक्ल अख्तियार कर ली। स्वतंत्र भारत में इस दस्तावेज का महत्व इस बात से है कि स्वतंत्रता के उपरांत पहली बार जनजातियों और वनों पर आधारित जीवन यापन करने वालों को वनों पर अधिकार प्रदान किया गया। इस एक्ट की मुख्य विशेषताएं निम्नवत् हैं:

1. इस एक्ट ने पहली बार उन समस्त लोगों को वन क्षेत्रों में चार हेक्टेयर तक की जमीन का मालिकाना हक दे दिया है, जो उस जमीन को 13 दिसम्बर 2005 तक जोतते बोते रहें हों। अगर किसी के पास किसी जमीन का पट्टा या सरकारी लीज़ उपलब्ध हो, और जमीन या तो वन विभाग के पास हो या वन विभाग और राजस्व विभाग के बीच विवाद में हो, उसे भी उसकी जमीन वापस की जाएगी।
2. कानून निम्न प्रकार के वन उत्पादों के प्रयोग या उनको इकट्ठा करने का अधिकार भी देता है–
   (क) छोटे वन उत्पाद जैसे तेंदु पत्ता जड़ी बूटी या औषधियाँ।
   (ख) चारागाह और जल स्रोतों के प्रयोग का अधिकार।
   (ग) चरवाहे जैसे समुदायों द्वारा पारंपरिक रूप से प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्र।
3. कानून की धारा 3(1) (i) समुदायों को वन सम्पदा के संरक्षण का अधिकार देती है तथा धारा पाँच पारंपरिक समुदायों को वनों और वन्य जीवों को बचाने का अधिकार देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कानून के द्वारा पहली बार कानूनी रूप से जनजातियों और वनों पर निर्भर समुदायों को वन क्षेत्रों, वनों, और वन्य जीवों से पारंपरिक रूप से प्राप्त होते रहे कुछ पदार्थों को पुनः प्राप्त करने का अधिकार मिल गया, जो निःसंदेह एक बड़ा कदम है।

उपर्युक्त अच्छाइयों के अलावा इस एक्ट में कुछ खामियां भी हैं जो निम्नवत् हैं

1. ''अन्य पारंपरिक वन निवासी'' जैसी कोटि को जोड़ देने से इस एक्ट का ध्यान आंशिक रूप से जनजातियों से हट गया है। जबकि सामान्यतः जनजातियों को ही वनों के साथ सहजीवी के रूप में देखा जाता रहा है।
2. भूमि अधिकार में 13 दिसम्बर 2005 को कट ऑफ डेट रख देने का लाभ जनजातियों से ज्यादा अन्य निवासियों को ही प्राप्त होगा।
3. चार हेक्टेयर की सीमा तय कर देने से सभी लोग इससे ज्यादा अपनी पैतृक भूमि से भी बेदखाल किए जाएंगे, जिसके लिए किसी हर्जाने का प्रावधान नहीं है।

4. इस कानून में इसके लागू होने से पूर्व में जनजातियों पर लादे गए (वन कानून 1927 और वन संरक्षण अधिनियम 1980 को तोड़ने के कारण) मुकदमों को खत्म करने का कोई प्रावधान नहीं है।

इसके अलावा इस एक्ट में 'समुदाय' शब्द का प्रयोग जितने विभिन्न अर्थों में किया गया है, वह भ्रामक है। किसी गाँव में अवसर, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा राजनैतिक निकटतायें 'समुदाय' शब्द के अलग अलग मायने प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार एक्ट में प्रयुक्त 'अतिक्रमणकारी' शब्द इस एक्ट में ऐतिहासिक अन्याय को वयक्त करता है, वन पर निर्भर समुदायों के समक्ष स्वयं चुनौती प्रस्तुत कर रहा है। वनों पर निर्भर विभिन्न समुदाय सहज रूप से कई बार अपने को 'अतिक्रमणकारी' की श्रेणी में देखने लगते हैं।

देश के अनेक हिस्सों में वनों तथा उस से जुड़े हुए संसाधनों के लिए हिंसक संघर्ष इस एक्ट को लागू करने में अगली महत्वपूर्ण और गम्भीर चुनौती को प्रकट करते है। वन और वन संपदा, पहले कि अपेक्षा अब अधिक, विभिन्न हित समूहों के मध्य संघर्ष का कारण बने हुए है। वन संपदा पर अधिकार के लिए पारंपरिक रूप से इस पर निर्भर जनजातियाँ और समूह तथा वन संपदा के औद्योगिक तथा उपभोक्तापरक उपयोग की चाह रखने वाले समूह कई स्थानों पर हिंसक रूप से एक दूसरे के सामने हैं। वनों पर निर्भर समुदायों तथा स्थानीय सरकारी प्रशासकों के मध्य देश के कुछ भागों में वार्ता का नितांत आभाव है। ऐसे संघर्षयुक्त तथा वार्ताविहिन स्थानों में इस एक्ट को लागू करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण होगा।

वन अधिकार कानून के आलोचकों का एक वर्ग इस कानून को 'विकास बिरोधी' नज़रिये से देखता है। इनकी आलोचना निम्न आधारों पर होती है–*पहला* ये कानून यह स्थापित करने की चेष्टा करता है कि जनजातियों के लोग शेष भारतियों के समान नहीं हैं, और देश के सामान्य कानूनों द्वारा वे सुरक्षित नहीं है। दू*सरी* आलोचना यह है कि यह कानून जनजातीय लोगों का एक विलुप्त हो रही प्रजाति के रूप में प्रस्तुत करता है, जो ठीक नहीं है। 2001 और 2011 की जनगणना यह बताती है कि इन वर्षों में जनजातीय जनसंख्या मे वृद्धि हुई है। इस वर्ग के द्वारा कानून की आलोचना का तीसरा आधार यह कि यह कानून व्यक्ति के ऊपर समुदाय को प्रधानता प्रदान करता है, जो कि संविधान की भावना के अनुरूप नहीं है।

इस प्रकार **fu"d"kr%** हम कह सकते हैं कि यद्यपि कि 2006 के वन कानून ने जनजातियों के साथ सदियों से चले आ रहे अन्याय का खात्मा किया है तथा वनों और मनुष्य के सहजीविता और साहचर्य को महत्व प्रदान करने की चेष्टा की है, परन्तु इससे समस्या का आंशिक समाधान होता हुआ ही दिख रहा है। वास्तव में जब तक आधुनिक/उत्तर आधुनिक मनुष्य संपूर्णता में मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य और अन्यायोन्याश्रय को स्वीकार करके अपने लिए उपयुक्त जीवन शैली का चुनाव नहीं कर लेता है तब तक समस्या समाप्त नहीं होगी।

InHk

1. पी. पाउपार्ड (1989), *लेस रीलिजिअन्स,* प्रोसेज, यूनिसिटेयर रेस डे फ्रांस, पेरिस
2. जी0जी0 मार्टन (2001), *ह्यूमन इकोलाजी, बेसिक कान्सेप्ट्स फार सस्टेनेबल डेवेलपमेंट,* अर्थस्कैन, लींदन पब्लिकेशन : लिमिटेड, लंदन
3. ए0 टोफ्लर (1981), *द थर्ड वेभ,* बैन्टम बुक्स, न्यूयार्क
4. एफ कापरा (2004), *मोमेन्ट्रल एडेवारूलई स्टीन्रा सोशाइटेट सी नोउआ रेलिजी* (द टर्निंग प्वाइन्ट साइंस, सोसाइटी एण्ड द राइजिंग कल्चर), एड टहनिका, बुकुरेस्टी
5. जे0 बंदोपाध्याय और वंदना शिवा (1988), ''पालिटिकल इकॉनामी ऑफ इकोलाजी मूवमेंट'', *इ0 पी डब्लू,* 23(24): प भठ 1223
6. जेफ हेयनेस (1999), *'पावर पॉलिटिक्स एण्ड इन्वायरमेन्टल मूवमेंटस लोकल, नेशनल एण्ड ग्लोबल,'* सी रूट्स (इड्स) फ्रैंक कास पब्लिशर्सः लंदन, पेज–222
7. ए गिडेन्स (1995), ''गवर्नमेंन्टस लास्ट गैस्प'', द *आब्जर्वर,* जुलाई 9
8. सुंदरलाल बहुगुणा (1983), *वाकिंग विद द चिपको मैसेज,* नवजीवन आश्रम, सिलयारा, टिहरी गढ़वाल
9. अनिल अग्रवाल (1986), ''ह्यूमन नेचर इंटरेक्शन इन ए थर्ड वर्ल्ड कंट्री'', द *इन्चेरमेंटलिस्ट,* 6(2): पृष्ठ–88
10. रामचन्द्र गुहा (1988), ''आइडियोलोजिकल ट्रेड्स इन इण्डियन इन्वायरमेंटलिज्म'', *इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* दिसम्बर 3
11. रामचन्द्र गुहा (1988), ''आइडियोलोजिकल ट्रेड्स इन इण्डियन इन्वायरमेंटलिज्म'', *इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* दिसम्बर 3
12. माधव गाडगिल और रामचन्द्र गुहा (1994), ''इकालॉजिकल कॉन्फ्लिक्ट्स एड द इन्वायनमेन्टल मूवमेंटस इन इंडिया'' *डेवलेपमेंट एण्ड चेंज,* 25 (1): पृष्ठ–105
13. अशोक स्वैन (1997), ''डेमोक्रेटिक कान्सोलिडेशन इन्वायरमेन्टल मूवमेंटस इन इंडिया'' *एशियन सर्वे,* 37(9) : पृष्ठ 820
14. माधव गाडगिल और रामचन्द्र गुहा (1994), ''इकालॉजिकल कान्फ्लिक्ट्स एड द इन्वायरमेन्टल मूवमेंटस इन इंडिया'' *डेवलेपमेंट एण्ड चेंज,* 25 (1): पृष्ठ–105
15. डोली अरोड़ा (1994), ''फ्राम स्टेट रेगूलेशन टू पीपल्स पार्टिशिपेशनः केस आफ फॉरेस्ट मैनेजमेंट इन इंडिया'', *इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 29 (12): पृष्ठ–691–98

पर्यावरण और विकास

महेश कुमार सिंह

Ikjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'पर्यावरण और विकास' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। पर्यावरण सम्पूर्ण मानवता के जीवन का आधार है। जीव जगत के नियामक के कारण ही पृथ्वी को जीवित जगत (Living Earth) का गौरव प्राप्त है। सौरमण्डल में केवल पृथ्वी पर ही जीवन हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ पर्यावरण के रूप में विद्यमान है, जिस कारण वह 'वसुन्धरा' की उपमा से विभूषित है। पर्यावरण और मानव प्रकृति की गोद में उत्पन्न होकर प्रकृति से साहचर्य करके ही जीवित रहता है।*

प्रस्तावना

मानव सहित जैव जगत का अस्तित्व प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण की ही अमूल्य देन है। मानव सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट अनुकृति है, जो पर्यावरण के रहस्यों को सर्वाधिक आत्मसात् कर पाया है। मानव की समस्त अनुक्रियाओं का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से ही होता है। अतएव पर्यावरण एक ऐसा समुच्चय है, जो सृष्टि को जीवन्त बनाए हुए है। यह पेड़-पौधों एवं जीवों को जीवन प्रदान करते हुए जीवन योग्य वातावरण के साथ-साथ उनके लिए मूलभूत आवश्यकताओं को भी उपलब्ध कराता है। वर्तमान में वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक उन्नति, आनुवांशिक, कृषि, उद्योग आदि की असीम उपलब्धता प्रकृति द्वारा ही सम्भव हो पायी है। यद्यपि आज विकास के मद में मदान्ध मानव प्रकृति का अप्राकृतिक दोहन कर इसके अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह् लगा दिया है। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि ''इस पृथ्वी पर सभी की आवश्यकताओं हेतु संसाधन पर्याप्त है, किन्तु लालच के लिए नहीं''[1]।

वस्तुतः मानव और प्रकृति का एक-दूसरे से अन्यतम् सम्बन्ध है। प्रकृति की गोद में उद्भवित मानव प्रकृति में ही पल-बढ़कर, प्रकृति के तत्वों के साहचर्य से अपना अस्तित्व कायम रखते हुए अपने सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया को भी प्रकृति की गोद में ही सम्पन्न करता है। उसके चतुर्दिक भौतिक व सांस्कृतिक दशाओं का आवरण जो उसे प्रतिक्षण प्रभावित करता रहता है, पर्यावरण कहलाता है।

'पर्यावरण' संस्कृत भाषा के दो शब्दों – 'परि' (उपसर्ग - चारों ओर) + 'आवरण' (घेरा) के संयोग से उद्भवित हुआ है। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से पर्यावरण अर्थात् एनवॉयरनमेण्ट (Environment) की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द एनवॉयरनर (Environer) से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है–परिवेश। अर्थात् वह जिसकी चतुर्दिक विद्यमानता हो। इस प्रकार ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों तरफ से आवृत्त किये हुए है, पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण का आशय केवल उस बाह्य जगत से ही नहीं है, जो व्यक्ति को चतुर्दिक आवृत्त किये हुए है, बल्कि वे सभी वस्तुएँ जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, पर्यावरण के ही अन्तर्गत आती हैं।

ऑक्सफोर्ड एडवान्स्ड लर्नर्स डिक्शनरी ऑफ करेन्ट इंग्लिश के अनुसार ''पर्यावरण का आशय आस-पास की वस्तु स्थिति, परिस्थितियाँ अथवा प्रभाव से है''।

चेम्बर्स 20th सैन्चुरी डिक्शनरी में पर्यावरण का अभिप्राय विकास या वृद्धि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों से सम्बन्धित माना गया है।

पार्क के अनसुार ''उन दशाओं का होना पर्यावरण कहलाता है, जो निश्चित समय व स्थान पर मानव एवं जीवधारियों को आवृत्त करती है''।

फिटिंग के अनुसार ''पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों का योग है''।

हर्सकोविट्स के अनुसार ''उन समस्त दशाओं और प्रभावों का योग पर्यावरण कहलाता है, जो प्राणी के जीवन एवं विकास को प्रभावित करता है''।

ए. गाउजी अपनी पुस्तक 'The Nature of Environment' में पृथ्वी के भौतिक घटकों को ही पर्यावरण का प्रतिनिधि मानते हुए पर्यावरण को प्रभावित करने में मानव की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं।

रास के शब्दों में ''वह बाह्य शक्ति पर्यावरण कहलाती है, जो हमें प्रभावित करती है''।

डेविस के शब्दों में ''पर्यावरण मूर्त वस्तु न होकर अमूर्त वस्तु है''। इस सम्बन्ध में मैकाइवर का मानना है कि ''पृथ्वी का धरातल और उसकी समस्त प्राकृतिक दशाएँ, प्राकृतिक संसाधन, भूमि, जल, पर्वत, मैदान, पदार्थ, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु तथा सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियाँ, जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, पर्यावरण कहलाता है''।

इस प्रकार यह कहना युक्तियुक्त होगा कि ''समाज के अन्तर्गत पर्यावरण के प्रभाव एवं महत्व का चिंतन तथा उसमें निहित विश्वास पर्यावरणवाद के नाम से ही विदित है''[2]। वस्तुतः ऐसी सभी चीजें जो पृथ्वी पर जीवन को सरल व सम्भव बनाती हैं, पर्यावरण के अन्तर्गत शामिल है। यथा– भूमि, जल, वायु, सूर्य का प्रकाश, अग्नि, वन, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे। यह सर्वविदित है कि केवल पृथ्वी ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

में एक मात्र ऐसा ग्रह है, जहाँ जीवन हेतु आवश्यक पर्यावरण विद्यमान है। पर्यावरण के बिना न तो जीवन सम्भव है, न ही जीवन की कल्पना की जा सकती है। अस्तु, हमें जीवन की सम्भावना सुनिश्चित करने हेतु भविष्य में अपने पर्यावरण को स्वच्छ, सुन्दर, स्वस्थ व सुरक्षित रखना चाहिए अन्यथा इस स्थिति में प्रकृति को संतुलित रखने हेतु पर्यावरण और जीव-जन्तुओं के मध्य नियमित रूप से घटित होने वाले विभिन्न चक्र असंतुलित हो सकते हैं। यदि किसी कारणवश इन चक्रों में असंतुलन की स्थिति आयी, तो प्रकृति का संतुलन भी असंतुलित हो सकता है। जो अंततः मानव जीवन को प्रभावित करता है। पृथ्वी पर मानव ही प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ एवं बोधगम्य प्राणी माना जाता है, जिसमें ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उद्घाटित करने की ललक सर्वाधिक है। फलतः वह ऐश्वर्यपूर्ण जीवन हेतु तकनीकी उन्नति की दिशा में निरन्तर सचेष्ट व प्रयत्नशील हैं।

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में तकनीकी उन्नति करने की लालसा से पर्यावरण पर दबाव बढ़ता जा रहा है और वह पृथ्वी पर जीवन की सम्भावनाओं को संकट ग्रस्त करता जा रहा है क्योंकि हमारी पर्यावरणीय क्षति शनैः-शनैः निरन्तर हो रही है, जिससे मानव प्रकृति से भी दूर होता जा रहा है। बीसवीं सदी का सभ्य व श्रेष्ठ मानव जिसने तकनीकी उन्नति हेतु प्रकृति के साथ जो असंतुलन की स्थिति पैदा की है, वह एक दिन जीवन हेतु अत्यन्त भयावह सिद्ध होगा, क्योंकि वह प्रकृतिजन्य हवा, मिट्टी और पानी को प्रदूषित करता जा रहा है। इसका प्रभाव मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे व अन्य जीवित चीजों के स्वास्थ्य पर दिखना प्रारम्भ हो गया है। हानिकारक रसायनों से युक्त कृत्रिम उर्वरक मिट्टी को प्रदूषित कर रहे हैं, जो परोक्ष रूप से हमारे दैनिक भोजन के माध्यम से शरीर में एकत्र हो रहे हैं। औद्योगिक कल-कारखानों से उत्पन्न हुआ हानिकारक धुँआ दैनिक रूप से प्राकृतिक हवा को प्रदूषित कर रहा है जिससे हमारा स्वास्थ्य अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। अपने स्वार्थ, विलासिता एवं विनाशक इच्छाओं की प्रतिपूर्ति हेतु प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग नहीं करना चाहिए। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास सदैव जीवन को बेहतर बनाने के लिए ही किया जाना चाहिए, किन्तु यह स्मरण रख कर कि भविष्य में पर्यावरण को इससे किसी प्रकार की हानि न हो और न ही पारिस्थितिकी असंतुलन उत्पन्न हो[3]।

यद्यपि किसी खास समय व जगह में जितनी भी जीवित चीजें होती हैं, उनका प्रत्येक के साथ जो भी कार्य व्यवहार होता है, वे जिस भी माहौल में रहते हैं, यह सब किसी पारिस्थितिकी तंत्र में समाहित होते हैं, जिसमें परिवर्तन सदैव प्राकृतिक रूप से होता रहता है। उदाहरण स्वरूप, सूर्य की रोशनी में दिन के समय होने वाला परिवर्तन, समुद्री लहरों की ऊँचाई में महीने भर में होने वाला परिवर्तन और मौसम का वर्ष भर में परिवर्तन। पारिस्थितिकी तंत्र की वर्तमान स्थिति को जब कोई घटना

असंतुलित कर देती है, तो उसे ही 'पारिस्थिति का असंतुलन' होना कहते हैं। यह असंतुलन किसी सीमित या व्यापक स्तर पर भी हो सकता है। इसकी फलश्रुति अल्पकालिक और दीर्घकालिक भी हो सकती है। कभी-कभी असंतुलन की स्थिति को सुदृढ़ करने में महीनों, वर्षों व दशकों की समयावधि लग जाती है। प्राकृतिक असंतुलन की वजह प्राकृतिक शक्तियों को माना जाता है, जिनमें मौसम, भू-विज्ञान और जैविक परिवर्तन सम्मिलित हैं। यथा – आग, पृथ्वी के तापमान का बढ़ना, बाढ़, वायु (आँधी, तूफान), ओज़ोन परत का क्षतिग्रस्त होना, भयावह बीमारी, कीटों का प्रकोप, ज्वालामुखीय गतिविधियाँ, सूखा, मरूस्थल का बढ़ना, एसिड वर्षा, अधिकतम् समय तक हिमयुग, सूनामी और भूकम्प इसके प्रमुख प्रकार हैं।[4]

यद्यपि जब भी किसी पारिस्थितिकीय स्थितियों में असंतुलन होता है, तो वहाँ प्रलयकारी विनाश होता है। पेड़-पौधे तक विनष्ट हो जाते हैं। जीव-जन्तुओं को भी अपने पुराने आशियाने से विस्थापित होना पड़ता है। कभी-कभी ऐसी भी स्थितियाँ परिलक्षित होती हैं, जब उस क्षेत्र या भू-खण्ड पर एक भी जीव-जन्तु न हो। यद्यपि यह स्थिति अस्थायी होती है, तथापि सूक्ष्मतर निरीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि आपदा के उपरांत किसी भी पारिस्थितिकी में यह गुण सन्निहित होता है कि वह स्वयं किसी भी प्रकार की रूग्णता का क्रमशः उपचार कर लेती है। फलतः कुछ समय पश्चात् उस पर्यावरण या पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिति, पूर्ववतः हो जाती है। वहीं पादप व जीव प्रजातियाँ वहाँ पुनः अपना आशियाना बना लेते हैं।[5]

ब्रिटिश अर्थशास्त्री ई.एफ. शुमाकर (E.F. Schumacher) कृत 'Small is Beautiful' (लघुता में सुन्दरता) में औद्योगिक समाज के विकास की समीक्षात्मक प्रस्तुती की गई थी। आधुनिक औद्योगिक समाज बौद्धिक दृष्टि से चाहे कितना ही विकसित व परिष्कृत क्यों न हो, वह जिस मजबूत नींव पर खड़ा है, आज उसे ही खोखला व कमजोर कर रहा है। विकास का यह स्वरूप चुनौतीपूर्ण है। पृथ्वी और इसके पारंपरिक संसाधनों को ऐसी पूँजी समझने की भूल नहीं करनी चाहिए, जिसका हम सृजन और व्यय या निवेश करते हैं। वस्तुतः बहुधा प्राकृतिक संसाधनों का तो सृजन ही नहीं किया जा सकता, तो उनकी वृद्धि असम्भव सी प्रतीत होती है। जो भी अपनी जमा पूँजी को खाए जा रहा है, वह अपनी ही नींव खोखली व कमजोर कर रहा है। पृथ्वी किसी की 'निजी सम्पत्ति' न होकर पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त भावी पीढ़ियों की धरोहर है। पारिस्थितिकीय विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि विकास के अंध दौड़ से पर्यावरण अतिशय क्षतिग्रस्त हुआ है।

यद्यपि पर्यावरण (प्रकृति) और मानव एक-दूसरे से अन्यतम् सम्बन्ध रखते हुए एक-दूसरे को अन्तःक्रियाओं द्वारा प्रभावित करते रहते हैं। चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin, 1809-82) का यह सिद्धांत स्वीकार करता है कि किसी भी प्राणी का अस्तित्व उसके द्वारा उसके पर्यावरण के अनुरूप ढालने पर ही निर्भर करता है।

जर्मन भूगोलविद्ों द्वारा भी यह माना गया है कि 'लोगों के मध्य आर्थिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं को भी निर्धारित करने में पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका है।'[6]

यद्यपि प्रकृति हमें विकास हेतु निरन्तर साधन प्रदान करती रही हैं, किन्तु उसमें भी समस्त पदार्थों की संख्या और अनुपात सीमित है। निरन्तर उपभोग के कारण उसमें अपूरणीय कमी आती जा रही हैं। प्रकृति सम्बन्धी मूल्यों में कमी या उसकी समाप्ति सर्वथा घातक है। पर्यावरणीय ह्रास एवं संतुलन के फलस्वरूप मनुष्य सहित समस्त जीवधारियों, पेड़-पौधों के स्वाभाविक विकास एवं क्रियाओं में गतिरोध पैदा हो जाता है। जब मनुष्य द्वारा प्रकृति का अतिशोषण एवं दुरूपयोग किया जाता है, तब पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जो मानवता हेतु विनाशकारी होती हैं।[7]

वर्तमान समय में हम जैसे-जैसे तथाकथित विकास की दिशा में अग्रसर होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे हम अपने गुणवत्तापरक जीवन से दूर होते जा रहे हैं। अतिविकास के दुष्परिणामों ने ही हमें पर्यावरण के प्रति सचेत होने को बाध्य किया है। आज हमारे सम्मुख आने वाली पर्यावरणीय समस्याएं शनैः-शनैः गम्भीर होती जा रही हैं, और कहीं-न-कहीं एक गम्भीर चेतावनी भी दे रही हैं। यथा– ओज़ोन क्षरण, वैश्विक ताप वृद्धि, कार्बन डाईऑक्साइड सहित अन्य विषैली गैसों का बढ़ता हुआ गम्भीर स्तर, विलुप्त होते प्राणी, घटते हुए जंगल और पेड़-पौधे, सूखते हुए जल स्रोत, अनियमित एवं अनियंत्रित वृष्टि सहित अस्वाभाविक मौसम परिवर्तन आदि।

ऐतिहासिक काल क्रम में विकास की अवधारणा अत्यन्त एकांगी थी, जिसका अर्थ 'प्रकृति पर विजय' पाने से था, किन्तु प्रकृति के निरन्तर और अनियंत्रित दोहन से ऐसी वीभत्स और कुरूप सम्भावनाओं की तस्वीर परिलक्षित हुई जिससे विकास की एकांगी संकल्पना खोखली प्रतीत हुई। फलतः सम्पूर्ण विकास की संकल्पना को तलाशने *रियो डि जनेरियो* (ब्राजील) के 'पृथ्वी सम्मेलन' और 'एजेण्डा 21' से होते हुए जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) के 'सम्पोष्य विकास' तक आ पहुँचा। आज यह बात गम्भीरपूर्वक विचारणीय है कि 'प्रकृति पर विजय' कहीं से भी उपयुक्त और सफल अवधारणा नहीं है। अतएव प्रकृति सह-साहचर्य 'पर्यावरण संरक्षण' और 'प्रकृति के साथ विकास' की बात की जा रही है। जिसे दीर्घकालीन भारतीय दर्शन एवं परम्परा में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

आधुनिक विकास की संकल्पना ने समूची दुनिया को समेटकर एक 'भूमण्डलीय गाँव' (Global Village) का स्वरूप अवश्य प्रदान किया है, किन्तु मानवीय मूल्य, संवेदनाएँ, सामाजिक सरोकार और प्रकृति तथा पर्यावरण के प्रति हमारा संयत व्यवहार सब कुछ कहीं खो सा गया है। वैश्वीकरण के कारण जल, जंगल और

जमीन पर निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा है। विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय समस्याएँ हमारी वस्तुपरक भोगवादी संस्कृति की परिचायक बनकर हमारे जीवन एंव पर्यावरण हेतु अभिशाप सिद्ध हुई हैं।

आज यदि जीवन की मुख्य आवश्यकताओं को प्राप्त करना हर मानव का अधिकार है, तो पशु-पक्षियों को भी यह अधिकार प्राप्त है, किन्तु उनसे उनका यह अधिकार आज जबरन छीना जा रहा है। आज विकास के कारण प्रदूषण बढ़ रहा है, शहरीकरण बढ़ रहा है और गाँव शहर में विलीन होते जा रहे हैं। वनों के अतिशय विनाश के कारण जल प्रदूषण बढ़ रहा है, नदी अब नाले में परिवर्तित दिख रही है। विकास की इस गति से वन्य जीव, पशु-पक्षी व जंगलों का विनाश हुआ है। इसने पर्यावरण और वातावरण संतुलन को असंतुलित कर दिया है। फलतः ऐसा विकास, विकास न होकर विनाश है। विकास का यह पश्चिमी मॉडल, औद्योगिक मॉडल ने पर्यावरण को तो क्षतिग्रस्त किया ही है, साथ-ही-साथ सामाजिक बिखराव और असमानता की भी अभिवृद्धि की है।

आई.पी.सी.सी. (Inter Governmentel Panel on Climate Change) के अनुसार, 21वीं सदी में 01 से 3.5 सेन्टीग्रेड तक वैश्विक तापमान में अभिवृद्धि होगी, जिसके फलस्वरूप समुद्र तल में लगभग 15 से 95 से.मी. तक वृद्धि होगी। जिसकी भयावहता बढ़ते तूफान, जल की कमी, कृषि पर नकारात्मक प्रभाव तथा समुद्री जीवन पर खतरा के रूप में परिलक्षित होगी। पर्यावरणीय क्षरण मानव जीवन पर एक भयानक खतरे के रूप में मंडरा रहा है, जिसके अतिशीघ्र समाधान की आवश्यकता है। आज इसी कारण नीति निर्माण में पर्यावरण का केन्द्रस्थ होना अति आवश्यक है। राजनीति, विकास और पर्यावरण एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप में आबद्ध है। इसीलिए आज 'हरित राजनीति', 'हरित क्रांति' एवं 'हरित विकास' की बात की जा रही है। अब जनमानस द्वारा इस बात की पुरजोर माँग की जा रही है कि हमारे विकास का मॉडल ऐसा होना चाहिए, जिससे हमारे अस्तित्व पर कोई खतरा न उत्पन्न हो। विकास और पर्यावरण एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रखते हुए एक-दूसरे के पूरक है। आज स्वच्छ, सुन्दर एवं सुखमय पृथ्वी के निर्माण हेतु सम्पोष्य विकास की पूरजोर वकालत की जा रही है। 1974 से प्रति वर्ष 'विश्व पर्यावरण दिवस (डब्ल्यू. ई. डी.)' 5 जून को मनाया जा रहा है। विश्व भर में इस समय वन्य जीवों, वन सम्पदा और उनसे बने उत्पादों का अवैध कारोबार तथा पर्यावरणीय अपराध चरम सीमा पर है। अधिकाधिक शिकार के कारण अधिकांश प्रजातियों के अस्तित्व पर ही खतरा मंडरा रहा है। उन प्रजातियों के रक्षार्थ एवं अवैध कारोबार को रोकने हेतु इस बार की थीम बनाई गई है –*'जीरो टॉलरेंस फॉर द इलीगल वालल्ड लाइफ ट्रेड'* एवं स्लोगन है–*'गो वाइल्ड फॉर लाइफ'*। अर्थात् खुद भी स्वच्छ पर्यावरण में जियो और वन्य जीवों को भी जीने दो। इस बार की डब्ल्यू.ई.डी. की मेजबानी अफ्रीकी देश अंगोला कर रहा है[8]।

गत् वर्ष (2016) विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) हेतु 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' द्वारा चयनित मुख्य विचार बिन्दु 'विश्व को एक बेहतर स्थान हेतु दौड़ में शामिल हो (Join the race to make the world a better place) अत्यन्त प्रासंगिक है। वर्तमान समय में तीव्रगति से बढ़ता हुआ प्रदूषण विश्व के समक्ष एक भयावह चुनौती है। पर्यावरण प्रदूषण हमारे जीवन के सामाजिक, आर्थिक व शारीरिक पहलुओं को व्यापक रूप से प्रभावित कर रहा है। फलतः पृथ्वी के वातावरण में तीव्रगति से परिवर्तन हो रहा है। इस तीव्र परिवर्तन हेतु मानवीय गतिविधियाँ ही उत्तरदायी हैं। आज हमारे सम्मुख 'पर्यावरण बनाम विकास' का मुद्दा है किन्तु दोनों में से किसी को भी त्यागना सम्भव न होगा। इस हेतु समन्वयकारी दृष्टि को अपनाते हुए वैश्विक हितों को साझा किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।[9]

वर्तमान समय में वैश्विक राजनीति में एक प्रमुख मुद्दें के रूप में पर्यावरण चिंतन से समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।[10] आज आर्थिक उदारवादी अन्तः सरकारी संगठन (I.G.O.S. – Inter Government Organisations) यथा– विश्व बैंक समूह, विश्व व्यापार संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अब अपनी नीतियों में पर्यावरणीय कारकों का समावेश करने हेतु विवश है।

यद्यपि आज औद्योगिकीकरण एवं तकनीकी विकास ने क्रियात्मक आर्थिक एकीकरण और राष्ट्रोपरि संचार (Economic Intergration and Transational Communication) के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय अन्तः निर्भरता को धनीभूत किया है। एक राष्ट्र द्वारा इस हेतु किये गये कार्य का प्राकृतिक संसाधनों और स्वस्थ पर्यावरण के लाभ तक अन्य राष्ट्रों की पहुँच को प्रभावित करता है।[11] क्योंकि पर्यावरणीय प्रभाव विकीर्ण एवं दीर्घावधि होता है तथा यह प्रभाव सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय राजनीति सामूहिक वस्तुओं की समस्या (Collective Goods Problem) को कठिन बना देती है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय चिंता और गतिविधि के रूप में पर्यावरणीय मुद्दें का विकास हुआ। प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुंध दोहन और पर्यावरणीय क्षरण का वैश्विक आर्थिक व्यवस्था के अंग के रूप में व्यापक राजनीतिक एवं सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।[12]

आज विश्व मानव के समक्ष असंतुलित होता जा रहा पर्यावरण एक व्यापक चुनौती के रूप में उपस्थित है। विकास के अविवेकपूर्ण मानकों ने पर्यावरण को सर्वाधिक क्षतिग्रस्त किया है। विशाल जनसंख्या के कारण आज विकासशील देशों में पर्यावरण असंतुलन भयावह रूप धारण कर चुका है। आज भी तीसरी दुनिया में पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास एक-दूसरे के धुर-विरोधी माने जा रहे हैं। विकास को ही साध्य मान लेने वाले अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा की है। मजबूत, टिकाऊ और मनुष्य हेतु साध्य विकास पर्यावरण के साथ तादात्म्य बनाए रखकर ही सम्भव हो सकता है।

निःसन्देह भारत में पर्यावरण के असंतुलन का मुख्य कारण अपनी विरासत के प्रति हमारी व्यापक उदासीनता का भाव है। हमें अपनी संस्कृति के अनुरूप ही विकास के मॉडल को अपनाना चाहिए। हमारी संस्कृति त्यागपूर्ण भोग एवं प्रकृति से मैत्री कर रही है। जिसके प्रमाण आदिकालीन वैदिक ग्रंथों से ही प्रमाणित हैं। इसके अतिरिक्त पुराण, उपनिशद, श्रीमद्भगवत् गीता, रामायण, महाभारत आदि में इसके ज्वलंत उदाहरण मिलते हैं जिससे यह प्रमाणित होता है कि हमने सदैव प्रकृति का वन्दन किया है। आज भी हमारे देश में स्त्रियाँ वृक्षों, नदियों एवं कुओं की पूजा-अर्चना करती हैं, जो हमारे प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति के प्रति आस्था का परिचायक है किन्तु विकास की अन्धपूर्ण प्रतिस्पर्धा में हम अपने संस्कारों से दिग्भ्रमित हैं, जो चिंतनीय है।

आज पर्यावरण प्रत्येक मानवीय जीवन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ढंग से प्रभावित कर रहा है। तीव्र आर्थिक विकास हेतु अनियंत्रित रूप से प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन, औद्योगिक क्रांति, द्रुतगामी परिवहन साधनों एवं बढ़ते मशीनीकरण ने आज सम्पूर्ण वैश्विक जगत के समक्ष 'पर्यावरण संकट' को ज्वलंत समस्या के रूप में उपस्थित किया है। मानव ने अपना जीवन सुविधाजनक, आरामदेह एवं विलासितापूर्ण बनाने हेतु पर्यावरण को भयावह विनाश की दहलीज़ पर पहुँचा दिया है।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि आज पर्यावरण से सम्बन्धित विविध भयावहता का सृजक स्वयं मानव है। फलतः इसके निवारणार्थ समय रहते प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित एवं अविवेकपूर्ण दोहन रोकना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे संसाधनों को भावी पीढ़ियों की धरोहर स्वरूप व्यवस्थित एवं सुरक्षित रखा जा सके। हमें ऐसी विकासात्मक व्यवस्था को प्राथमिकता देनी होगी, जिसमें मानवीय आवश्यकताओं और संसाधनों के मध्य सदैव संतुलन एवं समायोजन स्थापित किया जा सके और स्वच्छ, सुन्दर व शुद्ध पर्यावरण की प्राप्ति सम्भव हो सके।

सन्दर्भ

1. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.–94
2. Iain McLean and Alistair McMillan, Oxford Concise Doctionary of Politics, Indian Edition, Oxford University Press, New Delhi, 2007, P. 173.
3. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.–96
4. वही, पृ.– 96–97

5. वही, पृ.–97
6. Oxford Dictionary of Politics, Oxford University Press, New Delhi, 2007, P. 173.
7. डॉ. मधु आस्थाना, पर्यावरण : एक संक्षिप्त अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2008, पृ.–12–13
8. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत के नवीन पक्ष, अंकित पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.–100–101
9. वही, पृ.–101
10. Graham Evans and Jeffrey Newnham, The Penguin Dictionary of International Relations, Penguin books, London, 1998, PP. 149-150.
11. Joshua, S. Goldstain, International Relations, Pearson, Delhi, 2007, P. 443.
12. John Baylis and stere smith, The Globalization of world Politics, Oxford University Press, New Delhi, 2005, P. 543.

स्वच्छ गंगा अभियान और राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण : दशा व दिशा

ऋतेश भारद्वाज

Ikjk'k% *भारत में पर्यावरण संरक्षण का इतिहास बहुत प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या, सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना। भारतीय संस्कृति में जन को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवनदायिनी कहा गया है, इसलिए प्राचीन संस्कृतियाँ नदियों के किनारे उपजीं और पनपीं। भारतीय संविधान प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खींचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर अनुच्छेद 48(ए) तथा 51(ए) (जी) जोड़े। अनुच्छेद 48(ए) के तहत भारतीय संविधान राज्य सरकारों को निर्देश देता है कि वह 'पर्यावरण की सुरक्षा व उसमें सुधार सुनिश्चित करें, तथा देश के वनों और वन्य जीवन की रक्षा करें।' अनुच्छेद 51(ए) (जी) नागरिकों से इस कर्तव्य की अपेक्षा करता है कि वे ''प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा उसका संवर्द्धन करें और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहें''। स्वतंत्रता के पश्चात् बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या-वृद्धि से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गई, जिसके चलते सरकार ने समय-समय पर अनेक कानून व नियम बनाए जैसे – रिवर बोर्ड्स ऐक्ट या अधि ानियम, 1956; जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974; पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986; वायु-प्रदूषण संबंधी कानून; वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980; वन्य-जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1995; तथा जैव-विविधता अधिनियम, 2002, इत्यादि।*

प्रस्तावना

भारत में स्वतंत्रता पश्चात् कई नई संस्थाओं का तेजी से विस्तार हुआ। सरकार के नए-नए उत्तरदायित्वों और कार्यों की जटिलताओं के कारण इन संस्थाओं का गठन आवश्यक था, जिनमें सांविधानिक, सांविधिक, नियामकीय, अर्ध-न्यायिक संस्थाएँ

इत्यादि शामिल हैं। इन्हें विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे– सत्ता की प्रकृति के आधार पर सलाहकारी आयोग, नीति-निर्धारक आयोग एवं अधिशासी कृत्य वाले आयोग। दूसरी ओर, विधिक स्थिति के आधार पर संविधान द्वारा स्थापित निकाय, विशेषविधानों के तहत स्थापित आयोग एवं सरकारी प्रस्तावों के आधारों पर स्थापित आयोग शामिल किए जाते हैं।

प्रस्तुत लेख स्वच्छ गंगा अभियान से जुड़े हुए सरकार के प्रयासों के आकलन के साथ-साथ राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की स्वच्छ गंगा अभियान पर निगरानी व दिशा-निर्देशों का राजनीतिक-आर्थिक अवलोकन करता है। नियामक निकाय एक सार्वजनिक प्राधिकरण होता है जो नियामकीय या पर्यवेक्षणीय क्षमता के तहत मानव गतिविधियों के कुछ क्षेत्रों पर स्वायत्त प्राधिकरण हेतु उत्तरदायी होता है। एक स्वतंत्र नियामक एजेंसी वह है जो सरकार की अन्य शाखाओं या विभागों से स्वायत्त होती है। नियामक निकाय प्रायः सरकार की कार्यकारी शाखा का एक हिस्सा होती है, या उन्हें विधि शाखा से दृष्टि लेकर कार्य करने का सांविधिक प्राधिकार होता है। उनके कृत्यों की आमतौर पर कानूनी समीक्षा हो सकती है। नियामक निकायों का गठन आमतौर पर मानकों एवं सुरक्षा लागू करने, या सार्वजनिक वस्तुओं के प्रयोग को देखने और वाणिज्य का नियमन करने के लिए किया जाता है। नियामक निकाय प्रशासनिक कानून-विनियमन या कानून-निर्माण के क्षेत्र में कार्य करते हैं जैसे– प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI), भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (TRAI)] बीमा नियामक एवं विकास प्राधिकरण (IRDA)] केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (CPCB) व राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) इत्यादि।

हाल ही के वर्षों में NGT अपने फैसलों की वजह से काफी चर्चा में रहा है। वर्ष 2016 में दिल्ली में यमुना के किनारे हुए विश्व सांस्कृतिक महोत्सव पर दिया निर्णय हो या फिर दिल्ली में प्रदूषण का मामला या फिर गंगा सफाई का मुद्दा हो, NGT ने हर बार राष्ट्रीय पर्यावरण के हित में कड़ा रुख अपनाया है। ग्लोबल वार्मिंग की भूमण्डलीय चिंता के रूप में उभरने के साथ ही भारतीय सर्वोच्च न्यायालय काफी पहले से ही पर्यावरण संबंधी कई पेचीदा मामलों के निपटारे हेतु एक विशेषपर्यावरण आंदोलन के गठन पर जोर देता रहा था। सर्वोच्च न्यायालय की इन्हीं कोशिशों के बाद ही राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010 भारतीय संसद में पेश हुआ और 18 अक्टूबर, 2010 को एनजीटी का गठन कर दिया गया। NGT पर्यावरण कानूनों के उल्लंघन से निपटने के लिए एक व्यापक अधिकार प्राप्त, भारत की पहली समर्पित अदालत है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया के बाद, भारत उन कुछ देशों में से एक है जहाँ पर्यावरण से संबंधित एक विशेषाधिकरण की स्थापना की गई है। यह 1972 में रियो डि जिनेरियो में हुए पर्यावरण और विकास से संबंधित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में लिए गए निर्णय

को भी पूरा करने की दिशा में एक कदम है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 में भी स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को जीवन के अधिकार के रूप में शामिल किया गया है। इस अधिकरण के गठन के बाद विभिन्न हाईकोर्ट में पर्यावरण से संबंधित मामले अब इस प्राधिकरण के द्वारा ही निपटाए जा रहे हैं। इस प्राधिकरण के अंतर्गत जंगलों की सुरक्षा और संरक्षण सुनिश्चित करना, प्राकृतिक स्रोतों का संरक्षण, पर्यावरण से जुड़े कानूनी अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ किसी नागरिक के अधिकारों के हनन पर उन्हें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना और भारतीय नागरिक के स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार जैसे मुद्दे आते हैं और NGT में किसी भी विवाद को छह महीने के भीतर सुलझाने की कोशिश की जाती है। इस अधिकरण में एक पूर्णकालिक अध्यक्ष होता है, जो माननीय सुप्रीम कोर्ट का सेवानिवृत्त न्यायाधीश या माननीय हाईकोर्ट से सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश के स्तर का होता है। इसके अतिरिक्त इसमें 10 या अधिकतम 20 की संख्या में न्यायिक और इसी संख्या में विशेषज्ञ सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान है।[1]

जहाँ तक सजा की बात है, इस अधिकरण के आदेशों का पालन नहीं करने पर तीन साल तक की जेल या 10 करोड़ रुपये का जुर्माना या फिर दोनों की सजा दी जा सकती है। यदि इस सजा के पश्चात् भी कोई व्यक्ति या संस्था इसके आदेश का उल्लंघन जारी रखता है, तो उसे प्रतिदिन 25 हजार रुपये तक के जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है। यदि कोई कम्पनी, अधिकरण के आदेशों का पालन नहीं करती, तो उसे 25 करोड़ रुपये तक का जुर्माना और उल्लंघन जारी रहने की दशा में प्रतिदिन एक लाख रुपये तक के जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है। अधिकरण के फैसले से असंतुष्ट होने की स्थिति में कोई भी व्यक्ति 90 दिनों के भीतर इसके आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दे सकता है, लेकिन 2014 में मद्रास हाईकोर्ट ने एक फैसले में कहा था कि कुछ मुद्दों पर हाईकोर्ट भी NGT के खिलाफ चुनौती को स्वीकार कर सकता है।

मानव सभ्यता अपने जीवन के लिए नदियों पर हमेशा निर्भर रही है, चाहे वह नील नदी की सभ्यता हो, या मिस्र की सभ्यता हो, या सिन्धु घाटी के तट पर फली-फूली हड़प्पा संस्कृति की हो अथवा भारत के उत्तर के मैदान में गंगा-यमुना के तट पर विकसित होने वाली हमारी वर्तमान सभ्यता हो। हाल ही में न्यूज़ीलैंड के माओरी समुदाय के लिए पवित्र मानी जाने वाली वहांगनुई नदी को 'जीवित व्यक्ति' (Living Entity) का दर्जा दिए जाने के पश्चात् उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने 20 मार्च, 2017, को दिए अपने एक अभूतपूर्व निर्णय में देश की दो पवित्र नदियों गंगा और यमुना को 'जीवित व्यक्ति' का दर्जा देने का आदेश दिया। यहाँ पर अंतर केवल इतना है कि जहाँ भारत में गंगा और यमुना नदी को न्यायपालिका द्वारा यह दर्जा दिया गया तो वहीं न्यूज़ीलैंड में वहांगनुई को यह दर्जा वहाँ की संसद ने प्रस्ताव

पारित करके दिया। इसके बाद 31 मार्च, 2017 को प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा के लिए 'गंगोत्री-यमुनोत्री' ग्लेशियरों के साथ-साथ उत्तराखंड में हवा, पानी, नदियों, जल-स्रोतों और जंगलों को भी 'जीवित व्यक्ति' के बराबर दर्जा और मौलिक अधिकार देते हुए 'नमामि गंगे' परियोजना से जुड़े सभी विभागों को इनका ध्यान रखने का निर्देश दिया।[2] उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय को आधार बनाया, जिसमें कहा गया था कि सामाजिक विकास के लिए किसी संस्था या उपयोगी इकाई को अथवा न्यायिक या कानूनी व्यक्ति को जीवित इकाई का दर्जा दिया जा सकता है। कोई भी इकाई जिसे यह दर्जा मिला होता है, वह सामान्य व्यक्ति को प्राप्त सभी प्रकार के नियम-कानूनों से संचालित होता है। जुलाई, 2017 में सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तराखंड न्यायालय के देश की दो अहम् नदियों गंगा और यमुना को जीवित मानव इकाई का दर्जा देने के फैसले पर रोक लगा दी है।

गंगा नदी उत्तराखंड के उत्तरकाशी जिले में समुद्र तल से लगभग 3,900 मी. ऊँचाई पर स्थित गोमुख नामक हिमनद से निकलती है, जहाँ इसका स्थानीय नाम भागीरथी है। देवप्रयाग में अलकनंदा से मिलने के पश्चात् ही यह गंगा कहलाती है। 2525 किमी. लम्बी इस नदी का विसर्जन बंगाल की खाड़ी में होता है और इसके जल संग्रहण क्षेत्र का विस्तार भारत में लगभग 8.6 लाख वर्ग किमी. है। भूमण्डलीय तापन (Global Warming) की वजह से भागीरथी का उद्गम स्थल गंगोत्री ग्लेशियर पिछले दो शताब्दी से 15 मी. प्रतिवर्ष की रफ्तार से खिसक रहा था, जो अब 35 मी. की रफ्तार से पीछे हट रहा है और विशेष चिंता की बात यह है कि गंगोत्री की तरह ही इसके सहायक ग्लेशियर भृगुपंथ, चरक्तवन, चतुरंगी और मेरू भी पीछे हट रहे हैं। उत्तराखंड की करीब 14 नदी घाटी परियोजनाओं में करीब 300 से भी अधिक छोटी-बड़ी परियोजनाएँ चल रही हैं जोकि भूकम्प के प्रति अतिसंवेदनशील जोन-5 में आती हैं। हरिद्वार में 60 मिलियन लीटर कचरा रोज निकलता है जबकि वहाँ स्थापित सरकारी संयंत्र की क्षमता महज 48 मिलियन लीटर रोज फिल्टर करने की है और इस तरह से 12 मिलियन लीटर कचरा रोजाना हरिद्वार से आगे मैदानी क्षेत्रों में बह जाता है।[3] वर्ष 2013 में किए गए सर्वेक्षण से यह बात निकलकर सामने आई कि केवल हरिद्वार और इसके इर्द-गिर्द कुल लगभग 234 टन कचरा निकलता है।[4] हरिद्वार में हर साल गंगा को रोक कर सफाई की जाती है। दशहरे की रात गंगा कैद होती है, फिर छोटी दीवाली तक पुनः अपने वेग से प्रवाहित होने लगती है। अर्थात् गंगा को करीब 15 दिन बंदी बनाकर उसकी सफाई की जाती है और इस दौरान लगभग 234 टन कचरा निकलता है।[5]

गंगा नदी विश्व भर में अपनी शुद्धिकरण की क्षमता के लिए जानी जाती है और इस मान्यता का वैज्ञानिक आधार भी है क्योंकि वैज्ञानिक मानते हैं कि इस नदी के

जल में बैक्टीरियोफेज नामक विषाणु होते हैं, जो जीवाणुओं एवं अन्य हानिकारक सूक्ष्म जीवों को जीवित नहीं रहने देते। इसके अतिरिक्त, गंगा नदी के जल में ऑक्सीजन को बनाए रखने की असाधारण क्षमता है, लेकिन गंगा के तट पर बसे औद्योगिक नगरों के नालों की गंदगी के सीधा गंगा में मिलने से गंगा का प्रदूषण पिछले कई सालों से गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। इसके साथ ही पिछले पाँच दशकों में गंगा द्वारा समुद्र में विसर्जित पानी की मात्रा में 20 प्रतिशत से अधिक की गिरावट आई है जिसके लिए उत्तराखंड में बन रहे अंधाधुंध बांध निर्माणों की भूमिका रही है। वर्ष 2007 की संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार 2030 तक हिमालय पर स्थित गंगा की जलापूर्ति करने वाले हिमनद के समाप्त हो जाने की आशंका है।

सन् 1975 में पहली बार गंगा के प्रदूषित होने की बात सामने आने पर संसद में एम.एस. कृष्णा द्वारा यह सवाल उठाया गया, 'गंगा-प्रदूषण के बारे में सरकार को क्या जानकारी है और इसे रोकने के लिए क्या कर रही है?' संसद ने इस सवाल का जवाब बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से मांगा और जब वहाँ से टेलीग्राम आया तो भूचाल मच गया। इसके बाद गंगा-प्रदूषण के बारे में चर्चा तेज हो गई। 21 जुलाई, 1981 को पहली बार संसद में ''इस बात को स्वीकार किया गया कि गंगा जल प्रदूषित हो रहा है। यदि इसे रोका न गया तो निश्चित रूप से इसके गंभीर परिणाम होंगे।'' केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने 1984 में गंगा बेसिन सर्वे के बाद अपनी रिपोर्ट में गंगा के प्रदूषण पर गंभीर चिंता जताई थी, जिसके आधार पर पहला गंगा ऐक्शन प्लान (GAP-I) 1985 में अस्तित्व में आया। वांछित सफलता न मिल पाने पर 15 वर्ष पश्चात् वर्ष 2000 में इसे बंद कर दिया गया। इसी बीच अप्रैल 1993 में तीन और नदियों यमुना, गोमती और दामोदर के साथ गंगा एक्शन प्लान-II शुरु किया गया, जो 1995 में प्रभावी रूप ले सका। 1996 में इस योजना का राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना में विलय कर दिया गया और फरवरी 2009 में राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन अथॉरिटी (NGRBA) का गठन किया गया। वर्ष 2011 में इस कार्य के लिए राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन को एक पंजीकृत सोसाईटी का रूप दिया गया। इन तमाम प्रयासों के बावजूद 2014 तक परिणाम लगभग नगण्य रहे, जिसे देखते हुए 2015 में गंगा सफाई की महत्त्वाकांक्षी योजना 'नमामि गंगे' के लिए 20 हजार करोड़ रुपये का बजट आवंटित किया गया। इससे पहले 30 सालों तक गंगा की सफाई पर करीब चार हजार करोड़ रुपये ही खर्च किए गए थे। यदि तब गंगा की सफाई का मूलभूत काम सफलतापूर्वक किया गया होता, तो चुनौतियाँ इतनी व्यापक न होतीं।

वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने गंगा की सफाई को लेकर पर्यावरणविद् एम. सी. मेहता[6] द्वारा वर्ष 1985 में दायर जनहित याचिका को नेशनल ग्रीन ट्रीब्यूनल (NGT) के पास भेज दिया है। चीफ जस्टिस जे.एस. खेहर की अध्यक्षता वाली

दो-सदस्यीय पीठ ने कहा था कि ठोस कचरा औद्योगिक प्रदूषण के मसले पर चूंकि एनजीटी रोज सुनवाई कर रहा है, लिहाजा गंगा के प्रदूषण के अन्य कारकों के मसलों को भी NGT द्वारा ही सुना जाना चाहिए। इसके साथ ही पीठ ने NGT को हर छह महीने में प्रगति रिपोर्ट पेश करने को कहा था। पीठ ने याचिकाकर्ता से कहा था कि अगर उन्हें किसी तरह की परेशानी होती है तो वह पुनः सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं। याचिकाकर्ता एम.सी मेहता द्वारा यह प्रश्न उठाया गया कि NGT इस मामले की सुनवाई कर रहा है लेकिन उसके पास अनुपालन तंत्र नहीं है। जवाब में पीठ ने कहा कि NGT अधिनियम के तहत आदेश का पालन न करने पर जुर्माने के साथ-साथ दण्ड का प्रावधान भी है। यह कहते हुए सर्वोच्च न्यायालय में 32 वर्ष पूर्व दायर जनहित याचिका का निपटारा कर दिया।[7]

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण – अवलोकन व सक्रियता

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने 20 अगस्त, 2016, में गंगा को स्वच्छ बनाने की केन्द्रीय और यूपी सरकारों की कथित कोशिशों का आंकलन करने के बाद कहा कि इनकी कोशिशों का नतीजा अब तक शून्य रहा है। NGT ने दोनों सरकारों की खिंचाई करते हुए हरिद्वार और कानपुर के बीच गंगा में डाले जाने वाले औद्योगिक कचरे के बारे में रिपोर्ट मांगी थी, और आदेशों का पालन नहीं किए जाने से नाराज NGT ने सभी प्राधिकरणों, केन्द्रीय मंत्रालय और यूपी सरकार को दो सप्ताह का अंतिम मौका भी दिया था, और साथ ही यह चेतावनी भी दी थी कि ऐसा न होने पर संबंधित सचिवों पर 25-25 हजार रुपये का जुर्माना भी लगाया जाएगा। NGT ने पर्यावरण और वन, जल संसाधन, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और अन्य एजेंसियों की गंगा को स्वच्छ बनाने को लेकर कोई स्पष्ट रुख नहीं अपनाने पर कड़ी आलोचना की और उन्हें दो सप्ताह में अंतिम रिपोर्ट सौंपने को कहा था।

आज पर्यावरण को बचाने और दोषियों को दंडित करने के लिए सरकार और उसकी नीतियाँ और कानून शिथिल क्यों हैं और क्या सारा दारोमदार NGT जैसी संस्थाओं पर आ गया है? भारत में पर्यावरण की हिफाजत को लेकर राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की भूमिका ने आम लोगों को राहत दी है तो कुछ बुनियादी सवाल भी पैदा किए हैं। NGT की सक्रियता का सबसे पहला उदाहरण उत्तराखंड में जून 2013 में आई विनाशकारी वज्रवृष्टि और बाढ़ से जुड़ा है, जिसमें श्रीनगर में अलकनंदा जल विद्युत परियोजना के नाम से जी.वी.के. नाम की एक निजी कम्पनी बाँध बना रही थी। NGT के पास जब ये मामला गया था तब इस निर्माणाधीन बाँध की वजह से नुकसान का आँकड़ा और दायरा बढ़ा था। इसमें कम्पनी अपना दोष मानने को तैयार नहीं थी। इसमें NGT ने ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा कि आपदा सिर्फ दैविक नहीं हो सकती। इस आपदा के पीछे निर्माण की खामियाँ भी अवश्य थीं और कम्पनी को पीड़ितों को नौ करोड़ 26 लाख रुपये का मुआवजा 30 दिनों के

भीतर देना होगा। इस मामले में पीड़ित स्थानीय ग्रामीण थे, बाढ़ में जिनके घर, परिजन, खेत-खलिहान और पशु बह गए थे। दूसरी सक्रियता के रूप में NGT के पास वर्ष 2010 का मामला भी लम्बित था, जिसमें डेल्टा मरीन शिपिंग कम्पनी का एक तेल जहाज मुम्बई के समुद्र में डूब गया था, जिससे भारी मात्रा में तेल–रिसाव होने से पारिस्थितिकीय नुकसान हुआ था। इस केस में NGT ने कम्पनी को दोषी करार देते हुए उस पर 100 करोड़ रुपये का जुर्माना लगाया। कम्पनियों को कटघरे में लाने की इस वैधानिक सक्रियता ने पर्यावरण आंदोलन से जुड़े गंभीर लोगों को और संस्थाओं को बड़ी राहत और उम्मीद हासिल कराई है। NGT के फैसलों से एक बात स्पष्ट होती है कि सरकारी लापरवाही कितनी गहरी पैठ कर गई है कि जो काम स्वयं सरकार को कर देने चाहिए थे, वह तब हो रहे हैं जब मामले पर्यावरण की इस अदालत के पास जा रहे हैं।

बाँध-विरोधी अभियानों को भी इस फैसले से राहत मिलेगी और बाँध-निर्माता कम्पनियों और बाँध बनाने को उतावली जान पड़ रही केन्द्र और राज्य की सरकारों को भी एकबारगी सोचना पड़ेगा। विकास के नाम पर प्रकृति के साथ समझौता कर निर्माण का मॉडल जैसे चुपचाप अपना लिया जाता है और जब कोई बहुत बड़ी त्रासदी घटती है तो मुनाफा कमाने वाली एजेंसियाँ, ठेकेदार, सरकारी अमला, पीछे हट जाते हैं और लोगों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है। मार्च 2016 में देश की राजधानी में मृतप्रायः यमुना नदी के संवेदनशील कछार पर *आर्ट ऑफ लिविंग* का विश्व सांस्कृतिक महोत्सव हुआ, जिसे लेकर NGT को पाँच करोड़ की गारंटी राशि हासिल करने में लम्बा वक्त लगा। इसी प्रकार NGT ने 15 वर्ष पुरानी डीजल कारों को सड़कों से हटाने का फैसला देकर सरकार और कॉर्पोरेट जगत में खलबली पैदा कर दी।[8]

जिस प्रकार सरकार अपने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक एजेंडे को लागू करने की राह में मुश्किलें पैदा करने वाली संस्थाओं पर हमले कर रही है, उसमें यदि NGT पर भी हमले हों तो कोई अचरज नहीं होना चाहिए। मई 2014 में नई सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही सत्ता के गलियारों में यह चर्चा शुरू हुई कि एनजीटी के अधिकार कम किए जा सकते हैं, जिस कानून के जरिए इसका गठन हुआ है, उसमें किसी संशोधन की कोई प्रत्यक्ष कोशिश तो नहीं हुई। लेकिन वित्त अधिनियम, 2017, के जरिए यह काम करने की कोशिश की गई। इस अधिनियम में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए जो NGT समेत सभी अभिकरणों पर लागू होंगे। इसके जरिए अभिकरणों में नियुक्तियों के लिए योग्यता और सेवा शर्त तय करने की बात की गई है। मौजूदा नियमों के तहत NGT का प्रमुख सर्वोच्च न्यायालय का कोई मौजूदा या सेवानिवृत्त जज हो सकता है या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश लेकिन इसे बदल कर यह किया जा रहा है कि जिसके पास सर्वोच्च न्यायालय के जज

बनने की योग्यता होगी, उसे NGT का प्रमुख बनाया जा सकता है। अर्थात् जिस वकील के पास उच्च न्यायालय में दस वर्ष काम करने का अनुभव होगा, वह भी NGT का प्रमुख बन सकता है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिए यही योग्यता है। अभी तक यह व्यवस्था है कि NGT के सदस्यों का चयन सर्वोच्च न्यायालय के जज की अध्यक्षता वाली समिति करती है जबकि नए नियमों के मुताबिक यह काम अब सरकार करेगी। निश्चित तौर पर इसका दीर्घकालिक असर NGT के निर्णयों पर दिखेगा क्योंकि न्यायिक पृष्ठभूमि वाले विशेषज्ञों वालों की संख्या घट जाएगी और साथ ही इसकी स्वतंत्रता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। आज सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश मीडिया के समक्ष आकर सर्वोच्च न्यायपालिका की कार्यशैली में पारदर्शिता की कमी पर स्पष्ट बोल चुके हैं, ऐसे में एनजीटी के अधिकारों और उसकी स्वतंत्रता पर होने वाले आघात पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। NGT की स्वतंत्रता को कम करने की कोशिश ऐसे वक्त पर हो रही है कि जब इसने यह साबित किया है कि मोदी सरकार के पसंद की प्रमुख योजना 'नमामि गंगे' में यह अहम भूमिका निभा सकता है।

NGT }kjk LoPN xxk ij fn, x, fn'kk-fun'k

- NGT ने उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड एवं पश्चिम बंगाल से होकर गुजरने वाली गंगा की सफाई के अभियान को नदी के चार चरणों में बांट दिया है। NGT के अध्यक्ष न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार की अध्यक्षता वाली पीठ ने इसके पहले चरण में गोमुख से हरिद्वार तक का क्षेत्र और पहले चरण के खण्ड-बी के रूप में हरिद्वार से उन्नाव, और उन्नाव से उत्तर प्रदेश की सीमा तक का क्षेत्र दूसरे चरण में शामिल किया, और तीसरे चरण को उत्तर प्रदेश की सीमा से झारखण्ड की सीमा तक, और चौथे चरण को झारखण्ड सीमा से बंगाल की खाड़ी तक बांटा है।
- NGT ने गंगा को स्वच्छ बनाने के लिए हरिद्वार से उन्नाव के बीच गंगा नदी के तट से 100 मीटर के दायरे को गैर-निर्माण क्षेत्र घोषित किया है, और साथ ही नदी तट से 500 मीटर के दायरे में कचरा डालने पर जुर्माना लगाने जैसे कई निर्देश जारी किए हैं। प्रत्यक्ष रूप से गंगा नदी में किसी भी प्रकार के कचरा डालने पर 50 हजार रुपये का पर्यावरण-हर्जाना देना होगा।
- NGT ने कचरा-निस्तरण संयंत्र के निर्माण और नालियों की सफाई के लिए सभी संबंधित विभागों से दो वर्ष के भीतर विभिन्न परियाजनाओं को पूरा करने के निर्देश दिए हैं।
- इस संस्था ने उत्तर प्रदेश सरकार को उसकी जिम्मेदारी समझाते हुए चमड़े

के कारखानों को छः हफ्ते के भीतर जाजमऊ से उन्नाव के चमड़ा पार्कों या राज्यों द्वारा उचित समझे जा रहे किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करने को कहा है।

- NGT ने उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड सरकार को गंगा और उसकी सहायक नदियों के घाटों पर धार्मिक क्रियाकलापों के लिए दिशा-निर्देश बनाने के लिए कहा है, ताकि गंगा को धार्मिक क्रियाकलापों से होने वाली गंदगी से बचाया जा सके।
- NGT ने यह भी कहा है कि शून्य तरल रिसाव और सहायक नदी की ऑनलाइन निगरानी की शर्त औद्योगिक ईकाइयों पर लागू नहीं होनी चाहिए। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को भी आदेश दिया गया है कि गंभीर रूप से प्रदूषण फैला रही औद्योगिक ईकाइयों की सूची अपनी वेबसाइटों पर डालें। NGT ने गंगा में न्यूनतम बहाव जारी रखने का भी निर्देश दिया है।
- इसके अलावा NGT ने 543 पन्नों वाले अपने फैसले के पालन की निगरानी करने और इस संबंध में रिपोर्ट पेश करने के लिए एक पर्यवेक्षक समिति का गठन किया। साथ ही इस समिति को नियमित अंतराल पर रिपोर्ट देने के भी निर्देश दिए हैं।[9]
- NGT ने इस बात पर कड़ी आपत्ति जताई कि सात हजार करोड़ रुपये खर्च करने के बाद भी गंगा अभी तक मैली है और NGT ने विश्व बैंक से गंगा सफाई के लिए मिले 20 हजार करोड़ रुपये के ऋण का उल्लेख करते हुए इसे खर्च करने में संयम बरतने को भी कहा।

जैसा कि हम जानते हैं कि विभिन्न राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड प्रदूषण की रोकथाम करने में अक्षम हैं और ना ही उनके पास पर्याप्त संख्या में कर्मचारी हैं, जो इस ओर ध्यान दे सकें। इसके अतिरिक्त प्रदूषण नियंत्रण के लिए बने कानूनों और अदालती आदेशों का पालन करने की इच्छाशक्ति कार्यपालिका में नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण अभी हाल ही में दिल्ली में 65 हजार वृक्षों का काटा जाना देखा जा सकता है, जिसे सिर्फ सरकारी आवासीय निर्माण हेतु काटा जा रहा है और इसकी प्रतिपूर्ति भी ईमानदारी से नहीं की जा रही है। गंगा नदी में प्रदूषण की रोकथाम के लिए आम जनता में भागीदारी और सम्मान की भावना का भाव है, परंतु इस मुद्दे पर जनता से संवाद की कोई व्यवस्था नहीं है, आज जो बुराइयाँ समाज और पर्यावरण में आई हैं, उसके निराकरण के लिए प्रत्येक नागरिक की जिम्मेवारी बनती है और इसके साथ ही सरकार द्वारा इस पर पूर्ण ईमानदारी भी अपेक्षित है।

संदर्भ

1. *M.C. Mehta vs Union of India & Others* dated 13/07/2017, Original Application No. 200 of 2014 (C.Writ Petition No. 3727/1985) (M.A. No. 594/2017 & 598/2017)
2. *Manoj Mishra v. Union of India*, NGT Judgement, 13 January, 2015 (now referred to as the Maily se Nirmal Yamuna Revitalization Plan 2017).
3. *Vardhaman Kaushik v. Union of India* and *Sanjay Kulshrestha v. Union of India*, NGT Order, 7 Apr. 2015.
4. Mehta, S. Pradeep, *Competition and Regulation in India*, CUTS International, 2009.
5. Singh, V. Vijay, *Regulatory Management and Reform in India*, Background Paper for OECD, CUTS International, 2008.
6. *A Report: Status Paper on River Ganga*, State of Environment and Water Quality, National River Conservation Directorate, Ministry of Environment and Forests Government of India, Alternate Hydro Energy Centre, Indian Institute of Technology, Roorkee, August, 2009.
7. *A Report of Central Pollution Control Board*, Ministry of Environment and Forests, Ganga Water Quality Trend, Monitoring of Indian Aquatic Resources Series, Decmber, 2009.
8. Das, Subhajyoti. Cleaning of the Ganga, *Journal of Geological Society of India*, Vol.78, pp.124-130, August, 2011.
9. K. Jaiswal, Rakesh. *Ganga Action Plan-A Critical Analysis*, May, 2007. http://www.gangaaction.org/book-review/ganga-action-plan-a-critical-analysis/
10. *Phase 2 of Ganga Action Plan*, Ministry of Environment and Forests, Government of India, 2 August 2011.
11. सिंह, अमरनाथ, गोमुख से ही मैली गंगा, *राष्ट्रीय सहारा*, हस्तक्षेप, नई दिल्ली, 11 अक्टूबर, 2014, पृ. 3.

Internet Sources

- http://www.greentribunal.gov.in/
- http://mowr.gov.in/
- https://nmcg.nic.in/NamamiGanga.aspx
- http://www.gangaexhibition.com/About-The-Ganga-mod-The-Ganga-ARiver-of-Life-id.html
- http://www.downtoearth.org.in/coverage/pollution-of-hinduisim-17622
- http://www.slideshare.net/shraddhasamant98/pdf-29721299

;

पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं उपाय

अम्बुजेश कुमार मिश्र

Ikjk'k% प्रस्तुत शोध पत्र में ''पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं उपाय'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय विमर्श में बढ़ता हुआ प्रदूषण एक ज्वलंत समस्या के रूप में जैविक अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह् लगा रहा है। आधुनिकता और तकनीकी आज के वैश्विक उन्नत समाज में तीव्र गति से अभिवृद्धि हो रही है। इस समस्या से समस्त विश्व पूर्णतः अवगत भी है और चिन्तित भी। इसके कारण मानव जिस तरह के वातावरण (पर्यावरण) में रहने को विवश है वह दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होता जा रहा है, जिसके दुष्परिणाम स्वरूप कहीं अत्यधिक गर्मी तो कहीं अत्यधिक सर्दी का सामना करना पड़ रहा है। यह दुष्प्रभाव मात्र इतना ही नहीं बल्कि समस्त जीवधारियों को विविध प्रकार के रोगों से ग्रसित होना पड़ रहा है। प्रकृति और उसका पर्यावरण अपने शाश्वत स्वभाव से शुद्ध, निर्मल और समस्त जीवधारियों हेतु स्वास्थ्य का पोषक होता है किन्तु यदि किसी कारणवश वह प्रदूषित हो जाता है, तो पर्यावरणीय परिस्थिति में उपलब्ध समस्त जीवधारियों हेतु विविध प्रकार का संकट उत्पन्न करता है। मानव सभ्यता का जिस प्रकार तीव्रता से विकास हो रहा है ठीक उसी प्रकार पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा भी तीव्रतर होती जा रही है। इसके प्रसारण में सर्वाधिक उत्तरदायी मानव का वर्तमान क्रिया कलाप और उसकी जीवन शैली है। यहाँ यह ध्यातव्य होना चाहिए कि प्रदूषण की वृद्धि का प्रमुख कारण मानवीय अवांछनीय गतिविधियाँ है, जो प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का अतिशय विदोहन करते हुए वसुन्धारा को कूड़े-कचरे के ढेर का स्वरूप प्रदान कर रही हैं जिससे सम्पूर्ण जल, वायु और भूमि प्रदूषित हो रही है। जिससे समस्त जीव जगत का स्वास्थ्य दुष्प्रभावित हो रहा है।

प्रस्तावना

पर्यावरण का ज्ञान संपूर्ण समाज के लिये आधारभूत आवश्यकता है क्योंकि यह जीव जगत का नियामक है। पर्यावरण के कारण ही पृथ्वी को जीवित जगत का गौरव प्राप्त हुआ है, क्योंकि सौर परिवार में केवल पृथ्वी पर ही समस्त प्राणियों, जीवधारियों,

वनस्पतियों के विकास के लिये अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध है। मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है जो पर्यावरण के रहस्यों को सर्वाधिक समझ पाया है। मानव की समस्त क्रिया कलापों, आवश्यकताओं का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है। वह प्रकृति की गोद में उत्पन्न होता है तथा अपना सर्वांगीण विकास करता है। पर्यावरण वायुमण्डल, पृथ्वी, जल, अंतरिक्ष से मिलकर बना है, जिसमें परिवर्तन होने से सभी जीव-जन्तु, वनस्पति प्रभावित होते है।

पर्यावरण अंग्रेजी के Environment शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो फ्रेंच भाषा के Environer से बना है जिसका अभिप्राय 'समस्त पारिस्थितिकी या परिवृत्त[1] होता है। अंग्रेजी का Environment शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – Environ और Ment, जिसमें Environ का अर्थ 'घेरना' तथा Ment का अर्थ 'चारों तरफ से' होता है।[2] जबकि हिन्दी शब्द परि+आवरण से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ– 'हमारे चारों तरफ के आवरण' से है।[3] अर्थात् पर्यावरण का आशय मानव के चारों ओर का आवरण या परिवेश है, जो भी प्रकृति प्रदत्त चीजें हमारे चतुर्दिक मौजूद हैं मसलन वायु, जल, मिट्टी, वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु ये सभी पर्यावरण के ही प्रमुख घटक हैं जिनसे मिलकर पर्यावरण की रचना होती है/जिसके वृहदत्तर स्वरूप को पारिस्थितिकी की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रिया को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक व जैविक पारिस्थितियों का योग है जिसे जीवमण्डल की भी संज्ञा दी जाती है।[4]

सी०सी० पार्क के अनुसार, ''वातावरण (पर्यावरण) का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मनुष्य को निश्चित समय से निश्चित स्थान पर आवृत करती है''।[5] डॉ० सविन्द्र सिंह के अनुसार–''पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक व सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तन्त्रों से इसकी रचना होती है''।[6]

प्रदूषण

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानव को अधिकाधिक उपभोग की ओर आकृष्ट किया है। अधिक उपभोग-अधिक उत्पादन की प्रवृत्ति से पर्यावरणीय तत्वों में प्रखरता आयी है। हमारे रहन-सहन में विशुद्धता की जगह प्रदूषण प्रवेश कर रहा है।[7]

प्रदूषण शब्द मूलतः 'शुद्धता के ह्रास' से सम्बन्धित है। पर्यावरण के संघटन में जब कोई व्यवधान या विक्षोभ जो मानव जाति के लिये अहितकर हो, प्रदूषण कहलाता है। अर्थात् व्यापक रूप से वायु, जल और पृथ्वी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन जिससे मनुष्य व अन्य जीवधारियों के साथ प्रकृतिजन्य संसाधनों की भी क्षति हो या क्षति होने की प्रबल सम्भावना हो, प्रदूषण

की श्रेणी में आता है। साथ ही ऐसे पदार्थ जो पर्यावरण में प्रदूषण को प्रसारित करने में सहयोगी की भूमिका में हों, वे प्रदूषक कहलाते हैं। पर्यावरण में प्रदूषण मनुष्य की वांछित क्रिया कलाप का अवांछित प्रतिफल है जिसके दुष्परिणाम स्वरूप प्रदूषकों की उत्पत्ति होना भी मानवीकृत है।[8]

जीवजगत और उनका वातावरण दोनों मिलकर पारिस्थितिकी तन्त्र बनाते हैं तथा इन दोनों घटकों के बीच संतुलन भी बना रहता है, प्रत्येक में होने वाले परिवर्तनों को समायोजित कर लेने की शक्ति भी इनमें होती है, परन्तु बड़े परिवर्तन पारिस्थतिकी तन्त्र के संतुलन को असंतुलित कर देते है, इस असंतुलित अवस्था को प्रदूषण कहा जाता है। मानव पर्यावरण की ही उपज है और उसका जीवन पूर्ण रूप से संतुलित पर्यावरण पर ही आश्रित है। प्रदूषण के कारण मानव जीवन के साथ-साथ उपयोगी जीवों, वनस्पतियों, पर्यावरण एवं पदार्थों को हानि पहुँचती है अथवा ये नष्ट हो जाते है। आज भारत के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत भाग का पर्यावरण असंतुलन के चपेट में आ गया है, जिसका प्रमुख कारण स्वयं मानव है। प्रदूषण सम्पूर्ण विश्व के समक्ष सबसे खतरनाक खलनायक के रूप में उभरा है। प्रदूषण निम्न रूपों में मनुष्य के जीवन गति को प्रभावित कर रहा है –

प्राकृतिक प्रदूषण

यह प्रकृति जनित है जो ज्वालामुखी के द्वारा उत्पन्न, राख, लावा व अपशिष्ट से उत्पन्न होता है।

भौतिक या मानव जनित प्रदूषण

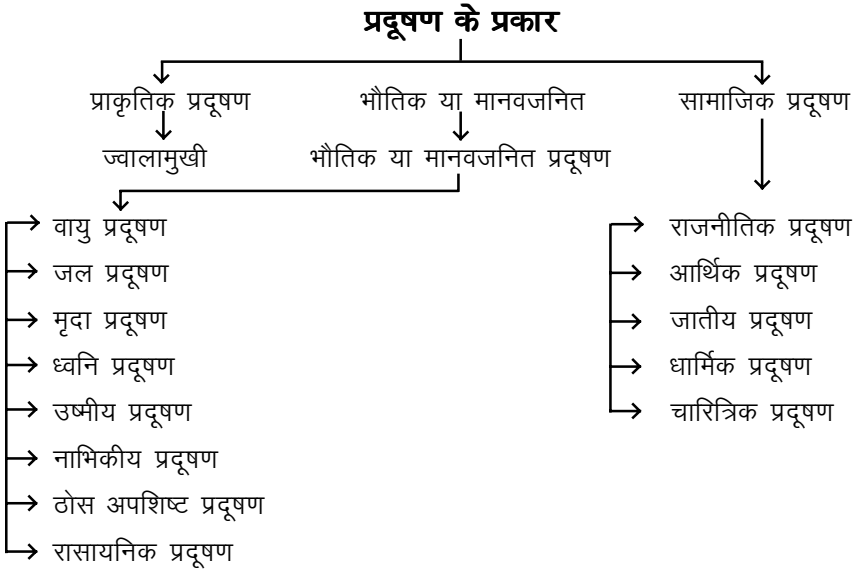

समस्त प्रदूषणों में यह जैव जगत को प्रभावित करने वाला सबसे खतरनाक प्रदूषण है जिसके कारण पृथ्वी पर जीवन की गति दिशाहीन होती जा रही है –

1- ok;q inw"k.k

शुद्ध वायु स्वस्थ जीवन का आधार है इसलिये इसे प्राण वायु भी कहा गया है। एक व्यक्ति प्रतिदिन औसतन 22 हजार बार साँस लेकर लगभग 16 किलोग्राम शुद्ध वायु का प्रयोग करता है। जिसमें निहित ऑक्सीजन गैस फेफड़ों के माध्यम से संग्रहीत होकर रक्त संचार को बनाये रखती है।[9] जब वायुमण्डल में बाह्य स्रोतों से अनेक प्रकार के प्रदूषक जैसे–धूल, गैसें, धुन्ध, दुर्गन्ध, धुँआ और वाष्प, इतनी अधिक मात्रा और अवधि तक उपस्थित हो जायें कि उससे वायु के प्राकृतिक गुणों मे अन्तर आ जायें तथा उसके सेवन से मानव स्वास्थ्य, जीव, जन्तु, वनस्पति जगत के जीवन की गुणवत्ता बाधित हो तो उसे वायु प्रदूषण कहते है।

मुख्य रूप से वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, मिथेन गैस, सल्फर डाई ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, हाइड्रोकार्बन्स, हाइड्रोजन सल्फाइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गैसों की अधिकता से सम्पूर्ण वायुमण्डल प्रदूषित हो रहा है, अनेकानेक बीमारियाँ जन्म ले रही हैं, जिससे मानव जीवन खतरे में पड़ता जा रहा है। ओज़ोन क्षरण एवं हरित ग्रीन प्रभाव भी इसी का परिणाम है।

वायु प्रदूषणजनित बीमारियों का फैलाव भी निरन्तर हो रहा है, जिनका जलवायु परिवर्तन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। WHO के आँकड़ों की माने तो 2012 में 37 लाख लोगों की मौत बाह्य वायु प्रदूषण से हुई, जिसमें 88 फीसदी लोग कम व मध्य आय वाले देशों के थे। वहीं 43 लाख लोगों की मौत हाउस होल्ड वायु प्रदूषण यानि घर के अन्दर के वायु प्रदूषण से हुई है।[10]

2- ty inw"k.k

पृथ्वी पर वायु शुद्ध होना जरूरी है, जल को महाऔषधि कहा गया है[11] उसमें अमरत्व का गुण है[12] पवित्र जल सारे दोषों का प्रक्षालन कर देता है।[13] मनुष्य, जीव, जन्तुओं, वनस्पतियों का जीवन शुद्ध जल पर ही आधारित है। आदिकाल से ही मानव अपशिष्ट पदार्थों को जल स्रोतों में विसर्जित करता चला आ रहा है। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण एवं जल स्रोतों के बढ़ते दुरुप्रयोग के कारण जल प्रदूषण एक विकराल स्तर तक पहुँच गया है। ग्रोवका के अनुसार– ''मनुष्य द्वारा बहती नदी में ऊर्जा या ऐसे पदार्थ का निवेश जिससे जल के गुण में ह्रास हो जाये, जिससे वह मानव या किसी प्राणी के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो जाये, अथवा औद्यागिक या सिंचाई कार्य के लिये उपयोगी न रह जाये, जल प्रदूषण कहलाता है''[14]। जल प्रदूषण मुख्य रूप से औद्योगिक कचरा, घरेलू, बहिस्राव, कृषि कार्य में होने वाले कीटनाशक, खरपतवार नाशक, उर्वरक

का प्रयोग, नगरीय कचरा, रेडियोधर्मी तत्व, भूगर्भ जल प्रदूषण से उत्पन्न होता है। पेयजल के साथ रोग वाहक बैक्टीरिया, वायरस, प्रोटोज़ोआ एवं कृमि मानव शरीर में पहुँचकर हैजा, टाइफाइड, पेचिश, पीलिया, एक्ज़ीमा जैसे भंयकर रोग पैदा करते हैं।[15]

वैज्ञानिकों के अनुसार, विश्व के पाँच प्रतिशत बच्चे प्रतिवर्ष सिर्फ प्रदूषित जल के उपभोग के कारण मर जाते हैं।[16] प्रदूषित जल से हैंजा, पीलिया, पेचिश, टाइफाइड, गैस्ट्रो इन्टीरिटिस जैसी बीमारियाँ फैलती हैं साथ ही ये अनेक शारीरिक विकृतियों को जन्म देते हैं। मनुष्य के साथ-साथ पेड-पौधों, जीव-जन्तुओं, जल भण्डारों तथा परिस्थितिकी तन्त्र पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा हैं। देश की अधिकांश नदियाँ गन्दे सीवर के रूप में परिवर्तित हो रही हैं।

3- enk ;k Hkfe izn"k.k

कृषि विधियों और कृषि उत्पाद में विकास के साथ खरपतवार नाशक कीटनाशक, जीवनाशक, पीड़क नाशक, पदार्थों का अंधाधुंध प्रयोग होने के कारण मिट्टी की पारिस्थितिकी बदल गयी है तथा यह अपनी प्राकृतिक उर्वरा शक्ति को खो चुकी है। भूमि प्रदूषण के कारण मिट्टी में कैल्शियम, मैंग्नीशियम, सल्फर, लोहा, ताँबा, जस्ता, बोरान, मौलिवडेनम, मैंगनीज़, नाइट्रोज़न, पोटैशियम, फास्फोरस जैसे तत्वों की भारी कमी हो जाती है।

इनके अतिरिक्त अम्ल वर्षा, खानों से प्राप्त जल, मृदा में कूड़ा-करकट, अपशिष्ट पदार्थों का मिलना, उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग भी मृदा को प्रभावित करता है। अस्थियाँ, कागज, सड़ा-गला मांस, सड़ा भोजन, लोहा, लेड, ताँबा, भारी मात्रा में कारखानों से निकले धातु, आर्सेनिक, जिंक, निकल, कैल्शियम, मृदा को प्रभावित करते हैं। ये वनस्पतियों के साथ-साथ मनुष्य के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। WHO के अनुसार प्रतिवर्ष विश्व में करीब पाँच लाख से अधिक लोग कीटनाशकों के चपेट में आकर मर जाते है।[17]

4- /ofu izn"k.k

जब कोई ध्वनि आवश्यकता से अधिक तेज और असहनीय होती है, तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। शोर अवांछित ध्वनि है। उदाहरणस्वरूप कारखाने, यातायात, गाड़ियों एवं उसके हार्न की आवाज, घरों के अन्दर ए.सी., कूलर, रेडियो, टेलीविजन, स्टीरियों, दूरदर्शन की ध्वनि एवं लाउडस्पीकर की आवाज।

वस्तुतः शोर ध्वनि का वह उच्च स्तर होता है, जो अप्रिय तथा मनुष्य की श्रवण क्षमता एवं मस्तिष्क में अव्यवस्था उत्पन्न करके मानव शरीर में अशान्ति एवं थकान उत्पन्न कर देता है।[18]

ध्वनि अथवा शोर की तीव्रता डेसिवेल में मापी जाती है मनुष्य की ध्वनि सहनशीलता 80 डेसिबेल की ध्वनि तीव्रता तक होती है। इससे अधिक की ध्वनि पर मनुष्य अस्वस्थ और बेचैन होने लगता है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। लगातार शोर के कारण श्रवण क्षमता कम होती जाती है तथा सिर में हमेशा दर्द रहने लगता है तथा कान का पर्दा भी फट सकता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के स्वभाव में उत्तेजना, बेचैनी, क्रोध तथा उच्च रक्तचाप उत्पन्न हो जाता है। सतत् शोर के कारण अल्सर, हृदय रोग, अधिक शोर के कारण एड्रिनल हार्मोन का अधिक स्राव होने लगता है।

5- m"eh; izn"k.k

विभिन्न घरेलू कार्यों, उद्योग धन्धों, बिजलीघरों में उष्मा की जरूरत होती है। उष्मा ऊर्जा का ही एक रूप होता है, जो ईंधन, नाभिकीय क्रियाओं, सूर्य से प्राप्त होता है। इनसे उत्सर्जित उष्मा का सम्पूर्ण भाग का प्रयोग नहीं हो सकता, अतः इससे बची उष्मा पर्यावरण में चली जाती है, जिससे पर्यावरण का तापमान बढ़ जाता है और सामान्य से अधिक तापमान हो जाना पर्यावरण के लिये हानिकारक होता है। इसी पर्यावरण के बदले तापमान से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को उष्मीय प्रदूषण कहते हैं। नाभिकीय ऊर्जा संयन्त्र, ताप ऊर्जा संयन्त्र, घरेलू सीवेज, उद्योग धन्धें, वाहन में प्रयुक्त ईंधन में ज्वलन से जो उष्मा उत्सर्जित होती है, वह भी उष्मीय प्रदूषण उत्पन्न करती है। इस प्रदूषण का बल पर दुष्प्रभाव कम परन्तु जलीय जीवन पर अधिक पड़ता है। जलीय वनस्पतियों एवं जीव, मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं। गर्म स्थानों पर ध्वनियों की कार्यक्षमता घट जाती है तथा बर्फीले चट्टान पिघलने लगते है।

6- ukfHkdh; izn"k.k

प्रकृति में पाये जाने वाले कुछ तत्व इस प्रकार के होते हैं कि उनसे स्वतः ही कुछ विशेष प्रकार के विकिरण उत्सर्जित होते हैं। वर्तमान समय में एक प्रमुख खतरा रेडियोऐक्टिव विकिरणों द्वारा बना हुआ है। रेडियोऐक्टिव पदार्थ समस्त जीवन सहायक यन्त्रों जैसे– वायु, जल, मृदा को प्रदूषित करते हैं। ये विकिरण दो प्रकार से प्रसारित होते हैं 1. *प्राकृतिक स्रोत* – जिसमें अंतरिक्ष किरणें और पृथ्वी में स्थित रेडियों न्यूक्लीयस, जैसे रेडियम^{224}, यूरेनियम^{235}, यूरेनियम^{238}, थोरियम^{323}, रेडॉन^{222}, पोटैशियम^{40}, और कार्बन^{14} से निकलने वाले विकिरण, 2. *मानव निर्मित विकिरण* – प्लूटोनियम और थोरियम का खनन और शुद्धिकरण, न्यूक्लीय शास्त्रों को बनाना तथा इनका विस्फोट, न्यूक्लीय ऊर्जा घर और ईंधन तथा रेडियोंऐक्टिव आइसोटोप का बनाना।[19] ये तरंगें जैविक दृष्टि से हानिकारक होती हैं। ये घास तथा शाकों में प्रवेश कर जाता है तथा गाय, भैंस व दूसरे दुधारू पशुओं एवं मनुष्य के शरीर में

प्रवेश कर उनकी हड्डियों में प्रवेश करके कैंसर तथा अन्य अनुवांशिक रोग उत्पन्न कर देता है।

7- Bkl vif'k"V inw"k.k

ठोस अपशिष्ट पदार्थ से तात्पर्य उस पदार्थ से है जो हमारे उपयोग के बाद निरर्थक या बेकार हो जाते है जैसे– अखबार, डिब्बे, कनस्टर, बोतल, भूसा, गोबर, टूटे काँच के सामान, प्लास्टिक के डिब्बे, पॉलीथिन के थैले, राख, घरों के कचरे, कूड़ा-करकट कुछ स्थानों पर इनका ढेर लगाया जाता है तो ये समस्या का रूप धारण कर लेते हैं तथा प्रदूषण फैलाते हैं। विश्व में बढ़ती जनसंख्या तथा औद्योगीकरण, नगरीकरण में तेजी से वृद्धि के साथ-साथ ठोस अपशिष्ट पदार्थों द्वारा उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी विकराल एवं असाध्य होती जा रही है। जिसका मानव एवं इन जीवों, वनस्पतियों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ रहा है।

8- jklk;fud inw"k.k

प्रकृति में प्रदूषण का प्रभाव होने से वायुमण्डल में रासायनिक प्रदूषण बढ़ गया है, अम्लीय वर्षा इसका ज्वलंत उदाहरण है। SO_2, CO_2 की मात्रा अधिक होने से पेड़-पौधों का प्राकृतिक गुण समाप्त होने लगता है। किसानों द्वारा खेतों में कटाई के बाद अपशिष्ट जलाना, जीव-जन्तु का सड़ना रासायनिक प्रदूषण उत्पन्न कर रहा है। जल में रासायनिक प्रदूषण होने से पेयजल का संकट उत्पन्न हो गया है। रासायनिक प्रदूषण से भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो रही है। रासायनिक प्रदूषण से मौसम भी असंतुलित हो रहा है तथा असामयिक मौसम में बदलाव हो रहा है साथ ही वनस्पति एवं जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं।

lkekftd inw"k.k

जब मानव समाज की सनातनी व्यवस्था ह्रासमान होने लगती है, तो उसे सामाजिक प्रदूषण कहा जाता है। राजनीतिक छलकपट, युद्ध और खतरनाक हथियारों के भय से राजनीतिक प्रदूषण, गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, वर्ग-संघर्ष से आर्थिक प्रदूषण, चारित्रिक गिरावट से चारित्रिक प्रदूषण उत्पन्न होता है जो समाज, देश व राष्ट्र के पतन का कारक होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण प्रदूषण का सर्वप्रमुख कारण मानव है। विश्व के अनेक ग्रंथों से इसको नियंत्रित करने की बात उठायी जा रही है। कानून और सामाजिक चेतना के द्वारा इसे कम करने का प्रयास किया जा सकता है। सरकार द्वारा प्रदूषण उगलने वाले कारखानों/वाहनों एवं अन्य संयंत्रों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए तथा इनसे निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ का नियंत्रित करने के लिये ठोस उपाय किये जाने चाहिए, जिससे कि इन जहरीली गैसों से होने वाली क्षति से बचा जा सके तथा प्रदूषक वायु में न मिल सकें। वृक्षों के कटान को

कम करके वृक्षारोपण को अधिक महत्व दिया जाये। पॉलीथिन की जगह रिसाइकिल बैग (कागज या कपड़ा) का अधिकतम प्रयोग किया जाये। जल-प्रदूषण पर नियंत्रण के लिये, कठोर कानून के साथ-साथ कानूनी प्रावधानों का कड़ाई से पालन की व्यवस्था हो, प्रदूषण के स्रोतों पर नियंत्रण, जल शोधन क्षमता का विकास पर बल दिया जायें। नदियों में सफाई योजना का कार्यक्रम संचालित किया जाना चाहिए। औद्योगिक कचरा और घरेलू बहिस्राव को नदियों में न मिलाया जाये एवं इनका शोधन करके पुनः प्रयोग के अनुकूल बनाया जायें। मृदा प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिये कीटनाशकों के प्रयोग पर नियंत्रण, रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग, गन्दा जल एवं नगरीय कचरे का शुद्धिकरण के बाद निष्पादन, फसल चक्र का प्रयोग विशेष महत्वपूर्ण है। ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के लिये कानून के साथ-साथ कम आवाज वाले वाहन का प्रयोग हो, ध्वनि विस्तारक यन्त्रों एवं कारखानों पर प्रतिबन्ध लगाया जायें। उष्मीय प्रदूषण पर नियंत्रण के लिये औद्योगिक प्रतिष्ठानों में 'कूलिंग टावर' लगाया जायें, गर्म जल को फव्वारों के द्वारा ठण्डा करके जल स्रोतों में मिलाया जायें। नाभिकीय प्रदूषण से बचने के लिये परमाणु शास्त्रों की प्रतिस्पर्धा को समाप्त किया जायें, रेडियोऐक्टिव पदार्थों को फेंकने में अत्यन्त सावधानी बरती जायें। ठोस अपशिष्ट प्रदूषण से बचाव के लिये खनन, उद्योग, कृषि, महानगरों, पैंकिंग तथा मानव से उत्पन्न अपशिष्ट के निस्तारण की समुचित व्यवस्था की जायें। रासायनिक प्रदूषण से बचने के लिये मानव द्वारा सभी क्षेत्रों में कम से कम रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जायें तथा विभिन्न माध्यमों से उत्पन्न होने वाले कचरे का समुचित निस्तारण किया जायें एवं इनका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जायें जिससे पर्यावरण संतुलित होकर प्रकृति के साथ संतुलन स्थापित कर सके।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय प्रकोप अथवा आपदा से बचने के लिये पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण स्थापित करना नितान्त आवश्यक है, यह नियंत्रण तब तक स्थापित नहीं होगा, जब तक कि सामाजिक सोच में परिवर्तन नहीं आयेगा और मानव स्वतः जागरूक होकर प्रदूषण से होने वाले पर्यावरणीय असंतुलन को संतुलित करने का प्रयास करें।

सरकार द्वारा भी अपने ढांचागत संसाधनों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरणीय सुरक्षा के बेहतर उपाय किये जायें तथा इसके लिये सभी प्रासंगिक एवं सकारात्मक उपायों को अपनाया जायें। सरकार द्वारा ऐसी एजेंसियाँ बनायी जायें जो पर्यावरणीय परिवर्तन एंव मुद्दों से सम्बन्धित नीतियाँ एवं योजनाएँ निर्मित करें तथा उसे विस्तारित करें, पर्यावरणीय समस्याओं से उनके एवं उनसे होने वाले परिणामों से जनता को अवगत कराकर उनके मन में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करें, जिससे मानव पर्यावरण संरक्षण का दायित्व स्वतः सम्भाल लें। वर्तमान सामयिक वैश्विक परिदृभय में

मानव यदि प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव सृजित करे, तो निःसन्देह हम अपने गाँव, कस्बे, शहर, राज्य तथा वैश्विक पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करते हुए स्वच्छ, सुन्दर व स्वस्थ रख पायेंगे, जिस हेतु प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की ''स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत अभियान'' पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता का ही अप्रतीम उदाहरण है।

I UnHk

1. प्रो0 दूबे सुरेन्द्र : राष्ट्र गौरव, पर्यावरण एवं मानवाधिकार अध्ययन, नीलकमल प्रकाशन, गोरखपुर, 2009, पृ0–123
2. डॉ0 मामोरिया चतुर्भुज एवं डॉ0 सिसोडिया एम0एस0 : पर्यावरण पारिस्थितिकी एवं विकास, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2015, पृ0–3
3. डॉ0 दूबे राजेश : पर्यावरण शिक्षा, प्रकृति भारती प्रकाशन, लखनऊ, 2004, पृ0–8
4. योजना, जून–2013, पृ0–45
5. Park, C.C. 1980 : Ecology and Environmental Mangement, London.
6. डॉ0 सिंह सविन्द्र : पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2005, पृ0–21
7. डॉ0 आस्थाना, मधु : पर्यावरण : एक संक्षिप्त अध्ययन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, 2008, पृ0–10
8. डॉ0 मामोरिया चतुर्भुज एवं डॉ0 सिसोदिया एम0एस0 : पर्यावरण पारिस्थितिकी एवं विकास, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2015, पृ0–221
9. डॉ0 राव वी0पी0 एवं डॉ0 श्रीवास्तव वी0के0 : पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2013, पृ0–325
10. योजना, दिसम्बर, 2015, पृ0–44
11. अथर्ववेद, 3.23.1–3

    'अप्स्वन्तरम तम।'

    –ऋग्वेद, 10.23.19
12. अथर्ववेद, 6.51.2, 6.57. 1–3
13. सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसदमभिकांक्षयन्।'

    –बाल्मीकी रामायण, 28.63
14. प्रो0 सिंह जगदीया : पर्यावरण एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 2005, पृ0–135
15. डॉ0 दूबे राजेश : पर्यावरणीय शिक्षा, प्रकृति भारती प्रकाशन, लखनऊ, 2004, पृ0–116
16. सिंह सविन्द्र : पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2005, पृ0–116
17. डॉ0 राव वी0पी0 एवं डॉ0 श्रीवास्तव वी0के0 : पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2013, पृ0–356
18. प्रो0 दूबे सुरेन्द्र, : राष्ट्र गौरव पर्यावरण एवं मानवाधिकार अध्ययन, नीलकमल प्रकाशन, गोरखपुर, 2009, पृ0–173
19. वही, पृ0–181–182

भारत में पर्यावरण – संरक्षण एवं नियामक संकायों की भूमिका

मीना मिश्रा

Ikjk'k% भारतीय दर्शन, मुख्यतः सांख्य दर्शन, इस व्यापक तथ्य पर आधारित है कि मानव-शरीर पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटकों ''पृथ्वी, जल, अग्नि ,वायु और आकाश'' से निर्मित है। भारतीय धर्म संस्कृति व परंपराओं में प्रकृति को विशेष महत्व दिया गया हैं। भारतीय प्राचीन ग्रन्थों ने –सदैव पुरूष व प्रकृति के समन्वय एवं ''वसुधैव कुटुबकम '' का ज्ञान दिया, जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना अंग व परिवार कहा गया है। पृथ्वी जो पर्यावरण का मूलाधार है, उन्हें ''माँ'' कहकर पूजा जाता है। सभी प्राकृतिक शक्तियों को भारत में देवस्वरूप मानकर पूजने की प्राचीन परंपरा है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, पेड़-पौधे विशेषत : तुलसी, पीपल, नीम, आदि। समय के साथ-साथ यह विकास निरंतर चलता रहा, परन्तु लाभ और अधिक लाभ की भूख ने इस विकास को एक मृगमरीचिका बनाया।

आधुनिक भारत में सर्वप्रथम पर्यावरण असतुंलन ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में देखने को मिलता है। अंग्रेजी–उपनिवेशवाद की विनाशकारी दोहन नीति के कारण पर्यावरण का ह्यस आंरभ हुआ जो आजादी के पश्चात भी निरंतर चलता रहा। भारत ही नहीं, अपितु पूरे–विश्व में पर्यावरण के क्षय के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या, गरीबी, अशिक्षा, औद्योगीकरण, त्रुटिपूर्ण पर्यावरण–नीतियाँ, जटिल न्यायिक प्रणाली आदि अनेक प्रकार के कारक उतरदायी हैं।

सांविधानिक व्यवस्था और पर्यावरण

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जब भारतीय संविधान का निर्माण हुआ तो यद्यपि इसमें प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को लेकर कुछ नहीं कहा गया। परन्तु भारतीय संविधान के मूल में जिस– समाजवादी राज्य की परिकल्पना की गई है, उसमें नागरिकों व समाज के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना ही राज्य का कर्तव्य निर्धारित किया गया है। उच्च जीवन-स्तर स्वच्छ वातावरण, अर्थात प्रदूषण-रहित पर्यावरण में ही संभव है।

स्वतंत्रता के बाद से भारत में अनेकों नियामक निकायों का विस्तार हुआ है। सरकार के नये-नये उतरदायित्व व कार्यों की जटिलता के कारण इन निकायों का गठन आवश्यक हो गया। नियामक निकाय प्रायः सरकार की कार्यपालिका शाखा की एक हिस्सा होती है, उन्हें विधि-पूर्वक कार्य करने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त होता है। भारतीय संविधान, जिसे 1950 में लागू किया गया था, सीधेतौर पर पर्यावरण-संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गए प्रयासों में सर्वप्रथम सन् 1972 का स्टॉकहोम सम्मेलन था, जिसने विश्व के साथ-साथ भारत सरकार का ध्यान भी पर्यावरण संरक्षण की ओर खींचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन करके दो महत्वपूर्ण अनुच्छेद 48 (ए) तथा 51 (ए) (जी) जोड़े। अनुच्छेद 48(ए) राज्य सरकार को निर्देश देता है कि वह ''पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करे, तथा देश के वनों और वन्यजीवन की रक्षा करें। अनुच्छेद 51(ए) (जी) नागरिकों के कर्तव्यों का निर्धारण करता है कि वे ''प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा उसका संर्वधन करें और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहें''। इन सार्थक प्रयासों के अतिरिक्त भारत सरकार ने सन् 1974 में जल-प्रदूषण के निवारण व नियंत्रण अधिनियम, 1981, में वायु के प्रदूषण-निवारण एंव नियंत्रण अधिनियम 1987 तथा सन 1986 में पर्यावरण-संरक्षण अधिनियम जैसे केन्द्रीय विधानों को भी पारित किया।

dUnzh; izn"k.k fu;a=.k cksM – केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का सांविधानिक गठन इन्हीं उपरोक्त वैधानिक व्यवस्थाओं का परिणाम था। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में संचालित है। इसका मुख्यालय दिल्ली में स्थित है, तथा आंचलिक कार्यालय क्रमशः भोपाल, लखनऊ, वडोदरा, कोलकाता, बेंगलुरू एवं शिलांग में कार्यरत् है तथा आगरा में प्रोजेक्ट कार्यालय स्थित है। हर राज्य में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के प्रमुख कार्य दो भागों में विभाजित हैं–

- जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा न्यूनीकरण द्वारा राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में नदियों और कुओं, जलाशयों का रख-रखाव व स्वच्छता को बढ़ावा देना ।
- देश की वायु-गुणवत्ता में सुधार करना तथा वायु-प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण और न्यूनीकरण करना।

ok;q izn"k.k – भारत के शहरों में खासकर महानगर जैसे दिल्ली, मुबंई, कोलकाता, चेन्नई आदि में वायु गुणवत्ता का प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वायु गुणवत्ता प्रबोधन वायु गुणवत्ता प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण अंग है। राष्ट्रीय वायु प्रबोधन कार्यक्रम (रा.व.प्र.का.) की स्थापना वर्तमान वायु गुणवत्ता की स्थिति और प्रवृत्ति को सुनिश्चित करने तथा उद्योगों और अन्य स्रोतों के प्रदूषण को नियमित करने, और

नियंत्रित करने तथा गुणवत्ता मानकों के अनुरूप रखने के उद्देश्य से की गई है। वायु प्रदूषण का निवारण तथा नियत्रंण संशोधन एक्ट 1987 में कार्यान्वित करने वाले संस्थानों को अधिक अधिकार देने तथा कानून तोड़ने वालों को सख्त जुर्माना लगाने की व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का नई दिल्ली स्थित आई. टी. ओ. चौराहे पर एक स्वचलित वायु-प्रबोधन केन्द्र है, जो वायु-गुणवत्ता की सूचना निंरतर दे रहा है।

ty in"k.k – जल प्रदूषण से संबधित तकनीकी तथा सांख्यिकीय आँकडों को एकत्र करना, मिलाना तथा उनका प्रसारण करना केन्द्रीय बोर्ड की एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। जल प्रदूषण की रोकथाम और देश में जल की प्रचुरता बनाए रखने के लिए जल अधिनियम को 1988 में संशोधित किया गया। औद्योगीकरण के कारण जल के अनुचित उपयोग व उद्योगों के गंदे पानी को पुनः नदियों में प्रेषित करने पर रोकथाम के लिए कई नियम बनाए गए व न मानने वालों पर दण्ड व कारावास का भी प्रावधान किया गया। केंदीय/राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड दोषपूर्ण संस्थाओं की जल तथा विद्युत आपूर्ति बंद कर सकता है। दोषियों के विरूद्ध बोर्ड न्यायालय में भी जा सकते हैं। उद्योग की स्थापना के समय भी व्यक्ति को बोर्ड की स्वीकृति लेनी होगी।

/ofu in"k.k – शोर ध्वनि का वह रूप होता है, जिसे हम सहन नहीं कर पाते। मनुष्य 0 डेसिबल तीव्रता की आवाज को सुनने में सक्षम होता है। 25 डेसिबल पर शांति और 80 डेसिबल से अधिक होने पर शोर होने लगता है। दिल्ली मे यह अधिकतर 80 से 100 डेसिबल के बीच रहता है। विभिन्न स्रोतों के साथ-साथ, औद्योगिक कार्यकलापों, जनरेटर सेंटों, लाउडस्पीकरों ,सार्वजनिक सबोंधन प्रणालियों, म्यूजिक सिस्टम, वाहनों के हॉर्नो व अन्य यांत्रिक उपकरणों के कारण सार्वजनिक स्थलों पर बढ़ते हुए परिवेशी शोर से मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ उनकी मनोवैज्ञानिक तदुंरूस्ती पर भी हानिकारक प्रभाव होते हैं। अतः यह भी जरूरी समझा गया है कि ध्वनि प्रदूषण पैदा करने वाले स्रोतों को विनियमित एवं नियंत्रित किया जाए ताकि वायु गुणवत्ता के मानक बनाए रखे जा सके। भारत सरकार द्वारा ध्वनि-प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियमावली, 2000, लागू किया गया। इसके अतंर्गत ध्वनि-प्रदूषण नियंत्रण के उपायों तथा शोर से संबधित वायु गुणवत्ता मानकों को लागू करने के लिए प्राधिकरण जिम्मेदार होगा।

अपशिष्ट

खतरनाक अपशिष्ट के सुरक्षित संचालन, भंडारण, उत्पादन, परिवहन, उपयोग, ब्रिकी, उसका निपटान आदि के लिए अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली 2011 मे अधिसूचित की गई है। जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियमावली भी बनाई गई है। जिसमें अस्पताल पशु चिकित्सा संस्थान, अनुसंधान व शैक्षिक संस्थाएँ, डिस्पेंसरी, क्लीनिक

आदि पर नियम लागू है, ताकि वह जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रदूषण को बढ़ावा न दे सकें। उपरोक्त प्रकार से ही प्लास्टिक व ई- अपशिष्ट के लिए भी नियमों का प्रावधान है, जिसमें देश में ई-कचरे को रोकने के लिए खतरनाक पदार्थो के उपयोग पर प्रतिबंध है।

xxk dk iu:)kj& गंगा नदी में पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण तथा उपशमन और जल का सतत् पर्याप्त प्रवाह सुनिश्चित करने के उपाय तथा इससे संबधित मामलों हेतु केन्द्र, राज्य व जिला स्तर पर प्राधिकरणों का गठन किया गया है, जिससे गंगा नदी का पुनरूद्धार करके इसे इसकी प्राकृतिक व मूल स्थिति में लाया जा सके।

गंगा एक्शन प्लान के पहले चरण को 1985 में शुरू किया गया था और उसके बाद दूसरे चरण की शुरूआत 1993 में हुई जिसका मकसद गंगा नदी के जल की गुणवत्ता में सुधार लाना था। मई 2015 में सरकार ने नमामि गंगे कार्यक्रम को मंजूर किया था। इस मद में केन्द्र सरकार पूरा कोष मुहैया करा रहा है। पानी की गुणवत्ता में गिरावट को रोकने के लिए कदम उठाए जाने के बावजूद इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन की कुछ सीमाएं है।

गंगा नदी न केवल भारत की राष्ट्रीय नदी है, बल्कि इसकी अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक महता है। गंगा नदी तेजी से हो रहे शहरीकरण व औद्योगीकरण के कारण सीवेज़, औद्योगिक बहिस्राव एवं अन्य प्रदूषकों के कारण गंभीर स्थिति में है। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में स्वच्छ गंगा राष्ट्रीय मिशन (NMCG) एक प्राधिकरण के तौर पर गठित किया गया है। इसकी जिम्मेदारी प्रदूषण की रोकथाम के निरीक्षण और गंगा नदी बेसिन के कायाकल्प की होगी। इसके साथ-साथ यह निम्न कार्य भी संपादित करेगा।

- नदी के संरक्षण की दिशा में नदी बेसिन दृष्टिकोण को अपनाकर गंगा नदी के प्रदूषण को प्रभावी तरीके से कम करना।
- नदी की लंबाई के पूरे क्षेत्र में सतत् प्रवाह को सुनिश्चित करना।
- गंगा नदी के आस-पास के क्षेत्रों में निर्माण कार्य पर प्रतिबंध लगाना।
- गंगा नदी किनारे मछली-पालन तथा वन क्षेत्र का नष्ट होना, इनको नियंत्रित करना।
- राज्य व जिला स्तर पर गंगा पुनरूद्धार समितियों का गठन करना।
- गंगा नदी व इसकी सहायक नदियों में प्रदूषण की लगातार निगरानी करना।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने गंगा नदी (कायाकल्प, संरक्षण और प्रबंधन) के

प्राधीकार के आदेश की स्वीकृति प्रदान कर दी। इससे एक नया ढाँचा तैयार होगा जो राष्ट्रीय मिशन को सशक्त बनाएगा व स्वतंत्र व दायित्वपूर्ण तरीके से काम करेगा।

केन्द्रीय भूमि जल बोर्ड

केंद्रीय भूमि जल बोर्ड, जल-संसाधन, नदी विकास और गंगा-संरक्षण मत्रांलय द्वारा कार्यान्वित है। इसका मुख्य कार्य भूजल संसाधनों का सतत् विकास व प्रबंधन, आकलन, संरक्षण, संवर्धन, प्रदूषण से सुरक्षा तथा वितरण सहित प्रौद्योगिकी का विकास एवं प्रचार-प्रसार करना व राष्ट्रीय नीतियों पर कार्य हो रहा है या नहीं इसका निरीक्षण करना आदि है।

केंद्रीय भूमि जल बोर्ड एक बहुसंकाय वैज्ञानिक संगठन है जो विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से उत्सर्जित आंकड़ों के आधार पर नियमित रूप से वैज्ञानिक रिपोर्ट प्रकाशित करता है। यह अपने कार्मिकों के साथ-साथ भूजल के क्षेत्र में संलग्न केन्द्र/राज्य सरकार के विभिन्न सगंठनों को भी पर्यावरण के लिए भूजल की महत्ता पर अनेकानेक कार्यक्रमों से अवगत कराता है। इसके साथ-साथ जल-संरक्षण व विवेकपूर्ण भूजल प्रबंधन की महत्ता या जागरूकता अभियान भी आयोजित करता है।

भूजल के सबंध मे राजीव गाँधी राष्ट्रीय भूजल प्रशिक्षण एंव अनुसंधान संस्थान भी हैं जो जल की गुणवत्ता के सुधारने की दिशा मे कई प्रकार के शैक्षणिक व तकनीकी कार्यक्रम चलाता है। यह 1997 से लगातार क्रियाशील हैं। ऐसे स्थानों को चिन्हित करना जहाँ वर्षा के जल का अवशोषण नही हो पाता। वहाँ कृत्रिम तकनीकों द्वारा जल को भूमि में संग्रहण करने की योजना है। जहाँ लगातार भू-जल निम्न स्तर पर जा रहा है, उस क्षेत्र में भू-जल का उच्च स्तर करने के प्रयास करना इस प्राधिकरण का महत्वपूर्ण कार्य है। छोटे जोहड़, तालाब, पोखर, व ऐसे भूमि जल के प्राकृतिक स्रोतों का सरंक्षण व कृत्रिम उपाय जैसे– कई प्रकार के भूमिगत टंकियों का निर्माण व शुष्क क्षेत्र व हरित क्षेत्र में अन्तर करना आदि प्रगतिशील कार्य सस्थान द्वारा ही किये जाते हैं।

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (नेशनल ग्रीन टिब्यूनल) की स्थापना 2010 में की गई। यह एक विशिष्ट निकाय है, जो बहु-अनुशासनात्मक समस्याओं वाले पर्यावरणीय विवादों को निपटाने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता से सुसज्जित है। पर्यावरण संबंधी मामलों में राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण तीव्र पर्यावरणीय न्याय प्रदान करेगा तथा उच्च न्यायालयों के मुकदमेबाजी के भार को कम करेगा। राष्ट्रीय हरित भारत मिशन

(जी आई एम), राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना के अधीन आठ मिशनों में से एक है, जिसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के खतरों का सामना करने के लिए भारत के घटते वन आच्छादन को सुरक्षित एवं सरंक्षित करना है। इसमें हरितीकरण के समग्र दृष्टिकोण की परिकल्पना की गई है। जी. आई. एम. ने 13-16 अक्टूबर, 2017 के दौरान विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मत्रांलय तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय द्वारा सयुंक्त रूप से आयोजित तीसरे भारत अतंराष्ट्रीय विज्ञान महोत्सव में भाग लिया। सरकार ने राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम व मरूस्थलीकरण प्रकोष्ठ को भी जी. आई. एम. में मिलाने का निर्णय लिया है। चालू वित्त वर्ष 2017-18 के दौरान चार राज्यों छत्तीसगढ़, ओडिशा, मिज़ोरम, एवं मणिपुर को 38 करोड़ रूपये की राशि जारी की गई है जिससे क्यारी व पौधें लगाने, बागान क्षेत्रों को सुरक्षित रखने, पत्थरों से बने बराज का निर्माण, मृदा एवं आर्द्रता जैसे कार्य किए जा रहे हैं।

सरकार के अनेकानेक प्रयास के पश्चात भी यदि हम विचार करें तो पायेगें कि पर्यावरण में प्रदूषण की समस्या दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। इसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याओं ने जन्म ले लिया है, जैसे–

- **ty ladV** – पीने के पानी की समस्या अब केवल दिल्ली शहर ही नहीं, बल्कि देश के अधिंकाश क्षेत्र की एक विकराल समस्या बन गई। मरूस्थल या सूखा क्षेत्र ही नही, बल्कि पर्वत-पहाडों वाले क्षेत्र जहाँ नदियों के साथ-साथ वर्षा का पानी भी प्रचुर मात्रा में होता था आज वहाँ पानी की समस्या देखने को मिल रही है।
- **izn"k.k dk [krjukd Lrj rd igqapk** – वायु व ध्वनि प्रदूषण अब खतरनाक स्तर तक पहुँच चुका है। दिल्ली जो 'भारत का दिल' कहा जाता है, प्रदूषण में इसका देश में पहला स्थान है। कृषि अवशिष्ट जलाना, पटाखों को जलाना अथवा कार, स्कटूर, ट्रक, बसों आदि से निकलने वाला धुंआ, कारण जो भो हो, आये-दिन दिल्ली में सांस लेना कठिन होता जा रहा है। दिल्ली ही नही, क्रमशः कम और अधिक भारत के लगभग हर शहर का यही हाल है।
- **nh?kdkfyd ;kstukvksa dh deh&** हमारे पास आपातकालीन परिस्थितियों से निपटने के लिए अल्पकालिक व दीर्घकालिक योजनाओं की भारी कमी देखने को मिलती है। 2017 मे दिल्ली की एक सड़क पर कूड़े का पहाड़नुमा अबांर अचानक भरभरा कर गिर पड़ा जिसमें दब कर कुछ लोगों की मृत्यु भी हो गई। यह प्रदूषण की एक आपातकालीन परिस्थिति है, परन्तु इस उदाहरण के बाद भी कोई ठोस कार्यात्मक नीति देखने को नही मिलती है।

ऑड-ईवन रेजिस्ट्रेशन नबंर की गाड़ियों को चलाना, स्कूलों को बंद करवाना, हेलिकाप्टर से छिड़काव करवाना इन सभी अल्पकालीन उपायों से बात नही बनेगी।

हमें ठोस उपाय करने होगें। गंगा और यमुना की स्वच्छता व सुदंरता के नाम पर करोड़ों-अरबों रूपये स्वाहा हो गये, परन्तु आजतक इन नदियों का एक-तिहाई भाग भी स्वच्छ न हो सका। पर्यावरण व मौसम के बारे में की गई घोषणाएँ असत्य हो जाती हैं, अनुमान धरे-के-धरे रह जाते हैं।

निष्कर्ष

पर्यावरण को स्वच्छ रखने की समस्या अपने आप में इतनी बड़ी समस्या है जिसे केवल सरकार या जनता अथवा केवल एक देश नहीं सुधार सकते। यह आज सभी की समस्या बन गई है, और सभी को इसे सुधारने के लिए अपने स्तर पर योगदान करना होगा। हमें अपनी सोच बदलते हुए– भविष्य को रहने योग्य बनाने के लिए छोटे स्तर पर ही उपाय शुरू कर देने चाहिए, जैसे– वाहनों का कम प्रयोग, हस्तनिर्मित वस्तुओं का उपयोग,सौर ऊर्जा को बढ़ावा, जैविक खाद का प्रयोग, प्लास्टिक की थैलियों के उपयोग को खत्म करना, अधिक-से-अधिक वृक्ष लगाना, जल का सदुपयोग करना, अंधविश्वास व अशिक्षा को समाप्त करना, आदि। हमारी जागरूकता ही हमारी जीवंतता का पर्याय बनेगी तथा हम एक उतम पर्यावरण के प्रहरी बनेगें। आज विश्व के सामने सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि लोकतंत्र तथा आर्थिक विकास को किस प्रकार व्यक्ति, समाज व प्रकृति सब के लिए सतत् संपोषणीय विकास के एक नूतन प्रतिमान के रूप में विकसित व अंगीकृत किया जाए। 2015 में सयुंक्त राष्ट्र संघ की 193 सदस्य देशों की जनरल असेंबली में 17 उद्देश्यीय "Global Goals for Sustainable Development" को 2030 तक प्राप्त कर लेने का संकल्प किया गया है। भारत भी इस महत संकल्प का सहभागी है।

सदंर्भ

1. भारत सरकार (2018). पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मत्रांलयः वार्षिक रिपोर्ट 2017-18 नई दिल्ली
2. भारत सरकार (2018). प्रदूषण नियंत्रण बोर्डः वार्षिक रिपोर्ट 2014-15, नई दिल्ली
3. आलुवालिया, ईश्वर (2017). हमारे शहरों का रूपान्तरण. दिल्लीः मजूल पब्लिकेशन.
4. ओझा, डी. डी. (2014). जल चिकित्सा. इलाहाबादः ज्ञान गंगा प्रकाशन.
5. श्रीवास्तव, गोपीनाथ. (2012). पर्यावरण प्रदूशण. दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो.
6. कोठारी, यशवन्त (2002). पर्यावरण दर्पण. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 2002.
7. खनूजा, जोगीन्दर कौर. (2014). प्राकृतिक चिकित्सा पर संपूर्ण जानकारी. कानपुरः मंजूला पब्लिकेशन.
8. चट्टोपाध्याय, शीतलाप्रासाद. (1984). जल संग्रह पद्धति. कलकताः आशीष चट्टोपाध्याय पब्लिकेशन.
9. चौरसिया, दीपक. (2018). कूड़ा धन. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन.
10. तिवारी, जगदीश प्रसाद. (1991). पर्यावरण और चिपको. दिल्लीः केन्द्रीय पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड.

पर्यावरण विकास तथा नियामकीय संस्थाओं की भूमिका : ग्रन्थ सूची

मीना मिश्रा

- अग्रवाल, रश्मि. (2015). पर्यावरण– कितने जागरूक हैं हमः दिल्ली. प्रभात प्रकाशन. 112पृ.
- अय्यर, शंकर (2017). उन्नत भारत. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 320पृ.

  आलूवालिया, ईश्वर (2017). हमारे शहरों का रूपान्तरण. दिल्लीः मंजुल पब्लिकेशन. 248पृ.
- ओझा, डी. डी. (2014). जल चिकित्सा. इलाहाबादः ज्ञान गंगा प्रकाशन. 234पृ .
- श्रीवास्तव, गोपीनाथ. (2012). पर्यावरण प्रदूषण. दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो. 177पृ .
- कोठारी, यशवन्त (2002). पर्यावरण दर्पण. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 2002. 186पृ.
- खनुजा, जोगीन्दर कौर. (2014). प्राकृतिक चिकित्सा पर संपूर्ण जानकारी. कानपुरः मंजुला पब्लिकेशन. 214पृ .
- चट्टोपाध्याय, शीतलाप्रसाद. (1984). जल संग्रह पद्धति. कलकत्ताः आशीष चट्टोपाध्याय पब्लिकेशन. 212पृ
- चौरसिया, दीपक. (2018). कूड़ा धन. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 184पृ.
- तिवारी, जगदीश प्रसाद. (1991). पर्यावरण और चिपको. दिल्लीः केन्द्रीय पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड. 325पृ.
- दूबे, रविन्दर कुमार. (2014). प्रकृति ,पर्यावरण और वृक्षारोपण. दिल्लीः परंम्परा प्रकाशन 495पृ.
- नटनी, प्रकाश नारायण. (2004). भारत में कृषि एवं ग्रामीण विकासः दिल्लीः कृष्णदास प्रकाशन. 184पृ.

- नारायण, सुनीता. (2012). पर्यावरण की राजनीति. दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो. 282पृ.
- नीरज, नरेन्दर कुमार. (2014). प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग. कानपुरः प्रकाश प्रकाशन. 129पृ.
- प्रसाद, अर्जुन (2013). आधुनिक जीवन और पर्यावरण. आगराः समन्वय प्रकाशन. 185पृ.
- बरूआ, नवकान्त (2014). कपिली के. आर. पार. दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट. 62पृ.
- बेदी, रमेश. (2012). आरोग्यवती वनस्पतियाँ. दिल्लीः अमरसत्या प्रकाशन. 348पृ.
- भार्गव, एस. के. (2017). विकिरण विज्ञानः नई दिल्लीः सी.बी. एस. पब्लिशर्स, 217पृ.
- मिश्रा, सोमनाथ. (2004). त्रस्त पृथ्वी. कलकताः देव पब्लिकेशन, 64पृ.
- रवान, आदिल (2011). विवाद, विरोध और विकास की नर्मदा. दिल्लीः प्रतिभा प्रकाशन. 240 पृ.
- व्यास, जगदीश, (2017). आधुनिक विकास और ग्लोबल वार्मिंग. कोलकाताः साईंबाबा प्रकाशन. 216पृ.
- शंकर. वातावरण. (2017). दिल्लीः मानव प्रकाशन. 388 पृ.
- शर्मा, मालती. (2011). पर्यावरण मानव संसाधन और विकास. दिल्लीः प्रतिभा प्रकाशन. 311पृ.
- शुक्ला अरविंद (2016). उभरती पर्यावरण चिन्ताएँ और सतत् विकास. नई दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो. 208पृ.
- सारस्वत, माघवनन्द. (2014). जड़ी बूटियों का प्रयोग. कानपुरः प्रकाशन. 213पृ.
- सिंह, पूनम. (2014). मानव और पर्यावरण. नई दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो. 152 पृ.
- सिंह, सन्तोष कुमार. (2014). पर्यावरण एवं जीवन मूल्यः नई दिल्लीः हिन्दी बुक डिपो. 216 पृ.
- सोनी, अनिल. (2006). मंगल ग्रह पर जीवन की खोज. कानपुरः मंजुला पब्लिकेशन. 160पृ.
- त्रिपाठी, दयाशंकर (2005). पर्यावरण अध्ययन. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स. 329पृ.

Books

- Acharya, Keya and Noronha, Frederick, N.S. (Eds.). (2010) *The green pen: environmental journalism in India and South Asia*. New Delhi: Sage Publications. 303pp.
- Alexander Ian, Mayer, Colin and Weeds, Helen (1997). *Regulatory structure and risk and infrastructure firms: An international comparison.* Washington, D.C.: The World Bank. 60pp.
- Anderson, James E. (1962).*The emergence of the modern regulatory state*. Washington, D.C.: Public Affairs Press. 172pp.
- Anderson, James E. (Ed.). (1976) *Economic regulatory policies*. Lexington: Lexington Books. 215pp.
- Andrews, Richard N.L. (1976). *Environmental policy and administrative change: Implementation of the National Environmental Policy Act*. Lexington: Lexington Books, 230pp.
- Attar Chand. (1985). *Environmental challenges: Industry, forestry, pollution, agriculture, energy crisis, urbanisation, population, economic planning and ecological order : A global survey*. Delhi: Universal Publishers. 335pp.
- Bahadur, Jagdish. (2004). *Himalayan snow and glaciers: associated environmental problems, progress and prospects.* Delhi: Concept. 164pp.
- Baig, Nafees. (1983). *Government controls and industrial expansion in India*. Aligarh: Printwel. 223pp.
- Baker, Judy L. (Ed.). (2012). *Climate change, disaster risk, and the urban poor*. Washington, D.C.: World Bank, 297pp.
- Beck, Ulrich. (2013). *Risk society: towards a new modernity*. New Delhi: Sage. 260pp.
- Bekhechi, Mohammed A. and Mercier, Jean-Roger. (2002). *The legal and regulatory framework for environmental impact assessments: a study of selected countries in sub-Saharan.* Washington, D.C.: The World Bank, 2002. 153pp.

- Benneh, George, Morgan, William B. and Uitto, Juha I. (Eds.). (1996). *Sustaining the future: economic, social, and environmental change in Sub-Saharan Africa*. Tokyo: United Nations University Press. 365pp.
- Bharadwaj, Ashish. (2018). New Delhi.Springer. 285pp.
- Bhaumik, T.K. (2006). *The WTO: A discordant Orchestra.* New Delhi: Sage Publications. 248pp.
- Boyce, Tammy and Lewis, Justin. (2009). *Climate change and the media*. New York: Peter Lan. 261pp.
- Boyle, A. (1994). *Environmental regulation and economic growth*. Oxford: Clarendon Press 263pp.
- Bradlow, Daniel D., Palmieri, Alessandro and Salman, M.A. (2002). *Regulatory frameworks for dam safety: A comparative study*. Washington, D.C.: World Bank. 159pp.
- Brainard, Lael, Jones, Abigail and Purvis, Nigel. (Ed.). (2009). *Climate change and global poverty: A billion lives in the balance*. Washington, D.C.: Brooking Institution Press. 299pp.
- Carabias, Julia, Molina, Mario and Sarukhan, Jose. (2010*). Climate change: causes, effects and solutions*. Mexico City: Secretaria De Relaciones Exteriores. 197pp.
- Carbajo, Jose. (Ed.). (1993). *Regulatory reform in transport: some recent experiences*. Washington, D.C.: World Bank. 111pp.
- Carmichael, Jeffrey and Pomerleano, Michael. (2002). *The development and regulation of non-bank financial institutions*. Washington, D.C.: World Bank. 230pp.
- Cary, William L. (1967). *Politics and regulatory agencies*. New York: McGraw-Hill. 149pp.
- Central Pollution Control Board, New Delhi. (2015-16). *Annual Report*. New Delhi: Ministry of Environment, Forest and Climate Change. 276pp.
- Centre for Science and Environment, New Delhi. (2009). *Climate change: politics and facts*. New Delhi: Centre for Science and Environment.125pp.
- Central Pollution Control Board, New Delhi. (1981). *Comprehensive Pollution Survey and Studies: Ganga river basin in West Bengal (June 1980-Dec. 1981)*. New Delhi: Central Pollution Control Board. 278pp.
- Centre for Science and Environment, New Delhi. (2001). *Environment related taxes in OECD countries: Issues and strategies*. New Delhi: Organisation for Economic Co-operation and Development. 133pp.
- Chanda, Rupa and Gupta, Pralok. (2015). *Globalization and legal services and regulatory reforms: Perspectives and dynamics from India*. Los Angeles: Sage. 204pp.

- Chanda, Rupa and Gupta, Pralok. (2015). *India-EU people mobility: Historical , economic and regulatory dimensions*. New Delhi: Cambridge. 236pp.
- Christman, R. F. (1973). *The natural environment: Wastes and control*. Pacific Palisades, Calif: Goodyear. 228pp.
- Correa, Paulo *et al.* (2006). *Regulatory governance in infrastructure industries: Assessment and measurement of Brazilian regulators*. Washington, D.C.: World Bank. 77pp.
- Damodaran, A. (2010). *India, climate change, and the global commons: Encircling the seamless*. New Delhi: Oxford University Press. 347pp.
- Dasgupta, Susmita *et al*. (1995). *Environment regulation and development: A cross-country empirical analysis*. Washington, D.C.: World Bank. 27pp.
- Department of Industrial Development, Ministry of Industry. (1978). *Report of the study group on industrial regulations and procedures*. New Delhi: Government of India Press. 89pp.
- Dikshit, K.R. (1991). *Environment, forest ecology and man in the Western Ghats: The case of Mahabaleshwar plateau*. Jaipur: Rawat. 213pp.
- Divan, S. and Rosencranz. (2001). *Environmental law and policy in India*. New Delhi: Oxford University Press. 837pp.
- Drezner, Daniel W. (2007). *All politics is global: explaining international regulatory regimes*. Princeton: Princeton University Press. 234pp.
- Dutz, Markk A., Hayri, Aydin and Ibarra, Pablo. (2000). *Regulatory reform, competition, and innovation: A case study of the Mexican road freight industry*. Washington, D.C.: World Bank. 48pp.
- Ehrhardt, Groom. Halpern, Jonathan and Ehrhardt, David. (2006). *Explanatory notes on key topics in the regulation of water and sanitation services*. Washington, D. C.: World Bank. 81pp.
- Estache, Antonio. and Martimort, David. (1999). *Politics, transaction costs, and the design of regulatory institutions*. Washington, D.C.: World Bank. 20pp.
- European Environment Agency. (1996). *Environmental taxes: Implementation and environmental effectiveness*. Copenhagen: Tata Energy Research Institute . 250pp.
- Frischtak, Claudio R. (1993). *The changed role of the state: Regulatory policies and regulatory reform in industrializing countries*. Washington, D.C.: Word Bank. 16pp.
- Gaan, Narottam, *ed.* (2014). Climate change and threats to human security. Delhi: Kalpaz, 336pp.

- Gadgil, Madhav and Guha, Ramachandra. (1995). *Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India*. Delhi: Penguin Books. 213pp.
- Galal, Ahmed. (1994). *Regulation and commitment in the development of Telecommunications in Chile*. Washington, D.C: World Bank. 34pp.
- Garg, Anjali. Kabra, Manisha and Kacker, Rakesh. (2003). *Regulatory reforms in India: Effectiveness, efficiency, and impacts*. New Delhi: Tata Energy Research Institute. 166pp.
- Ghai, Dharam. (1994). *Development and environment: Sustaining people and nature*. Oxford: Blackwell. 263pp.
- Gleeson, Brendan and Low, Nicholas. (Eds.) (2001). *Governing for the environment : Global problems, ethics, and democracy*. New York: Palgrave, 2001. 255pp.
- Goudie, Andrew. (1986). *Human impact: On the natural environment*. 2nd ed. Oxford: Basil Blackwell. 338pp.
- India. Ministry of Environment and Forest (2010). *Report of the people on environment and forest 2009-10*. New Delhi: Ministry of Environment and Forest. 27pp.
- Guasch, J. Luis and Spiller, Pablo. (1999). *Managing the regulatory process: Design, concepts, issues, and the Latin America and Caribbean story*. Washington, D.C.: World Bank. 319pp.
- Guha, Ramachandra. (2005). *Unquiet woods: Ecological change and peasant resistance in the Himalaya*. Delhi: Oxford University Press. 398pp.
- Harper, Sarah. (2016). *How population change will transform our world.* New York: Oxford. 234pp.
- Harris, Paul G. (Ed.). (2009). *The politics of climate change: Environmental dynamics in international affairs*. Oxon: Routledge. 225pp.
- Hawkins, Keith. (1984). *Environment and enforcement: Regulation and the social definition of population*. Oxford: Clarendon Press. 253pp.
- Hill, Lowell D. and Bender, Karen L. (1995). *Developing the regulatory environment for competitive agricultural markets*. Washington, D.C.: The World Bank. 45pp.
- Holden, Matthew. (1966). *Pollution control as a bargaining process: An essay on regulatory decision-making*. New York: Water Resources Center, Cornell University. 53pp.
- Holdgate, M W. (1979). *Perspective of environmental pollution*. Cambridge: Cambridge University Press. 278pp.

- Holliday, John C. (1977). *Design for environment: Social change and the need for new approaches in planning*. London: Charles Knight. 192pp.
- Hulme, Mike. (2009). *Why we disagree about climate change : Understanding controversy, inaction and opportunity*. New York: Cambridge University Press. 392pp.
- Hutanuwatr, Pracha and Manivannan, Ramu. (Eds.). (2005). *Asian future: Dialogues for change*. London: Zed Books. 2 vols. 266pp+389pp.
- Jayaram, Dhanasree. (2012). *Breaking out of the green house: Indian leadership in times of environmental change*. New Delhi: KW Publisher. 235pp.
- Jenkins, Rhys *et al.* (2002). *Environment regulation in the new global economy*. Cheltenham: Edward Elgar. 349pp.
- Joshi, Sunjoy and Linke, Marlies, (Eds.). (2011). *Sustainable development and climate change*. New Delhi: Academic foundation. 282pp.
- Juniper, Tony. (2007). *Saving planet earth : What is destroying the earth and what you can do to help*. London: Collins. 256pp.
- Kameyama, Yasuko...*et.al* (Eds.). (2008). *Climate change in Asia: perspectives on the future climate regime*. New Delhi: Bookwell. 274pp.
- Khatkhate, Deena R. (1992). *The regulatory impediments to the private industrial sector development in Asia: A comparative study*. Washington, D.C.: World Bank. 200pp.
- Klein, Michael U. and Hadjimichael, Bita. (2003). *The private sector in development: entrepreneurship, regulation, and competitive discipline*. Washington, D.C.: World Bank. 220pp.
- Kneese, Allen V. and Rolfe, Sidney E. (Eds.). (1971). *Managing the environment: International economic cooperation for pollution control*. New York: Praeger Publishers. 356pp.
- Knight, C. Gregory and Jager, Jill, (Eds.). (2009). *Integrated regional assessment of global change*. New Delhi: Cambridge University Press. 412pp.
- Korea Development Institute.Seoul. (1998). *International trade regulation*. Seoul: Korea Development Institute. 146pp.
- Kumar, H. D. (2006). *Global climate change: insights, impacts and concerns*. New Delhi: Vitasta. 487pp.
- Laffont, Jean-Jacques. (2005). *Regulation and development*. Cambridge: Cambridge Univercity Press. 268pp.

- Leary, Neil. *et al* (Eds.). (2009). *Climate change and adaptation*. London: Earthscan. 384pp.
- Leichenko, Robin M. and O'Brien, Karen L. (2008). *Environmental change and globalization: Double exposures*. New York: Oxford University Press. 167pp.
- Lgemann, Jan. (2012). *Development of consumer credit in global perspective: Business, regulation, and culture*. New York: Palgrave Macmillan. 295pp.
- Lin, Tun and Swanson, Timothy. (Eds.). (2010). *Economic growth and environmental regulation: The People's Republic of China's path to a brighter future*. Oxon: Routledge. 368pp.
- Lucas, Robert E.B. Wheeler, David and Hettige, Hemamala. (1992). *Economic development, environmental regulation, and the international migration of toxic industrial pollution* 1960- 88. Washington, D.C.: World Bank. 20pp.
- Marathe, Sharad S. (1986). *Regulation and development: The Indian policy experience of controls over industry*. New Delhi: Sage. 328pp.
- Mariolis, Theodore and Tsoulfidis, Lefteris. (Eds.). (2006). *Distribution, development and prices critical perspectives.* New Delhi: Serials. 222pp.
- Martorella, Peter H. (Ed.). (1976). *Social studies strategies: Theory and practice*. New York: Harper and Row. 456pp.
- Massel, Mark S. (1961). *The regulatory process*. Washington, D.C.: Brookings. 22pp
- McGarity, Thomas O. (1991). *Reinventing rationality: The role of regulatory analysis in the federal bureaucracy*. Cambridge: Cambridge University Press. 384pp.
- Mckinnon, Catriona.(2012). *Climate change and future justice: Precaution, compensation, and triage.* Routledge: London. 181pp.
- McMahon, Robert. (2006). *Environmental protection agency: Structuring motivation in a green bureaucracy: The conflict between regulatory style and cultural identity*. Brighton: Sussex Academic Press. 219pp.
- McMichael, A.J. (1993). *Planetary overload: Global environmental change and the health of the human species*. Cambridge: Cambridge University Press. 352pp.
- Merrington, Graham. (2002). *Agricultural pollution, environmental problems and practical solutions.* London: Spon Press. 243pp.
- Miller, Barbara A. and Reidinger, Richard B. (Eds.). (1998). *Comprehensive river basin development: The Tennessee Valley Authority*.

Washington, D.C.: World Bank. 86pp.

- Modi, Narendra. (2011). *Convenient action : Gujarat's response to challenges of climate change*. Delhi: Macmillan Publishers. 226pp.
- Moran, Michael and Prosser, Tony. (Eds.). (1994). *Privatization and regulatory change in Europe*. Buckingham: Open University. Press. p.14-34.
- Morris, Sebastian. (Ed.). (2002). *India infrastructure report: Governance issues for commercialization*. New Delhi: Oxford University Press. 388pp.
- Nag, Sajal. (Ed.). (2017). *Playing with nature: History and politics of environment in North-East India*. New Delhi: Manohar. 363pp.
- Nakagawa, Junji. (2011). *International Harmonization of Economic Regulation*. London: Oxford University Press. 391pp.
- Nanda, Nitya. (2008). *Expanding frontiers of global trade rules: The political economy dynamics of the international trading system*. London: Routledge. 193pp.
- Narain, Sunita. (2017). *Conflicts of Interest: My Journey through India's Green Movement*. Penguin Books. 240pp.
- Narain, Vishal and Prakash, Anjal (Eds.). (2016). *Water security in Peri-urban South Asia: Adapting to climate change and urbanization*. New Delhi: Oxford University Press. 314pp.
- National Biodiversity Authority. New Delhi. (2017). *India's national report to the convention on biological diversity*. New Delhi: National Biodiversity Authority Publication, 1-5 Reports.
- Organisation for Economic Co-operation and Development. Paris. (1999). *Regulatory reform in the United States*. Paris: Organisation for Economic Co-operation and Development. 355pp.
- Palmer, Martin and Finlay, Victoria. (2003). *Faith in conservation: New approaches to religions and the environment*. Washington, D.C.: World Bank. 166pp.
- Paul Cook, *et.al.* (Eds.). (2004). *Leading issues in competition, regulation and development*. Cheltenham: Edward Elgar. 452pp.
- Peake, Stephen and Smith, Joe. (2010). *Climate change : From science to sustainability*. New York: Oxford University Press. 291pp.
- Prasad, Chandra Shekhar. (2011). *Economic laws, regulations and procedures in India*. New Delhi: New Century. 465pp.
- Puga, Diego and Anthony J. Venables. (1997). *Trading arrangements and industrial development.* Washington, D.C.: World Bank. 32pp.

- Qalo, Veniana. (Ed.). (2008). *Bilateralism and development: Emerging trade patterns*. London: Cameron May. 484pp.
- Ramachandran, H. (Ed.). (1990). *Environmental issues in agricultural development*. Delhi: Concept. 180pp.
- Ramachandra, T.V., Murthy, C. Rajasekara and Ahalya, N. (2002). *Restoration of lakes and wetlands.* Delhi: Allied. 400pp.
- Rautenstrauch, Claus and Patig, Susanne. (2000). *Environmental information systems in industry and public administration*. Hershey, PA: Idea Group Pub. 436pp.
- Redfrd, Emmette S. (1959). *National regulatory commissions: need for a new look.* Maryland: Bureau of Governmental Research. 23pp.
- Richar, Barbara and Triche, Thelma. (1994). *Reducing regulatory barriers to private-sector. participation in Latin America's water and sanitation services*. Washington, D.C.: World Bank. 19pp.
- Roslansky, John D. (Ed.). (1967). *Control of environment: a discussion at the nobel Conference*. Amsterdam: North- Holland. 112pp.
- Salman, Salman M.A. and Bradlow, Daniel D. (2006). *Regulatory frameworks for water resources management: A comparative study*. Washington, D.C.: World Bank.198pp.
- Sappington, David E.M. (1994). *Principles of regulatory policy design.* Washington, D.C.: World Bank. 45pp.
- Schiantarelli, Fabio. (2005). *Product market regulation and macroeconomic performance: A review of cross-country evidence*. Washington, D.C.: World Bank. 46pp.
- Shah, Manubhai. (1968). *Report of the Working Group on Developmental, Control and Regulatory Organizations*. Delhi: The Manager of Publications. 108pp.
- Sikka, Pawan. (2010). *Global warming: India's response to climate change, disaster mitigation and adaptation*. New Delhi: Uppal. 655pp.
- Simmons, J.G. (1993). *Environmental history: A concise introduction.* Oxford: Blackwell. 206pp.
- Sinha, Anushree, Bauer, Armin and Bullen, Paul. (Eds.). (2015). *Environments of the poor in South Asia : simultaneously reducing poverty, protecting the environment, and adapting to climate change.* New Delhi: Oxford University Press. 336pp.
- Sivaramakrishnan, K. (1999). *Modern forests: State making and environmental change in Colonial Eastern India*. New Delhi: Oxford University Press. 341pp.
- Smith, Helen. (1996). *Lawton Energy and environment regulation*.

London: Macmillan. 324pp.

- Smith, Joel B Klein, Richard J.T. and Huq. (2003). *Saleemuleds Climate change, adaptive capacity and development.* London: Imperial College Press. 347pp.
- Stefano, Lucia De *et al.* (2010). *Mapping the resilience of international river basins to future climate change-induced water variability*. Washington, D. C.: World Bank. 74pp.
- Stewart Lockie , David Sonnenfeld, A. and R. F., Dana. (2014). *Routledge international handbook of social and environmental change.* (2014). London: Routledge. 338pp.
- Swaminathan, M. S. and Ikeda, Daisaku. (2005). *Revolutions : To green the environment to grow the human heart*. Chennai: East West Books.138pp.
- Szerszynski, Bronislaw, Heim, Wallace and Waterton, Clair. (Eds.). 2003. *Nature performed: Environment, culture and performance*. Oxford: Blackwell. 226pp.
- Tacconi, Luca, Mohanty, Sango and Suich, Helen. (Eds.). (2010). P*ayments for environmental services, forest conservation and climate change: Livelihoods in the REDD?*. Cheltenham, U. K.: Edward Elgar. 267pp.
- Tajika, Eiji. (1983). *Optimal pricing policies for economic development*. Tokyo: Institute of Developing Economics. 98pp.
- Tanner, Thomas and Horn-Pathanothai, Leo. (2014). *Climate change and development*. London: Routledge. 367pp.
- Thirlwal, A.P. (1999). *Growth and development: With special reference to developing economies*. 6th ed. Houndmills: Macmillan. 521pp.
- Toman, Michael A., Chakravorty, Ujjayant and Gupta, Shreekant. (Eds.). (2004). *India and global climate change: perspectives on economics and policy from a developing country*. New Delhi: Oxford University Press. 366 pp.
- United Nations. Department of Technical Co-operation for Development. (1984). *Regulatory administration for national development: Report of an interregional seminar Bangkok, Thailand* 9-13 May 1983. New York: Department of Technical Co-operation for Development. 130pp.
- Veeresh G.K. (2017). *Organing farming*, New Delhi: Centre for Environment of Education. 259 pp.
- Verheyen, Roda. (2005). *Climate change damage and international law: Prevention duties and state responsibility*. Leiden: Martinus Nijhoff. 406pp.

- Wang, Zhikai. (2008). *The private sector and China's market development*. Oxford: Chandos. 126pp.
- World Bank. (2007). *Celebrating reform 2007: Doing business case studies*. Washington, D.C.: World Bank. 90pp.
- World Bank. (1994). *China: Internal market development and regulation*. Washington, D.C.: World Bank. 248pp.
- World Bank. (1993). *Guyana: Private sector development*. Washington, D.C.: World Bank. 87pp.
- World Bank. (1996). *International directory of utility regulatory institutions*. Washington, D.C.: World Bank. 139pp.
- World Bank. (2008). *International trade and climate change: Economic, legal, and institutional perspectives*. Washington D.C.: World Bank. 144pp.
- World Bank. *Weather and climate services in Europe and Central Asia: A regional review*. Washington, D.C.: World Bank, 2008. 79pp.

Articles

- Acharya, Sanghmitra. (1997). Women in the context of environment and sustainable development. *IASSI Quarterly, 16*(3-4), 275-91
- Adhikary, Dileep K. (2012). Green economy: In pursuance of sustainable development. *Administration and Management Review, 24*(2), 71-90.
- Agarwal, R.N. (2002). Environmental concerns and role of dams in development with special reference to Bhakra and Beas project. *Bhagirath, 49*(4), 162-68.
- Agarwal, Rajiv & Pardeshi, Praveen. (1989). Development without destruction: A study of the problems and policies in Raigad district. *Indian Journal of Public Administration*, *35*(3), 538-547.
- Agnaia, Almehdi A. (1998). Management training and development in organisational environment: the case of Libyan public companies. *Public Enterprise, 16*(1-2), 27-40.
- Ahmad, Ijaz & Bajwa, Ihsan Ullah. (2006). Effective implementation of town planning regulations in Pakistan: A step forward for sustainable development and a healthy built environment. *Regional Development Dialogue, 27*(1), 187-95.
- Ahuja, B.S. (1990). Third IWRS national symposium on Watershed Development and Management. *Bhagirath, 37*(4), 152-5.
- Akram, Mohammad. (2007). Environmental concerns and sustainable development: Various perspectives. *University News, 45*(44), 4-98.
- Ansari, A.H. (1991). Economic development, environmental management and developing countries with special reference to India. *India Quarterly, 47*(1-2), 81-88.
- Antle, John M. and Heidebrink, Gregg. (1995). Environment and development: Theory and international evidence. *Economic Development and Cultural Change*, 43(3), 603-05.
- Archana, Maulick. and Barna Ganguli. (2016). A nexus between environment and economic development. *Indian Journal of Regional Science, 48*(2), 28-36.
- Arora, Guljit K. (1995). Environment, population and development issues in developing countries in the emerging global world. *India Quarterly, 51*(2-3), 97-118.

- Bajpai, G.N. (2004). Development financing in a changing environment. *Economic and Political Weekly, 39(*22), 2212-215.
- Banerjee, Shubhanker.(1995). Protecting environment from disaster. *Kurukshetra, 44*(3), 45-46.
- Banerjee, U.K. (1996). Sustainable development and management of forests. *Indian Forester, 122*(1), 24-29.
- Basheer, K. Mohammed. (2007). Development and environmental concerns. *University News, 45*(44), 40-43.
- Basu, N.G. (1989). Ecology and development. *Mainstream, 27*(40), 18-20.
- Baviskar, Amita. (2006). Cultural politics of environment and development: The Indian experience. *Review of Development and Change, 11*(1), 1-14.
- Bharat Bhushan. (2001). Urban poverty, natural environment and human resources management. *ASTI Journal of Training and Development, 2*(2), 13-43.
- Bhattacharyya, Rabindra N. (1991). Development and environment: A perspective for hill regions. *Indian Journal of Regional Science, 23*(1), 11-16.
- Bhide, Amit. (2012). Environment and development: Sustainability in India's urban areas: Need to reframe the debate. *Yojana, 56* (May), 38-42.
- Bose, Ashish. (1995). Population, environment and development: Some socio- cultural factors.*Man and Development, 17*(3), .38-45.
- Bose, Sudeepa & Agarwal, Manisha. (2005). Organizational work climate and perceived 'procedural fairness' of human resource practice. *Psychological studies, 50*(2-3), 243-49.
- Calvert, Peter. (2001). Internal colonisation, development and environment. *Third World Quarterly*, 22(1), 51-63.
- Chakrabarti, Kalyan. (1996). Forestry and sustainable development. *Indian Forester, 122*(1), 8-17.
- Chand, Prakash. (2011). Urban growth and its impact on environment and public health: A study of Delhi. *Urban India, 31*(2), 123-145.
- Chandra, N.D.R. (2009). Environment, development and population. *University News, 47*(38), 4-7.
- Chawla, Louise. (2002). "Insight, creativity and thoughts on the environment": Integrating children and youth into human settlement development. *Environment and Urbanization, 14*(2), 11-21.
- Chowdary, T.H. (1997). Development and environment. *Politics India, 1*(9), 25-27.

- Chowdhry, Kamla. (1989). Poverty, environment, development. *Daedalus, 118*(1), 141-58.
- Claridge, C.L., Frank, B.R. and Mott, J.J. (1999). The environment, development and women: What is the connection. *Journal of Rural Development,* 18(1), 1-27.
- Correggia, Marinella. (2014). Green fairy dusts: Three natural proposals to confront the nutrition and environment emergency. *Development, 57*(2), 262-267.
- Crotty, Jo. (2006). Reshaping the hourglass? The environmental movement and civil society development in the Russian federation. *Organization Studies, 27*(9), 1319-338.
- Danfulani, Ahmed (1991). Environment and development - policy study paper. *Space, 6*(1-2), 6-12.
- Danfulani, Ahmed. (1992). Environment and development policy. *Journal of Rural Development, 11*(2), 127-39.
- Desai, Bhupat M. (1996). Agricultural development paradigm for the Ninth Plan under new economic environment. *Agricultural Situation in India, 53*(5), 293-311.
- Desai, Bhupat M. and Namboodiri, N.V. (1998). Agricultural development under the new economic environment: a case of Zambia. *Vikalpa, 23*(4), 1998, 75-87.
- Deshmukh, Neelima. (2014). Environmental education: Holistic approach for environment protection and sustainable development in the Indian context. *Indian Journal of Public Administration, 60*(1), 137-145.
- Development and environment. (1997). *Yojana, 41*(8), 7-134
- Development and the environment: a survey. (1998). *Economist, 346*(8060), 3-16
- Dhanagare, D.N. (1993). Sustainable development, environment and social science research in India (Document). *Indian Journal of Public Administration, 39*(3) 551-565.
- Dhar, T.N. (1990-91). Development planning and environment: Some key issues. *Journal of the Institute of Public Administration, 6*(1-4), 1-21.
- Dhar, T.N. (2016). Well-governed, modernised environment friendly and politically integrating development of North-East Region (NER). *Indian Journal of Public Administration, 62*(3), 341-351.
- Diwan, G.R. (2003). Sustainable development of hill areas - protection of environment through effective citizen's participation: the case of Pune. *Indian Journal of Regional Science, 35*(2), 23-26.
- Dogra, Bharat. (2015). Changing development path essential for justice,

sustainability and even survival: Unprecedented challenges strengthen case for equality and environment protection.*Mainstream, 53*(17), 15-24.

- Eisenstadt, Todd A. & West, Karleen Jones. (2017). Public opinion, vulnerability, and living with extraction on Ecuador's oil frontier: Where the debate between development and environmentalism gets personal.*Comparative Politics, 49*(2), 231-251.
- Ekins, Paul. (1991). A strategy for global environmental development. *Development,* 2, 64-72.
- El - Qadi, Fao'd. (1983). The role of organisational development in the environment of work. *Public Administration, 38*(21), 30-2.
- Farrell, Alex. (1999). Sustainability and decision making: The EPA's sustainable development challenge grant programme. *Policy Studies Review, 16*(3-4), 36-74.
- Foster, John Bellamy. (1997). The age of planetary crisis: The unsustainable development of capitalism. *Review of Radical Political Economics, 29*(4), 113-42.
- Gaan, Narottam. (1993). Environment and development: A search for an economic rethinking. *Indian Journal of Public Administration, 39*(3), 300-311.
- Gaan, Narottam & Das, Sudhansubala. (1998). Environment, development and human rights: A South's perspective. *ISDA Journal, 8*(2-4), 149-73
- Gandhi, Rajiv. (1987). Environment and development (Document). *Indian Journal of Public Administration, 33*(4), 987-990.
- Ghosh, Arindam and Chakraborty, Shantanu. (2005). Environmental accounting: An attempt for sustainable development with methodological approach. *Management Accountant, 40*(6), 448-53.
- Ghuman, B.S., Kaur, Dhian and Chima, Gurpinder. (2004). Urban agriculture and environmental sustainability in Canada: lessons for India. *Political Economy Journal of India*, 13(2), 40-44.
- Gopalakrishnan, A. Navaneetha and Selvam, K. Ranbir. (2012). Environment and development: Environmental management by pollution prevention. *Yojana, 56* (May). 44-47.
- Gupta, Manjul and Gupta, Ranjana. (2002).Environmental problems and development. *Third Concept, 16*(185), 42-44.
- Gustafson, Daniel J. & Ingle, Marcus D. (1999). Defining sustainable development: Environmental and investment perspectives and implications for administrative reform. *International Journal of Public Administration, 22*(6), 1999, 833-54.

- Hazarika, Satyendra. (2007). HRD in a participatory rural environment. *Indian Journal of Training and Development, 37*(2), 5-14.
- Hiremath, S.R. (1989). People's participation in protection and sustainable use of environment. *Indian Journal of Public Administration, 35*(3), 389-396.
- Hundloe, Tor. (1992). The role of the Industry Commission in relation to environment and sustainable development. *Australian Journal of Public Administration, 51*(4), 476-89.
- Illig, Peter and Haldeos, Demitris P. (2004). Children's health and the environment. *Development, 47*(2), 104-08.
- Inamdar, N.R. (1989). Environmentalism and development. *Indian Journal of Public Administration, 35*(3), 353-361.
- Indian Institute of Public Administration. (1984). Workshop on Policy Formulation for Development and the Environment. (2nd to 8th Feb. 1984). *University News, 22*(13), 9-10
- Islam, Narul. (1991). External environment for development in Third World. *Economic and Political Weekly*, 26(36), 2107- 12.
- Iyer, Ramaswamy R. (2014). Environment and development - Some thoughts for the new government. *Economic and Political Weekly, 49*(25), 19-21.
- Jain, L.C. (1988). Poverty, environment, development a view from Gandhi's window. *Economic and Political Weekly, 23*(7), 311-20.
- Jha, Gangadhar. (1998). Seminar on project development experience in urban environmental infrastructure (20-22 April 1998, Pune). *Urban India, 18*(2), 91-100.
- Kamal Nath. (1994). Environment and development. *Kurukshetra 43*(3), 12-13,43.
- Kamerimbote, Patricia. (2006). Women, land rights and the environment: The Kenyan experience. *Development, 49*(3), 43-48.
- Karkal, Malini. (1994). Population, environment and development. *Health for the Millions, 2*(3), 8-10.
- Karshenas Massoud. (1994). Environment, technology and employment: Towards a new definition of sustainable development. *Development and Change, 25*(4), 723-56.
- Kattimani, Prakash S. (2016). Significance of environmental sustainable development. *Third Concept, 29*(349), 40-43.
- Khosla, Ashok. (1989). Technology and environment: Role of "independent sector" in sustainable development. *Indian Journal of Public Administration, 35*(3), 527-537.
- Kim, Soonhee. (2005). Factors affecting state government information

technology employee turnover intentions. *American Review of Public Administration, 35*(2), 137-56.

- Konvitz, Josef W. (1995-96). Improving the city environment. *OECD Observer*, (197), 17-22.
- Kothari, Smita. (1985). Ecology vs development: The struggle for survival. *Social Action, 35*(4), 379-92.
- Krishna Kumar, T. (1996). Management of development in the newly emerging global economic environment. *Economic and Political Weekly, 31*(25), 1598-1605.
- Lahiry, S.C. (1997). Mineral development and environment. *Yojana, 41*(8), 88-92.
- Lakshminarasaiah, M. (1996). Economics and environment. *Nirnay, 11*(1-4), 1-4.
- Lee, Kai N. (2006). Urban sustainability and the limits of classical environmentalism. *Environment and Urbanization, 18*(1), 9-22.
- Lee, Yuen- Ching Bellette. (2013). Global capital, national development and transnational environmental activism: Conflict and the three Gorges dam. *Journal of Contemporary Asia*, 43(1), 102-126.
- Leff, Enrique. (2011). Forging an environmental rationality for a sustainable future. *Development, 54*(2), 174-176.
- Main, Thomas J. (2005). Non incremental change in an urban environment: The case of New York city's human resource administration. *Administration and Society, 37*(4), 483-503.
- Manalo, Zenaida A. (1986). Economic valuation of the environmental quality effects of development. *Philippine Planning Journal, 17*(2), 38-46
- Max, Rosemary. (2000). Advancing the social agenda: The need for an enabling environment.*Development, 43*(2), 54-56.
- Mayor, Federice. (1988). The environmental crises and the duty of scientists. *Development*, 1, 34-8.
- Meher, Rajkishor. (1997). Industry versus environment: Styles of development and change in a tribal region - the case of Rourkela. *Social Change, 27*(1-2), 183-209.
- Mishra, Padmaji. (1988). Ecosystem and regional development. *Indian Journal of Regional Science, 20*(2), 22-6.
- Mishra, Rajendra. (2006). Environment, development and human rights: Integrated approach to civil society. *University News, 44*(12), 11-14.
- Mohan, Madan. (1992). Ecology and development. *JNU News, 13*(7), 10-12, 23.

- Mohapatra, G., Mishra, P. & Giri, A.K. (2005). Aspects of linkage between environment and economic development: A survey. *Indian Journal of Economics, 86*(340), 107-24.
- Mukherjee, Somnath. (2011). Tribal environment and development issues: A case study of Purulia district (W.B.). *Social Action, 61*(4), 394-405.
- Mukherji, Ambarish. (1995). Gandhism and environment. *Mainstream, 33*(45), 20-22.
- Mukundan, N. (2004). Environment, people's participation and sustainable rural development. *Kurukshetra, 52*(8), 4-11.
- Munsi Sunil. (1993). Development and environment in Indian agriculture. *New Age,* 41(34), 5.
- Nadkarni, M.V. (2000). Poverty, environment, development: A many-patterned nexus. *Economic and Political Weekly, 35*(14), 1184-190
- Nagendra Singh. (1987). Right to environment and sustainable development as a principle of international Law. *Journal of the Indian Law Institute, 29*(3), 289-320.
- Narain, Sunita. (2012). Environment and development: From protests to where in 2012? *Yojana, 56* (May) 10-11.
- Nautiyal Annpurna. (1994). Politics of environment and development. *Third Concept, 8(*88), 29-31.
- Naveen Prakash. (2005). Development finance institutions (DFIs) in India -changing scenario in a reform-friendly economic environment. *Administrator, 48*(1), 29-52.
- Om Prakash. (1987). Planning for socio - economic development and environment management in West district of Sikkim. *Journal of Rural Development, 6*(1), 99-119.
- Pachauri, R.K. (1997). Development and environment. *Yojana, 41*(8), 7-9, 134.
- Pachauri, R.K. (1998). Preservation of environment: An input to development. *Yojana, 42*(8), 35-39.
- Pal, Shyam Sunder. (1997). Organisational thrusts reorientation in public sector enterprises for human resource development in the new economic environment. *Indian Journal of Training and Development, 27*(3), 31-54.
- Panda, Ranjan K. (2012). Environment and development: Water-sanitation nexus more complex than toilet-cell phone comparison. *Yojana, 56,* 21-24.

- Pandey, Prashant and Kaushik, Neetu. (2004). Environment, population and economic development. *Yojana*, *48*(6), 41-43.
- Panigrahi, Srikanta K. (2012). Environment and development: DURBAN conference: The road ahead and lessons for India. *Yojana, 56*, 34-36.
- Parmar H.S. (1993). Development and environment preservation in Himachal Pradesh. *Yojana, 37*(21), 24, 26
- Pattanaik, Sarmistha. (2003). Development, globalisation and the rise of a grassroots environmental movement: The case of Chilika Bachao Andolan (CBA) in Eastern India. *Indian Journal of Public Administration, 49*(1), 55-65.
- Paul, M.C. (1993). Environment and sustainable development. *Yojana, 37*(6), 27-9.
- Paul, Samuel. (2000). Do states have an enabling environment for industrial growth? *Economic and Political Weekly, 35*(43-44), .3861-869.
- Paulus, Stephan. (1989). Economic growth, structural change and environmental policy in India. *Productivity, 30*(3), 245-57.
- Raghunandan, D. (2003). Environment and development under capitalist globalisation. *Social Scientist, 31*(9-10), 36-57.
- Ramamurthi. (1996). Environment and development. *Nirnay, 11*(1-4), 27-34.
- Raman, Meenakshi. (2006). Environmental struggles in Malaysia. *Development, 49*(3), 38-42.
- Ramasamy, A.S. (1996). Population, environment and development. *Kurukshetra, 44*(6), 28-31
- Ramesh, Jairam. (2010). The two cultures revisited: The environment-development debate in India. *Economic and Political Weekly, 45*(42), 13-16.
- Rao, J. Mohan. (1995). Economic reform and ecological refurbishment: A strategy for India *Economic and Political Weekly, 30*(28), 1749-761.
- Ratna Reddy, V. (1995). Environment and sustainable agricultural development: Conflicts and contradictions. *Economic and Political Weekly*, *30*(12), 21-27.
- Ray Sunil. (1993). Sustainable development through the development of the non-farm sector. *Capitalism Nature Socialism, 4*(3), 61-67.
- Reddy, Y.R.K. (2013). Rethinking HRD-the context of strategic environment. *Indian Journal of Training and Development, 43*(3), 87-93.
- Rishi, Parul. (1997). Women and the environment: from empowerment

to sustainable development. *Kurukshetra, 45*(4-5), 52-55.

- Rosset, Peter. (2000). The multiple functions and benefits of small farm agriculture in the context of global trade negotiations. *Development, 43*(2), 77-82.
- Sachchidananda. (1994). Women, environment and development. *Trends in Social Science Research, 1*(1), 71-79.
- Sander, Inguar. (1996). Abandon the cities? urbanization and the environment in Southeast Asia. *Development and Cooperation*, 2 (Mar-Apr),16-17.
- Santosh Kumar. (2012). Environment and development: Environment, development and disasters: The Panchatatva equilibrium. *Yojana, 56* (May),13-17.
- Sasikala, G.P. (1993). Population urbanisation and environmental degradation in India. *Civic Affairs, 40*(9), 9-16
- Schteingart, Martha. (1986). Social conflicts and environmental deterioration. *Development*, 4, 56-60.
- Segynola, Albert A. (1989). Environmental perspectives on rural development strategies in rurla Nigeria. *Journal of Environmental Management, 28*(2), 109-16.
- Shah, Mihir. (2004). National rural employment guarantee act: A historic opportunity. *Economic and Political Weekly*, *39*(50), 5287-291.
- Shali, P.N. (1992). Towards pollution free urban development. *Yojana, 36*(22), 17-19
- Sharma, B.K. (1996). Impact of economic development on environment in Delhi. *Yojana, 40*(6), 35-36.
- Sharma, Subhash. (2012). Environment and development: Development and its environmental implications. *Yojana, 56* (May) 30-32.
- Sharma, Subhash. (2009). Why the marginalised protest: Environmental movements as a critique of dominant development discourse. *Social Change, 39*(2), 171-94.
- Sharma, V.K., Gupta, Manu & Sharma, Anshu. (1997). Environmental consideration in urban development. *Nagarlok, 29*(2), 63-68.
- Sheh, Pravin & Gandhi, M.K. (2001). The eco-Gandhi and development model. *ISDA Journal, 11*(4), 131-48.
- Sheth, Pravin. (2001). The eco-Gandhi and development model. *ISDA Journal, 11*(4), 131-48.
- Simonis, Udo E. (1992). Poverty environment and development. *Monthly Public Opinion Surveys, 37*(10), 3-12
- Smith, Richard. (1997). Creative destruction: capitalist development and

China's environment. *Oxford Economic Papers*, *49*(2), 3-41.

- Special issue on environment and development: an introduction. (1992). *Social Change, 22*(10), 3-145.
- Special issue on human centred economics: environment and global sustainability. (1990). *Development*, (3-4), 5-177. .
- Special number on sustainable urban development. (1992). *Nagarlok, 24*(4), 1-163
- Srivastava, Onkar Nath. (1992). Environment and sustainable development. *University News, 30*(2), 6-7.
- Srivastava, Pankaj. (1995). Environmental aspects of agricultural development in India. *Agricultural Situation in India, 52*(4), 195-98.
- Sundar, I. (2007). Regional planning approach to environmental development. *Kurukshetra, 55*(11), 36-42.
- Swaminathan, M.S. (2012). Environment and development: Do Ecology-pathway to a green economy. *Yojana, 56* (May), 5-8.
- Suresh, V. (1990). Development or destruction. *Mainstream, 28*(18), 10-12.
- Taylor, Matthew E. (1998). Economic development and the environment in Chile. *Journal of Environment and Development*, *7*(4), 422-36.
- Thorat, Vishal S. and Mondal, Bitan. (2012). Environment and development: Measurement of economic progress: Does traditional GDP really add up?. *Yojana, 56*, May) 49-51.
- Tripathi, Sudhanshu. (2007). Environment and sustainable development in South Asia. *India Quarterly, 43*(3), 123-44.
- Velayudhan, K.V. & Jayakumar, G. (2004). Economic development and the environment of Kerala: an investigation of the environment Kuznets curve. *Journal of Social and Economic Studies, 16*(2), 127-36.
- Venkateswarlu, A. (2015). Economic development and crowded planet: The concerns of environment and sustainable development. *Man and Development, 37*(1), 1-30.
- Vibhute, K.I. (1995). Environment, development and law: Indian perspective. *Journal of the Indian Law Institute, 37*(2), 182-94.
- Warburton, John & Horn, Leo. (2007). China's environmental crisis: What does it mean for development? *Development, 50*(3), 48-56.
- Yassori, Majid. (2004). Reconstruction of the environment for sustainable development of the Khorassan region. *Journal of Environment and Development, 13*(4), 425-37.
- Zia, Shahid and Mustaq, Gadi. (2001). Linking food security, environment and culture in Pakistan. *Development, 44*(4), 73-78.

THE INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

NON-ELECTED MEMBERS OF THE EXECUTIVE COUNCIL

President
M .VENKAIAH NAIDU
Vice-President of India

Chairman
T.N. CHATURVEDI
Former Governor of Karnataka

Vice President
SHEKHAR DUTT
(Former Governor of Chhattisgarh)

Co-opted Members

ARUN KUMAR GROVER
Vice-Chancellor
Panjab University,
Chandigarh-160014.

JOSEPH K. ALEXANDER
Chairman
IIPA Kerala Regional Branch,
T.C.14/2144, Medes Lane, Palayam,
Thiruvananthapuram-695034.

S.S. KSHATRIYA
Chairman
IIPA Maharashtra Regional Branch,
16th Floor, New Administrative Building,
Opp. Mantralaya, Hutatma Rajguru Chowk,
Madame Cama Road, Mumbai-400032.

N. LOKENDRA SINGH
Chairman
IIPA Manipur Regional Branch,
C/o Registrar,
Manipur University,
Canchipur,
Imphal-795003.

AJIT KUMAR TRIPATHI
Chairman
IIPA Odisha Regional Branch,

Secretaries to Government of India

AJAY MITTAL
Secretary
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel,
Public Grievances & Pensions,
Govt. of India,
Room No.112,
North Block,
New Delhi-110001.

ASHOK LAVASA
Secretary
Department of Expenditure,
Ministry of Finance, Govt. of India,
Room No.128 C, North Block,
New Delhi-110001.

AMITABH KANT
Chief Executive Officer, NITI Aayog,
Govt. of India, NITI Bhavan,
Sansad Marg, New Delhi-110001.

IIPA Academic Staff

DOLLY ARORA
IIPA, New Delhi-110002.

K.K. PANDEY
IIPA, New Delhi-110002.

GIRISH KUMAR
IIPA,
New Delhi110002.

Director & Member-Secretary
TISHYARAKSHIT CHATTERJEE
Indian Institute of Public Administration
I.P. Estate, Ring Road,
New Delhi-110002.

Telegram: ADMNIST Telephone: 23702400-17

INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
NEW DELHI

INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: published since January 1955)
Editor: MAHENDRA PRASAD SINGH

Yearly Subscription:
Individuals: (Inland) Rs.425.00; (Abroad) $120 or £48;
Single Copy: (Inland) Rs.120.00; (Abroad) $30 or £12;
Special Number: (Inland) Rs.275.00; (Abroad) $80 or £ 36
Institution/Library: (Inland) Rs. 700.00; (Abroad) $ 240.00 or £ 96.00
Life Members of IIPA: Annual subscription: Rs.300.00; Single Copy Rs.75.00; Special Number Rs.200.00

IIPA NEWSLETTER

(Monthly recorder of national and international news of public administration and allied matters since 1956)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE

Yearly Subscription: India: Rs. 10.00; Abroad: $ 4.00 or £ 2.00

DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: Published since 1973)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: A.K. NATH, Dy. Librarian, lIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 150.00; Abroad: $ 60.00 or £ 24.00

NAGARLOK

(Urban Affairs Quarterly: Published since 1969)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: V.N. ALOK, Associate Professor in Urban Finance, IIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 200.00.

लोक प्रशासन (अर्ध–वार्षिक)

सम्पादकः एस. एन. मिश्र

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Bank drafts/postal orders should be drawn only in favour of "**Director, Indian Institute of Public Administration**"
Note: Subscribers are advised to secure safe delivery through Registered Post @ Rs. 100.00 per periodical.

For complete information about IIPA publications write to:

THE EDITOR
INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
Indraprastha Estate, Ring Road, New Delhi-110 002 (India)

Edited by S.N. Mishra and printed and published by Snehlata for Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Ph.: 23468368 and Printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028.